कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मकसंस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्

(2012 तमख्रिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे)

A Critical Study of Navgeetatmak Sanskrit Creations of Kavivar Abhiraj Rajendra Mishra

(With Reference to Texts Written upto 2012)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला–संकाय

शोधार्थी

समय सिंह मीना

शोध–निर्देशक

डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय

सह–आचार्य एवं अध्यक्ष

संस्कृत–विभाग

राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

CERTIFICATE

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled 'कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मकसंस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्' (2012 तमखिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे) by **Samay Singh Meena** under my guidance. He has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of thesis.

Date :

(Dr. Purna Chandra Upadhyaya)
Associate Professor & HOD
Department of Sanskrit
Govt. College, Bundi (Raj.)

Mahāmahopādhyāya
Prof. Abhirāja Rajendra Mishra
Ex Vice Chancellor

Ph. : 0177-6534607
M : 094181-76968, 092185-34607

Dated....२६.३.१३.....

स्वीकृति

यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्री समयसिंह मीणा मेरी संस्कृत नवगीतकृतियों पर पीएच.डी. शोधकार्य कर रहे हैं। उनका प्रस्तावित विषय है - 'कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतसंस्कृत-नवगीतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्'।

मैं इस शोधकार्य-हेतु श्री मीणा को सहर्ष स्वीकृति प्रदान करता हूँ। वह यथावसर मुझसे परामर्श भी कर सकते हैं।

सस्नेह

अभिराज राजेन्द्र मिश्र

Prof. Rajendra Mishra
Ex. Vice Chancellor
Sunrise Villa, Lower Summer Hill
Shimla- 171005 (H.P.)

शोध–सार

"कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मकसंस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्" (2012 तमख्रिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे) शीर्षकाधारित इस शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के शिखरारुढ कवि एवं साहित्य–शलाकापुरुष कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत संस्कृत नवगीत–संग्रहों को समालोचना का विषय बनाया है। वर्तमान कालावधि में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा–चारों ही क्षेत्रों में समान गति से पुष्कल मानक साहित्य की सर्जना करने वाले मिश्र जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। परन्तु इनकी सर्वाधिक लोकप्रियता व ख्याति का कारण है इनके व्यक्तित्व में अन्तर्निहित यशस्वी गीतकार। नवगीतकार मिश्र जी ने नितान्त सरल, सरस एवं मधुर गीत–रचनाओं से सुसज्जित वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता इन पाँच नवगीत–संग्रहों की सर्जना की है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में इन्हीं पाँचों नवगीत संकलनाओं में समाहित नवगीतों के विविध पक्षों का समीक्षात्मक आलोडन करने का प्रयास किया गया है, जिसका संक्षिप्त शोध–सार निम्न प्रकार है–

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध भूमिका एवं उपसंहार सहित कुल सात अध्यायों में विभक्त है। भूमिका अथवा उपक्रम के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य के महत्त्व एवं वर्गीकरण, उद्भव एवं विकास, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के कालावधि एवं स्वरूप का निर्धारण, संस्कृत नवगीत साहित्य के उद्भव एवं विकास, वैशिष्ट्य और उपादेयता पर विहंगम दृष्टिपात किया गया है। साथ ही समकालीन विधाओं से नवगीत के साम्य एवं वैषम्य का अतिसूक्ष्म अध्ययन भी प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र के व्यक्तित्व के विविध आयामों पर विस्तारपूर्वक विचार करते हुए उनके कर्तृत्व की विविध धाराओं का परिचयात्मक विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में अनुसंधेय नवगीत संकलनाओं में संग्रहीत नवगीत–रचनाओं का पूर्ण परिचय एवं वस्तुविश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। साथ ही संकलनाओं के नामकरण एवं शीर्षक की समीक्षा करते हुए रचनाओं में अन्तर्निहित जीवन–दर्शन को निस्यूत रूप में प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में लोकचेतना के तात्पर्य को व्याख्यायित करते हुए कविवर प्रणीत नवगीत रचनाओं में अन्तर्निहित लोकचेतना के विविध पहलुओं को समझने का उपक्रम है। इसके अन्तर्गत नवगीतों में समाविष्ट सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, दलित, नारी, राष्ट्रीयता, संस्कृतभाषा तथा पर्यावरण विषयक कवि की दृष्टि व बोध विवेचित है।

चतुर्थ अध्याय में कवि प्रणीत नवगीतों की शैल्पिक चेतना के संयोजन–सूत्र संरचनाओं के आधार पर तलाशने की चेष्टा है। नवगीतों में अन्तनिर्हित रस–परिपाक, छन्द–योजना, अलङ्कार–योजना, रीति–संघटना, भाषागत वैशिष्ट्य तथा प्रकृति–चित्रण आदि तत्त्वों का प्राचीन एवं अर्वाचीन काव्यशास्त्रीय दृष्टि से समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पञ्चम अध्याय में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र के पाण्डित्य एवं नैसर्गिकी कवित्व प्रतिभा के प्रमाण उनकी नवगीत रचनाओं में गुम्फित ज्ञानवैविध्य के आधार पर प्रस्तुत किये गए हैं। यहाँ नवगीतों में प्रतिबिम्बित कवि के शास्त्रीय, दार्शनिक, व्यावहारिक तथा व्याकरणिक ज्ञान को उद्भासित किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत कविवर प्रणीत नवगीत रचनाओं की अध्ययनगत उपलब्धियों, निष्कर्षों तथा उद्घाटित वातायनों को विद्वज्जनों के समक्ष संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

परिशिष्ट भाग के अन्तर्गत कविवर मिश्र जी की सद्य प्रकाशित रचनाओं की परिचयात्मक प्रस्तुति है तथा उनके नवगीतों में समाविष्ट सुभाषितों, मुहावरों व लोकोक्तियों को भी सङ्कलित किया गया है।

इसके अलावा प्रत्येक अध्याय से पूर्व विवेच्य विषय के सार–स्वरूप कविवर प्रणीत स्फुट–पद्यों को भी प्रस्तुत किया गया है।

♦♦♦♦

Candidate's Declaration

I, hereby, certify that the work, which is being presented in the thesis, entitled **'कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मकसंस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्' (2012 तमख्रिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे)** in partial fulfilment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy, carried under the supervision of **Dr. Purna Chandra Upadhyaya, Associate Professor & HOD, Department of Sanskrit, Government College, Bundi (Raj.)** and submitted to the University of Kota, Kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included. I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in the thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other degree or diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/data/fact/source in my submission. I understand that any violation of the above will cause for disciplinary action by the University and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

Date :

Samay Singh Meena
Research Scholar

This is to certify that the above statement made **Samay Singh Meena (Enrolment No. RS/463/13)** is correct to the best of my knowledge.

Date :

(Dr. Purna Chandra Upadhyaya)
Associate Professor & HOD
Department of Sanskrit
Govt. College, Bundi (Raj.)

कृतज्ञता–ज्ञापन

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

जगदीश्वर को नमन, जिसकी अनुकम्पा व असीम कृपा से मैं शिक्षा के महत्त्व को समझ पाया। ग्रामीण परिवेश में अल्पशिक्षित परिवार में रहकर उच्च शिक्षा की अभिलाषा जागना दैवी–कृपा से कम नहीं। अतः माँ शारदा के अनुग्रह से साहित्य में रुचि जाग्रत हुई तथा संस्कृत भाषा और साहित्य से एक बार परिचय हो जाने पर उसके रसास्वादन से विरत हो जाना किसी संवेदनशील हृदय के बस की बात नहीं। संस्कृत साहित्य से स्नातकोत्तर पूर्ण करने के बाद, पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी, देववाणी के माधुर्य से परिपूर्ण काव्यामृतसिन्धु में कुछ और गहराई तक अवगाहन करने की लालसा प्रबल बनी रही। इसकी पूर्ति हेतु ही शोधकार्य में प्रवृत्ति हुई। शोध–विषय का प्रश्न उपस्थित होने पर अभिनव कालिदास की संज्ञा से अभिहित, निरन्तर सर्जनारत, काव्यमाधुरी के अजस्र स्रोत कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी सर्वप्रथम बुद्धिपटल पर उपस्थित हुए। कालिदास के कनिष्ठाधिष्ठित हो जाने पर दूसरी अंगुली तो अनामिका ही रहेगी। अतः निश्चय हो गया कि अभिराज जी की रचनाओं को ही शोध का विषय बनाना है, पर उनका कविकर्म इतना विशाल है कि मोह त्याग कर चयन करना अनिवार्य हो गया। उनके नवगीतों की सरसता ने इस चयन कार्य को कुछ सरल कर दिया तथा यह निश्चय हो गया कि मिश्र जी के नवगीतों पर शोधकार्य करना है। आदरणीय मिश्र जी से इस हेतु अनुमति चाही तो सरल हृदय कवि ने आशीर्वाद के साथ अनुमति दे दी। इसके लिए आभार व्यक्त करना उनकी इस अनुकम्पा के महत्त्व को कम करना है, किन्तु कर्त्तव्य भी है। आभार व सादर नमन।

शोधविषय को लेकर अपने शोध–निर्देशक आदरणीय डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय से चर्चा की। उन्होंने सहर्ष सहमति दे दी। उपाध्याय जी की विद्वत्ता व सरलता तथा सहृदयता ने शोध के इस कठिन कार्य को पर्याप्त सरल बना दिया। उनके मार्गदर्शन व

सुझावों ने इस कार्य को पूरा करने में अत्यधिक सहायता की अथवा कहूँ कि उनके दिशा–निर्देश के बिना सही मार्ग पर चल पाना सम्भव नहीं था। इंगितों से मार्ग बता देने वाले मार्गदर्शक की महत्ता एक पथिक से अधिक कौन जान सकता है। शोधमार्ग का यह पथिक अपने पथ–प्रदर्शक का ऋणी है कि उसे पथ विमुख होने से बचाकर लक्ष्य तक पहुँचा दिया, साथ ही मार्ग को निष्कंटक करने में भी पूर्ण सहयोग किया।

मेरे परम आदरणीय माता–पिता, जो स्वयं तो शिक्षा पाने के सौभाग्य से वंचित रहे, किन्तु जिन्होंने मेरी शिक्षा प्राप्ति हेतु अपनी क्षमता से भी अधिक सहायता की। माता–पिता के ऋण को चुकाना वैसे ही सन्तान के लिए असम्भव है और फिर जब ऋणभार सामान्य से भी अधिक हो तो उसे चुकाने का विचार भी करना मूर्खता है। ईश्वर से बस इतनी ही प्रार्थना की जा सकती है कि उनके इस दाय का सम्मान कर सकूँ व उनकी सेवा करके अपने सौभाग्य में अभिवृद्धि कर सकूँ।

भाई–बहिनों का निश्छल स्नेह निश्चय ही जीवन में प्रेरक का कार्य करता है। इस प्रेरणा व स्नेह के लिए आभारी हूँ।

अर्धांगिनी प्रेमलता का धन्यवाद ज्ञापन उचित प्रतीत नहीं होता। मेरा परिश्रम व प्राप्ति सब उन्हीं के हैं। पारिवारिक दायित्वों में मेरे हिस्से को भी उन्होंने सहर्ष वहन किया। मानसिक निश्चिन्तता व लेखन हेतु समय मिलना उनके सहयोग के बिना सम्भव ही नहीं था, किन्तु कार्य तो पूरा शरीर ही करता है, आधा नहीं। अतः यह उन्हीं का कार्य था, उन्होंने ही किया, इसके लिए आभार प्रदर्शन करके उनके महत्त्व को कम नहीं करना चाहता।

अपने पुत्र आदित्य व पुत्री हिमांशी को सस्नेह आशीर्वाद देना आवश्यक है। उन्होंने न केवल अपनी बाल–क्रीडाओं से मेरे क्लान्त होते तन–मन को ऊर्जा से परिपूर्ण बनाए रखा अपितु इस कार्य में व्यय होते अपने हिस्से के समय को भी सहजता से स्वीकार कर लिया। यदा–कदा कार्यभार के कारण की गई उनकी अवहेलना की ग्लानि को अपनी बालसुलभ हँसी से धो लेने वाले दोनों बालकों के सुखद भविष्य हेतु शुभाशंसा।

सम्माननीय श्वसुर व श्वश्रु के वात्सल्य व प्रेरणा को कदापि कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। उन्होंने हमेशा मुझे जीवन में आगे बढ़ने तथा सतत परिश्रम व स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया। सादर आभार व वन्दन।

धर्मभगिनी व भाई डॉ. मंजु मीना–डॉ. भरत सिंह मीना, श्रीमती हेमलता मीना–डॉ. महेश चन्द मीना व भाई नरेन्द्र कुमार मीना तथा मेरे प्रिय मित्र डॉ. बलवीर सिंह मीना की प्रेरणा व स्नेह ने शोध के इस सुदीर्घ मार्ग में पाथेय व सम्बल का कार्य किया। मेरी कार्य–सिद्धि से उनकी सन्तुष्टि व प्रसन्नता ही उनका प्राप्य है, मेरे द्वारा ज्ञापित धन्यवाद नहीं।

मेरे कार्यस्थल पर सभी सहकर्मी बड़े सहयोगी रहे, विशेषकर संस्कृत–विभाग के सभी सदस्य। आदरणीय डॉ. साधना कंसल तथा आदरणीय डॉ. गीताराम शर्मा ने समय–समय पर प्रोत्साहित किया, बहुमूल्य सुझाव दिए तथा आवश्यक साहित्य भी उपलब्ध करवाया, पर सब इतने सहज भाव से कि लगा ही नहीं–यह मेरा अधिकार नहीं है। आग्रहपूर्वक दी गई अमूल्य सहायता को सौभाग्य समझ कर ग्रहण करता हूँ। धन्यवाद इस सहयोग का मूल्य नहीं हो सकता।

डॉ. सुदेश आहूजा का धन्यवाद जिन्होंने विषय चयन हेतु बहुमूल्य सुझाव दिये। संस्कृत के युवा कवि डॉ. कौशल तिवारी ने समय–समय पर पाठ्यसामग्री व परामर्श भी दिए, जो शोधकार्य में बहुत ही सहायक सिद्ध हुए। उनकी मित्रता व सदाशयता सम्मान्य है। हृदयतल से आभार।

अन्त में उत्तम टङ्कण कार्य के लिए शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा जंक्शन धन्यवाद की पात्र है, जिसने मुझे यथासम्भव सहायता प्रदान की। अन्त में इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वाले सभी का मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

उन सभी इष्ट मित्रों का आभारी हूँ, स्थानाभाव के कारण जिनका नामोल्लेख नहीं कर पाया, किन्तु जिनके हास–परिहास व प्रेरणा ने मुझे प्रमादी होने से बचाया।

अल्पबुद्धि व पर्याप्त श्रम से जो कुछ कर पाया हूँ, विद्वज्जनों के सम्मुख प्रस्तुत है। यदि मेरा प्रयास थोड़ा भी सफल हो पाया तो यह ईश्वर की अनुकम्पा, गुरुजनों के आशीर्वाद एवं स्नेही परिवारजन व मित्रों के प्रेम का परिणाम है। त्रुटियाँ तो निःसन्देह मेरी अल्पज्ञता का ही परिणाम है। सुधीजन त्रुटियों को क्षमा कर स्नेहाशीर्वाद प्रदान करेंगे, इसी आकांक्षा के साथ....................।

विनयावनत

समय सिंह मीना

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

शोध–सार i - ii

कृतज्ञता–ज्ञापन iii - v

उपक्रम 1–46

(क) संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण

(ख) गीतिकाव्य, भेद, वैशिष्ट्य एवं परम्परा

(ग) नवगीत : स्वरूप एवं परिभाषा

(घ) नवगीत : उद्भव एवं विकास

(ङ) पारम्परिक गीत, नयी कविता और गज़ल बनाम नवगीत : साम्य और वैषम्य

(च) आधुनिक संस्कृत गीत–परम्परा तथा प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रथम अध्याय : कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जीवन–वृत्त एवं कर्तृत्व 47–105

व्यक्तित्व–खण्ड

(क) जन्म–स्थान, जन्म–काल एवं वंशवृक्ष

(ख) विद्यार्थी–जीवन एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ

(ग) शैक्षणिक–प्रशासनिक दायित्व और कार्यक्षेत्र

(घ) विदेश यात्रायें तथा वैदेशिक सम्पर्क

(ङ) पुरस्कार एवं सम्मान

कर्तृत्व–खण्ड

अभिराज–वाङ्मय–परिचय (संस्कृत)

संस्कृतेतर–अभिराजवाङ्मय

अप्रकाशित अभिराज–वाङ्मय

अन्य भाषाओं में अनूदित अभिराज साहित्य

द्वितीय अध्याय : अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों का पूर्ण परिचय एवं वस्तु–विश्लेषण **106–155**

(क) वाग्वधूटी

(ख) मृद्वीका

(ग) श्रुतिम्भरा

(घ) मधुपर्णी

(ङ) अभिराजगीता

तृतीय अध्याय : मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों में वर्णित लोकचेतना **156–254**

(क) लोकचेतना से तात्पर्य तथा उसके विविध आयाम

(ख) सामाजिक चेतना

(ग) राजनीतिक चेतना

(घ) सांस्कृतिक चेतना

(ङ) आर्थिक चेतना

(च) दलित चेतना

(छ) नारी चेतना

(ज) राष्ट्रीय चेतना

(झ) भाषागत चेतना (संस्कृत भाषामूलक चेतना)

(ञ) पर्यावरण–चेतना

चतुर्थ अध्याय : मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों की आलंकारिकी समीक्षा **255–335**

(क) समीक्षा अथवा समालोचना से तात्पर्य

(ख) रस–निष्पत्ति

(ग) छन्द–योजना

(घ) अलंकार–योजना

(ङ) रीति–संघटना

(च) भाषागत वैशिष्ट्य

(छ) प्रकृति–चित्रण

पंचम अध्याय : नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों में मिश्र जी का पाण्डित्य तथा नैसर्गिकी कवित्व प्रतिभा **336–382**

(क) शास्त्रीय ज्ञान

(ख) दार्शनिक ज्ञान

(ग) व्यावहारिक ज्ञान

(घ) व्याकरणिक ज्ञान

उपसंहार **383–393**

परिशिष्ट **394–398**

शोध–संक्षेपिका **399–412**

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका **413–421**

अभिराज–वाङ्मय

सहायक–ग्रन्थ

व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ

शोध–पत्रिकाएँ

प्रकाशित शोध–पत्र

उपक्रम

यद्वर्तते मनसि, वाचि तदेव मे स्यात्
कार्येऽपि तद्भवतु मे नितरां, प्रयाचे।
विश्वम्भर! प्रणतपाल! मदेकबन्धो!
नित्यं कुरुष्व मम मङ्गलसुप्रभातम्!!
कस्यापि नो रिपुरहं क्रियया भवेयं
नाऽन्योऽपि मे भवतु कोऽपि मुधैव वैरी।
मद्देहभस्मनिचयैर्भवतात्परेषां
सौख्यं, तदेव मम मङ्गलसुप्रभातम्।।

उपक्रम

(क) संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज जिस प्रकार का होता है, वह उसी भाँति साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। समाज के रूप–रंग, वृद्धि–ह्रास, उत्थान–पतन, समृद्धि–दुरवस्था के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। इसी प्रकार साहित्य संस्कृति का वाहक होता है। संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुर झाँकी दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रसार तथा प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है। साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का मुकुर है, तो सांस्कृतिक आचार तथा विचार के प्रकृष्ट प्रचारक के रूप में संस्कृति के सन्देश को जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण संस्कृति का वाहन होता है।

इस प्रकार साहित्य लोकोपकारक है। लोकोपकारक अर्थ में 'हितेन सह वर्तमानः सहितः तस्य भावः साहित्यम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार तथा 'सहभावश्चाष्टादश–प्रस्थानभिन्नानां विद्यानाम्' में निहित सहभाव अर्थ में सह+इतच् से निष्पन्न सहित पद से 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च' से 'ष्यञ्' प्रत्यय होकर साहित्य पद सिद्ध होता है। 'अष्टादश विद्याओं' अर्थात् चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, मीमांसा, न्यास, धर्मशास्त्र तथा पुराण का सहभाव साहित्य है। 'सहितयोः भावः साहित्यम्' इस अर्थ में 'साहित्य' शब्द और अर्थ के मञ्जुल सामञ्जस्य का सूचक है। महाकवि भर्तृहरि ने संगीत तथा साहित्य से विहीन पुरुष को जब पशु कहा[1] तब उनका आशय 'साहित्य' के उन कोमल काव्यों से है जिनमें शब्द और अर्थ का अनुपम सन्निवेश है। शास्त्र और साहित्य में अन्तर यही है कि शास्त्र में अर्थप्रतीति के लिए ही शब्द का प्रयोग किया जाता है, परन्तु काव्य में शब्द और अर्थ दोनों एक ही कोटि के होते हैं, न तो कोई घटकर रहता है, न बढ़कर।

---

1. महाकवि भर्तृहरि, नीतिशतक साहित्य–संगीत–कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

'न च काव्ये शास्त्रादिवत् अर्थ–प्रतीत्यर्थं शब्दमात्रं प्रयुज्यते; सहितयोः शब्दार्थयोः तत्र प्रयोगात्। तुल्यकक्षत्वेन अन्यूनानतिरिक्तत्वम्।' – व्यक्तिविवेकटीका (पृ.–26)

इसी अर्थ को दृष्टि में रखकर राजशेखर ने साहित्य विद्या को 'पञ्चमी विद्या' कहा है, जो मुख्य चार विद्याओं–पुराण, न्याय (दर्शन), मीमांसा, धर्मशास्त्र का सार भूत है–

'पञ्चमी साहित्यविद्येति यायावरीयः। सा हि चतसृणां विद्यानामपि निष्यन्दः।'– काव्यमीमांसा (पृष्ठ–4)

बिल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरितम् में काव्यरूपी अमृत को साहित्य–समुद्र के मन्थन से उत्पन्न होने वाला बतलाया है–

'साहित्य–पाथोनिधि–मन्थनोत्थं काव्यामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।
यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति।।'

– (विक्रमाङ्कदेवचरितम् 1.11)

'साहित्य' शब्द संकुचित अर्थ में काव्य, नाटक आदि के लिये प्रयुक्त होता है।

संस्कृत साहित्य का महत्त्व

साहित्यस्य निधिं च जीवनविधिं या विभ्रती शेवधिम्
प्राचीनां च परम्परां प्रतिनवां या कुर्वती प्रज्ञया।
स्रोतोभ्यश्च सहस्रशो बहु सृता पुण्यप्रवाहान्विता
सैषा संस्कृतवाङ्मयार्णवमहाधारा सदा पातु नः।।
मूलं वेदमयं पवित्रचरितं स्कन्धोऽस्य रामायणम्
नाना दर्शनधर्मशास्त्रनिचयाः शाखास्तथा विस्तृता :।
काव्यानां स्तबकैः सदर्थकुसुमैर्युक्तो रसादयैः फलैः
सोऽयं संस्कृतकल्पवृक्षमहिमा भूयात् प्ररोहान्वितः।।
श्रीगङ्गाधरभट्टकीर्तिमहसा विद्वत्सभेयं शुभा
यत्र श्रीश्च सरस्वती च युगपद् राजेश्वरी राजते।

आहूतः सदसो विचारकुसुमैरर्चां विधातुं स्वकैः
राधावल्लभ एष वो वितनुते कार्तज्ञ्यपुष्पाञ्जलिम्।।[1]

— आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, कुलपति राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली द्वारा संस्कृत मनीषी डॉ. गंगाधर भट्ट की पावन स्मृति में संस्थापित 'राजगङ्गा चैरिटेबल ट्रस्ट' की ओर से समायोजित व्याख्यान माला में 'संस्कृत का वैश्विक परिप्रेक्ष्य' विषय पर 4 सितम्बर, 2010 को प्रदत्त अपने व्याख्यान में संस्कृत–वाक् में जीवन की समग्रता प्रतिपादित की गई।

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के भव्य विचारों का रुचिर दर्पण है। यह साहित्य प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रधान संवाहक है। संस्कृत साहित्य की महत्ता को प्रदर्शित करने वाले अनेक कारण विद्यमान हैं। सर्वप्रथम प्राचीनता की दृष्टि से यह साहित्य बेजोड़ है। भारतीय संस्कृति का प्राण उसकी आध्यात्मिक भावना है। इसका निरूपण वैदिक ग्रन्थों में प्रधानता के साथ मिलता है। संस्कृत साहित्य में प्राचीन भारत के आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, व्यावहारिक एवं राजनैतिक आदि जीवन के विविध पक्षों से सम्बद्ध जीवन मूल्यों का सुन्दर चित्रण है। यही वह तत्त्व है, जिससे भारतीय समाज प्राणवान् है।

संस्कृत–साहित्य अपने व्यापक–दृष्टिकोण के कारण सबके लिए समादरणीय रहा है। यहाँ 'स्व' की अपेक्षा 'पर' की चिन्ता करते हुए 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' यह भावना व्यक्त की है। इसमें पुरुषार्थ चतुष्ट्य–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का गम्भीर एवं विशद विवेचन किया गया है। संस्कृत–साहित्य में अर्थ का विवेचन कौटिल्य आदि के 'अर्थशास्त्रीय ग्रन्थों में', काम का वात्स्यायन के कामसूत्र में और धर्म और मोक्ष का वैदिक साहित्य में हुआ है। भारतीय धर्म और दर्शन का उपोद्घात वैदिक–वाङ्मय से ही हुआ है। विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक, स्थापत्य, पशु–पक्षी सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ संस्कृत–साहित्य में प्रचुर–मात्रा में विद्यमान हैं। सच तो यह है कि यहाँ 'प्रेयःशास्त्र' तथा 'श्रेयः शास्त्र' उभय शास्त्रों के अध्ययन की ओर प्राचीन काल से ही विद्वानों की प्रवृत्ति रही है। आज एक ध्वनि से पश्चिमी विद्वानों का कहना है कि संस्कृत–साहित्य का जो अंश छपकर प्रकाशित हुआ है वह भी ग्रीक और लेटिन साहित्यों के समग्र–ग्रन्थों से दुगुना है। जो अभी तक हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में रखा हुआ है या किसी प्रकार से नष्ट हो गया है वह तो अगण्य है।

---

1. प्रोफेसर श्रीकृष्ण शर्मा (सम्पादक), संस्कृत, संस्कृति और प्रशासन, पृ.सं. 13

वेद वह मूल स्रोत है जहाँ से नाना प्रकार की धार्मिक धाराएँ प्रवाहित होकर मानव हृदय तथा मस्तिष्क को सदा से आप्यायित करती आयी हैं। वेदों के अनुशीलन का ही फल है कि पश्चिमी विद्वानों ने तुलनात्मक पुराणशास्त्र (कम्पैरेटिव माइथोलॉजी) जैसे नवीन शास्त्र को ढूँढ निकाला। समस्त भारतीय उपमहाद्वीप के जनमानस में रची बसी भारतीय संस्कृति संस्कृत–साहित्य की विशाल सांस्कृतिक विरासत की सूचक है। इण्डोनेशिया, म्यांमार, सिंगापुर, नेपाल, तिब्बत, मंगोलिया, काबुल, कंधार आदि क्षेत्रों से प्राप्त साक्ष्य इसके जीवन्त उदाहरण हैं।

वैदिक साहित्य के अनन्तर लौकिक–संस्कृत–साहित्य का निर्माण हुआ। लौकिक संस्कृत–साहित्य का प्रारम्भ आर्ष महाकाव्य रामायण और महाभारत से माना जाता है। तदनन्तर पुराण साहित्य की रचना हुई। इसके बाद भास, और कालिदास से संस्कृत काव्य–परम्परा का प्रारम्भ होता है। पं. बलदेव उपाध्याय के शब्दों में– संस्कृत–साहित्य की अविछिन्न परम्परा आठ हजार वर्षों से निरन्तर चली आ रही है। प्राचीनता की दृष्टि से यदि विचार किया जाए अथवा अविछिन्नता की कसौटी पर इसे कसा जाए तो यह साहित्य नितान्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। विशुद्ध कला की दृष्टि से भी यह साहित्य अद्वितीय है। जिसमें कालिदास जैसे कमनीय कविता लिखने वाले कवि, भवभूति जैसे नाटककार, जिनकी वशवर्तिनी बनकर सरस्वती ने अपूर्व लास्य दिखलाया, बाणभट्ट जैसे गद्य लेखक, जयदेव जैसे गीतिकाव्यकार, श्रीहर्ष जैसे पण्डित हुए हैं, उस संस्कृत–साहित्य की महिमा को शब्दों में बांधना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। इसलिए सुधीजन कहते हैं–

सुवर्णा सद्वृत्ता विविधललितालङ्कृतिचरणा,
गुणाढ्या निर्दोषा बिबुधनिवहाराधितपदा।
सुरीतिप्रख्याता भवविभवरूपाश्रितरसा,
सदेयं शर्वाणी जयतु सुरवाणीह सततम्।।

वाक् या शब्द से संसार जन्मा–यह मन्तव्य तो संसार की अन्य संस्कृतियों या संस्कृतेतर चिंतन धाराओं में भी अनेकत्र रहा है, पर इस मन्तव्य को पूरी तार्किकता और दार्शनिक उत्पत्तियों के साथ सत्यापित करके साधना पद्धति का अंग संस्कृत की परंपरा में ही बनाया गया है। इस वैशिष्ट्य के कारण ही संस्कृत उत्तर आधुनिक विश्व में अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। इसके दो पक्ष हैं– पहला, संस्कृत–साहित्य में अन्तर्निहित ज्ञान की वह धरोहर, वह विश्वबोध या वे

जीवन मूल्य जिनकी आज सम्पूर्ण विश्व को आवश्यकता है, दूसरा, विश्व में इस समय संस्कृत–भाषा और उसके साहित्य के अध्ययन की स्थिति, संभावनाएँ तथा उसमें अन्तर्निहित समकालीन समस्याओं के समाधान।

वैयाकरणिक दृष्टि से 'संस्कृत' शब्द 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातु से बना हुआ है, जिसका मौलिक अर्थ है–संस्कार की गई भाषा। भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' का प्रयोग वाल्मीकीय रामायण में सर्वप्रथम प्राप्त होता है। इससे पूर्व केवल भाषा शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। रामायण को लौकिक संस्कृत में सृजित आदिकाव्य एवं वाल्मीकि को आदिकवि स्वीकार किया जाता है। रामायण से पूर्व का साहित्य वैदिक साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार सम्पूर्ण संस्कृत–साहित्य वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य के रूप में स्पष्टतः विभाजित है।

'संस्कृत' शब्द में संयुक्त 'क्त' प्रत्यय ही यह द्योतित करता है कि इस भाषा और उससे संवलित परम्पराओं के संस्कार की प्रक्रिया पहले कभी घटित हो चुकी है। इस अर्थ में संस्कृत भाषा और उससे संवलित परम्पराएँ अतीत का हिस्सा है। यह अतीत हमें एक दर्पण भी देता है, जिसमें हम अपने आपको पहचान सकें। संस्कृत और उसकी परम्पराओं के द्वारा रचा गया यह दर्पण एक ऐसा विराट दर्पण है, जो व्यक्ति, समाज और विश्व को उसकी अपनी पहचान कराता रहा है। संस्कृत–साहित्य की परंपरा व्यक्तिचेतना समाजचेतना तथा विश्वचेतना–इन त्रिविध चेतनास्तरों को उन्मीलित, संस्कारित और परस्पर सम्बद्ध करती है, वह जीवन की समग्रता का उत्सव रचती है। इसलिये ऋषि कहते हैं–

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलवाः
जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं
समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानी प्रपा सह वोऽन्न भागः
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
यत्र विश्वं भवत्येकं नीड़म्।।

इन ऋषिवचनों में जिस बहुत्ववादी सार्वभौम दृष्टि का उन्मीलन हुआ है, उसकी आज के विश्व को महती आवश्यकता है। वर्तमान काल में छायी हुई असहिष्णुता की विषवल्लरी से छुटकारा संस्कृत–साहित्य में वर्णित शिक्षायें ही दिला सकती हैं।

संस्कृत–साहित्य का वर्गीकरण

मनुष्य की आध्यात्मिक, आधिभौतिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं की मुख्य अभिव्यञ्जना का मुख्य साधन या एकमात्र साधन, साहित्य ही होता है। भारतीय आचार–विचार, भारतीय–सभ्यता एवं संस्कृति, इन सभी की उन्नति–अवनति एवं सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना इत्यादि को भारतीय संस्कृत–साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। संस्कृत–साहित्य को दो भागों में बाँटा है– 1. वैदिक साहित्य 2. लौकिक–साहित्य।

वैदिक संस्कृत साहित्य से तात्पर्य उस साहित्य से है जो वैदिक संस्कृत में लिखा गया तथा जो किसी नियम विशेष से आबद्ध नहीं था। वैदिक–साहित्य में ऋग्वेद से लेकर संहिता, ब्राह्मण–ग्रन्थ, आरण्यक एवं उपनिषदों का ग्रहण किया जाता है। इन वैदिक साहित्यों की व्याख्या के रूप में या इनमें प्रतिपादित तत्त्वों के सहज बोध के लिए सूत्र–साहित्य, वेदाङ्ग–शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष इत्यादि रचे गए और इसी क्रम में संस्कृत साहित्य की लौकिकधारा का प्रवाह भी प्रस्फुटित होने लगा। जो काव्यों, नाटकों, आख्यानों एवं कथानकों के रूप में हमारे सम्मुख आया और लौकिक साहित्य के रूप में जाना गया।

संस्कृत भाषा का यह लौकिक साहित्य भाषा–भाव विषय इन तीनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस विशाल लौकिक साहित्य का ही एक भाग 'काव्य–साहित्य' है। विश्व का प्रथम लौकिक काव्य वाल्मीकि–रामायण एवं सबसे विशाल कवि रचना महाभारत को माना जाता है। तथा ये दोनों रचनाएँ परवर्ती लौकिक–साहित्य के उपजीव्य–ग्रन्थ माने जाते हैं।

लौकिक साहित्य के ये दोनों आधारभूत ग्रन्थ हैं तथापि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि 'काव्योत्पत्ति के बीज वेदों में ही निहित हैं।'

लोकोत्तरचमत्कारजनक कुछ काव्यरचनाओं के उपरान्त अलङ्कारशास्त्रियों ने काव्य–साहित्य–निर्माण के कुछ नियम बनाये हैं। काव्यों के लक्षण, उनके भेद, रस, अलङ्कार, वृत्तियाँ, गुण इत्यादि के लक्षणों को निर्धारित किया। अलङ्कारशास्त्रियों के अनुसार काव्य–साहित्य को मुख्य रूप से दो भागों में किया जा सकता है– 1. दृश्य काव्य 2. श्रव्य काव्य।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में काव्य का लक्षण करते हुए लिखते हैं–

काव्यं रसात्मकं चेद् शब्दार्थकलेवरम्।
भिद्यते खलु निर्मित्या रूचिरूपप्रभेदतः।।

–अभिराजयशोभूषणम् 4/1

इसके बाद प्राचीन शास्त्रीय परम्परा का अनुसरण करते हुए दृश्य एवं श्रव्य भेद से काव्य का निरूपण करते हुए वे लिखते हैं–

दृश्यश्रव्यप्रकाराभ्यामादौ काव्यं द्विधा मतम्।
रूपरूपकनाट्यानि दृश्यनामान्तराणि च।।

अभिराजयशोभूषणम् 4/19

दृश्य–काव्य के दो भेद हैं– रूप एवं उपरूपक। रूपक के दस भेद है–नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क तथा वीथी।

उपरूपक के अठारह भेद हैं– नाटिका, भाणिका, गोष्ठी, दुर्मल्ली, विलासिका, त्रोटक, सट्टक, काव्य, रासक, नाट्यरासक, संलापक, श्रीगदित, प्रेङ्खण, शिल्पक, हल्लीश, प्रकरणी, प्रस्थान तथा उल्लाप्यक।

प्राचीन विद्वानों की भाँति उन्होंने श्रव्य–काव्य के भी तीन प्रकार बताये हैं– गद्य, पद्य तथा मिश्र अथवा चम्पू।

पद्यगद्यमयं श्रव्यं मिश्रञ्चेति त्रिधा स्थितम्।
पदैर्नियमितं पद्यं गद्यं यद्धि निगद्यते।।–अभिराजयशोभूषणम् 4/51
नियताक्षरमाख्यातं नाट्यशास्त्रकृता पुनः।
पद्यं गद्यं तथैवेदं घुष्टमनियताक्षरम्।। – अभिराजयशोभूषणम् 4/53

प्रबन्धात्मक गद्य को प्राचीन आचार्यों द्वारा कथा एवं आख्यायिका के रूप में विभाजित किया है तथा इसे 'प्रबन्धकल्पनाकथा' एवं 'आख्यायिका इतिवृत्ताश्रिता' के रूप में परिभाषित किया गया है।

पद्यकाव्य के तीन भेद–महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं मुक्तककाव्य कहे गये हैं। खण्डकाव्य की प्रवृत्तियों के आधार इसे गीतिकाव्य, अन्योक्तिकाव्य, स्तोत्रकाव्य, नीतिकाव्य पर प्रहेलिका–काव्य, विमान–काव्य, यात्रा–काव्य, नर्म–काव्य, राम–काव्य, लहरी–काव्य, दूत–काव्य, संदेश–काव्य आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया जा सकता है।

पद्यकाव्य पुनः चार प्रकार का होता है– मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय एवं चूर्णक।

संस्कृत–साहित्य का वर्गीकरण

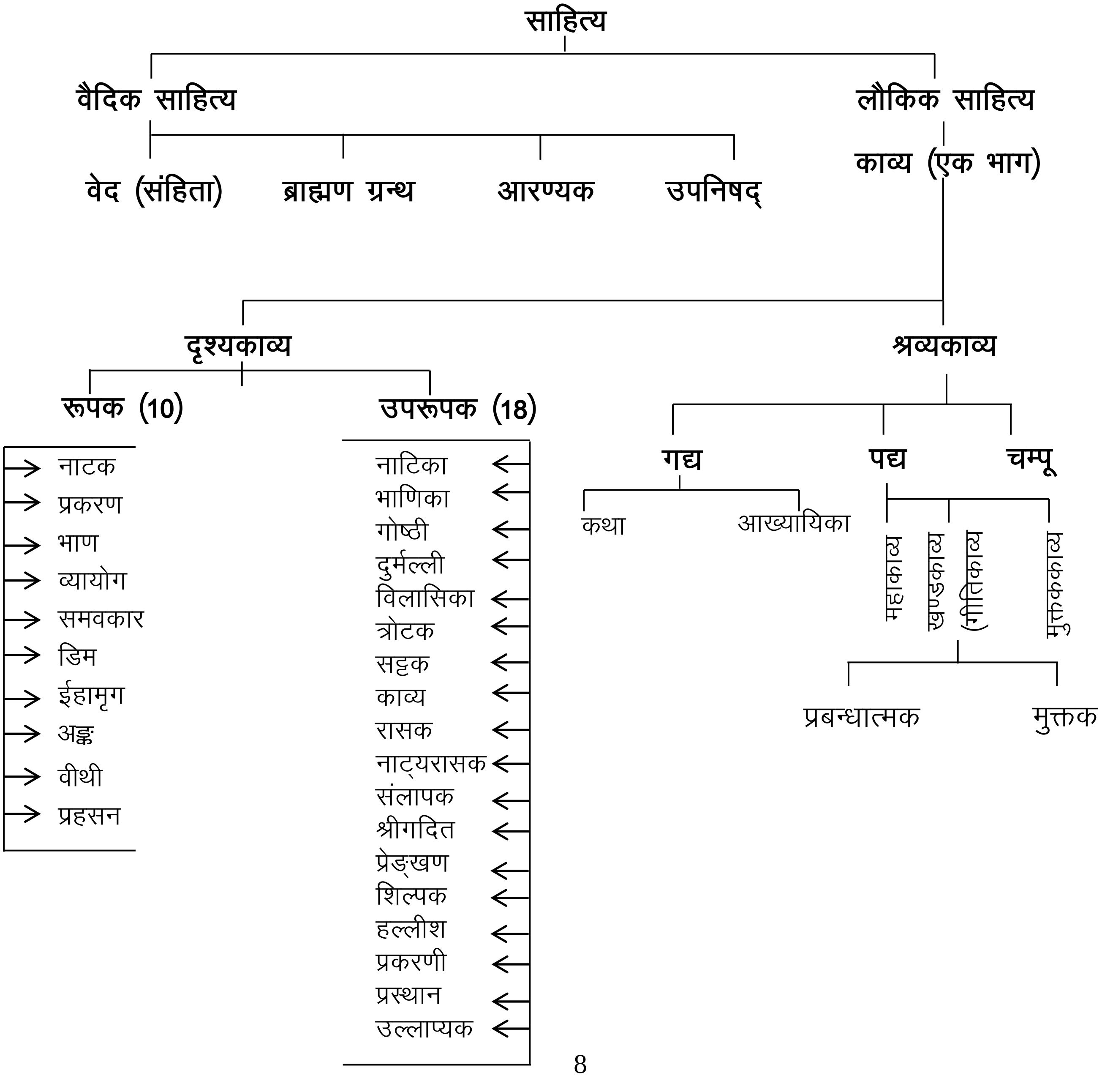

(ख) गीतिकाव्य, भेद, वैशिष्ट्य एवं परम्परा

गीतिकाव्य – संस्कृत का गीतिकाव्य या खण्डकाव्य वह लघुकाव्य है जो मानव जीवन की किसी एक घटना को आधार बनाकर रचा गया हो। महाकाव्य में समग्रता का प्रसार है तो गीतिकाव्य में जीवन की एकदेशीयता की तन्मयता है। अतः एव खण्डकाव्य का आकार महाकाव्य की तुलना में लघु होता है। साहित्यदर्पणकार के शब्दों में–

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। (6/339)

अलंकारशास्त्रियों ने काव्याङ्ग के रूप में गीतिकाव्य के नाम से किसी पृथक् काव्यभेद का उल्लेख नहीं किया है। फिर भी समालोचकों ने खण्डकाव्य के रूप में या खण्डकाव्य के अन्तर्गत गीतिकाव्य को अन्तर्भूत किया है। खण्डकाव्य के उस निर्माण को गीतिकाव्य कहते हैं, जिसमें घटना विशेष का वर्णन ध्वन्यात्मक शैली में रागात्मकता के साथ छन्दोबद्ध हो, साथ ही स्वानुभूति की सरस अभिव्यति हो। गेयता इसका प्राणभूत तत्त्व है। प्रधानतया इनमें निम्न में से एक विषय वर्णित रहता है–

1. शृंगारिक – शृंगारी गीतिकाव्य
2. धार्मिक –स्तोत्रकाव्य
3. नैतिक–नीतिकाव्य

संस्कृत काव्यशास्त्र में 'गीति' का विवेचन मुक्तक काव्य के अन्तर्गत हुआ है। गीत, नृत्य और वाद्य के समवेत रूप को ही संगीत कहा गया है और इनमें गीत प्रमुख है। संगीतरत्नाकर में गीत के सर्वव्यापी महत्त्व की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है–

गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपति।
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिरिव गतः।।

शब्दकल्पद्रुम में गीति का अर्थ गान माना गया है–

धातुमातुसमायुक्तं गीतिरित्युच्यते बुधैः।
तत्र नादात्मको धातुर्मातुरक्षरसंचयः।।

नाट्यशास्त्र में भी गीति का अर्थ गान माना गया है। गान्धर्व के स्वरात्मक, तालात्मक और लयात्मक भेदों के अन्तर्गत तालात्मक गन्धर्व की इक्कीस विधियों में से एक गीति भी होती है, जिसके अनेक भेद–प्रभेद माने गये हैं। ग्रियर्सन ने संस्कृतसाहित्य का व्यापक अध्ययन करने के बाद उसमें गीतिकाव्य के सौष्ठव को उत्तम माना है। मुक्तकछन्दों में संस्कृत–गीतिकाव्य पूर्णता को प्राप्त कर सका है।

पं. चन्द्रशेखर पाण्डेय के शब्दों में 'मानव–जीवन के किसी एक ही पक्ष का उद्घाटन अथवा अन्तरात्मा के किसी एक पटल का चित्रण गीतिकाव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। जहाँ महाकाव्य में मानव–जीवन की समग्रता का प्रसार है, वहाँ गीतिकाव्य में जीवन की एकदेशीयता की तन्मयता है। गीतिकाव्यों का आकार–प्रकार महाकाव्यों से छोटा होता है। प्रधानतया उनमें एक ही विषय वर्णित रहता है– श्रंगारिक, धार्मिक अथवा नैतिक। गीतिकाव्य में लालित्य एवं माधुर्य का विशेष पुट दिख पड़ता है।[1]

पाश्चात्य विद्वानों ने छन्दोबद्ध रचना को ही लिरिक (Lyric) माना है। प्रो. ए.बी. कीथ ने इसी आधार जयदेव कृत गीतगोविन्द को Lyric Poetry कहा जिससे प्रभावित होकर कालान्तर में भारतीय विद्वानों ने भी खण्डकाव्य को 'गीतिकाव्य' या 'गीतिकाव्य' कहना शुरु कर दिया। ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी में Lyric को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–"A Lyric, pertaining to or characteristic of song, now used as the name for short poems and usually divided into stanzars or stophes and directly expressing the poets on thoughts and sentiments." इस प्रकार खण्डकाव्य के लिए गीतिकाव्य का प्रयोग वैदेशिक शब्द–भावना पर आधारित है। वस्तुतः 'गीति' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी भाषा के 'लिरिक' (Lyric) शब्द के अर्थ में किया गया प्रतीत होता है। ग्रीक भाषा का 'लायर' एक विशेष प्रकार का वाद्य है। इस वाद्य पर एक व्यक्ति द्वारा गीत गाये जाते थे। इसी 'लायर' शब्द से प्रादुर्भूत 'लिरिक' शब्द है। इस शब्द का सम्बन्ध संगीत से है।

---

1. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 114

गीतिकाव्य के भेद

गीतिकाव्य के दो भेद प्रायशः माने जाते हैं– (1) प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य (2) मुक्तकगीतिकाव्य। जिस गीतिकाव्य में वर्ण्यमान कथानक आद्योपान्त एक ही रहे तथा प्रत्येक पद्य के अर्थबोध के लिए पूर्वापर पद्यों के सन्दर्भज्ञान की अपेक्षा रहती हो, वह प्रबन्धात्मक गीतिकाव्य कहलाता है। जिस गीतिकाव्य के पद्य स्वतन्त्र हो, उनके अर्थबोध के लिए किसी अन्य पद्य के सन्दर्भज्ञान की अपेक्षा न हो, वह गीतिकाव्य मुक्तक गीतिकाव्य कहलाता है।

पं. बलदेव उपाध्याय ने संस्कृतगीतिकाव्य के दो प्रधान भेद किये हैं–लौकिक तथा धार्मिक। लौकिक मुक्तक लोक के नाना विषयों के विधान से सम्बन्ध रखता है। धार्मिक मुक्तकों को स्तोत्र कहते है। दोनों प्रकार के काव्यों की प्राचीनता संस्कृत में पर्याप्त रूप से है। समग्र वैदिक मन्त्रों में देवताओं की विशिष्ट सूक्तियाँ है। सामवेद की गेयता प्रसिद्ध है। इस प्रकार गीतियों का उद्‌गम–स्थान तो स्वयं वेद ही है।[1]

गीतिकाव्य का वैशिष्ट्य

गीतिकाव्य में मानव–जीवन के किसी एक सरस एवं मधुर पक्ष का वर्णन होता है। इसके पद्य अत्यन्त सरस एवं रम्य होते हैं। इसकी भाषा सरल, बोधगम्य, कोमल एवं मनोहर पदावली वाली और प्रवाहयुक्त होती है। इसमें लम्बे समासयुक्त वाक्यों एवं कृत्रिम अलंकारों का अभाव होता है।

मानव की सुखमयी या दुःखमयी अवस्थाओं की भावात्मक अभिव्यक्ति ही गीतिकाव्य का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। गीतिकाव्य में रागात्मक वृत्ति की प्रसाद एवं माधुर्य गुणों की तथा शृङ्गार, करुण एवं शान्त रसों की प्रधानता रहती है।

गीतिकाव्य काव्यकार के आर्द्र–हृदय के स्वच्छन्द उद्‌गार होते हैं, जिन्हें काव्यकार शब्दमय आकार देते हैं। वस्तुतः गीतिकाव्य अनुभूति–प्रधान काव्य है। इसमें हृदय–पक्ष को केन्द्र में रखकर अनुभूति को अभिव्यक्ति दी जाती है। इसमें शब्दों की योजना मधुरता लिए, पद लालित्यपूर्ण, भाषा भावों का अनुगमन करती हुई, होते है। इसमें कृत्रिमता व नीरसता नहीं होती है।

---

1. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 115

संस्कृत के गीतिकाव्य का वैशिष्ट्य बताते हुए पं. बलदेव उपाध्याय लिखते हैं– 'रमणी का सौन्दर्य इन काव्यों में जितनी सुन्दरता तथा स्वाभाविकता के साथ प्रस्फुटित हो पाया है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ सा प्रतीत हो रहा है। नारी के हृदय तथा रूप छटा के रंगीन चित्र किस रसिक के हृदय में प्रमोद सरिता नहीं बहाते? श्रृंगार की भिन्न–भिन्न अवस्था का मार्मिक चित्रण इस कविता की महती विशेषता है। संस्कृत गीतिकाव्य की पहली विशेषता नारी–प्रेम की उदात्तता एवं विशुद्धता का चित्रण है तो दूसरी प्रमुख विशेषता प्रकृति के प्रति कवियों की कोमल अनुभूतियाँ एवं आकर्षण।'[1]

गीतिकाव्य की परम्परा

गीति मानवजाति का आदिम काव्य रूप है। भारतीय संस्कृति के उषःकाल से ही गायन परम्परा का अभ्युदय हो जाने से संस्कृत गीत परम्परा का स्वरूप नितान्त प्राचीन रहा है। वेदवाङ्मय से ऋक् एवं यजुष् के अनन्तर साम की प्रतिष्ठा गीत के पुरातन वैशिष्ट्य का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है। आचार्य राजशेखर स्पष्ट रूप से गीति को ही साम कहते हैं।[2] गीति, गेय तथा गान 'गीत' के ही पर्याय माने जाते हैं।[3] हलायुध कोश भी इसकी पुष्टि करता है– 'गीतं गानमितिप्रोक्तम्' (1/93/1)। इस प्रकार गीत–गीति–गेय–गान–ये सभी वाद्य एवं मुखध्वनि के मञ्जुल समन्वय से संवलित है। इनमें दो प्रमुख तत्त्व हैं– नाद तथा अक्षर–सञ्चय। प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी भी इन चारों को समान मानते हैं। वे कहते हैं– गीति, गीत, गेय और गान–ये सब परस्पर एक जैसे हैं। मात्र प्रत्यय की भिन्नता से इन शब्दों के आकार में भेद है न कि धातु की दृष्टि से (धातु तो सबमें एक ही है– गै धातु)।

गीतिर्गीतञ्च गेयञ्च गानमेतन्मिथस्समम्।
प्रत्ययाच्छब्दवैभिन्न्यं न पुनर्धातुयोगतः।।[4]

---

1. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–135 तथा आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 324
2. ऋग्यजु : सामवेदास्त्रयी। तत्रार्थ.....ऋच। ताः संगीतयः सामानि। अच्छन्दांस्यगीतानि यजूंषि–काव्यमीमांसा अध्याय–2
3. गीतं गानमिमे समे–अमरकोश 1/6/26
4. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः/9, पृ.सं. 248

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी गीत को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि– "अन्त्यनुप्रास और ध्रुवक से युक्त रचना 'गीत' है– **'तदेवान्त्यानुप्रासध्रुवकान्वितं गीतम्।"**[1] तथा त्रिपाठी जी संक्षेप, भावमयता, व्यक्तिगत, राग और तानव से मुक्तिगीतकाव्य के गुण कहे गये हैं–

संक्षिप्तर्भावमयता रागो व्यक्तिगतस्तथा।
तानवं तानवान्मुक्तिरिमे गीतगता गुणाः।।[2]

मानव ने सभ्यता के विकास के प्रथम सोपान में जब चरण रखा उस समय नृत्य और गीत का तत्कालीन स्वरूप अविभाज्य था। किन्तु ज्यों–त्यों सभ्यता का विकास होता गया त्यों–त्यों सामूहिक नृत्यगीत से उसके कई तत्त्व अलग होकर स्वतंत्र कलाओं के रूप में विकसित हो गये। इस प्रकार आदिम सामूहिक नृत्य–गीत, नृत्यकला, संगीतकला और काव्य तथा नाटक इन सबका उद्भव एवं स्वतंत्र विकास हुआ। स्पष्ट है कि काव्य की प्रारम्भिक विधा 'गीत' ही था। गीत से ही क्रमशः काव्य की अन्य विधायें भी विकसित होती गयीं। प्रबन्ध–काव्य तथा मुक्तक–काव्य का भी गीत के समानान्तर ही प्रचलन हुआ। किन्तु 'गीति' को भारतीय आलंकारिकों ने काव्य नहीं माना। वे गीति को मुक्तक काव्य के अन्तर्गत ही मानते रहे हैं। ठीक इसके विपरीत पश्चिमी देशों में 'मुक्तक' के जैसा कोई काव्य रूप मान्य नहीं था। वहाँ यूनानी साहित्य से लेकर अब तक गीति–काव्य को स्वतन्त्र काव्य रूप मानते आये हैं और मुक्तक जैसी संक्षिप्त रचनाओं को उसी के अन्तर्गत ग्रहण करते रहे हैं।

गीतिकाव्य का इतिहास वेदों से ही प्रारम्भ होता है जो वैदिक सूक्तों के रूप में द्रष्टव्य है। पं. बलदेव उपाध्याय संस्कृत गीति का उद्भव ऋग्वेद से बताते हुए लिखते हैं– "हमें सर्वप्रथम ऋग्वेद में उषा के प्रति की गई स्तुति में उत्तम गीतिकाव्य का परिचय मिलता है। उषा की सुषमा से सम्बन्धित सूक्त 'काव्य की दृष्टि से नितान्त सरस, सहज तथा भव्य–भावना–मण्डित है। प्रातःकाल अरुणिमा से मण्डित, सुवर्णच्छटा से विच्छुरित प्राचीन नभोमण्डल पर दृष्टिपात करते समय किस भावुक के हृदय में कोमल भावना का उदय नहीं होता? वैदिक ऋषि उसे अपनी प्रेम भरी दृष्टि से देखता है और उसकी दिव्य

---

1. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 3/1/5, पृ.सं. xvii
2. वही

छटा पर रीझ उठता है। उषा मानवी के रूप में कवि हृदय के नितान्त पास आती है।"[1] उषासूक्त के निम्नाङ्कित मन्त्र में कवि द्वारा उषा का एक कन्या के रूप में मानवीकरण दर्शाया गया है–

कन्येव तन्वी शशदाना एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती।।

–ऋग् 1/123/12

पं. बलदेव उपाध्याय आगे लिखते हैं– "समग्र वैदिक संहिताएँ देवताओं की विशिष्ट स्तुतियों से मण्डित हैं। गीतियों का उदय–स्थान तो स्वयं वेद ही है।"[2] सामवेद गायन ही है। गीत शब्द का औदात्य श्रीमद्भगवद्गीता में प्रत्यक्षतः परिलक्षित होता है। गीता का अर्थ है जो गाया गया हो। स्वयं वेदों के गायकों ने भी उन्हें गीत कहा है– गीर्भिर्वरुण सीमहि अर्थात् हे मेरे वरणीय, मैं तुम्हें अपने गीतों में बांधता हूँ।[3] यजुर्वेद के गद्यबद्ध छन्दों में भी आवृत्तिमूलक शब्द–योजना और लयात्मकता इतनी अधिक है कि उन्हें गीतिकाव्य के अन्तर्गत ग्रहण किया जा सकता है।

वैदिक काल के पश्चात् उपनिषदों के कर्मकाण्ड के प्रभाव से गीतकाव्य की धारा लुप्त प्राय हो गयी किन्तु केनोपनिषद् के प्रथम खण्ड के मंत्रों में वैदिक सूक्तों की भाँति गीतात्मक आवृत्ति मिलती है। वेदोत्तर साहित्य में गीतिकाव्य की परम्परा वाल्मीकि रामायण और महाभारत में भी मिलती है। यद्यपि गीतिकाव्य से इनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यही बात पुराणों के सन्दर्भ में भी समुल्लेख्य है। श्रीकृष्ण की मधुर लीला वर्णन के कारण श्रीमद्भागवत में गोपी गीत, वेणुगीत, युगलगीत आदि प्रसंगों में कहीं–कहीं गीतात्मकता आ गयी है। गीतिकाव्य का अस्तित्व वैदिककाल की मुख्यधारा के रूप में था किन्तु समय की गति के साथ वैदिक काल की यह मुख्य गीत काव्य धारा पराभव की ओर अग्रसर होने लगी। इसके बाद तो वैदिक युग के परवर्ती संस्कृत साहित्य में विशुद्ध गीत शैली का अभाव ही दर्शित होता है क्योंकि तत्कालीन गीति धारा लोकाश्रित साहित्य में सिमट गयी

---

1. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 135
2. वही
3. बाबू गुलाब राय : काव्य के रूप, पृ.सं. 120

थी। इसी काल में पालि, प्राकृत और प्राकृतापभ्रंश ग्रन्थों में गीति–काव्य की विविध शैलियों का लोक प्रचलित रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। तदनन्तर सुभाषित ग्रन्थों में पाणिनि के नाम से भी गीति–पद्य उपलब्ध होते हैं। नाटकों में भी इनका प्रयोग होता रहा है।

पुनः संस्कृत साहित्य में गीति–काव्य का पुनरुत्थान मध्यकालीन भक्ति आन्दोलनों के साथ हुआ। संस्कृत कवि जयदेव ने दशवीं शताब्दी में अपनी कोमकान्त पदावली को झंकृत करते हुए 'गीतगोविन्द' के पदों की रचना की। इस प्रकार उन्होंने भारतीय गीतकाव्य का प्रवर्तन किया एवं संस्कृत काव्य रूढ़ियों को तोड़कर लोकजीवन से अनुप्राणित हो, संस्कृत काव्य में नवीन चेतना की सृष्टि की। उन्होंने भारतीय काव्यधारा को पुनरुजीवित किया तथा काव्य को सामान्य जनमानस तक पहुँचाया। उनके गीतों में 'गेयता, संक्षिप्तता, आत्माभिव्यंजकता आदि गीत के सभी आवश्यक तत्त्व मिलते हैं।[1]

लौकिक संस्कृत गीतिकाव्य की प्राचीनतम उपलब्ध रचनाएँ महाकवि कालिदास विरचित 'मेघदूत' और 'ऋतुसंहार' हैं। मेघदूत के सम्बन्ध में पं. बलदेव उपाध्याय लिखते हैं कि– "संस्कृत के गीतिकाव्यों का आदिम ग्रन्थ महाकवि कालिदास का मेघदूत है।......... मेघदूत कालिदास के नर–प्रकृति तथा बाह्य–प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का भव्य भण्डार है। यहाँ बाह्य प्रकृति की जो प्रधानता मिली है, वह संस्कृत के अन्य किसी काव्य में नहीं।"[2]

मनुष्य की बर्बरावस्था से ही गीत उसके जीवन से जुड़ा होने के कारण लोक–जीवन की प्रेरणादायिनी शक्ति तो है ही, साथ ही वह मनुष्य और उसकी लोकसत्ता की सभ्यता के साथ निरन्तर विकास की ओर भी अग्रसर हुआ है। मनुष्य और लोक–जीवन की सभ्यता जैसे–जैसे विकसित होकर नवीनता की अन्वेषक एवं आग्रही होती गयी और उसे प्राप्त करती गयी, गीत भी वैसे ही वैसे विकसित होकर नवीन होता गया। परिणाम स्वरूप उसका कथ्य और रूप शिल्प दोनों ही परिवर्तित होते गये। परिवर्तन की इस दिशा में उसने अनेक उच्च एवं निम्न भाव–भूमियों पर अपनी स्थिति का आंकलन किया। इस यात्रा क्रम में उसे अनेक सारणियों एवं सीमाओं से गुजरना पड़ा और आधुनिक काल तक आते–आते सन् 1950 के आस–पास उसने अपनी एक अलग पहचान

---

1. डॉ. इन्दीवर पाण्डेय, नवगीत में लोकचेतना, पृ.सं. 6–8
2. डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 136

बनाना प्रारम्भ कर दिया। प्रबुद्ध पाठकों एवं सहृदय समीक्षकों की सजग दृष्टि से इस नव–आयामी गीत–धारण को जो नूतन संज्ञा मिली, उसी का प्रतिफल था 'नवगीत'।[1]

(ग) नवगीत : स्वरूप एवं परिभाषा

नवगीत गीत–यात्रा का वह वर्तमान पड़ाव है, जहाँ गीतविधा अपनी अस्मिता के लिये ठहर कर सोचने लगी है और नवयुग की 'नवता' एवं आधुनिकताबोध को लेकर, जहाँ उसने अपने को युगानुकूल बनाने का उपक्रम किया है। वह शाश्वत गीत–धारा का एक ऐसा मोड़ है, जहाँ वह अपनी परम्परा से जुड़ी होकर भी सर्वथा उससे भिन्न है, भिन्न होकर भी जो अपना 'उत्स' अपनी परम्परा में ढूँढती है। गीत से नवगीत का वह सम्बन्ध है जो कविता से नयी कविता का। अर्थात् कविता शब्द में जिस प्रकार 'नयेपन' की विशेषता संयुक्त कर 'नयी कविता' शब्द का निर्माण हुआ है, उसी प्रकार 'गीत' शब्द में 'नव' विशेषण को संयुक्त कर 'नवगीत' का नामकरण किया गया है।[2]

डॉ. शम्भूनाथ के शब्दों में–मैं नवगीत को हिन्दी काव्यधारा की आधुनिकतम काव्यविधा मानता हूँ क्योंकि इसमें आधुनिकता की वे सभी प्रवृत्तियाँ वर्तमान है जो हिन्दी की ही नहीं पूरे भारत व विश्व की आधुनिकतावादी नयी कविता में दिख पड़ती है। किन्तु 'नवगीत' का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें आदिम युग से लेकर आधुनिक युग तक विश्व साहित्य में प्रवाहमान गीत काव्यधारा की परम्परा को ग्रहण कर उसे नयी दिशा में प्रवाहित किया गया है। नवगीत का स्वरूप गीत काव्य की शाश्वत् परम्परा से सम्बद्ध है। गीत काव्य की वे सभी विशेषताएँ नवगीत में वर्तमान हैं जिनका उल्लेख पारम्परिक गीतों में होता आया है। किन्तु इसमें 'नव' शब्द उसके भाव–बोध और रूप–शिल्प की आधुनिकता तथा नवीनता को व्यक्त करता है। पुरानी कविता नयी कविता से जिस अर्थ में भिन्न है उसी अर्थ में नवगीत भी पुराने गीतों से भिन्न है।[3]

---

1. डॉ. इन्दीवर पाण्डेय, नवगीत में लोकचेतना, पृ.सं. 4–5
2. वही, पृ.सं. 5
3. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : उत्तर प्रदेश मासिक, हिन्दी–नवगीत जनमानस के आईने में (परिचर्चा) दिसम्बर, 1982

नवगीत पर अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री ललित शुक्ल का कथन है– "कुछ समीक्षक गीतविधा को और पीछे ले जाकर गीतात्मकता की पहचान के माध्यम से गीत की सत्ता को सिद्ध करते हैं और गीत को वेद–मंत्रों से जोड़कर धन्य होते हैं। यह ठीक है कि गीत आदमी की सांस के साथ जुड़ा है, किन्तु यह गीत उसकी अपनी भाषा का है। संस्कृत अब अपनी भाषा न होकर, अपनी भाषा की भाषा है। उसकी धरोहर हमारे लिये सार्थक है, किन्तु आधुनिकता के सन्दर्भ में वह वहाँ पीछे ले जायेगी वहाँ उसे आलोचना की सारणियों को पार करना होगा। आज के नवगीत की अभिव्यक्ति और विषय दोनों पहले के गीतों से अलग है, उनका कोई प्रभाव इन गीतों पर नहीं है। आज का गीत पुरानी परम्परा से जुड़ता है तो इसी बात पर कि वह गीत है।"[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. शम्भुनाथ सिंह की दृष्टि जहाँ परम्परा से सम्पृक्त है वहीं श्री ललित शुक्ल 'नवगीत' के सन्दर्भ में 'नयी कविता' के प्रभाव से अधिक जुड़े हुए दिखाई पड़ते हैं।

परम्परिक रूप से नवगीत का प्रचलन कहीं भी नहीं था, किन्तु ग्राम्य–नागर सभ्यता–संस्कृतियों के प्रभाव स्वरूप उपजी नवीन पृष्ठभूमि ही नवगीत की उत्पत्ति में सहायक बनी। संभवतः नवगीत एक युगसापेक्ष शब्द है जो किसी काल और परिवेश की परम्परागत पद्धति और भावबोध से भिन्न नवीन पद्धति और अनुभूति के आयामों तथा भावों की अभिव्यक्ति का नवान्विष्ट पथ है। ऐसे में प्रत्येक युग की नवीन अभिव्यक्ति 'नवगीत' नाम से अभिहित होने के योग्य है। काव्येतिहास में यह तथ्य सर्वमान्य है कि नवगीत संज्ञा का सर्वप्रथम मुद्रित प्रयोग नवगीतकार राजेन्द्रप्रसाद सिंह ने सन् 1958 में किया। मुजफ्फरपुर, बिहार से 5 फरवरी, 1958 को प्रकाशित 'गीताङ्गिनी' नामक गीत सङ्कलन का सम्पादन करते हुए श्री सिंह ने लिखा था कि– 'समकालीन हिन्दी कविता महत्त्वपूर्ण और महत्त्वहीन रचनाओं के विस्तृत आन्दोलन में गीत–परम्परा 'नवगीत' के निकाय में परिणति पाने को सचेष्ट है।' नवगीत की पहचान कराते हुए उन्होंने आगे लिखा है– 'नवगीत नयी अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचयित मार्मिक समग्रता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार होगा, जिसमें

1. डॉ. ललित शुक्ल : नया काव्य नये मूल्य, पृ.सं. 231

अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का सन्तुलन होगा।'[1] 'नवगीत' संज्ञा के उद्भावक के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करते हुए श्री सिंह पुनः लिखते हैं कि– 'गीताँगिनी के सहयोगियों ने आधुनिकतर गीत, बिम्बगीत, तात्त्विक गीत आदि कुछ नामों का सुझाव दिया था, किन्तु मैंने गीतों की सम्भावना को काल, प्रकृति और शिल्प की एकान्तिक सीमा में नहीं बाँधना चाहा था, तभी नवगीत संज्ञा दी।'[2]

संस्कृत में नवगीत–लेखन स्वतन्त्रता–आन्दोलन के नवजागरण–काल में शुरु हुआ। शिल्प की दृष्टि से प्रथमतः संस्कृत में, किन्तु अभिधान की दृष्टि से सर्वप्रथम हिन्दी में नवगीत का अवतरण हुआ। यद्यपि पूर्वोल्लेखानुसार सन् 1958 में हिन्दी नवगीतकार श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने अपने गीत–सङ्कलन 'गीताङ्गिनी' में इस नवीन शैली को 'नवगीत' नाम से पुकारा था, परन्तु संस्कृत में नवगीत की अवतारणा 1930–1932 के आस–पास हुई। इसके प्रथम सबल और सफल प्रयोक्ता आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री माने जाते हैं जिनके नवगीतों की मसृणता, नव्यता और अभिव्यञ्जना अन्तःकरण को बरबस आकृष्ट कर लेती हैं। इनके इस नववर्त्मगामी लेखन को तत्कालीन शीर्षस्थ विद्वानों ने अभिनव शैली के गीत कहकर इन्हें सम्मान दिया है। अपनी प्रथम संस्कृत–पुस्तक 'काकली' की भूमिका में स्वयं शास्त्री जी ने अपनी रचनाधर्मिता को नयी शैली का लेखन कहा है–

"परिवर्त्तनशीलं संसारं प्रेक्ष्य बाल्ययौवने।
नृपं मुनिञ्च वर्तमानं सदने च कदापि वने।

...

तेन हेतुना 'नवरीत्यैव' मया काकली प्रणीता।
प्राच्यरीतिनाशार्थं न मतिर्नवनीतिं नीता।।
छन्दोहीनं भवति न वा सुन्दरम्पद्यमिति धिया।
लिखितेयं 'काकली' मया नोच्छन्दोभिया ह्रिलया।।
अथवा नूतनं वृत्तं वर्तत एव मया तद्गीतम्।
प्रत्नवन्न्रा दृश्यते किन्तु तन्नवबन्धनमुपनीतम्।।"

---

1. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा, नवगीत संवेदना और शिल्प, पृ.सं. 75
2. राजेन्द्र प्रसाद सिंह : अंकन (नवगीत अंक–जुलाई 69) पृ.सं.–53

'सुप्रभातम्' संस्कृत–पत्रिका के तत्कालीन सम्पादक श्री केदारनाथ शर्मा सारस्वत ने अपनी प्रस्तावना में स्पष्ट लिखा है– **"एतेषां काकली शब्दतश्च अर्थतश्च वर्णनीयविषय–वैशिष्ट्येन रचनानैपुन्येननावीन्येन च संस्कृतसाहित्यसंसारे कामपि जागरा जनयेत् समाहरेच्च सहृदयहृदयानीति सुदृढ़ोऽस्माकं विश्वासः।"**

व्याकरणाचार्य पं. अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय के ये वाक्य स्पष्टतः सिद्ध करते हैं कि आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का गीतात्मक लेखन अभिनव प्रतिभा का अभिनव अवदान है–**"ललितललामापरनाम्ना श्रीजानकीवल्लभशमर्णा स्वकल्पितैर्नूतनछन्दोभिः सङ्कलितं मुक्तकं नामेदमभिनवं काव्यं पदमाधुर्यणार्थगाम्भीर्येणसहृदयहृदयचमत्कारितया चैकैकेनापि पद्येन चमत्करोति चेतांसि सचेतसां, समुत्पादयति च सहृदयनां विदुषां चेतस्यानन्दसन्दोहम्। अस्याभिनवा रचनापद्धतिः स्मारयति नूतनोऽयं छन्दसामवतारमिति भगवतो भवभूतेर्गद्यांशम्।"**

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री 'नवगीत' नामक नवनामित अभिनव शैली के प्रतिष्ठापक हैं। अर्वाचीन संस्कृत लेखक भी इन्हें नवगीत के प्रवर्तक के साथ संस्कृत जगत् के युगान्तकारी सर्जक के रूप में मानते हैं। संस्कृत के सुविख्यात कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने लिखा है कि "उत्तरी भारत में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने नवगीतों की अवतारणा की है। शास्त्री जी के अनेक नवगीत अपनी मञ्जुल पदशय्या, आकर्षक नीतिमत्ता और तदनुकूल भावशिल्प के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं।"

इस प्रकार पारम्परिक शैली के प्रखर विद्वान् होने के बावजूद शास्त्री जी ने **'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्'** के सिद्धान्त को मानकर नूतन की खोज करने वाले युगचेतना के कवि हैं। संस्कृत–नवगीत भी इनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का ही परिणाम है।[1]

परमादरणीय प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी से दिनांक 17.04.2013 को मुझ शोध अध्येता की दूरभाष पर हुई वार्ता के दौरान प्रो. मिश्र जी नवगीत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– गीत के दो प्रकार होते हैं– शास्त्रीय एवं लोकगीत। शास्त्रीय गीत रागबद्ध

1. दृक्, अंक–21, पृ.सं. 83–84

होता है जैसे–गीतगोविन्द। लोकगीत गायक की गेयता पर निर्भर होता है। या यूँ कहें कि 'लोकगीतों का सुधरा हुआ रूप ही 'नवगीत' है। इस प्रकार प्रो. मिश्र नवगीत को पुनः परिभाषित करते हुए कहते हैं– 'लोकगीतों का सुधरा हुआ वह रूप जिसमें कवि प्रतीकों के माध्यम से व्यंजना शब्द शक्ति के द्वारा जब अपनी बात कहता है तब वह 'नवगीत' की श्रेणी में आता है। इसमें कवि भावपूर्ण तरीके से प्रेम, कृतध्नता, छल–कपट, सुख–दुःख आदि भावों की संगीतमय प्रस्तुति देता है। अपनी इसी बात का समर्थन करते हुए अभिराज ने अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में 'गीतभेदनिरूपण' करते हुए लिखा है–

अथ गीतभेदनिरूपणम्–(शास्त्रीयगीतं लोकगीतञ्च)

धातुमातुसमायुक्तं यद्धि नादाऽक्षरात्मकम्।
कर्णामृतं विभक्तञ्च द्विधा गीतं प्रशस्यते।।

धातुजं वेणवीणादियन्त्रसञ्चनिस्सृतम्।

मातुजं मुखजं प्रोक्तं गानरूपेण संस्थितम्।।
गीतमेतद्यदा रागैर्गीयते शास्त्रसम्मतैः।
काव्यं तादृशगीतानां रागकाव्यं समुच्यते।।
यत्पुनर्गीयते स्वैरं यथाकण्ठं यथासुखम्।
यथाजनपदग्रामकुलजातिपरम्पराम्।।
तच्च सद्योरसानन्ददायकं गतबन्धनम्।
शास्त्रनियमनिर्मुक्तं लोकगीतं समुच्यते।।[1]

(घ) नवगीत : उद्भव एवं विकास[2]

स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रथम दशक के प्रारम्भ के साथ ही 'नवगीत' की पहचान स्पष्ट होने लगती है। परिस्थितियों और परिवेश के दबाव के कारण कवियों में जिस सहज स्वाभाविक नूतन भाव–बोध की प्रयोग धर्मिता का उदय हुआ था उसने स्वातन्त्र्योत्तर–गीत की दिशा को तेजी के साथ बदलना प्रारम्भ कर दिया। नवगीत की नवता का स्वरूप

---

1. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः / 13–17, पृ.सं. 253–254
2. डॉ. इन्दीवर पाण्डेय : नवगीत में लोक चेतना, पृ.सं. 87–90

'निराला' के गीतों में ही स्पष्ट एवं अवगुंठन रहित हो गया था। छठें दशक के प्रारम्भ में अपनी कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियों के माध्यम से वह कुछ और उभर कर सामने आया और उसने अपनी एक अलग पहचान बना ली। इस प्रकार 1960 के आस–पास 'नवगीत' को अपनी अभिधा मिल गई और वह पूर्ण प्रतिष्ठित हो गया। किन्तु इस प्रतिष्ठापना का श्रेय किसी एक कवि को किसी एक दिशा अथवा किसी एक कोण में नहीं दिया जा सकता। क्योकि यह परिवर्तनशीलता किसी एक कवि की रचना में नहीं घटित हो रही थी। बल्कि यह एक बहुआयामी नवता या परिवर्तनशीलता थी जो समवेत प्रयत्नों के माध्यम से उद्भासित हो रही थी। किसी ने उसमें नवीन भावबोध का सृजन कर उसे प्राणवान बनाया। इसी प्रकार किसी ने उसे मौलिक उपमानों से किसी ने लय की नव–झंकृतियों से और किसी ने अस्पष्ट पूर्व–बिम्बों से मुक्त कर उसे समृद्ध किया। वस्तुतः सन् 1950 से 1957 तक का काल नवगीत का संक्रमण काल था। इसके पश्चात् का काल ही नवगीत के स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा के लिये उपयुक्त सिद्ध होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि छठें दशक के कवियों ने अपने गीतों के द्वारा कुछ विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से नवगीत की पृष्ठभूमि निर्मित की। परिपाटीबद्ध गीत शैली से अपनी अलग पहचान बनाना इस संक्रमणकाल की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति थी। इस प्रवृत्ति के कारण गीत एक नयी दिशा में मोड़ ले रहा था जिसमें भाषा अपनी बिम्बात्मक समृद्धि एवं संकेतों के माध्यम से एक नवीन मौलिक शिल्प का सृजन कर रही थी। इस दशक के नवगीतकारों ने वैयक्तिक प्रणय सापेक्ष, सीमित संवेदनायुक्त एवं उर्जाविहीन पारम्परिक गीतों से जो एक विशेष रोमानी मुहावरे में अनुभूति–शून्य एवं रूढ़–शिल्प तंत्र के दायरे में परिबद्ध होकर बासीपन को जन्म दे रहे थे, से भिन्न अपना मार्ग निर्माण किया। विकृतियों से घिरते गीत को उन्होंने संवेदन के एक विस्तृत धरातल पर लाकर प्रतिष्ठित किया तथा सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की परम्परा में ही परिबद्ध करते हुये उसे एक उपयुक्त नया मोड़ दिया।

'नवगीत' कोई नकारात्मक काव्य आन्दोलन नहीं था इसी कारण इसका उद्भव बड़ी सहजता के साथ हुआ। इसके पीछे लम्बी रोषपूर्ण एवं उग्रता संवलित घोषणाएं नहीं थीं। ध्वंसक मान्यताओं के प्रचार के रूप में भी वह नहीं आया और न उसने परम्परा को ही अनपेक्षित एवं अवांछनीय माना। नवगीत की पृष्ठभूमि में कवि की स्वाभिमानपरक

वैयक्तिकता की एक सहज साधना थी, जिसने रूढ़ियों को तिरस्कृत करते हुए सम्पूर्ण भारतीय चेतना को आत्मसात् किया तथा उसे समष्टिपरक यथार्थाश्रित आधुनिक बोध से जोड़ा। इस प्रकार इसमें लयात्मकता, आधुनिकता और रागात्मकता का समन्वय हुआ।

'नवगीत' आज के सम्पूर्ण जीवनबोध की कविता है। वह न तो केवल लोकगीतात्मक रचना है और न केवल नगरबोध की कविता। उसके शिल्प और कथ्य का आस्वाद एक कठोर और खुदरे हाथ के स्नेहमय स्पर्श का आस्वाद है।[1] नवगीत आज के सम्पूर्ण जीवन लघु–लक्ष्यों की कविता है। वह संगीत, लय, छन्द, तुक और ताल की समस्त पारस्परिक रूढ़ियों से मुक्त होता हुआ भी उनकी मूल धारा से जुड़ा हुआ है। वह एक ऐसा काव्य रूप है जो वास्तविक रचना के आन्तरिक अनुशासन से अनुशासित है। नवगीत के कवि एक ही समय में प्रतिबद्ध और तटस्थ दोनों हैं। इनकी प्रतिबद्धता केवल अपने परिवेश और वास्तविक अनुभूति के प्रति है, और ये तटस्थ हैं काव्य रचना के प्रति किसी भी प्रकार के विशिष्टाग्रह से। न तो वे किसी मतवाद के पोषक है और न किसी रचना शिल्प विशेष के प्रति आग्रही। निजी परिवेश और अनुभूति–विशेष के अनुरूप जो रचना–रूप हो सकता है, ये कवि उसी का प्रयोग करते हैं। वे काव्य–भाषा के रूप–विशेष के प्रति तटस्थ हैं। वे स्वयं को परम्परा से कटा हुआ नहीं मानते। परम्परा के श्रेष्ठत्व को स्वीकारते हुए उसके विद्यमान और परिवर्तित रूप को ये कवि ग्रहण करते हैं लेकिन ये कवि परम्परावादी नहीं हैं।

'नवगीत' की दृष्टि में जीवन की सम्पूर्णता है उसका कोई एक या अंग विशेष नहीं। वह वस्तु सत्य–चाहे वह जिस भी रूप में हो, की कविता है, वैयक्तिक या आरोपित सत्य की नहीं। उसकी दृष्टि में जातीयता या जातीय परिवेश किसी भी आधुनिकता, अत्याधुनिकता या अन्ताराष्ट्रियता से अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि नवगीत के कवि उसके सीधे भोक्ता और प्रामाणिक प्रवक्ता हैं। ये कवि मानते हैं कि कविता कभी गद्य नहीं थी, न है, न हो सकेगी। अतएव उसमें लय का होना अनिवार्य है, किन्तु उतने ही अनुपात में जितना कविता के लिये आवश्यक हो।

---

1. डॉ. ओम प्रभाकर : नवगीत और छन्द, उत्तरप्रदेश मासिक लखनऊ, सितम्बर, 1983

निःसन्देह नवगीत नये मानव–मन की प्रतिक्रिया है, निर्मम नियति की अभिव्यक्ति है। आज हम अगर कहीं से जुड़ते हैं अथवा किसी से आत्मीयता रखते हैं, तो वह संवेदन के कारण नहीं, समस्याओं की समानता के कारण। आज का गीत अपने पूर्ववर्ती गीतों से अलग है और नया है तो इसीलिये कि वह आज की जिन्दगी के खुरदरे धरातल पर खड़ा है किसी सुनहरी समतल भूमि पर नहीं। इस प्रकार नवगीत के सम्पूर्ण परिवृत्त पर दृष्टि डालते हुए उसे रूपायित करने के लिये उसकी कतिपय विशेषताओं को निम्न प्रकार से रेखांकित किया जा सकता है–

1. कथ्य की नवीनता
2. भोगी हुई अनुभूतियों की अभिव्यक्ति
3. आधुनिकता बोध
4. बौद्धिकता और भावात्मकता का समन्वय
5. समन्वयात्मक सांस्कृतिक चेतना
6. नवीन जीवन–मूल्यों की प्रतिष्ठा
7. वैज्ञानिक जीवन–दृष्टि
8. वैयक्तिकता और सामाजिकता का समन्वय
9. सर्जनात्मक व्यक्तित्व की खोज
10. भाषा और शिल्प सम्बन्धी नवीनता।

इनमें अंतिम विशेषता का सम्बन्ध गीति–काव्य के शिल्प पक्ष से है। शेष अन्य विशेषताओं उसके कथ्यगत वैशिष्ट्य से सम्बन्ध रखती है। 'नवगीत' की इन रूपरेखाओं को दृष्टिगत रखते हुए निम्नांकित शब्दों में उसे परिभाषित कर सकते हैं–

"पारम्परिक गीतों से भिन्न 'नवगीत' आधुनिक संस्कृत–काव्य की वह विधा है जो युगबोध सम्पन्न जीवन–मूल्यों की भोगी और झेली हुई अनुभूतियों को उसके भारतीय परिवेश में आधुनिक जीवन–दृष्टि एवं लयात्मक सम्वेदन प्रदान करती है।"

इस प्रकार नवगीत एक पूरे युग की चेतना की संश्लिष्ट परिणति है। वह एक प्राणवान् कविता का ही प्रतिरूप है। यह एक संयोग है कि उसका उद्भव उन्हीं परिस्थितियों में और उसी अनुक्रम में हुआ है जिसमें नयी कविता का। किन्तु जिस प्रकार नवगीत पारम्परिक गीतों से भिन्न है उसी प्रकार नयी कविता से भी।

(ङ) पारम्परिक गीत, नयी कविता और गज़ल बनाम नवगीत साम्य और वैषम्य[1]

1. पारम्परिक गीत और नवगीत

पारम्परिक गीत और नवगीत में वही अन्तर है जो पारम्परिक कविता और नयी कविता में अथवा पारम्परिक कहानी और नयी कहानी में। विषय की स्पष्टता के लिये यह बतलाने की अपेक्षा होगी कि वैदिक युग से ही गीतों की एक लम्बी परम्परा प्रवहमान रही है जो किसी न किसी रूप में निरन्तर गतिशील होती हुई इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भिक सोपानों तक अग्रसर रही है। वैदिक ऋचाओं से होता हुआ इसका आदिम रूप क्रमशः थेरी गाथाओं, मेघदूत, गीतगोविन्द, नाथों व सिद्धों के पदों तथा भक्तिकालीन कवियों के पदों में विकास करता आया है। काव्य तथा शिल्प के स्तर पर उसके कुछ न कुछ तत्त्व स्वतन्त्रता आन्दोलन के पूर्व तक अस्तित्व में रहे हैं। परवर्ती गीतिकाव्य ने अपनी कलात्मक भंगिमा एवं सूक्ष्म कल्पनाशीलता द्वारा जब गीत को अत्यन्त उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित कर दिया तब नियतिकृत गति के अनुसार उसका ह्रासोन्मुख हो जाना स्वाभाविक था। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समकालीन युवा कवियों ने इसे सहज भाषा एवं सहज भाव–भूमि पर लाकर खड़ा किया वह पारम्परिक गीत का अंतिम सोपान था।

इन कवियों ने सहज भाषा के आग्रह से गीत को प्रसारगत व्यापकता तो अवश्य दी किन्तु उनकी वैयक्तिक प्रणय सापेक्ष सीमित सम्वेदना गीत को नयी ऊर्जा से सम्पन्न नहीं कर पा रही थी। नवगीत इन सबसे भिन्न अपनी एक अलग अस्मिता लेकर आया। उसने गीत को एक नयी शक्ति और नये स्तर से आपूर्ति कर उसमें एक नूतन स्फूर्ति भरने में सफलता प्राप्त की। तत्कालीन परिस्थितियों में गीत को पुनजीर्वित करने में नवगीत ने

1. डॉ. इन्दीवर पाण्डेय, नवगीत में लोकचेतना, पृ.सं. 90–98

अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। पारम्परिक गीतों से भिन्न नवगीत ने कथ्य एवं शिल्प दोनों ही स्तर पर गीत को नूतन परिवेश में रूपायित कर नये सिरे से उसका उद्धार किया। क्षयीरोमान्स से उबारकर उसे नव–चेतना प्रदान की, परिणामतः एक नयी दृष्टि और नूतन भाव–बोध का अभ्युदय हुआ। पारम्परिक गीत व नवगीत के मध्यगत अन्तर को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

1. गीत वैदिक परम्परा से प्रवाहमान होता हुआ नवगीत में परिणत हो गया। इस प्रकार 'गीत' का आधुनिक सुधरा हुआ स्वरूप ही 'नवगीत' है।
2. पारम्परिक गीतों में अहं की तीव्राभिव्यक्ति हुई थी जिसने कवि के मनोभावों को आत्मरति, आत्मप्रशंसा एवं आत्मविश्वास के स्तर पर पहुँचा दिया था। उन्हें जगत् के प्रति कोई चिन्ता न थी। इसके विपरीत नवगीत ऐसे भ्रमों से पूर्णतः अछूता रहकर कविता की प्रक्रिया को 'संघर्ष की प्रक्रिया', 'रोशनी के छन्द की प्रक्रिया' अथवा 'मौन को साधना' मानता है।
3. पारम्परिक गीत–कवियों ने प्रेम, सौन्दर्य, विरह, संयोग, आशा–निराशा, मान–मनुहार आदि के वैयक्तिक, लोकपरक, मांसल–दृष्टि–सम्पन्न गीतों की रचना में ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का स्खलन कर दिया। इन गीतों में विषय रूप स्थूल साधनों का आधिक्य समावेष्टित हुआ और चाक्षुष विम्बों की वपुमान, मधुस्निग्ध और चर्वणासुलभ रचना हुई किन्तु नवगीत ने इन सबसे इतर युगीन समस्याओं को अपनी संवेदनापरक दृष्टि से रूपायित करना तथा उसके अन्तःस्थल में प्रविष्ट होकर युगीन सन्दर्भों में मानव–मन की हर धड़कनों, हर एहसासों को अभिनव आयामों की पृष्ठभूमि पर अभिव्यक्ति देना तय किया। भावुकता की गलदश्रु आविलता से मुक्त यथार्थ की खुरदरी और ठोस जमीन उसके पाँवों के नीचे थी।
4. पारम्परिक गीतों का मुख्य ध्येय चित्तानुरंजन रह गया था किन्तु नवगीत का मुख्य ध्येय जीवन यथार्थ से परिचित करवाकर चित्त को झंकृत व आंदोलित करना है।
5. पारम्परिक गीतों में कल्पना का प्राधान्य था किन्तु नवगीत जीवन–यथार्थ की भावभूमि पर स्थिर है।

6. पारम्परिक गीतों में विरहजन्य निराशा और तज्जन्य कुंठा आदि विषयगत संकीर्णता नजर आती है, किन्तु नवगीतकारों ने विषय की व्यापकता का अनुसरण कर सामान्य से सामान्य वस्तु, विषय और व्यापार को अपने सृजन का आधार बनाया।
7. पारम्परिक गीतकार चांदनी के गीत गाता नजर आता है जबकि नवगीत का कवि तो चांदनी की शीतलता की अपेक्षा जीवन में धूप की चिलचिलाहट का ही अनुभव प्रायशः करता है।
8. पारम्परिक गीतों की भाँति नवगीत में भी प्रेम या सौन्दर्य परक गीत है पर उनकी प्रस्तुति का कोण बिल्कुल भिन्न है और बदला हुआ है।
9. नवगीत ने उपहास्य भावुकता से विरक्त होकर एक नूतन सौंदर्य बोध को अपना माध्यम बनाया है। नवगीत ने मानव मन की पीड़ा, घुटन, संत्रास को वाणी देकर अमृतत्व के तलाश की भूमिका प्रस्तुत की है।
10. पारम्परिक गीतों की भांति 'क्षणवार' और 'मृत्यु की उपासना' भी 'नवगीत' का विषय नहीं रहा है।
11. नवगीत और पारम्परिक गीतों का सबसे बड़ा भेद है उसकी काव्य दृष्टि का। जिसके अनुसार पारम्परिक गीत की छन्द, टेक, अन्तरा सम्बन्धी उन विशेषताओं में ही परिवर्तन नहीं आया है, जिनका गीत के शिल्प से सीधा सम्बन्ध समझा जाता है, बल्कि उन स्वीकृत मान्यताओं को भी नवगीत में एक नया रूप मिला है, जिन्हें नवगीत की आधारभूत विशेषताओं के अन्तर्गत गिना गया है। आत्मानुभूति, रागात्मकता, आकारलघुता, सहजता, संगीतात्मकता अथवा लयात्मकता और प्रभान्विति सामान्यतः गीत के आधारभूत तत्त्व माने गये हैं। इसके विपरीत नवगीत में इनमें से जिन तत्त्वों को ग्रहण किया है, उन्हें नया एवं परिवर्तित सन्दर्भ प्रदान किया है।
12. पारम्परिक गीत की ऋजुभाषा जो अधिकांशतः अभिधामूलक है नवगीत की व्यंग्य प्रधान भाषा और शिल्प से कोई साम्य नहीं रखती।
13. पारम्परिक गीतों के ही शिल्पगत ढर्रे को छांदसिकता के ही अन्तर्गत प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और राष्ट्रियतावादी गीतों को भी गिना जा सकता है, किन्तु कालातीत होने के कारण नवगीत से उसकी पहचान बहुत दूर पड़ जाती है।

इस प्रकार नवगीत पारम्परिक गीतों से अपने रूप–रेखाओं और गतिविधियों के कारण सर्वथा अलग महत्त्व रखता है।

2. नयी कविता और नवगीत

डॉ. शम्भूनाथ सिंह अपने अनेक प्रकाशित लेखों–वक्तव्यों और पुस्तकों में इस बात को बड़ी स्पष्टता से स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि– 'नवगीत गीतिकाव्य की शाश्वत परम्परा से सम्बद्ध है। नवगीत का जन्म उन्हीं परिस्थितियों में और उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार नयी कविता का। अतः जिस तरह नयी धारा की मुक्त छंद वाली कविता को नयी कविता कहा गया, उसी तरह नई धारा के गीतिकाव्य को नवगीत कहा जाने लगा। मैं नवगीत को काव्यधारा की आधुनिकतम विधा मानता हूँ, क्योंकि इसमें आधुनिकता की वे सभी प्रवृत्तियाँ वर्तमान है, जो पूरे भारतवर्ष व विश्व की आधुनिकतावादी नयी कविता में दिखाई पड़ती हैं। किन्तु नवगीत का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें आदिम युग से लेकर आधुनिक युग तक विश्व साहित्य में प्रवहमान गीतिकाव्य–धारा की परम्परा को ग्रहण करके उसे नयी दिशा में प्रवाहित किया गया है। इस प्रकार साहित्य को जन–जीवन से जोड़ने और उसे कालजयी बनाने का माध्यम नवगीत ही है।[1]

कुछ लोग बोधगत समानता के आधार पर यह मानते हैं कि 'नयी कविता और नवगीत' में केवल 'फार्म' का अन्तर है। किन्तु नवगीत और नयी कविता में केवल यही अन्तर नहीं है कि एक लय संयुक्त है, दूसरी छन्द–हीन। वस्तुत इन दोनों में मूलभूत अन्तर इनकी 'दृष्टि' का है। नयी कविता के गीतकारों ने जहाँ ग्राम्य–अंचलों के जीवन को चकित मुग्ध आँखों से देखा है और लोक–गीतों की अनुकृति को प्रमुखता दी है, वहीं नवगीत लोकजीवन से सहज स्वाभाविक रूप में अपने आप जुड़ता चला गया है और यह जुड़ाव अनुभव की प्राथमिकता के आधार पर है, पूर्ववर्ती काव्य–धाराओं की भाँति सैद्धान्तिक विवेचनों और दृष्टिपरक मान्यताओं पर नहीं। नवगीत में लोकजीवन के ये सन्दर्भ अनुभव के स्तर पर वास्तविक और प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। नयी कविता में उनकी प्रामाणिकता अपने सतहीपन पर वैयक्तिक सन्दर्भों में ही उपलब्ध होती है। इस प्रकार नयी कविता और नवगीत प्रारम्भिक स्तर पर बोधगत समानता रखते हुए भी कई बिन्दुओं पर एक दूसरे से भिन्नता रखते हैं।

---

1. डॉ. शम्भूनाथ सिंह : हिन्दी नवगीत (एक परिचर्चा) उत्तरप्रदेश मासिक, लखनऊ दिसम्बर, 1982

साहित्य की किसी भी विधा की किसी भी धारा का सूक्ष्म आधार उसकी मानसिकता होती है। नवगीत का मनःलोक प्रारम्भ से ही भारतीय या जातीय रहा है जबकि नयी कविता का अधिकांश विचित्र और विजातीय दबावों की मानसिकता का उत्पादन है। नवगीत काव्य जगत में व्याप्त अराजकता के मध्य मर्यादा का जयघोष है। नयी कविता ने परम्परा मंजन के जोश में न केवल पिछली मान्यताओं को नकारा अपितु उसे ध्वंस भी किया। भाषा, छन्द, लय, प्रयोग, अर्थ–सन्दर्भ सभी को चूरकर उसने एक नये अर्थ, लय की सृष्टि की और अनेक पश्चिमीय सिद्धान्तों को बटोरा तथा कविता की प्रत्यंचा ऐसे अनजान हाथों में दे दी जिन्हें लाघव की अपेक्षा–अनपेक्षा से कोई सरोकार न था। नवगीत ने काव्य में युग की मर्यादाओं का समायोजन किया।

वस्तुतः नवगीत और नयी कविता की मानसिकता में बुनियादी अन्तर है। नवगीत का सम्बन्ध नयी रागात्मकता से है और नयी कविता नयी बौद्धिक चेतना का पर्याय होती जा रही है। दोनों का अन्तर ठीक वैसा ही है जैसा काशी के घाटों की श्रृंखला और संगम की बालू की सिक्त धरती। सूत्रात्मक रूप से दोनों का अन्तर निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. नयी कविता और नवगीत में केवल फार्म का ही अन्तर नहीं है, वे कई बिन्दुओं पर एक दूसरे से भिन्न हैं।
2. नवगीत परम्परावादी न होते हुए भी परम्परा के श्रेष्ठत्व का कायल है, नयी कविता परम्परा के प्रति उपेक्षावान और विध्वंसक है।
3. नवगीत आंचलिकता बोध और लोकचेतना से सम्पृक्त है किन्तु नयी कविता उससे अछूती न होने पर भी इसकी गहराई तक नहीं पहुँचती।
4. नयी कविता के कवि नवगीत के विरोधी हैं पर नवगीत का नयी कविता से कोई सैद्धान्तिक विरोध नहीं है।
5. नयी कविता केवल अर्थ, लय की अपेक्षा रखती है, किन्तु नवगीत नहीं।
6. नवगीत मर्यादायुक्त है किन्तु नयी कविता अराजकता का आग्रह।
7. नयी कविता एक आयातित व्यापार है, किन्तु नवगीत भारत की धरती की सोंधी गंध की स्वाभाविक मिठास।

8. नयी कविता रागात्मकता और लयात्मकता से सम्बद्ध है जबकि नवगीत बौद्धिकता का तार्किक व्याख्यान चमत्कृति विशिष्ट।
9. नवगीत एक पूरे युग की चेतना की संश्लिष्ट परिणति है। नयी कविता भी पिछले सभी वादों या युगीन विचारों का संश्लेषण है किन्तु दोनों के सम्वेदन में स्तर की असमानता है। एक ने आधुनिकता को प्रत्यक्ष के रूप में ग्रहण किया है, दूसरे ने उसे सम्वेदनशीलता के माध्यम से अपनाया है।

3. गज़ल और नवगीत

संस्कृत साहित्य में फारसी गज़ल विधा का प्रयोग तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही होना शुरु हो गया था। महाकवि भट्टमथुरानाथ शास्त्री जी ने समान रचना विधानपूर्वक फारसी ग़ज़ल लेखन के शैली में संस्कृतलेखन की ओर अपनी लेखनी चलाई। 'गज़ल' विधा को 'गलज्जलिका' नाम देकर प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने आधुनिक संस्कृत गीति–साहित्य को संस्कृत गलज्जलिकाओं से समृद्ध किया। 'गलन्ति जलानिनयनाश्रूणि यस्यां सा मर्मन्तुदागलज्जलिका' (वाग्वघूटी) इस रूप में आपने 'गलज्जलिका' शब्द को निष्पन्न माना है। इसी निष्पत्ति से ही संस्कृत गलज्जलिका का परिक्षेत्र हिन्दी–उर्दू ग़ज़लों के क्षेत्र से कुछ बड़ा हो जाता है। यहाँ प्रणयी एवं प्रेयसी की परस्पर बात के अलावा जीवन एवं जगत् के सारे दर्दों एवं आँसुओं के संसार को भी अभिव्यक्त करने की क्षमता इस विधा में है।

दिनांक 17.04.2013 को शोधार्थी की दूरभाष पर हुई वार्ता के दौरान प्रो. मिश्र ने ग़ज़ल व नवगीत के साम्य–वैषम्य को स्पष्ट करते हुए कहा कि–

साम्य

(i) संवेदना की दृष्टि से दोनों एक ही है।

(ii) दोनों ही विधाओं में व्यंग्यात्मक शैली में प्रेम, कृतध्नता, दुःखातिरेक आदि भावों की गेयतापूर्ण अभिव्यक्ति होती है।

वैषम्य

(i) नवगीत पूर्णतः शुद्ध भारतीय विधा है। जबकि ग़ज़ल पूर्णतः फारसी विधा है। ग़ज़ल फारसी कविता का ही एक अंग है।

(च) आधुनिक संस्कृत गीत–परम्परा तथा प्रमुख प्रवृत्तियाँ

'आधुनिकता' यह शब्द 'अधुना' शब्द से निष्पन्न है। इसी शब्द से आधुनिक, आधुनिकतावाद, आधुनिकीकरण आदि शब्दों की व्युत्पत्ति मानी जा सकती है। वर्तमान समय में 'अधुना' शब्द का प्रयोग साम्प्रतिक, अद्यतन, अर्वाचीन आदि शब्दों के लिए किया जाता है। अंग्रेजी में 'आधुनिक' इस अभिप्राय की व्यञ्जना के लिए 'Modern' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी शब्द से 'Modernity', 'Modernism', 'Modernization' आदि शब्द उत्पन्न हुए हैं। हम Modern शब्द को 'आधुनिक' के अर्थ में स्वीकार कर सकते हैं।

यान्त्रिकीकरण, नगरीकरण, विश्वयुद्ध की विभीषिका, अणुबम द्वारा नरसंहार आदि कारणों से मनुष्य के समक्ष यह प्रश्न उठा कि यह सब ईश्वर ही करता है अथवा करवाता है? क्या निर्दोषों के प्रति वह इतना निष्ठुर हो सकता है? इन प्रश्नों का समाधान जब मानव मस्तिष्क नहीं कर सका तब उसी वैचारिक संघर्ष से आधुनिक काव्य का जन्म हुआ। इरविंग होवे (Irving Howe) के अनुसार–

Where the contemporary refers to time, the Modern refers to sensibility and style and whereas the contemporary is a term of natural reference, the modern is a term of critical treatment and judgement.[1]

(1) संस्कृत साहित्य का आधुनिक काल

संस्कृत गीतिकाव्य परम्परा में आधुनिक संस्कृत गीतिकाव्य–धारा का समावलोकन व अनुशीलन करने के लिए संस्कृत साहित्य के इतिहास के आधुनिक काल का आरम्भ कब से माना जाये? इसके क्या मानदण्ड हो सकते हैं? इस काल के साहित्य में कौन–कौनसी प्रवृत्तियाँ व विधायें परिलक्षित होती है? इत्यादि प्रश्नों पर संक्षेप में विचार करना यहाँ प्रसंगानुकूल प्रतीत होता है।

संस्कृत संहिता के इतिहास के आधुनिक काल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से अनेक विचारकों में यत् किञ्चित् मत–भेद परिलक्षित होता है। इसी क्रम में साहित्य के सन्दर्भ में आधुनिकता क्या है, यह भी जानना आवश्यक है। इस प्रसंग में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी

1. डॉ. मंजुलता शर्मा : आधुनिक संस्कृत काव्यकी परिक्रमा, पृ.सं. 01–02

कहते हैं– "विश्व और देश में बदलती राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों के बोध के साथ समग्र राष्ट्र के ऐकात्म्य के प्रति दृष्टि कम से कम एक व्यावर्तक है, जो काल और विषयवस्तु की दृष्टि से आधुनिक साहित्य का उपक्रम कराता है।"[1]

"अर्वाचीन संस्कृत कविता का मानदण्ड : शाश्वततावाद" शीर्षक से 'दृक्' में प्रकाशित अपने लेख में प्रो. राजेन्द्र मिश्र जी इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि '................. आधुनिकता, उत्तराधुनकिता तथा प्राचीनता' की तिकड़ी में विभक्त–विभजित उन कवियों में भी क्या ऐसा कुछ शाश्वत एवं निरन्तर सत्य नहीं जो कि आज भी संगत, समंजस, प्रासंगिक एवं उपादेय है? क्या ये प्राचीन कवि किसी आधुनिक कवि से भी अधिक आधुनिक नहीं प्रतीत होते, किन्हीं विशिष्ट सन्दर्भों में?

तो फिर काल के धर्म को कवि के व्यक्तित्व पर लादना कितना उचित है? कालप्रवाह होता है, प्राचीन, नवीन (आधुनिक) एवं भविष्यत्, परन्तु कविता या कवि नहीं। वह तो नित्य–नवीन है, प्रत्यग्र है, ताजा है–अपनी शाश्वत प्रतिष्ठापनाओं के कारण............. .... ।

जैसे निदाघ की वनस्पतियाँ, नष्ट होते–होते भी अपने बीज बिखेर जाती हैं अगले पावस की वानस्पतिक सृष्टि के लिए, ठीक उसी प्रकार साहित्य एवं संस्कृति का भी प्रत्येक विवर्त, अगले प्रस्थान के लिए अपने बीज छोड़ जाता है। सामान्यतः इसी को परम्परा कहते हैं...........................वस्तुतः परम्परावाद ही शाश्वततावाद है मेरी दृष्टि में और, इसी शाश्वततावाद को मैं अर्वाचीन संस्कृत–कविता का आदर्श मानदण्ड मानता हूँ–

कालदृष्ट्यैव कामं स्यादतीतं भावि साम्प्रतम्।
तथापि किञ्चिदस्त्येव त्रिष्वेष्वपरिवर्तितम्।।

तदेव शाश्वतं यन्नो कदापि परिवर्तते।
शाश्वतेनैव तेनेदं धृतं काव्यश्च जीवनम्।।

ततश्शाश्वततावादे श्रद्धा मम महीयसी।
येन प्रवर्तते सृष्टिः काव्ये धर्मेऽथ संस्कृतौ।।

(अभिराज. पञ्चमोन्मेष)[2]

---

1. 'नवोन्मेष', राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, पृ.सं. 118
2. दृक्/XV-XVI,, पृ. 34–39

डी.एच्. लॉरेन्स, रिचर्ड एलमान, सिरिलकोनोली, फ्राड्ककरमोड़ आदि पाश्चात्य विद्वान् आधुनिक साहित्य को लगभग 1907 से 1925 संवत्सर के मध्य का स्वीकार करते हैं। अतः श्रीरामजी उपाध्याय का समस्त साहित्य आधुनिक संस्कृत साहित्य कहा जा सकता है। आधुनिक साहित्य के विषय में विश्वनाथ भट्टाचार्य महोदय का मत है कि– "हमें संस्कृत के इस वैशिष्ट्य को अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि संस्कृतज्ञों का आज भी समाज में विशिष्ट स्थान है। उनके द्वारा समाज की समस्त समस्याओं एवं अनुत्तरित प्रश्नों पर लेखन कार्य किया जा रहा है अतः तात्कालिक एवं सामाजिक प्रभाव से लिखा गया संस्कृत साहित्य आधुनिक साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।"

प्रो. वर्णेकर अपने मराठी ग्रन्थ 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य' में अर्वाचीन काल का आरम्भ सत्रहवीं शताब्दी से मानते हैं किन्तु आचार्य पं. बलदेव उपाध्याय इसका कालखण्ड 1850 ई. से 1990 ई. तक मानते हैं। डॉ. अभिराज राजेन्द्र 'प्राग्वाचिकम्' देववाणी सुवासः (प्रथम खण्ड) की भूमिका में 1784 के बाद में लिखे गये साहित्य को अर्वाचीन मानते हैं इन्होंने इस काल के तीन विभाग किये हैं–

1. पुनर्जागरण काल (1784–1884)
2. स्थापना काल (1884–1950)
3. समृद्धिकाल (1950 से आज तक)

श्री चन्द्रकिशोर गोस्वामी आधुनिक संस्कृत काव्य को निम्न प्रकार से विभाजित करते हैं–

1. 1800–1900 तक 19वीं शताब्दी–स्वतन्त्रता पूर्व साहित्य
2. 1900–1950 20वीं पूर्वार्ध–स्वतन्त्रता संघर्षकालीन साहित्य
3. 1950–1990 20वीं शताब्दी उत्तरार्ध–स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का एक और विभाजन डॉ. जगन्नाथ पाठक द्वारा सम्पादित 'संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास' के आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास नामक सप्तम खण्ड में मिलता है। इसमें संस्कृत साहित्य के आधुनिक काल को मुख्यतः तीन युगों में विभाजित किया गया है–

4. अप्पाशास्त्रीराशिवडेकर–युग (1873–1930)
5. भट्ट–युग (1930–1960)
6. डॉ. वेंकटराघवन–युग (1960–1980)

डॉ. कलानाथ शास्त्री जी ने भी विभाजन की सीमा में किञ्चित् परिवर्तनों के साथ इस पर सहमति व्यक्त की है। यदि इस तथ्य को स्वीकार किया जाये तो 1980 के बाद वाले युग का नामकरण भी किया जाना अपेक्षित हो जाता है। इस काल विशेष में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी आदि की रचनाधर्मिता से हमारा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य समृद्ध हो रहा है, अनेकों विधाएँ विकसित हो रही है। आधुनिक संस्कृत के नये प्रतिमानों से पाठक रूबरू हुये हैं। अतः जैसा कि हर्षदेव माधव के एक पत्र में कहा गया है कि यदि वर्तमान संस्कृत साहित्य को विशेष व्यक्ति के नाम से अभिहित करने की बात कही जाये तो 1980 के बाद का युग 'अभिराज युग' कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विभाजनों पर यदि तात्विक दृष्टि से विचार किया जाये तो प्रवृत्ति के अनुसार किया गया विभाजन समुचित प्रतीत होता है। इससे साहित्य को व्यक्तिगत रूझान और क्षेत्रवाद से दूर रखते हुए उसे विशुद्ध रूप में स्थापित कर सकते हैं। वस्तुतः साहित्य में आधुनिकता का प्रारम्भ लगभग सर्वसम्मति से स्वातन्त्र्योत्तर काल से ही माना जा सकता है।[1]

आधुनिक काल के आरम्भ में प्राचीन रचनाकारों की होड़ में उनके समान ही स्तरीय लेखन की प्रवृत्ति लक्षित होती रही; किन्तु परवर्ती रचनाकारों ने अपनी अलग पहचान बनाने तथा परम्परा से कुछ हटकर अपने लेखन को प्रतिष्ठापित करने की ओर अधिक अभिरूचि दिखलाई।

राशिवडेकर युग में संस्कृत की समास–बहुलता शिथिल हुई और उसे बोधगम्य बनाने के साथ प्रवाहमय बनाने का भी प्रयास हुआ। इस काल के रचनाकारों ने कविता को कलाविलास की सीमा से हटाकर मानव के सुख–दुःख की अभिव्यञ्जक बनाने का भी प्रयास किया।

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ.सं. 02–05

भट्ट–युग में विशेष रूप से उक्त परिष्कार को बढ़ावा मिला, साथ ही नयी विधाओं में लेखन प्रस्तुत हुआ। इससे संस्कृत में एक अतिरिक्त ओज और प्रवाहमयता का अनुभव होता आया है। गद्य में वैचारिक निबन्धों में सामयिक विषयों को प्रश्रय मिला। यह युग राशिवडेकर युग के आधार पर निर्मित हुआ और उसने आधुनिक संस्कृत साहित्य के भवन को एक–मंजिला बनाने में बहुत सफलता अर्जित की।

राघवन् युग में आकर उस भवन की एक और मंजिल निर्मित हुई और आधुनिक संस्कृत साहित्य एक भव्य भवन के रूप में अपनी समग्र छटा के साथ प्रतिष्ठित हुआ। उसमें विभिन्न वर्णों, कलाकृतियों तथा गुम्बजों का निर्माण हुआ। इस युग ने आधुनिक संस्कृत साहित्य के उस भव्य भवन को बहुत कुछ एक समग्र तथा दर्शनीय रूप दिया।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के इतिहास में जो भी परिवर्तन तथा नयी विधाओं के लेखन में प्रवर्तन आदि घटित हुए, उनमें पत्र–पत्रिकाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन भी लगभग आधुनिक काल के प्रवर्तित होने के साथ ही आरम्भ हुआ। इनमें काशीविद्यासुधानिधि, विद्योदय, षड्दर्शनचिन्तनिका, पण्डित, संस्कृतचन्द्रिका, सूनृतवादिनी, मित्रगोष्ठी, सूक्तिसुधा, सहृदया, शारदा, सुप्रभात, उद्योत, श्री, कालिन्दी, मञ्जूषा, पीयूष पत्रिका, सूर्योदय आदि उल्लेखनीय हैं। 19वीं शती के उत्तरार्ध में कुछ आरम्भिक काल को छोड़कर निर्मित होने वाले संस्कृत साहित्य का मूल स्वर राष्ट्रीयता की भावना हो गया। संस्कृत के रचनाकारों की जो दृष्टि विगत कुछ शताब्दियों से वाणी को चमत्कारपूर्ण करने, अलंकृत करने में तथा बहुत कुछ अपने आश्रयदाताओं के गुणगान में लगी रही, कुछ अपवादों को छोड़कर देश की पीड़ित जन–सामान्य की व्यथा की ओर गयी और इस प्रकार जनोन्मुख हो गयी। आधुनिक संस्कृत साहित्य में साहित्य की लगभग सभी प्राचीन तथा नव विकसित विधाओं में लेखन हुआ और हो रहा है।

(2) अर्वाचीन संस्कृत गीतकाव्य की विकास–यात्रा तथा प्रमुख प्रवृत्तियाँ

स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा परवर्ती परिवर्तन ने भारतीय जनमानस की चिन्तन धारा के प्रवाह को नूतन दिशा दी जिसके परिणामस्वरूप स्वच्छन्द दिशाओं का उन्मूलन तथा परम्पराओं का टूटन शुरु हुआ। नवीन आस्थाओं का जन्म हुआ। युगीन परिवर्तन को

देखते हुए आधुनिक संस्कृत रचनाकार ने भी अपनी लेखनी को नई दिशा दी है। बीसवीं शताब्दी में लिखा जा रहा संस्कृत साहित्य देश और सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आदि विभिन्न स्तरों पर हो रहे परिवर्तनों व परिस्थितियों का साक्षी होता है। इसमें जीवन्तता का स्पन्दन मिलता है क्योंकि इस साहित्य में उन्हीं मानवीय मूल्यों को अभिव्यक्ति दी गई है, जिनको साहित्यकार ने अनुभूति में ढाल दिया है, जिन्हें ऊपर से ओढ़ा नहीं गया है। परम्परागत, अतिप्राकृततत्त्व अब उसके हृदय को आन्दोलित नहीं कर पाते अपितु वैश्विक चिन्तन, जीवन का यथार्थ चित्रण, सामाजिक विसंगति, राजनैतिक चेतना, नारी अस्मिता, आधुनिक चिन्तन और वैज्ञानिक जीवनदृष्टिपरक सन्दर्भ ही उसके कथ्य के आधार बनते हैं।

आधुनिक संस्कृत साहित्य ने अपनी रचनाधारा, सम्भावनाओं एवं प्रवृत्तियों के द्वारा अनेक आयामों का स्पर्श किया है। उसके सृजन की यात्रा में नैरन्तर्य देखा जा सकता है। अपनी विभिन्न विधाओं के माध्यम से उसने अपने नवलेखन का शंखनाद किया है। रचनाकारों की कई पीढ़ियाँ इसे सम्पन्न बनाने में सक्रिय है। इनमें मथुरानाथ शास्त्री, अप्पाशास्त्री राशिवडेकर, जानकीवल्लभ शास्त्री आदि रचनाकार जहाँ अपनी प्राचीन पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं वहीं ही., राघवन, बच्चूलाल अवस्थी, रामकरण शर्मा, जगन्नाथ पाठक, पुष्पा दीक्षित, राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी, शिव कुमार मिश्र, देवर्षि कलानाथ शास्त्री आदि अपनी नवीन शैली एवं प्रयोगशीलता से भावाभिव्यक्ति कर रहे हैं। केशवचन्द्रदाश, हर्षदेव माधव, बनमाली बिश्वाल, रवीन्द्र पण्ड्या एवं अन्य अनेक नवोदित रचनाकार अपनी सर्जना द्वारा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विरासत को विकसित करने का संकल्प ले रहे हैं। आज संस्कृत भाषा का रचनाकार संकुचित दृष्टिकोण को छोड़कर व्यापक सोच लिये हुए है। अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य से अपने भण्डार को समृद्ध करने में भी उसे कोई परहेज नहीं है। अब वह केवल देवी–देवताओं की कथाएँ लिखकर अमर होना नहीं चाहता अपितु समाज की समस्याओं का सहभागी है। राष्ट्रनायक, समाजसेवक, समकालीन ज्वलंत समस्याएँ उसकी लेखनी के केन्द्र–बिन्दु हैं।

आधुनिक काल में गद्य की अपेक्षा पद्य में लेखन को ही अधिक प्रश्रय मिला। इस काल में गीतियों का लेखन बहुत हुआ, जिस पर गीतगोविन्द की परम्परा से हटकर

पाश्चात्य 'लीरिक' विधा का प्रभाव अधिक पड़ा। वैसे समूची गीत परम्परा में अभिनव उत्कर्ष के साथ क्रान्तिकारी परिवर्तन जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' में दिखता है, जहाँ स्वतन्त्र मात्रिक छन्दों में माधव की रास–लीलाओं की मनोहारिणी प्रस्तुति हृदय को आकृष्ट कर लेती है। बाद में जयदेव के ही अनुकरण पर रसिक–सम्प्रदाय के आचार्यों के द्वारा विरचित जानकीगीतम्, गीतगिरीशम्, गीतशङ्करम् प्रभृति गीतिकाव्य इस परम्परा में उपस्थित होते हैं। आगे चलकर संस्कृत कवि अपने नाटकों एवं गद्यग्रन्थों में एक दो स्वतन्त्र छन्दों वाले गीतों का उपस्थापन आरम्भ कर देते हैं, अम्बिकादत्त व्यासादि इसके उदाहरणरूप उपस्थित होते हैं, फिर भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री एवं डॉ. प्रभात शास्त्री आदि कवियों के संवेदन उच्छ्वासों से स्वातन्त्र्योत्तरकाल में तो संस्कृत गीतों का बहुआयामी स्वरूप जन्म ले लेता है। बाद में मुक्त छन्द में गीत लेखन की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। इसी विधा में मेघदूत के अनुकरण पर सन्देशकाव्यों की परम्परा में लेखन भी आधुनिक काल में हुआ। संस्कृत में लोकगीत भी लिखने की परम्परा रही। उसके एक प्रवर्तक भारतेन्दुकालिक कवि कमलेश मिश्र थे, जिन्होंने 'कमलेश विलास' का प्रणयन किया, ये भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के पूर्ववर्ती गीतकार थे जो साहित्य में चर्चित नहीं हो सके। आधुनिक संस्कृत कविता में मूल राष्ट्रीय स्वर भी आधुनिक काल की एक विशेष प्रवृत्तियों में परिगणनीय है।

19वीं शताब्दी में संस्कृत में गीतिकाव्य के स्फुट पद्य, रागकाव्य, सन्देशकाव्य, प्रशस्ति आदि विभिन्न प्रकारों में प्रचुर मात्रा में रचनाएँ प्रस्तुत की जाती रहीं। इस रचनाक्रम में पूर्ववर्ती संस्कृतकाव्य–परम्परा का सहज सातत्य भी है तथा किंचित् प्रस्थान–भेद भी। यह प्रस्थान–भेद समग्र भारत में इस शताब्दी में बदली हुई परिस्थितियों के कारण है। इस शताब्दी के उत्तरार्ध में निर्मित होने वाले संस्कृत साहित्य का मूल स्वर राष्ट्रीयता की भावना हो गया। इस काल की समृद्ध कवि परम्परा व उनके लेखन का वर्णन करना मुझे विषयेतर प्रतीत होता है। अतः कुछ प्रतिनिधि कवियों व उनकी रचनाओं का ही उल्लेख करना मै चाहता हूँ।

बंकिमचन्द्र चटर्जी का 'वन्दे मातरम्' राष्ट्रीय गीत संस्कृत में रचित हुआ। सामाजिक कुरीतियों और विषमताओं को लेकर 'विधवाश्रुमार्जनम्' आदि गीत लिखे गये।

अन्नदाचरण तर्करत्न ने 'तदतीतमेव' जैसी अतीत के गौरव का गान करते हुए दीर्घ कविता लिखी। भारतेन्दु युग के एक गीतिकाव्यकार कमलेश मिश्र ने 'कमलेशविलासः' की रचना की, जिसमें अनेक 'सोहर' आदि लोकगीतों के ढंग पर संस्कृत में गीत लिखे और साथ ही ग़ज़लों का भी निर्माण किया। नवीन शिक्षापद्धति, पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से नागर समाज में व्याप्त दुष्प्रवृत्तियों पर कुठाराघात करते हुए 'कलिपरिदेवनशतकम्' की रचना कवि श्रीनिवास शास्त्री ने की। सामाजिक बिडम्बनाओं के कारण विचलित कवि की आत्माभिव्यक्ति परक रचनाओं में अन्नदाचरण की 'क्व गच्छामि' तथा अप्पाशास्त्री की 'तिलकमहाशयस्य काराग्रहवासः' उल्लेखनीय है।

जयदेव के 'गीतगोविन्द' की परम्परा में लिखति 'कमलेशविलासः' को आधुनिक संस्कृत साहित्य की एक उपलब्धि माना जा सकता है। भगवद्भक्ति की उदात्त भावभूमि पर 13 सर्गों में रचित इस रचना में सोहर, दादराताल में भैरवी राग से गेय, हरिगीतिका, ग़ज़ल, दोहा, पृथ्वी, दिक्पाल छन्द, रेखता, कौव्वाली, ठुमरी, होली, चैता, कजली, झूलनामलार, विहाग, खेमटा, टोड़ी, लावनी, झूमर, नहछू आदि का सुललित प्रयोग हुआ है। यह सम्भवतः संस्कृत का प्रथम गीतिकाव्य है जिसमें लोकधुन में तथा शास्त्रीय रागों में गाये जाने वाले गीतों के साथ फारसी परम्परा में प्रचलित ग़ज़लों का भी प्रयोग किया गया है। इस गीतिकाव्य की भूमिका में भारतेन्दुहरिश्चन्द्र के दो संस्कृत गीतों को भी उद्धृत किया है।

केरल वर्मा ने चित्रश्लोकावली में चित्रकाव्य का चमत्कार प्रदर्शित किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा विरचित संस्कृत के तीन सोत्प्रास शैली के मुक्तककाव्य–मदिरास्तव, अंग्रेजस्तव, वेश्यास्तवराज तथा एक स्तोत्रकाव्य 'सीतावल्लभस्तोत्र' यहाँ उल्लेखनीय हैं। पं. गंगाधरशास्त्री विरचित 'अलिविलासिसंलापः' तथा 'हंसाष्टक', शिवकुमार शास्त्री विरिचत 'यतीन्द्रजीवनचरित' तथा 'लक्ष्मीश्वरप्रताप'; आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी विरचित 'कथमहं नास्तिकः', 'कान्यकुब्जलीलामृतम्', 'समाचारपत्रसम्पादकस्तवः', 'तथा सूर्यग्रहणम्'; रामावतार शर्मा विरचित पद्य काव्य–मारुतिशतकम्, शम्भुशतकम्, कृष्णस्तवककल्पतरुः, मुद्गरदूतम्, अभिनवभारतम्, सत्यदेवकथा, शतश्लोकीयं धर्मशास्त्रम्, पराधीन भारत की वेदना को अभिव्यक्ति देती

अप्पाशास्त्री विरचित कविता 'पञ्जरबद्धः शुकः' यहाँ स्मरणीय है। राशिवडेकर जी के सम्पादकत्व में 'संस्कृतचन्द्रिका' नामक प्रतिष्ठित संस्कृत पत्रिका तथा इसके पश्चात् 'सूनृतवादिनी' नाम से प्रकाशित पाक्षिक संस्कृत अखबार अपने शिखर को चूमने लगे। इस प्रकार उन्नीसवीं शती को संस्कृत साहित्य के इतिहास में नये युग का सूत्रपात कह सकते हैं। यूरोप से संपर्क और राजनीतिक चेतना ने संस्कृत कविता के क्षेत्र में नये वातायन खोल दिये। पारंपरिक विद्या में दीक्षित पंडितों ने नये युग और नयी धरती भी खोजी।

बीसवीं शताब्दी में गीतिकाव्यों की सृष्टि व्यापक और मार्मिक स्तर पर हुई। इसमें आरम्भ में पण्डिता क्षमाराव, पं. रामावतार शर्मा, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री और जानकीवल्लभ शास्त्री जैसे कवि उल्लेखनीय है। बाद में गीतिकाव्य के लेखन में प्रवृत्त रचनाकारों की एक लम्बी सूची हो जाती है, जिसमें रामनाथ पाठक 'प्रणयी' वाराणसी की 'कवि भारती' के अनेक प्रतिष्ठित कवि, मधुकर गोविन्द माइणकर आदि आते हैं। बींसवी शती में लिखी जा रही कविता देश और सारे विश्व में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तरों पर हो रहे परिवर्तनों का साक्ष्य देती है। महामहोपाध्याय पं. लक्ष्मण शास्त्री 'तैलंग' द्वारा अपनी कविता 'उपशल्पशंसनम्' में ग्राम्य–जीवन के यथार्थ तथा दरिद्र लोगों के शोषण को उजागर किया। इनकी दूसरी कविता 'मर्त्येषु भेदः कियान्'। में समाज में व्याप्त विषमता पर खेद व्यक्त किया गया है। पं. गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' द्वारा विरचित अमरसूक्तिसुधा, नवरत्ननीतिः, राजस्थानवंदना, श्रमचतुर्विंशतिः; श्रीधर पाठक विरचित ललित काव्य गोखलेप्रशस्तिः ; आराध्याशोकाञ्जलिः, भारतसुषमा, मातृपादवन्दनम्, महादेव शास्त्री विरचित 'भारतशतकम्'; सूर्यनारायणशास्त्री का 'विवेकानन्दम्'; भारतीय जनता के शोषण तथा शोषणतन्त्र का बेबाक चित्र प्रस्तुत करती कवि नागार्जुन की 'भारतभवनम्'; अमीरचन्द्रशास्त्री की सुप्रसिद्ध रचना 'गीतकादम्बरी'; 'हा हा महात्मा हतः' यहाँ समुल्लेखनीय है।

स्वामीनाथ पाण्डेय द्वारा विरचित 'देहि वरं मे' शीर्षक गीत में आज की पाखण्डपूर्ण और छद्म–प्रवृत्ति पर कठोर व्यंग्य किया है–

'देहि वरं मे सुभगं धृत्वा बक इव धवलसुवेशम्
विविधसुगन्धसुगन्धितकेशं जप्त्वा मङ्गलधाममहेशम्
लुण्ठाम्यहमिमखिलं देशं देहि बलं मे बलदे विपुलम्।'

कवि जानकीवल्लभ शास्त्री ने आधुनिक संस्कृत काव्य में नये युग का सूत्रपात किया। आपने प्राचीन काव्यधारा को आज के साहित्य की नयी भावचेतना से जोड़ा। आप संस्कृत कविता में 'रोमांटिक प्रवृत्ति के पुरोधा' कहे जा सकते हैं। ग़ज़ल जैसी नयी विधाओं में भी आपने रचना की। 'भारतीवसन्तगीतिः' में अपनी कविता का नवावतार घोषित करते हुए आप लिखते हैं–

निनादय नवीनामये वाणि वीणाम्
मृदुं गाय गीतिं ललित–नीति–लीनाम्।।

पं. बच्चूलाल अवस्थी की 'एकदन्तवृत्तम्', 'दस्युशुनकीयम्', 'हृदयपरिवर्तनम्' आदि अन्योक्तिपरक या प्रतीकात्मक रचनाएँ अपनी ढंग की बेजोड़ कृतियाँ है। हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय' द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान जो भोगा, उसका प्रतिबिम्ब उनकी 'परिवर्तनम्', क्रान्तिः, जनघोषः, राष्ट्रध्वनिः, अग्रगामिनं प्रति, कृषकाः, श्रमिकाः, आदि रचनाओं में साफ–साफ परिलक्षित होता है।

श्रीनिवासरथ के संस्कृत गीतों में नया भावबोध, अभिनव परिकल्पनाएं, भाषा की सुघड़ता और मसृणता तथा लालित्य आकर्षक रूप में विन्यस्त हैं। आपके संस्कृत गीत हिन्दी की नवगीता विधा के निकट प्रतीत होते हुए भी संस्कृत भाषा के कालजयी गौरवमय रूप की बानगी देते चलते हैं। इसी क्रम में रामकरण शर्मा, शंकरदेव अवतरे, जगन्नाथ पाठक, शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, सुन्दरराज, व्योमशेखर, अमरनाथ पाण्डेय, रामकैलाश पाण्डेय, उमाकान्त शुक्ल, दीपक घोष, भास्कराचार्य त्रिपाठी, वेङ्कट राघवन्, रेवाप्रसाद द्विवेदी, अनन्तराम मिश्र, शिवशरण शर्मा, हरिश्चन्द्र रेणापुरकर, परमानन्द शास्त्री, विन्ध्येश्वरी प्रसाद, रूद्रदेव त्रिपाठी, श्रीमती नलिली शुक्ला, रामकिशोर मिश्र, पुष्पा दीक्षित, इच्छाराम द्विवेदी, देवदत्त भट्टि आदि आधुनिक संस्कृत गीतिकाव्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं।

पं. हरिदत्त शर्मा आधुनिक युग के ललित गीतकार हैं। आपके गीतों में विद्यमान माधुर्य तथा उनके प्रस्तुतीकरण के श्रवणमाधुर्य के कारण आपको 'कविपुँस्कोकिल' की उपाधि से अलङ्कृत किया गया। गीतकन्दकलिका, उत्कलिका, बालगीताली आदि सुप्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं।

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की कवितामाधुरी अपनी विषयवस्तु की नवीनता, आधुनिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों की विसंगतियों के व्यंग्यपूर्ण चित्रण, भावप्रवणता के साथ कल्पना की सम्पन्नता आदि के कारण सुधी पाठकों का ध्यान बरबस ही खींच लेती है। ऐसी ही कविताओं के दो काव्य संग्रह 'सन्धानम्' तथा 'लहरीदशकम्' आज शोधार्थियों की ज्ञानपिपासा को शान्त कर रहे हैं।

केशवचन्द्र दाश ने मुक्तछन्द की कविताएँ लिखीं हैं। आपकी काव्य रचनाओं का भावबोध सर्वथा नवीन है। आधुनिक जीवन की विसंगति, परम्परा और आधुनिकता का द्वन्द्व, महानगरीय जीवन का तनाव, पीछे छूट गये अकलुष पावन ग्राम जीवन की स्मृतियों को जटिल प्रतीकों तथा बिम्बों के माध्यम से आपकी कविता उपस्थित करती है। अलका, हृदयेश्वरी, महातीर्थम्, भिन्नपुलिनम्, ईशा आदि आपके सुप्रसिद्ध काव्य संग्रह है।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र तो आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रतिनिधिभूत सशक्त हस्ताक्षर हैं। 1960 ई. से आपने संस्कृत में काव्यरचना का श्रीगणेश 'गीतरामचरितम्' लिखकर किया और भोजपुरी, हिन्दी तथा संस्कृत में विभिन्न विधाओं में 'विपुल साहित्य की सृष्टि कर 'शिखर' पर आरूढ़ हुये। एकांकी, महाकाव्य, लघुकाव्य, कथा, गीति आदि विधाओं में संस्कृत साहित्य को आपका विशेष योगदान रहा है। आपके जानकीजीवनम् तथा वामनावतरणम् ये दो महाकाव्य, खण्डकाव्यों या स्तोत्रकाव्यों में आर्यान्योक्तिशतकम्, नवाष्टमालिका, पराम्बाशतकम्, शताब्दीकाव्यम् तथा अभिराजसप्तशती तथा गीत संकलनों में वाग्वघूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता समुलेखनीय हैं।

हर्षदेव माधव आधुनिक काल के संस्कृत भाषा के प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। आपके द्वारा रचित कविता–संग्रह 'तव स्पर्शे स्पर्शे' के लिये आपको सन् 2006 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। आप हजारों संस्कृत कविताओं की सर्जना

कर चुके हैं। आपकी शैली अति संक्षिप्त, व्यंग्यपूर्ण, नवीन भावबोध, आधुनिक समाज में व्याप्त संक्षिप्त, व्यंग्यपूर्ण, नवीन भावबोध, आधुनिक समाज में व्याप्त समस्याओं पर तीव्र कुठाराघातपूर्ण आदि विशिष्टताओं से परिपूर्ण है।

(3) नवीन विधाएँ और नवगीत

आधुनिक संस्कृत साहित्य में सृजन की समृद्ध परम्परा को देखकर हम गर्व से कह सकते हैं कि संस्कृत भाषा ने अपने प्रभुत्व को अक्षुण्ण बनाये रखा है। संस्कृत साहित्य के सर्जकों की नवीन पौध विकसित है। सामयिक चिन्तन आकार ले रहा है, कहीं काव्य रूप में तो कहीं गद्य कथा और समीक्षाओं के रूप में। संस्कृत की ग़ज़ल गायिकी ने हिन्दी और उर्दू के समक्ष अपने संकल्प को दोहराते हुए यह उद्घोष किया है कि हम आज भी ताजगी से ओत–प्रोत हैं।

7–8 अक्टूबर 2002 को सैण्ट जॉन्स कॉलेज, आगरा में 'आधुनिक संस्कृत साहित्य दशा और दिशा' इस विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत साहित्य में संग्रहीत नवीन विषयों से अपरिचितों को परिचित कराना ही था। इसमें मुख्य अतिथि की आसन्दिका से बोलते हुए अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के पुरोधा प्रो. अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र ने अपने उद्बोधन में कहा, "संस्कृत भाषा न कभी मरी थी, न मरी है और न भविष्य में ही ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी। इसको मृत कहने वाले अपराधी एवं राष्ट्रद्रोही हैं। जिस भाषा में हमारा प्राचीन साहित्य निबद्ध है तथा जो व्याकरण की दृष्टि से वैज्ञानिक भाषा है उसके विषय में ऐसी भावना अनुचित है।.................................वास्तव में संस्कृत एक भाषा ही नहीं अपितु आन्दोलन है किसी जाति अथवा धर्म की जागीर नहीं अपितु समग्र देश की धड़कन है। संस्कृत भाषा का विकास दूर्वा की भाँति बिना जल और उर्वरा के निरन्तर हो रहा है। आजकल लायरिकल पोएट्री (Lyrical Poetry) सोहर, ग़ज़ल, कजरी, नकटा, काव्यावली से लेकर हाइकू, तन्का (जापानी) छन्द तथा सीज़ो (कोरियाई) छन्द तक संस्कृत में लिखे जा रहे हैं। गद्य विधा में लघु कथाएँ, उपन्यास, टुप कथाएँ, संस्मरण, रेडियो, रूपक, आत्मकथा आदि सब कुछ संस्कृत के सर्जक निरन्तर लिख रहे हैं।"[1]

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा, पृ.सं. VI

मानव मन की अदम्य अनुभूतियों की सुन्दर शब्दमयी अभिव्यक्ति ही काव्य है। काव्य के प्रतिमान समय के साथ बदलते रहते हैं। बदलती अभिरूचि, बदलते युग और साहित्य के कारण साहित्य में भी परिवर्तन अपेक्षित है। काव्यशास्त्र का कोई भी प्रतिमान शाश्वत नहीं होता, परम्परागत नियमों में परिवर्तन होता रहता है अतः यह उसकी जीवन्तता का प्रतीक है। आधुनिक युग में एक ओर तो संस्कृत काव्य प्राचीन रचना परिपाटी का अनुसरण कर रहा है तो दूसरी ओर कवियों की रचनाधर्मिता ने अपने को युगानुरूप साबित करने के लिये उस पारम्परिक सीमा रेखा से इतर अपना स्थान बनाया है। आज नये भावबोध और नयी शैली की रचनाएँ संस्कृत में प्रचुर मात्रा में सामने आयीं हैं।

प्रतीकात्मक गीतिकाव्य, संस्कृतकाव्यानुवाद तथा चित्रकाव्य की सुदीर्घ परम्परा वर्तमान में भी अनवरत जारी है। पश्चिम के प्रभाव से विगत दशकों की संस्कृत कविता अस्तित्ववादी चिन्तन और अतियथार्थवाद (सुर्रियलिज्म) की साहित्यिक धारा से भी जुड़ी हैं। इस दृष्टि से केशवचन्द्र दास तथा हर्षदेव माधव–इन दो युवा संस्कृत कवियों की रचनायें समुद्धरणीय हैं।

छन्दोविधान के क्षेत्र में आधुनिक काल में संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक नये प्रयोग सुधी पाठकों के सामने आये। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने व्रजभाषा के छन्दों में दोहा, सोरठा, ग़ज़लों में प्रयुक्त छन्द लेकर सफल काव्यरचनाएँ प्रस्तुत करते हुए नये छन्दोविधान की आधुनिक संस्कृत काव्य में अवतारणा की। इसी शृंखला में जगन्नाथ पाठक, राजेन्द्र मिश्र, बच्चूलाल अवस्थी, इच्छाराम द्विवेदी आदि कवियों ने संस्कृत ग़ज़लों की रचनाओं के द्वारा संस्कृत कविता को नूतन धरातल प्रदान किया। अनेक कवियों ने लोकगीतों के संस्कारों से अनुप्राणित होकर संस्कृत काव्यरचना में अभिनव प्रयोग किये। श्रीभाष्यम् विजयसारथि ने तेलुगु भाषा के लोकप्रचलित छन्दों में तथा राजेन्द्र मिश्र की लोकगीतपरक संस्कृत रचनाएँ बहुत सराही गयी।

आधुनिक काल में 'शोकगीति' का संस्कृत कविता के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ। स्वतन्त्र रूप से विलापकाव्य या शोकगीति का प्रचलन अंग्रेजी साहित्य में प्रचलित 'इलेजी' नामक विधा का प्रभाव कहा जा सकता है। दीपक घोष के विलापकाव्य, मधुकर गोविन्द

माईणकर की 'स्मृतितरङ्गम्', श्री स्वामीनाथन् की 'ध्वस्तं कुसुमम्' आदि कारुणिक चित्रण करने वाले काव्य इस श्रेणी में आते हैं। गान्धी, नेहरू, इन्दिरा गाँधी आदि राष्ट्रीय विभूतियों के अवसान के अवसरों पर संस्कृत कवियों के द्वारा अनुभूतिप्रवणता के साथ अनेक शोककाव्यों की रचना की।

वैदेशिक छन्दों का प्रयोग संस्कृत साहित्य के नवीन सर्जकों द्वारा प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है। श्री वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य ने संस्कृत कविता को एक नयी विधा दी–सानेट। इनके सानेटों का एक उत्तम संग्रह हैं– 'कलापिका'। सानेट अंग्रेजी कविता में प्रसिद्ध छन्द है, एक छन्द में कविता पूर्ण हो जाती है। एक सानेट में चौदह पंक्तियाँ होती है। हर्षदेव माधव ने तीन हजार के लगभग 'हाइकू' (जापानी) छन्द संस्कृत में लिखे हैं। माधव तथा अन्य कुछ कवि तानका (जापानी) छन्द में भी लिख रहे हैं। हर्षदेव माधव ने कोरियाई कविता से 'शिजो' नामक छन्द भी लेकर उसमें भी संस्कृत कविताएं लिखी हैं।

जयदेव के गीतगोविन्द की परम्परा में आधुनिक काल में रागकाव्यों की रचना सतत जारी है। पर विषयवस्तु व स्वरूप की दृष्टि से इसमें नयापन है। ओगेट्टि परीक्षित् शर्मा द्वारा 'ललितगीतालहरी' इसका प्रमुख उदाहरण है। श्री शर्मा ने संस्कृत में माँझियों के गीत, डिस्को गीत तक लिख डाले हैं। लेकिन इस प्रकार की रचनाएं संस्कृत भाषा और उसकी साहित्यिक परम्परा के मूल्यों के विरुद्ध है। वे प्रयोग के नाम पर अश्लील प्रदर्शनमात्र हैं।

रागकाव्य से मिलती–जुलती ही एक विधा है– 'संगीतिका'। इस विधा की अनेक रचनाएं इस काल में संस्कृत में सामने आयीं। रागकाव्य की ही भाँति संगीतिका भी वस्तुतः अभिनेय काव्य है, पर गेयता की प्रधानता के कारण श्रव्य काव्य के रूप में इसका व्यवहार होता है। पश्चिमी साहित्य में इसे 'ऑपेरा' कहा जाता है। इसमें विभिन्न पात्रों के संवाद गीतों में ही आद्यन्त चलते हैं। शिवराज्योदयमहाकाव्य के प्रणेता श्री श्रीधरभास्करवर्णेकर द्वारा विरचित दो सङ्गीतका–श्रीरामसङ्गीतका व श्रीकृष्णसङ्गीतका तथा श्रीमती वनमाला भवालकर की 'पार्वतीपरमेश्वरीयम्' व 'रामवनगमनम्' उल्लेखनीय हैं।

रागकाव्य की ही भाँति लहरीकाव्यों की रचना परम्परागत तथा कुछ नये कलेवर एवं नये विषयों के समावेश के साथ दोनों रूपों में अनवरत जारी है। श्री श्रीधरभास्कर वर्णेकर ने 'मातृलहरी' का प्रणयन किया है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा प्रकृतिवर्णनपरक, सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने वाली तथा कुछ सर्वथा नवीन विषयों से युक्त लहरीकाव्य लिखे हैं जिनमें–निदाघलहरी, प्रवृङ्लहरी, जनतालहरी, रोटिकालहरी उल्लेखनीय हैं।

फारसी या उर्दू काव्य–परम्परा के छन्दों का संस्कृत कविता में अवतरण आधुनिक काल की एक प्रमुख विशेषता है। इसके प्रवर्तक भट्ट मथुरानाथ शास्त्री जी माने जाते हैं। इन्होंने 1927 ई. में प्रकाशित अपनी 'गीतिवाणी' नामक पुस्तक में 'उर्दूभाषाचत्वर' नामक खण्ड में स्वयं की 58 ग़ज़ल गीतियों का संकलन किया। शास्त्रीजी के अनन्तर पं. जानकीवल्लभ शास्त्री ने भी संस्कृत में ग़ज़ल लिखी, जो अब प्राप्त नहीं होती। श्री श्रीधरभास्कर वर्णेकर ने अपने संस्कृतवाङ्मयकोश में इस काल में लिखे राधाकृष्ण नामक कवि के 'ग़ज़लसंग्रह' का उल्लेख किया है लेकिन यह संग्रह भी प्राप्य नहीं है। इस समय लोकप्रिय ग़ज़ल लिखने वाले कवियों में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र तथा जगन्नाथ पाठक उल्लेखनीय हैं। पर ग़ज़ल के शिल्प की समझ और उसकी विधा में गहरी भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से पं. बच्चूलाल अवस्थी की ग़ज़ल गीतियां सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं।

अवगीति या व्यंग्यप्रधान (सोत्प्रास) गीतिकाव्य की परंपरा का भी नवोन्मेष आधुनिक काल के संस्कृत साहित्य में हुआ। इससे पाश्चात्य साहित्य में 'सेटायर' की अवधारणा के समकक्ष चेतना, युग की विसंगतियों के उद्घाटन और उन पर प्रहार के लिये संस्कृत कवि तत्पर हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'समाचारपत्रसम्पादकस्तवः', 'सूर्यग्रहणम्' आदि संस्कृत रचनाएँ उद्धहरणीय हैं।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रभाव के कारण संस्कृत साहित्य में राष्ट्रभावना से युक्त गीतिकाव्यों की सर्जना प्रचुरता के साथ हुई। राजनीतिक चेतना के साथ–साथ राष्ट्र के भवितव्य और अस्मिता की पहचान के लिये भी इस काल में संस्कृत कवि विशेष रूप में अभिव्यक्तिप्रवण बना। 'भारतविलापः' (हरिपद वन्द्योपाध्याय) देव्या गानम् (गोलोकनाथ) अदि काविताओं में समूचे राष्ट्र के प्रति कवि का चिन्ताभाव प्रकट हुआ है। राष्ट्रवादी धारा से

जुड़कर गीति–विधा में नया प्राण फूँकने वाले दो कवि उल्लेखनीय हैं–हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय' तथा रामनाथ पाठक 'प्रणयी'। इनके तत्कालीन गीतों में अग्निज्वाला सा कविव्यक्तित्व और ओजस्विता की दुर्निवार अभिव्यक्ति है।

अन्य भाषाओं में प्रचलित लोकगीत विधाओं का सफल प्रयोग आधुनिक काल के संस्कृत कवियों ने संस्कृत साहित्य सर्जना में किया। पं. भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के प्रवर्तन को आगे बढ़ाते हुए अनेक कवियों ने ब्रज–भाषा तथा उर्दू के छन्दों को अपनाकर उत्तम कविताएँ संस्कृत में लिखीं। ब्रज–भाषा के छन्दों के प्रयोग की दृष्टि से नवोदित कवि विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र का नाम प्रमुख है। सुकवि प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने बड़ी संख्या में ग़ज़लों की रचना तो की है ही, साथ ही आपने लोकगीत विधा को भी संस्कृत काव्य–रचना में प्रतिष्ठित कर दिया। आपने स्कन्धहारीयम् (कहरवा), चैत्रकम् (चैता), सूतगृहगीतम् (सोहर), नक्तम् (नकटा), प्रचारगीतम् (पचरा) आदि की धुन तथा छन्द लेकर संस्कृत में मधुर गीतियाँ लिखीं। भोजपुरी तथा अवधी के लोकगीतों की विषयवस्तु तथा छन्दः संस्कार का गहरा प्रभाव कुछ नये संस्कृत कवियों पर देखा जा सकता है। भास्कराचार्य त्रिपाठी की अनेक गीत रचनाएँ, सोहर गायन शैली को भावित करके लिखी गयी है।

काल प्रवाह के साथ हिन्दी कविता में प्रचलित नवगीति विधा का सफल प्रयोग संस्कृत काव्य–क्षेत्र में सफलता के साथ संस्कृत कवियों ने किया। नवगीति विधा में कवि की वैयक्तिक भावना, रूमानियत और स्वच्छन्द मनःस्थितियों के चित्रण की प्रवृत्ति आधुनिक काल में फलवती हुई। प्रो. राजेन्द्र मिश्र, श्रीमती नलिनी शुक्ला, श्रीमती पुष्पा दीक्षित आदि कवियों ने अपनी नवगीत रचनाएं सुधीजनों के समक्ष रखीं। वाग्वघूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता, ये पाँच संस्कृत नवगीत संग्रह प्रो. मिश्र के द्वारा लिखे गये। श्रीमती पुष्पा दीक्षित विरचित संस्कृत नवगीत संग्रह 'अग्निशिखा' तथा श्रीमती नलिनी शुक्ला विरचित 'निर्झरिणी' पाठकों के बीच बड़ी समादृत रही है। भावाञ्जलिः, स्वरूपलहरी, प्रकीर्णम्, वाणीशतकम् ये मुक्तकसंग्रह भी नलिनी जी के प्रकाशित हुए। गीति विधा में बिम्बविधान और शिल्प की नवीनता का समवाय मायाप्रसाद त्रिपाठी ने किया। वैयक्तित राग और कवि की आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रभात शास्त्री के गीत प्रभावपूर्ण है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आधुनिक काल में संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में परम्परागत भावबोध तथा पुरातन शैली की रचनाओं के साथ नये भावबोध और नयी शैली की प्रवृत्तियों तथा विधाओं का संस्कृत रचनाकारों ने खुलकर स्वागत किया है तथा संस्कृत के मौलिक सौंदर्य की रक्षा करते हुए उनको संस्कृत परिवेश में ढाला है। साहित्य की कोई सी भी विधा हो, संस्कृत रचनाकार पीछे नहीं है। एक विस्तृत शृंखला है ऐसे संस्कृत कवियों की जिन्होंने युगधर्म को देखते हुए अपनी लेखनी चलाई और विश्वपटल पर यह साबित किया कि संस्कृत सर्वश्रेष्ठ भाषा है।

संस्कृत साहित्य के इस कालखण्ड की सबसे बड़ी विशेषता गीतों की स्वतंत्र सृष्टि है। इसी विधा ने इस आधुनिक काल को अन्य सभी कालों से आकर्षक एवं समृद्ध बना दिया। आधुनिक काल में गीतकारों की संख्या शताधिक है। अतएव समस्त गीतकारों का विवरण देना, यहाँ तक की नामोल्लेख करना भी शोधार्थी के लिए सम्भव नहीं हो सका है किन्तु प्रतिष्ठित एवं प्रतिनिधि काव्यकारों व गीतकारों के काव्य गन्धमादन में स्वस्थ विहार तो अवश्य किया गया है।

डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' अपनी भावाभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं– "आधुनिक संस्कृत कविता का सबसे कोमल एवं आह्लादक पक्ष गीतों का रस भरा संसार है। जिसकी सप्तरंगी सुषमा का भावराग सहृदय को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इस आकर्षण के मूल में कल्पना की ऊँची उड़ान नहीं है, या फिर कुण्ठा का आत्मघाती स्वर नहीं है, अपितु नैसर्गिक एवं सहज दुग्धहासी अनुभूतियों की निश्छल एवं आर्द्र अभिव्यक्तियाँ हैं। आत्माभिव्यञ्जन के मधुचषक हैं। लय एवं ताल के स्पन्दन हैं, तथा भावप्रवणता के मादक मलयानिल हैं। इन अभिव्यक्तियों में भी वे सर्वातिशायिनी हैं, जो सौन्दर्य लोक में सम्पद्यमान अनंगयज्ञ के रसपेशल मण्डप से अनायास उभरी हैं।"[1]

♦♦♦♦

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा, पृ.सं. VI

प्रथम अध्याय

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जीवन–वृत्त एवं कर्तृत्व

अभिराजी नाम्नासि जननि! तस्मादहमप्यभिराजः
त्वमसि मदर्थं यमुना गङ्गा भरतधराऽचलराजः।
यत्किञ्चिदपि कुतोऽपि कदापि क्वचिदपि ममानुकूलम्
भूतभाविभवतां ननु तेषां त्वमसि जननि! शुभमूलम्।।

प्रथम अध्याय

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जीवन–वृत्त एवं कर्तृत्व

अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की काव्य, नाट्य, कथा और समीक्षा, इन चारों विधाओं में संख्या एवं गुणवत्ता की दृष्टि से समुत्कृष्ट प्रणेता; 'त्रिवेणी कवि', "अभिराज" इस उपनाम से तथा सुशोभित, संस्कृत साहित्यानुरागियों के हृदयसम्राट् आचार्य राजेन्द्र मिश्र एक महान् एवं विलक्षण व्यक्तित्व के धनी हैं। आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत् के वे 'अभिनव–कालिदास' कहे जा सकते हैं। अद्भुत व्यक्तित्व एवं विलक्षण सारस्वत प्रतिभा के धनी अभिराज राजेन्द्र मिश्र की विविध विधामय विपुल काव्य शृंखला उन्हें मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठापित करती है। आधुनिक संस्कृत साहित्याकाश में देदीप्यमान नक्षत्रों के बीच उनका निरूपण करते हुये पं. बलभद्र प्रसाद शास्त्री कहते हैं– "मेरी दृष्टि में आप सर्वाधिक सक्षम संस्कृत के विद्वान् हैं और रहेंगे।"[1] प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी जी ने भी कविवर राजेन्द्र मिश्र के प्रतिभा वैलक्षण्य को स्वीकार किया है।[2]

इसी भाव को स्टीफन कॉलेज, दिल्ली के डॉ. पंकज मिश्र ने इस प्रकार व्यक्त किया है– 'Prof. Abhiraj Rajendra Mishra first and foremost amongst र–त्रय (Rajendra, Radhavallabh & Rama Kant) is indeed, one of the greatest poets of modern Sanskrit Literature and critic of Literary world, Highly respected in International circles.'[3]

गङ्गा–यमुना और सरस्वती की त्रिधारा से विभूषित तीर्थराज प्रयाग की ही भाँति मिश्र जी का व्यक्तित्व संस्कृत, हिन्दी तथा लोक भाषा भोजपुरी की त्रिधारा से महनीय बन उठा है। इन्दौर तथा मेरठ स्थित समान नाम वाले समकालीन साहित्यकारों से अपना

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 84
2. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र 'राजश्री', त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ.सं. 99
3. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 84

पार्थक्य जताने के लिए प्रो. मिश्र द्वारा अपना उपनाम 'अभिराज' लिखना प्रारम्भ कर दिया। मिश्र जी ने अपनी पूजनीया माँ श्रीमती अभिराजी के नाम पर ही अपना उपनाम चुना है। अपनी नाट्यकृति 'नाट्यपञ्चगव्यम्' में कवि ने लिखा है– माँ! तुम नाम से अभिराजी हो, अतएव तुम्हारा पुत्र होने के कारण मैं भी 'अभिराज' हूँ। तुम्हीं मेरे लिए गङ्गा–यमुना हो, भारत–जननी हो, हिमगिरि हो आदि। कवि के ही शब्दों में–

"अभिराजी नाम्नासि जननि! तस्मादहमप्यभिराजः

त्वमसि मदर्थं यमुना गङ्गा भरतधराऽचलराजः।।"[1]

प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र का सब कुछ अप्रतिम है, विलक्षण है दैव–प्रदत्त है और इन सबसे महान् है उनकी विनम्रता, सहजता, सरलता, निरहंकारिता तथा मित्रवत्सलता। उनके द्वारा अपरिचित को किया जाने वाला 'बन्धु' सम्बोधन बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। अनाथ शैशव, माँ के वैधव्य, परिवार की विषम परिस्थितियों, अनेकानेक व्यथाओं ने उनके स्वर्णमय व्यक्तित्व को शाश्वत सम्बल की खोज की ओर प्रेरित करते हुये, काव्यलेखन की प्रेरणा देकर कञ्चन बना दिया। उनके व्याकुल मन की व्यथाएं काव्य रूप में परिणमित होकर विश्रान्त होती है। जीवन के अनेक बिखरावों ने ही उन्हें निखार प्रदान किया है। उनकी यही नूतन दृष्टि उनकी काव्यसृष्टि में प्रतिबिम्बित होती है।

यद्यपि प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व पर शोध मेरा प्रत्यक्ष विषय नहीं है। उनके संस्कृत नवगीतसंग्रहों की समग्र एवं सायाम समीक्षा करना ही मेरा प्रमुख लक्ष्य है, परन्तु कर्त्तृत्व की महत्ता व्यक्तित्व की प्रामाणिकता से ही सिद्ध की जा सकती है। चूंकि अभिराज राजेन्द्र मिश्र आधुनिक संस्कृत साहित्य के पुरोधा हैं, एक संवेदनशील साहित्यकार हैं, समाज के सूक्ष्म अध्येता हैं, मानवता के पक्षधर हैं, मानवमन के कुशल मनोविश्लेषक हैं, मनोभावों के मूर्तिकार हैं, शब्द सम्राट् हैं, वाग्विदग्ध हैं, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं के रक्षक हैं, युगानुकूल परिवर्तन के प्रबल पक्षधर हैं, समाज की जड़ों को खोखला करने में लगी हुई विसंगतियों को सुसंगतियों में बदलने के समर्थक हैं। अतः यह कहना सार्थक होगा कि इस काव्य मर्मज्ञ व सहृदय कवि की दृष्टि से समाज

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व, पृ.सं.11

को कसौटी पर कसते हुए सामाजिक जीवन को सहज एवं सरल बनाया जाए। अभिराज राजेन्द्र मिश्र के संस्कृत नवगीत रचनाओं की समीक्षा से पूर्व उनके समग्र व्यक्तित्व व कर्त्तृत्व पर एक बिहंगम दृष्टिपात करना एक तरह से विषय–प्रवेश एवं भावभूमि निर्माण का कार्य सिद्ध होगा।

कवित्व क्षेत्र में सिद्धहस्त प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के विलक्षण व्यक्तित्व एवं पुष्कल कर्त्तृत्व को समेटना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इस विषय पर उनकी सहधर्मिणी 'राजश्री' द्वारा लिखे गये दो ग्रन्थों के अलावा अनेकानेक शोधालेख लिखे जा चुके हैं तथा लिखे जा सकते हैं। यहाँ सिर्फ उनके व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व के परिचयात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करना ही मेरा अभीष्ट है।

व्यक्तित्व–खण्ड

(क) जन्म–स्थान, जन्मकाल एवं वंशवृक्ष[1, 2]

साहित्य की विविध विधाओं में सृजन करते हुये अपनी लेखनी से आधुनिक वाङ्मय–संसार को विस्तार प्रदान करने वाले त्रिवेणी कवि के रूप में विख्यात, एक व्यक्ति से कहीं अधिक 'साहित्य–शलाकापुरुष' के रूप में प्रतिष्ठित, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य शिरोमणि 'प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र' का जन्म उत्तरप्रदेश के जौनपुर जनपद में, स्पन्दिका (सई) नदी के तटवर्ती ग्राम द्रोणीपुर में संवत् 1999 वि. की पौष कृष्ण पञ्चमी को हुआ। इस दृष्टि से आपकी जन्मतिथि 26 दिसम्बर, 1942 ई. आती है, परन्तु शैक्षणिक प्रमाण–पत्रों में आपकी जन्मतिथि 2 जनवरी, 1943 ई. अंकित है तथा व्यवहार में यही तिथि मान्य है।

आपके पिता का नाम पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र तथा माता का नाम श्रीमती अभिराजी देवी मिश्र है। आप अपने तीन भाईयों में मध्यम है। अग्रज डॉ. देवेन्द्र मिश्र तथा अनुज आचार्य सुरेन्द्र मिश्र दोनों ही संस्कृत के श्रेष्ठ विद्वान् तथा प्राध्यापक रहे हैं। अब दोनों सहोदर कीर्तिशेष हैं। जब आप मात्र ढाई वर्ष के थे, तब ही आपके पिताश्री का निधन, उनकी

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व, पृ.सं.3
2. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 13–14 व 226–227

युवावस्था (26वाँ वर्ष) में ही हो गया था। माँ अभिराजी ने असीम धैर्य, साहस एवं वात्सल्य के साथ अपनी तीनों सन्ततियों को पाला–पोसा तथा उन्हें समाज में सर्वोपरि प्रतिष्ठित किया।

अपनी जननी के प्रति अनन्य अनुराग एवं निष्ठा के ही कारण आप साहित्य के क्षेत्र में 'अभिराज राजेन्द्रमिश्र' के नाम से जाने–पहचाने जाते हैं। अपने जन्म से वंश को कृतार्थ कर देने वाले सुपुत्र का जिस कुल में जन्म होता है वह कुल कृतकृत्य हो जाता है। अपने व्यक्तित्व एवं कर्तृत्त्व से सम्पूर्ण संस्कृत साहित्यानुरागीजनों के हृदयों पर विराजमान अभिराज राजेन्द्रमिश्र का नाम संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में महनीय स्थान रखता है।

आपके परिवार में देववाणी संस्कृत कई पीढ़ियों से प्रतिष्ठित रही है। आपके वृद्ध पितामह पं. काशीराम, प्रपितामह पं. रामकुमार, पितामह पं. रामानन्द, पितृचरण पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र जी, पितृव्य स्व. आद्याप्रसाद मिश्र, दोनों सहोदर डॉ. देवेन्द्र मिश्र व आचार्य सुरेन्द्र मिश्र–सबके सब संस्कृत–विद्या के परम उपासक, तंत्रवेत्ता, मंत्र साधना पारंगत, आयुर्वेद निष्णात तथा पौरोहित्य प्रवीण विद्वान् थे। अतः अपने वंश से कृतार्थ हुए एवं अपने सुकृत्यों से वंश को कृतार्थ कर देने वाले प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र की वंशावली का उल्लेख किये बिना यह शोध पूर्णता की ओर अग्रसर नहीं हो सकेगा कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र का वंश–परिचय अन्तःसाक्ष्य के आधार पर निम्न प्रकार है–

अभिराजराजेन्द्रमिश्र : वंशवृक्ष

पं. भोजराज मिश्र[i]

पं. शीतलदीन मिश्र

- पं. शिवरतन मिश्र (विशाल परिवार)
- पं. रामरतन मिश्र (विशाल परिवार अद्यावधि)
- पं. काशीराम मिश्र[ii]

पं. काशीराम मिश्र[ii]

- पं. रामकुबेर मिश्र (एकमात्र पुत्र गोवर्धन की निस्सन्तान मृत्यु)
- पं. रामकुमार मिश्र[iii] (एकमात्र पुत्री जिनका विवाह सँवराई ग्राम में)
- पं. रामदुलार मिश्र[iv]

पं. रामदुलार मिश्र[iv]

- पं. रामानन्द मिश्र[v]
- पं. रामनाथ मिश्र
  - पं. राममूर्ति मिश्र
    - श्री अच्युतानन्द मिश्र (तीन पुत्र एवं एक पुत्री)
- पं. रामदेव मिश्र
  - श्री बद्रीनारायण मिश्र
  - डॉ. ईश्वरचन्द्र मिश्र
  - डॉ. विश्वम्भरनाथ मिश्र
  - (सभी पुत्रवान्)

पं. रामानन्द मिश्र[v]

- पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र[vi]
  श्रीमती अभिराजी देवी मिश्र
- प्रो. आद्या प्रसाद मिश्र[vii]
  - श्री सत्यव्रत मिश्र
    - श्री प्रियव्रत मिश्र
    - श्री मधुव्रत मिश्र
- पं. सुन्दरी प्रसाद मिश्र
  - श्री सत्यप्रकाश मिश्र
  - श्री दिनेश कुमार मिश्र
  - श्री विनोद कुमार मिश्र
  - (सभी पुत्रवान्)

पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र[vi] — श्रीमती अभिराजी देवी मिश्र

- डॉ. देवेन्द्र मिश्र[viii]
  - डॉ. इन्दुप्रकाश मिश्र
  - डॉ. आलोक कुमार मिश्र
  - श्री पुष्कर मिश्र
- प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र
  डॉ. राजेशकुमारी मिश्र 'राजश्री'
  - कुमार क्षेमेन्द्र मिश्र (बालकवि)
- आचार्य सुरेन्द्र मिश्र[ix] (बाल ब्रह्मचारी, तपस्वी सन्त

(i) भोजराज के पूर्वज सरयू एवं ताप्ती नदियों के संगम (उ.प्र.) पर बसे रापतपुर–भभया गाँव से विन्ध्याचल–यात्रा पर आये और शिष्यों के आग्रह पर जौनपुर जनपद के ब्राह्मणपुर नामक गाँव में बसे गये। कालान्तर में ब्राह्मणपुर से ही पं. कृपाराम एवं पं. भोजराज–ये दो भाई सई नदी के तटवर्ती ग्राम दोनई (सम्प्रति द्रोणीपुर) में आकर बस गये। आज भी सम्पूर्ण ग्राम में इन्हीं दो भाईयों के वंशज विद्यमान हैं। ये लोग गौतमगोत्रीय, भभयास्पद मिश्र हैं, इनकी वेदशाखा माध्यन्दिन (यजुर्वेद) तथा सूत्र कात्यायन है। ये पञ्चप्रवर हैं।

(ii) प्रकाण्ड विद्वान्, लोकोपकारी तथा दैवकृपान्वित महावैद्य। रोगियों के वस्त्र की गन्ध मात्र से रोग की पहचान कर उसका उपचार करते थे।

(iii) श्रीमद्भागवत के वक्ता, संस्कृतज्ञ तथा परम सम्मानित दीक्षा गुरू।

(iv) महामल्ल, प्रेतविद्या के मर्मज्ञ तथा धर्मप्रवण महामानव।

(v) महाभागवत एवं भगवती परा‍म्बा के प्रत्यक्ष–कृपाप्राप्त उपासक। वंशकीर्तिविस्तारक दीक्षागुरु।

(vi) शस्त्रे शास्त्रे च कौशलम् के प्रतिमान। मात्र 26 वर्ष की अवस्था में दिवंगत। वंशमणि।

(vii) वंशपरम्परा के भास्वरतम नक्षत्र! विश्वविश्रुत दार्शनिक, कवि एवं लेखक। प्रयाग वि. वि. के पूर्व कुलपति। **हाल ही में दिनांक 11 मार्च 2018 को 97 वर्ष की उम्र में निधन।**

(viii) महायोगी, सिद्ध तान्त्रिक एवं मंत्रसाधक। असमय में दिवंगत।

(ix) महान् श्रीरामभक्त एवं निर्विकार सन्त। सम्प्रति कीर्तिशेष।

(ख) विद्यार्थी–जीवन एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ[1]

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र का पितृहीन शैशव अधिकांशतः माँ के ममतामय आँचल, प्रकृति के मनोरम परिसर तथा पितामह की संगति में बीता। आपकी प्रारम्भिक

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरुः अभिराज राजेन्द्रमिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.सं. 21

शिक्षा अपने पैतृक गाँव द्रोणीपुर में ही हुई। पितामह की संगति ने ही आपके मन में संस्कृताध्ययन की सांस्कारिक अभिरूचि पैदा की। फलतः हाईस्कूल परीक्षा में विज्ञान एवं जीवविज्ञान का छात्र होते हुए भी आपने भावी जीवन के लिए देववाणी संस्कृत ही चुनी। आपकी उच्च शिक्षा पितृव्य डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र के संरक्षण में, इलाहबाद विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई। 1974 ई. में संस्कृत विषय में स्नातकोत्तर परीक्षा न केवल प्रथम स्थान सहित प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की प्रत्युत समूचे कला संकाय में भी प्रथम स्थान प्राप्त किया। पितृव्य के निर्देशन में ही 'अन्योक्ति साहित्य के उद्भव एवं विकास' विषय पर शोधकार्य करते हुए 1966 ई. में डी.फिल्. की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद अध्यापन कार्य करते हुए ही विक्रमशिला विद्यापीठ, बिहार से 1987 ई. में 'विद्यासागर' (मानद डी. लिट्) की उपाधि प्राप्त की तथा 2005 ई. में शिमला विश्वविद्यालय से भी 'डी.लिट्' उपाधि प्राप्त की।

(ग) शैक्षणिक–प्रशासनिक दायित्व और कार्यक्षेत्र[1]

शोधकार्य की मौखिकी सम्पन्न होने से पूर्व ही, कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र की इलाहबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत–विभाग में 10 दिसम्बर 1966 ई. को तदर्थ नियुक्ति हो गई। डॉ. मिश्र 1966 ई. से 1983 ई. तक व्याख्याता तथा 1984 ई. से 1991 ई. तक रीडर के रूप में अपनी सेवायें देते रहे। इसी अन्तराल में उन्हें भारत सरकार ने बालीद्वीप (इण्डोनेशिया) के उदयन विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में नियुक्त कर दिया, जहाँ उन्होंने अप्रेल 1987 ई. से मार्च 1989 ई. तक रहकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का उत्कृष्ट साहित्यिक सर्जना की। अन्ततः उन्होंने 22 जनवरी 1991 ई. को शिमला विश्वविद्यालय में संस्कृत प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष का पद स्वीकार किया। जहाँ से आप जून, 2003 में सेवानिवृत्त हुए। शिमला विश्वविद्यालय में आपने विभागाध्यक्ष के साथ ही साथ, भाषा–संकाय के डीन, इक्जीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य तथा सांस्कृतिक समिति के संयोजक आदि महत्त्वपूर्ण पदों का भी बखूबी निर्वहण किया।

शिमला विश्वविद्यालय की सेवावधिपूर्ण होने से पूर्व ही आपको महामहिम कुलाधिपति, उत्तरप्रदेश ने विश्वविख्यात 'सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरुः अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 21–22, 31–34

(उ.प्र.) का कुलपति नियुक्त कर दिया। यहाँ दिनांक 24 अप्रेल 2002 से 24 अप्रेल 2005 तक सेवारत रहते हुये आपने संस्कृताराधना से साहित्य व शिक्षा जगत को उपकृत किया। इसी सातत्य में आपने मुख्यमंत्री (उत्तरांचल) के विशेष आग्रह पर, नवस्थापित उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार के सलाहकार के रूप में (5 अक्टूबर 2005 से 14 फरवरी 2006 तक) अपनी सेवायें दी। संप्रति आप राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली (मानित विश्वविद्यालय) के इलाहाबाद–परिसर में विजिटिंग प्रोफेसर के पद पर अधिष्ठित हैं।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र संस्कृत–रचनाधर्मिता, संस्कृत–गतिमत्ता एवं संस्कृत–जीवन्तता के पर्याय बन चुके हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र में सम्पन्न होने वाले संस्कृत–समारोहों, महोत्सवों, संगोष्ठियों, परिसंवादों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में आपकी उपस्थिति अपेक्षित रहती है। क्योंकि आप सुकण्ठ लोकप्रिय कवि, मुखर वक्ता और गहन चिन्तक हैं। समारोहों में किसी भी संकटकालीन दायित्व की पूर्ति में आप तारणहार साबित होते हैं।

एन.सी.ई.आर.टी., यू.जी.सी., साहित्य अकादमी, विविध प्रान्तीय संस्कृत प्राच्य विधा–अधिवेशनों (ए.आई.ओ.सी.) आदि से प्रो. मिश्र का गहनतम जुड़ाव रहा है। उज्जैन के कालिदास–महोत्सवों में तो आप नियत उपस्थित रहे हैं। आप विक्रम विश्वविद्यालय की कालिदास महोत्सव समिति के अनेकशः मनोनीत सदस्य रहे हैं, दो बार सारस्वत–अतिथि रहे हैं, अनेक बार पं. सूर्यनारायण व्यास–व्याख्यान दे चुके हैं तथा दर्जनों बार विभिन्न संगोष्ठी–सत्रों की अध्यक्षता कर चुके हैं। अखिल भारतीय प्राच्यविद्या–अधिवेशनों में आपकी उत्तरोत्तर बढ़ती प्रतिष्ठा तो देखते ही बनती है। मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी के बाणभट्ट, भवभूति, कालिदास, शङ्कराचार्य एवं भोज–महोत्सवों में आपका अप्रतिम योगदान रहा है। इसके अलावा देशभर के विश्वविद्यालयों की बोर्ड ऑफ स्टडीज अथवा आर.डी.सी. में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। साथ ही आप कई विश्वविद्यालयों की विद्वत्परिषद् के मनोनीत सदस्य भी है।

उपर्युक्त शैक्षणिक संस्थाओं के अतिरिक्त प्रो. मिश्र, असंख्य सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओं के महनीय पदों पर भी यथावसर अभिषिक्त रहे हैं। इनमें सदस्य,

एडिटोरियल बोर्ड, योग इण्टरनेशनल, पेन्सिलवानिया, यू.एस.ए., सदस्य, भाषापरामर्श, समिति (संस्कृत) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सदस्य (मनोनीत), श्री काशी विश्वनाथ मन्दिर–न्यास, वाराणसी (उ.प्र.) संस्थापक अध्यक्ष, स्वरवर्धिनी (साहित्य–संस्था) इलाहाबाद, अध्यक्ष, देववाणी–परिषद्, नई दिल्ली, सदस्य (मनोनीत), केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड, नई दिल्ली, सदस्य, पुरस्कार–समिति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली इत्यादि उल्लेखनीय है।

हाल ही में आपको साहित्य अकादमी, नई दिल्ली में संस्कृत–भाषा के संयोजक पद पर नियुक्त किया गया है जिसका कार्यकाल पाँच वर्ष का रहेगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रो. राजेन्द्र मिश्र की सारस्वत–यात्रा कई दृष्टियों से विलक्षण है। बड़े से बड़े महापुरुषों के जीवन में हम मात्र एक–दो कीर्तिमान् पाते हैं। परन्तु प्रो. मिश्र का सम्पूर्ण जीवन ही कीर्तिमानों की नीहारिका (गैलेक्सी) सा प्रतीत होता है।

(घ) विदेश–यात्रायें तथा वैदेशिक–सम्पर्क[1]

भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध–परिषद् (आई.सी.सी.आर.) भारत–सरकार, नई दिल्ली की नियुक्ति के फलस्वरूप प्रो. राजेन्द्र मिश्र इण्डोनेशिया के बालीद्वीप में स्थित उदयन विश्वविद्यालय, डेनपसार में दो वर्ष (अप्रैल 1987–मार्च 1989) तक विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में कार्यरत रहे हैं। साहित्य सर्जना के इस उत्कृष्ट काल में आपने 13 साहित्यिक आलेख, 44 स्फुट कविता–संस्मरण–यात्रावृत्तादि तथा 14 संस्कृत–हिन्दी की श्रेष्ठ कृतियों का प्रणयन किया।

बाली–प्रवास में ही प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने दो युगान्तकारी साहित्यिक–कार्य किये, जो आज भी विद्वानों के लिए विस्मय का विषय हैं–

(i) इण्डोनेशिया भाषा (जावा–बाली की वर्तमान राष्ट्रभाषा) में, बाली के संस्कृत–प्रेमियों के लिये संस्कृत–साहित्य के इतिहास की सर्जना की। ग्रन्थ का नाम है– सेजराह कसुशास्त्रान् संसकिर्ता, डेनपसार, 1988।

---

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 34–36

(ii) जावा–नरेश वतुकुर बलितुंग के राजकवि योगीश्वर द्वारा सुवर्णद्वीपीय रामकथा पर आधारित रचना 'रामायणककविन् (13 सर्ग, 2778 श्लोक) का देवनागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी रूपान्तर।

वर्ष 2000 ई. में प्रो. मिश्र ने, शिष्ट–मण्डल के मनोनीत सदस्य के रूप में मानव संसाधन विकासमंत्री डॉ. मुरली–मनोहर जोशी के साथ थाईलैण्ड के बैंकाक में आयोजित रामायण–सम्मेलन में भाग लिया।

नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में आयोजित त्रिदिवसीय संस्कृत–संगोष्ठी के अलावा जुलाई 2006 ई. में स्काटलैण्ड के एडिनबर्ग में आयोजित 13वें विश्व संस्कृत सम्मेलन में प्रो. मिश्र ने भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया।

इन वैदेशिक यात्राओं के अलावा प्रो. मिश्र के अनेक वैदेशिक विद्वानों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं।

(ङ) पुरस्कार एवं सम्मान[1]

अपनी अथक एवं अनवरत लेखनी से साहित्य भण्डार को समृद्ध करने वाले प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदत्त विविध पुरस्कारों से सम्मानित होते रहे हैं। पुरस्कार से साहित्यकार की प्रामाणिकता साहित्य–समाज में महती प्रतिष्ठा को प्राप्त करती है। प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र केन्द्र एवं विभिन्न प्रदेशों की सरकारों व अकादमियों से पुरस्कृत एवं राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित, सर्जनधर्मी व वरेण्य साहित्यकार हैं। उनके रचना संसार की युगानुकूलता, वरेण्यता, गूढ़ता, मौलिकता आदि गुणों के कारण कुशल एवं पारखी निर्णायक–समितियों द्वारा आपको पुरस्कृत करने का अनेकशः निर्णय लिया गया है। आपको प्राप्त विभिन्न पुरस्कारों व सम्मानों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

1. साहित्य अकादमी सम्मान, नई दिल्ली, 1988 (कथासंग्रह इक्षुगन्धा)।
2. वाचस्पति सम्मान, के.के. बिरला फाउण्डेशन, नई दिल्ली, 1993 (जानकीजीवनम्)।

---

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 231–232 तथा डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व, पृ.सं. 17–18

3. कालिदास सम्मान (म.प्र. शासन), 1988, 1998 (दो बार)।
4. उत्तरप्रदेश शासन साहित्यिक पुरस्कार, 1972 से 1997 के मध्य (ग्यारह बार)।
5. महामहिम राष्ट्रपति सम्मान, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1999
6. कल्पवल्ली सम्मान, भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता, 1996, 1998
7. कवि कुलगुरु कालिदास सम्मान, महाराष्ट्र शासन, मुम्बई 2004
8. दिल्ली संस्कृत अकादमी पुरस्कार, 1994 से 1998 के मध्य (तीन बार)
9. राष्ट्रीय आत्मा पुरस्कार 1983 (सपनों में डूब गया मन)।
10. वाल्मीकि पुरस्कार (चित्रकूट) 1987 (संस्कृत–सेवा हेतु)।
11. डॉ. रामकुमार वर्मा एकांकी पुरस्कार 1988 (रक्ताभिषेकः एकांकी संग्रह) शकुन्तला सिरोठिया न्यास, इलाहबाद।
12. राजस्थान संस्कृत अकादमी सर्वोच्च पुरस्कार (माघ पुरस्कार) 1999 ('वामनावतरणम्' महाकाव्य हेतु)।
13. स्वामी धर्मानन्द साहित्य सम्मान 1994 (संस्कृत सर्जना हेतु) स्वामी धर्मानन्द सरस्वती न्यास, परमार्थ आश्रम हरिद्वार (उ.प्र.)।
14. डॉ. विद्यानिवासमिश्र नामित 'संस्कृत वाङ्मयालङ्कार' सम्मान 2000 ई. सोनाञ्चल साहित्यकार संस्थान, सोनभद्र (उ.प्र.)।
15. सहस्राब्दीरत्न सम्मान 2001 ई. पानीपत, हरियाणा (जैमिनी अकादमी)।
16. अच्युतानन्द शर्मा संस्कृत सम्मान, हैदराबाद, 2001 ई.।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अद्यावधि सर्वाधिक चर्चित एवं प्रतिष्ठित रचनाकार हैं। आप आधुनिक साहित्य सरिता को निरन्तर गति प्रदान करते हुए सहृदय साहित्यिक समाज में पूरी प्रामाणिकता व प्रासंगिकता के साथ प्रतिष्ठापित हैं।

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र में एक रचनाधर्मी साहित्यिक व्यक्तित्व के साथ–साथ एक मधुर संगीतकार व्यक्तित्व भी छुपा हुआ है। आपके द्वारा विविध काव्यमञ्चों पर प्रस्तुत मधुर संगीत श्रोताओं को अपनी उपस्थिति एवं प्रस्तुति से बलात् आकृष्ट करने की क्षमता रखता है। साथ ही शोधसंगोष्ठियों में प्रस्तुत, उनके गहन चिन्तन व मनन से ओत–प्रोत व्याख्यान विद्वज्जनों को निश्चित रूप से प्रभावित करते हैं। आपके 300 से अधिक शोध निबन्ध प्रस्तुत हो चुके हैं। 1436 मुक्तगीत, लेख, संस्मरण आदि प्रकाशित हो

चुके हैं। कोई ऐसी संस्कृत पत्रिका नहीं है जिसमें डॉ. मिश्र की रचना प्रकाशित नहीं हुई हो। संस्कृत साहित्य सर्जन पत्रिकाओं में मिश्र जी की उपस्थिति दृढ़ता के साथ अंकित है। आपकी अक्षुण्ण साहित्यिक ऊर्जा, ऊष्मा तथा अजस्र लेखनी सचमुच हम सबके लिए आश्चर्य तथा सम्मान का विषय हैं।

संस्कृत के साथ ही साथ हिन्दी तथा भोजपुरी में भी समान गति होने के कारण आप विद्वत् समाज में 'त्रिवेणी कवि' के रूप में जाने जाते हैं। आपकी 25 मौलिक कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आपका हिन्दी खण्डकाव्य 'मुक्तिदूत' सन् 1975 से उत्तरप्रदेश में हाई स्कूल कक्षा के पाठ्यक्रम में निर्धारित है।

आपकी साहित्य सृजन की अद्भुत क्षमता एवं असीम ऊर्जा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि दो वर्ष के बालीद्वीपीय प्रवास में आपने 10 काव्य (हिन्दी/संस्कृत), 36 शोध निबन्ध, 44 कविताओं एवं अनेक संस्मरणों का सृजन किया। कादम्बिनी एवं धर्मयुग जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में आपके अनेक आलेख प्रकाशित हैं।

कविवर मिश्र जी के जो चिरस्मरणीय साहित्यिक कार्य किये उनमें से दो अतिमहत्त्वपूर्ण माने जाते हैं–[1]

(i) Bahasa Indonesia (इण्डोनेशिया की वर्तमान राष्ट्रभाषा) में संस्कृत साहित्य के इतिहास की रचना (Sejarah Kesusastran Sanskerta. P. 110, Denpasar, Bali, 1988)

(ii) Ramayan Kakaween (जावी रामायण, 26 सर्ग तथा 2778 कविभाषा–श्लोक) का देवनागरी लिप्यन्तरण तथा हिन्दी अनुवाद। शोधपूर्ण विस्तृत भूमिका एवं पाद टिप्पणी। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित। प्राक्कथन लेखक–डॉ. मण्डन मिश्र, पूर्व कुलपति सं.सं.वि.वि., वाराणसी।

स्पष्ट है कि प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र समूचे साहित्य समाज में अपना अप्रतिम स्थान बना चुके हैं। संस्कृत, हिन्दी, भोजपुरी भाषाओं में सिद्धहस्त त्रिवेणी कवि विविध विद्यामय साहित्यसर्जना में निरन्तर गतिशील हैं। उनका जितना वाङ्मय अभी प्रकाशित है, उससे अधिक अप्रकाशित।

---

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्त्तत्व, पृ.सं. 19–20

साहित्य के क्षेत्र में मिश्र जी का अवदान निश्चित रूप से वर्तमान साहित्यिक समाज में उनको महनीय स्थान प्रदान करता है। उनका अनवरत, अथक एवं प्रशंसनीय प्रयास उनके विशाल एवं विविध विधामय रचना संसार में सहज ही दृष्टिगोचर होता है। उनके कर्तृत्व–संसार का समग्रता से वर्णन करना मेरे सामर्थ्य से बाहर है, अतः अत्यन्त संक्षिप्त रूप में उनके साहित्य को इंगित करने का प्रयास करुंगा। यद्यपि यह कार्य यहाँ पूर्णता को प्राप्त नहीं होगा क्योंकि आप वर्तमान में पूर्ण सक्रियता एवं ऊर्जा के साथ माँ सरस्वती की आराधना में रत है। हिन्दी से भी कहीं अधिक सरल, सरस, मधुर किन्तु अर्थ व भाव गाम्भीर्य एवं मार्मिक संस्कृत लिखने वाले प्रो. राजेन्द्र मिश्र निःसन्देह बीसवीं शती के प्रतिष्ठित एवं इक्कीसवीं शती के पुरोधा संस्कृत रचनाकार हैं।

कर्तृत्व–खण्ड

अभिराज–वाङ्मय परिचय (संस्कृत)[1]

(क) महाकाव्य

(1) जानकीजीवनम्[2]

के.के. बिरला फाउण्डेशन, नई दिल्ली के वाचस्पति तथा मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी के कालिदास सम्मान (1988 ई.) से अलंकृत यह उनकी कालजयी कृति है। इसमें कुल इक्कीस सर्ग तथा 1714 पद्य हैं। कवि ने पारम्परिक छन्दों के साथ ही साथ स्वयं द्वारा आविष्कृत दो छन्दों–'मैथिली' एवं 'स्यन्दिका' का भी प्रयोग इस महाकाव्य में किया है। महाकाव्य का अन्तिम सर्ग 'रामकथागायन' भी मुक्त गीतों में निबद्ध है। महाकाव्य–परम्परा के विपरीत 'नारीपात्र' को केन्द्रीय भूमिका प्रदान करने वाले इस महाकाव्य का वैशिष्ट्य है– सीता निर्वासन प्रसंग का पूर्णतः प्रत्याख्यान तथा रामकथा को एक लोक–सम्मत स्वरूप प्रदान करना।

कवि ने महाकाव्य के सर्गों तथा उन सर्गों में विद्यमान देवी सीता की स्वरूप–परिचायक संज्ञाओं को इस क्रम एवं कौशल के साथ रखा है कि उतने से ही सर्ग

1. डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, 'राजश्री' साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 169–225
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, जानकीजीवनम्, सम्पूर्ण महाकाव्यसंग्रह

का प्रतिपाद्य समझ में आ जाता है। अबाध गति से प्रवाहमान विलक्षण भावसौन्दर्य एवं काव्यसौन्दर्य से विभूषित इस काव्य के प्रथम सर्ग 'अवतारः' (अयोनिजा) में कृषिकर्म से सीता की प्राप्ति, 'शिशुकेलिः' (जनकनन्दिनी) नामक द्वितीय सर्ग में सीता की शैशवकाल की क्रीड़ाएँ, 'स्मराङ्करः' (नवयोवना) नामक तृतीय सर्ग में नवयौवना सीता के मनोभावों का स्वाभाविक वर्णन, चतुर्थ सर्ग 'राधवानुरागः' (लोकविश्रुता) में राम के मन में सीता के प्रति प्रेम की उत्पत्ति, पंचम सर्ग 'रघुराजसङ्गमः' (सौभाग्यवती) में मिथिलापुर मार्ग का वर्णन, षष्ठम् सर्ग 'पूर्वरागः' (अनुरागिणी) में राम–सीता के विवाह पूर्व पारस्परिक प्रेम का वर्णन, 'श्वसुरालयः' (प्रियानुगता) नामक सप्तम सर्ग में सीता–राम के विवाह का वर्णन, 'वध्वाचारः' (रामप्रिया) नामक अष्टम सर्ग में अयोध्या में वधु सीता के आगमन पर माङ्गलिक वध्वाचार का वर्णन, 'वनवास' (सहचरी) नानक दशम सर्ग में राम का वनगमन, 'रावणापहारः' (अपहृता) नामक सर्ग में सीता–अपहरण, 'अशोकवनाश्रमः' (तपस्विनी) नामक सर्ग में अशोक–वाटिका में सीता की मनोव्यथा का वर्णन, 'हनूमत्प्राप्तिः' (प्रत्युज्जीविता) नामक सर्ग में हनुमान जी द्वारा प्राप्त सन्देश, 'लंकाविजयः' (समुद्धृता) नामक सर्ग में रावणवध, 'अग्निपरीक्षा' (भर्तृमती) नामक सर्ग में सीता की अग्निपरीक्षा, 'राज्याभिषेकः' (राजमहिषी) नामक सर्ग में राम के राज्याभिषेक, 'जनापवादः' (संशपिता) नामक सर्ग में सीता विषयक विवादास्पद वक्तव्य, 'अपवादनिर्णयः' (पुण्यशीला) नामक सर्ग में कवि की नवीन परिकल्पना स्वरूप सीता के हित में निर्णय, 'लवकुशोदयः' (वीरप्रसविनी) नामक सर्ग में लव–कुश की उत्पत्ति, 'अश्वमेघः' (अर्धाङ्गिनी) नामक सर्ग में आदर्श रामराज्य के वर्णन के साथ यज्ञोत्सव के शिष्टाचारों का वर्णन तथा इक्कीसवें 'रामायणगानम्' (अनुकीर्तिता) नामक सर्ग में लवकुश के द्वारा गीत शैली में रामकथा का वर्णन प्रस्तुत करके 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य को कविवर ने रामायणोपजीव्य महाकाव्य परम्परा में प्रमाणित रूप से प्रतिष्ठापित कर दिया है।

सामाजिक औचित्य को आधार बनाकर पौराणिक रामकथा में यथेष्ट परिवर्तन एवं नवीन व्याख्याएँ की हैं। 'नारी अस्मिता' को प्रमाणित करने का कविवर का यह अनूठा प्रयास है। इस महाकाव्य का प्रकाशन वर्ष 1988 में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद से हुआ है।

(2) वामनावतरणम्[1]

'वामनावतरणम्' महाकाव्य में कविवर ने श्रीमद्भागवत महापुराण में सविस्तार वर्णित 'बलिगर्वभञ्जन' की घटना को उपजीव्य बनाकर अपनी काव्य प्रतिभा से उसे महाकाव्यता प्रदान की है। सत्रह सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के प्रारंभिक सर्ग कवि ने 1968 में लिखे थे, परन्तु इसको सम्पूर्णता एक लम्बे अन्तराल के बाद बालीद्वीपीय–प्रवास (1987–89) के दौरान प्रदान की।

इस महाकाव्य का मुख्य लक्ष्य है– 'देवराज इन्द्र द्वारा स्थापित आदर्श देव–साम्राज्य के माध्यम से महाकाव्य में दानवराज बलि को भगवान् वामन द्वारा दण्डित नहीं अपितु प्रीतिवश अनुगृहीत स्वीकार किया है। कवि ने अपनी प्रतिभा इस महाकाव्य में क्रमशः मङ्गलाचरण, कविवंशवर्णन, कथारम्भ, बलिप्रतापवर्णन, अदिति का मनस्ताप, पुत्र प्राप्ति के लिए अदिति का तप, वर–प्राप्ति, वामनावतरण, बालचरित, शिक्षा–संस्कार माता द्वारा वामन को शिक्षा, सुर विपत्ति–शापन, वामनकृतसंकल्प, मातृनियोगानुसरण, बलियज्ञवर्णन, प्रतिहारवेदन, बलिकृत–वामनाभ्यर्चन, दान के लिए प्रतिश्रुति, वामनकृत बलि प्रशंसा, साढ़े–तीन कदम भूमि की याचना, शुक्रबलि–संवाद, बलि का दृढ़–निश्चय, शुक्राभिशाप, वामनकृत लोकत्रयापक्रमण, देवकृता वामनस्तुति, बलिबन्धन, वामनकृत बलिप्रबोध, बलिकृता वामनस्तुति, वामन–प्रसाद, वरदान, देव–साम्राज्य का वर्णन प्रस्तुत किया है।

महाकाव्य का अंगीरस शांत है तथा यहाँ पौराणिक वस्तुशिल्प को ही अपने युगबोध से प्रासंगिकता प्रदान करते हुए श्रीमद्भागवत की पौराणिक कथावस्तु का विन्यास आधुनिक आदर्श लोकतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में किया है। महाकाव्य का प्रकाशन वर्ष 1994 में अक्षयवट प्रकाशन, इलाहबाद से हुआ है।

(ख) खण्डकाव्य

(3) आर्यान्योक्तिशतकम्[2]

आर्या छन्दों में प्रणीत शताधिक अन्योक्तियों का संग्रह 'आर्यान्योक्तिशतकम्' अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित 'शतककाव्य' है। अन्योक्ति एक प्रकार से अन्योपदेश

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वामनावतरणम्
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, आर्यान्योक्तिसंग्रह, सम्पूर्ण खण्डकाव्यसंग्रह

रीति है जिसमें कवि पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष आदि को संकेतित करके वे सब बातें कहता है जिसका सीधे–सीधे कहने में शायद वैसा प्रभाव न हो जैसा प्रत्यक्ष रूप से कहने में। इस संग्रह में एम.एल. अल्सेशियन श्वान, वृश्चिक, बृहन्नला, जरद्गौः, संस्कारहीन छात्र, लहसुन आदि अनेक प्रतीक सर्वथा नवीन हैं जिन्हें आधार बनाकर मर्मस्पर्शी अन्योक्तियाँ लिखी गई हैं। अभिधा द्वारा कथित की प्रतीति लब्ध में व्यञ्जना द्वारा होती है। कविवर ने भी 'आर्यान्योक्तिशतकम्' में बिबुध वर्ग, मानववर्ग, पशुवर्ग, पक्षीवर्ग, प्राणीवर्ग, विटपिवर्ग, प्रकीर्णवर्ग आदि के प्रति अभिधा शैली में कही बातों से सामान्य मानव जीवन के लौकिक व्यवहारों, जीवन–मूल्यों, जीवनोपयोगी उपदेशों की व्यंजना शक्ति द्वारा प्रतीति करवाई है। 'अन्योक्ति के उद्भव एवं विकास का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर डी.फिल् शोधकार्य सम्पन्न करने के साथ ही अन्योक्ति की समूची परम्परा का अवगाहन करने के ही कारण, कविवर को नूतन अन्यापदेशों के सर्जन की प्रेरणा मिली। यह ग्रन्थ सन् 1975 में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद, से प्रकाशित हुआ।

(4) नवाष्टकमालिका[1]

मरन्माधुरीस्तवनम् (सरस्वती), स्तनन्धयक्रन्दनम् (दुर्गा), आशुतोषाराधनम् (शिव), सृष्टिमूलस्तवनम् (विष्णु), राम, दुकूलचौरचरितम् (कृष्ण), पिशाचभञ्जनम् (आञ्जनेय), मधुराभिधानम् (कविगण) तथा मङ्गलायतनगीतम् (गणपति) शीर्षकाधारित नौ देव–स्तवनों का यह संकलन मूलतः 'स्तोत्रकाव्य' की कोटि में आता है। प्रत्येक स्तोत्र के अन्त में कवि ने रचनाकाल का भी सुस्पष्ट उल्लेख किया है। अन्त में कवि ने 'आत्मनिवेदनम्' शीर्षक से आठ मर्मस्पर्शी पद्य भी लिखे हैं, जो वैयक्तिक अनुभूतियों से ओत–प्रोत हैं। इसका प्रकाशन 1976 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से हुआ।

(5) पराम्बाशतकम्[2]

यह भगवती पराम्बा (दुर्गा) की स्तुति में शताधिक 'भुजङ्गप्रयात' छन्द में निबद्ध स्तुतिमूलक पद्यों का संग्रह है। इसमें सामान्य प्रचलित स्तोत्रकाव्यों की तरह बहुश्रुत विशेषणों के रूप में माँ भगवती पराम्बा की महिमा का गान करके उनको नमन तो किया

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नवाष्टकमालिका
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पराम्बाशतकम्

ही गया है, साथ ही यह स्तुति एक पुत्र की तरफ से माँ के साथ बाँटी गई पीड़ा भी है, क्योंकि पुत्र को विश्वास है कि उसकी माँ (पराम्बा) अवश्य ही उसके भावों को समझेगी। इन आर्तिनिवेदनों में अद्भुत साहित्यिक बिम्ब, उत्प्रेक्षायें तथा सरस कल्पनायें विद्यमान हैं। वस्तुतः यह स्तोत्र 'माँ–बेटे के संवाद' सा प्रतीत होता है। अतः कहा जा सकता है कि काव्य की आत्मा उसका 'कथ्य' और उसका शरीर उसका 'शब्दशिला' होते हैं। वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद से वर्ष 1981 ई. में कविवर कृत हिन्दी अनुवाद के साथ यह काव्य प्रकाशन में आया।

(6) शताब्दीकाव्यम्[1]

'शताब्दीकाव्यम्' सन् 1987 ई. में आयोजित 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय' के शताब्दी समारोह के अवसर पर लिखा गया। यह काव्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति कवि का Attribute है।

उस ऐतिहासिक अवसर पर प्रणीत इस खण्डकाव्य में कुल पाँच खण्ड हैं। प्रस्तावना सर्ग में 32 पद्य है, जिसमें प्रयाग नगर की महिमा एवं विश्वविद्यालय की स्थापना की पृष्ठभूमि का निरुपण है। द्वितीय संस्थापना सर्ग के 37 पद्यों में विश्वविद्यालय की स्थापना एवं तृतीय संगणना–सर्ग के 36 पद्यों में 1887 से 1987 के मध्य नियुक्त कुलपतियों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का परिचय दिया गया है। चतुर्थ गवेषण सर्ग के 51 पद्यों में विश्वविद्यालय के विविध संकायों, विभागों, छात्रावासों, आवासगृहों (लॉज) तथा अन्यान्य महत्त्वपूर्ण भवनों आदि भौतिक संसाधनों का वर्णन है। पंचम एवं अन्तिम पुरोचना सर्ग (103 पद्य) में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की उपलब्धियों तथा प्रमुख वैज्ञानिक एवं साहित्यिक विभूतियों का वर्णन है।

परिशिष्ट क में कुलपतियों तथा परिशिष्ट ख में कुलाधिपतियों की नामावली प्रस्तुत की गई है। वस्तुतः यह खण्डकाव्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय का सम्पूर्ण एवं प्रामाणिक अध्ययन है। अतः यह विश्वविद्यालय का इतिहास कहा जा सकता है। यह काव्य वर्ष 1987 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, शताब्दीकाव्यम्

(7) अभिराजसप्तशती[1]

'अभिराजसप्तशती' अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत इस काव्य में समान प्रकृति वाले सात शतक–काव्यों का संकलन है। इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टि से यह एक कोशकाव्य है। (असंहतार्थानाम् एककवेरनेककवीनां वा निबन्धः कोशो। यथा आर्यासप्तशत्यादिः) इन सात काव्यों के नाम नव्यभारतशतकम् (102 श्लोक), मातृशतकम् (104 पद्य), प्रभातमङ्गलशतकम् (104 पद्य), सुभाषितोद्धारशतकम् (102 पद्य), चतुर्थीशतकम् (101 पद्य), भारतदण्डकम् तथा सम्बोधनशतकम् (100 पद्य) हैं।

'नव्यभारतशतकम्' में भारतभूमि के गौरवमय अतीत, वैदेशिक आक्रान्ताओं का आगमन, भारतभूमि का दासत्व, भारतभूमि के वीर सपूतों द्वारा उसकी आजादी, स्वातन्त्र्योत्तर भारत में पनपी दुष्प्रवृत्तियों का मनस्तापात्मक चित्रण करते हुए अन्त में कविवर ने स्वयं के जन्म व वंशावली का परिचय प्रदान किया है। 'मातृशतकम्' में कविवर ने अपनी जन्मदात्री माँ अभिराजी देवी को नमन करते हुए उनके त्याग, तपस्या व संघर्षमय जीवन का वर्णन करते हुए संसार की समस्त महापुरुषों को जन्म देने वाली माताओं का स्मरण करते हुए, उनके समकक्ष स्वयं को आकार देने वाली माँ को नमन करते हुए, ग्रंथ का समापन किया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में रचनाकार की अभूतपूर्व मातृनिष्ठा का दर्शन मिलता है। 'प्रभातमंगलशतकम्' राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से एक विलक्षण काव्य है, जिसमें परम्परा को छोड़, राष्ट्र को जोड़ने वाले नूतन प्रतिमानों का प्रभात स्मरण प्रस्तुत किया गया है। कवि सृष्टि की समस्त दिव्य शक्तियों से प्रार्थना की है कि वे हमारे प्रभातकाल को भव्य, माङ्गलिक एवं शुभ कर दे। जीवन में संध्या, अंधकार, मध्यान्ह कभी नहीं हों। सदैव कृपा रूपी प्रभात बना रहे। 'सुभाषितोद्धारशतकम्' मूलतः एक पैरोड़ी है जिसमें प्राचीन पद्यों के अर्धांशों का निर्माण करते हुये शिष्ट–हास्य पैदा किया गया है। इनमें समसामयिक मानसिकता पर प्रहार करते हुए व्यंग्यात्मक शैली में युवा पीढ़ी को शिक्षा देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। 'चतुर्थीशतकम्' एक कूटकाव्य है, जो कवि द्वारा व्यक्ति विशेष के प्रति लिखा गया है। इसमें संसार की समस्त आसुरी शक्तियों को

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजसप्तशती

व्यंग्यात्मक शैली में नमन किया गया है। नमः के योग में सर्वत्र चतुर्थी का प्रयोग है। इसीलिए कविवर ने इसे 'चतुर्थीशतकम्' नाम दिया है। 'भारतदण्डकम्' दण्डक छन्दों में प्रस्तुत भारत की प्रशस्ति है। इसमें माँ भारती, भारतभूमि, भारतभूमि की साहित्यिक, प्राकृतिक, आध्यात्मिक शक्तियों तथा संस्कृत वाणी को नमन किया है। 'संबोधनशतकम्' अन्यापदेशों का संकलन है। इसमें कविवर ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष तरीके से जड़–चेतन को सम्बोधित करके अपनी दीर्घकालिक सहज अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इसका प्रकाशन वर्ष 1987 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद से हुआ है।

(8) धर्मानन्दचरितम्[1]

'धर्मानन्दचरितम्' प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के परम श्रद्धेय स्वामी धर्मानन्द सरस्वती महाराज की वार्षिकी के अवसर पर प्रकाशित श्रद्धांजलि काव्य है। मिश्र जी गुरुवर्य डॉ. राजकुमार वर्मा की प्रेरणा पर हरिद्वार के परमार्थ आश्रम जाने पर शुकदेवानन्द सरस्वती के पट्ट–शिष्य धर्मानन्द के सानिध्य में रहने पर कवि उनके सहज, सरल एवं सादगीपूर्ण व्यक्तित्व एवं असीम स्नेह से श्रद्धरापूरित हो उठे और उस श्रद्धा का छलकना ही काव्यधारा के रूप में श्रद्धाजलि काव्य के रूप में छलक उठा। इस काव्य में धर्मानन्द जी के जीवन चरित्र को उद्घाटित करते हुए स्वामी जी द्वारा स्वयं (कवि के प्रति) प्रकाशित तथ्यों का विस्तृत विवरण है। इसका प्रकाशन 1992 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद द्वारा किया गया है।

(9) पञ्चकुल्या[2]

पञ्चकुल्या प्रो. मिश्र प्रणीत द्वितीय कोशकाव्य है जिसमें शीर्षकानुसार पाँच पृथक् शतकों का संकलन है। ये शतक हैं–विमानयात्राशतकम्, बालीप्रत्यभिज्ञानशतकम्, यवसाहित्यशतकम्, सुरभारतीदण्डकम् तथा देववाणीहुङ्कार शतकम्। बालीद्वीपीय प्रवासावधि (1987–89) में विरचित इन पाँचों शतकों में से विमानयात्राशतकम् में कवि ने दिल्ली से सिंगापुर तक की विमानयात्रा का प्रत्यक्षानुभूत वर्णन प्रस्तुत किया है। विमान का उर्ध्वारोहण, अवतरण,

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, धर्मानन्दचरितम्
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पञ्चकुल्या

अन्तर्व्यवस्था तथा विमान से दिखाई देने वाले आकाश, मेघ एवं पृथ्वी का उद्‌भुत, रोमाञ्चक वर्णन कवि ने किया है। यह संस्कृत–कविता के क्षेत्र में संभवतः प्रथम बृहत्तम विमानयात्रानुभव–वर्णन है।

'बालीप्रत्यभिज्ञानशतकम्' में कवि ने अपनी प्रवास भूमि बालीद्वीप का सविस्तार वर्णन किया है। बालीद्वीप की भौगोलिक परिस्थितियों, संस्कृति एवं धार्मिक स्थलों के स्वाभाविक वर्णन से बालीद्वीप को साक्षात् प्रस्तुत कर दिया है।

'यवसाहित्यशतकम्' भारताश्रित प्राचीन जावी भाषा में रचे गए साहित्यिक का रोचक एवं ज्ञानवर्धक वर्णन है।

'देववाणीहुंकारशतकम्' तथा 'सुरभारतीदण्डकम्' में कवि ने भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत भाषा की महत्ता एवं वरेण्यता को प्रतिपादित करते हुए उनका अनुसरण करने की प्रेरणा के साथ ही संस्कृतावमानना करने वालों के प्रति अमर्ष व्यक्त किया है। यह रचना वर्ष 1993 ई. में वैजयन्त प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित हुई।

(10) करशूलनाथमाहात्म्यम्[1]

'करशूलनाथमाहात्म्यम्' नामक इस लघुकाव्य में कवि ने अपनी अद्‌भुत कल्पना से अपनी जन्मभूमि के समीपस्थ स्वयम्भू शिवलिंग 'करशूलेश्वर' को पौराणिक गरिमा प्रदान की है। आस–पास के गाँवों तथा क्षेत्रों की भी पुराण–सम्मत व्याख्या की गई है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र के अनुज ब्रह्मचारी आचार्य सुरेन्द्र मिश्र जी इसी सिद्धपीठ में स्थायी निवास करते हुए तत्रस्थ संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन करते थे।

कविवर कृत पौराणिक व्याख्या अनुसार 'करशूलनाथ' संबोधन के विषय में जिज्ञासा प्रकट करने पर शिव, पौराणिक प्रसंग पार्वती को सुनाते हैं। वह बताते हैं कि किस प्रकार पूर्वजन्म में दक्ष प्रजापति की पुत्री के रूप में सती दक्ष द्वारा किये गये यज्ञ में आमन्त्रित नहीं होने पर भी पहुँच जाती है। शिव के अपमान से क्रोधित होकर स्वयं को यज्ञमण्डपस्थ हवनकुण्ड में दग्ध कर देती है तथा हरद्रोही (हरदोई) नगर से सती नामक नदी बनकर

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, करशूलनाथमाहात्म्यम्

निकलती है। इसीलिए यह सती अथवा सई नदी शिव को अत्यन्त प्रिय है। अगले जन्म में पार्वती बनकर शिव की पत्नी बनती है। सई नदी के किनारे महिषासुर नामक राक्षस का आतंक होने पर तथा ऋषियों द्वारा रक्षा के लिए प्रार्थना किये जाने पर पार्वती ने महिषासुर का वध किया। महिषासुर को खोजने से पार्वती अत्यन्त थक चुकी थी तब उन्होंने शिव से सई नदी के किसी एकान्त स्थल पर विश्राम करने की अभिलाषा की। शिव अपने कन्धों पर बिठाकर पार्वती को सई नदी के तट पर ले आए और सुन्दर शैय्या का निर्माण कर उनको सुला दिया तथा करशूल (त्रिशूल) लेकर उनकी निर्विघ्न निद्रा के लक्ष्य से विचरण करने लगे। शिव के इस भार्या प्रेम के कारण देवगणों ने उनका जयगान करते हुए 'करशूलनाथ' नाम दिया। देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर शिव वहीं स्वयम्भू सई नदी के तट पर पार्वती सहित 'करशूलनाथ' नामक शिवलिंग के रूप में प्रकट हुए। यही करशूलनाथ उपाख्यान है। यह आख्यान राजेन्द्र मिश्र जी ने अपने अग्रज देवेन्द्र मिश्र की आकांक्षापूर्ति, अनुज सुरेन्द्र मिश्र की कीर्ति एवं माँ अभिराजी देवी की शिवकृपा के लिए लिखा। वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद द्वारा 1996 ई. में यह काव्य प्रकाशित हुआ।

(11) कस्मै देवाय हविषा विधेम[1]

प्रो. मिश्र द्वारा प्रणीत तीसरा कोशकाव्य है—कस्मै देवाय हविषा विधेम। वस्तुतः यह ग्रन्थ नाराशंसी मुक्तक, सप्तक एवं अष्टक—कोटक काव्यों का वृहत्तम संकलन है। इसको 'प्रशस्ति काव्य' भी कहा जा सकता है। यह कोशकाव्य कई खण्डों में विभक्त है। 'देवस्तुतिः' (14 अष्टक) में गंगा, कावेरी, चिदम्बर, मीनाक्षी, बृहदीश्वर, जम्बुश्वेश्वर एवं शिला दुर्ग की महिमा का बखान है। 'महात्मस्तुतिः' में कालिदास, भवभूति, भोज, साईनाथ, सत्यसाईं, अरविन्द, परमाचार्य चन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वती, जयेन्द्र सरस्वती, गुरुगोविन्द सिंह, दशगुरु, शुकदेवानन्द आदि की प्रशस्तियाँ संग्रहीत हैं। 'विद्वत्स्तुतिः' में प्रो. शार्पे, गोपीनाथ कविराज, आद्याप्रसाद मिश्र, वासुदेव द्विवेदी, बलदेव उपाध्याय, महादेवी वर्मा, भोलाशंकर व्यास, रामकरण शर्मा, लक्ष्मीकांत दीक्षित, चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, विद्यानिवास मिश्र, सत्यव्रत शास्त्री, रेवा प्रसाद द्विवेदी, शशिधर शर्मा, आचार्य केशवदेव, श्रीमती कमलारत्नम् एवं प्रो. श्रीनिवासरथ आदि 43 विद्वानों के स्तुतिपरक सप्तक अथवा अष्टक हैं।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कस्मै देवाय हसिषा विधेम

'राजस्तुतिः' में गांधी, नेहरू, मालवीय, राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टंडन, सुभाषचन्द्र बोस, राममनोहर लोहिया, गणेशशंकर विद्यार्थी, आचार्य नरेन्द्र देव, बाबू, सम्पूर्णानन्द, कमलापति त्रिपाठी, बी.बी. गिरि, इन्दिरा गांधी, पैरालारत्नम्, सत्यनारायण रेड्डी, सी.वी.राव, वाजपेयी, जोशी, महामहिम सुहनार्तो तथा नेल्सन मंडेला आदि की प्रशस्तियाँ हैं।

'प्रकीर्णस्तुतिः' अथवा 'सत्पुरुषस्तुतिः' में हरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी, दामोदर स्वरूप विद्रोही, दानबहादुर सिंह सूँड, विजय देवनारायण शाही आदि की प्रशस्तियों के द्वारा उनके व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व को प्रकाशित किया गया है।

इन पाँचों खण्डों से सर्वथा पृथक् अभिराजराजेन्द्रप्रशस्ति शीर्षक एक और खण्ड है जिसमें शिष्यों, मित्रों तथा शुभाकांक्षियों द्वारा प्रणीत कवि की अपनी प्रशस्तियों का संग्रह है। सात सौ से भी अधिक श्लोकों के इस प्रशस्ति काव्य में अंग्रेजी कृतियों टामस, ट्रांसमोटर तथा टेड्यूज की कविताओं व डॉ. मिश्र द्वारा किया गया संस्कृतानुवाद, अनिरुद्ध नीरव के छत्तीसगढ़ी गीतों व स्वयं के हिन्दी गीतों के संस्कृत रूपान्तरण, 'विदा–बालि' का संस्कृत रूपान्तरण इस कृति को विलक्षण स्वरूप प्रदान करता है। वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा वर्ष 1996 ई. में यह कृति प्रकाशित हुई।

(12) अरण्यानी[1]

'अरण्यानी' प्रो अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत उन कविताओं का संकलन है, जो 46 शीर्षकों में विभक्त व उपजाति, मालिनी आदि संस्कृत वार्णिक छन्दों में उपनिबद्ध है। 1962 ई. से 1999 के मध्य अपने अध्ययन काल में प्रणीत ये कवितायें कविवर के जीवन के उतार–चढ़ाव के 37 वर्षों के अनुभवों, संवेदनाओं एवं परिवर्तनों का सार अपने भीतर समेटे हुए हैं। यह संकलन कवि की काव्ययात्रा के सतत् विकास, क्रमिक परिपक्वता, काव्य सौष्ठव की सतत समृद्धि का इतिहास है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अरण्यानी

अन्तिम सात शीर्षकों (वाग्देवी, पराम्बा, शिव, दशावतार, आञ्जनेय, गङ्गा, विश्वेदेव) की कवितायें आद्यन्त ह्रस्वाक्षर में लिखी गई हैं जो पढ़ते ही पुलकन पैदा करती हैं। वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 1999 ई. में यह प्रकाशित हुई।

(13) संस्कृतशतकम्[1]

यह लघुशतक संस्कृत की श्रीमद्भगवद्गीता के समान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत वर्ष (सन् 2000 ई.) में प्रणीत एवं प्रकाशित इस लघुकाव्य का दूसरा नाम है– 'कस्मात् संस्कृतमध्येयम्?' अर्थात् संस्कृत क्यों पढ़नी चाहिए ? इस काव्य के 103 अनुष्टुप् छन्दों में संस्कृत के आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, व्याकरणात्मक, भाषिक एवं सामाजिक महत्त्व को अकाट्य तर्कों के साथ रेखांकित करते हुए उसके अध्ययन की अपरिहार्यता को सिद्ध किया गया है।

अपने चिन्तन, ज्ञान, दर्शन, वैज्ञानिकता, तार्किकता के कारण सर्वप्रथम ऋचाओं के रूप में यथार्थ सत्य का दर्शन करने वाले विश्वगुरु भारत को असंस्कृत होने से बचाने के लिए भारतवंशियों की प्राणस्वरूप संस्कृत भाषा को बचाना अनिवार्य है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य हमारी पहचान है, इसमें हमारी जड़े निहित हैं, यह हमारे समस्त ज्ञान का मूल है, यह हमारे इतिहास का अपरिहार्य एवं अविभाज्य अंग है। हमारे सांस्कृतिक, साहित्यिक, भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक विकास की आधारशिला संस्कृत साहित्य में विराजमान है। कवि ने इस तर्क को भी निर्मूल बताया कि संस्कृत भाषा कठिन एवं क्लिष्ट है। संस्कृत भाषा के व्याकरण एवं भाषा संरचना के मूल आधार बिन्दुओं का परिचय देते हुए लिखा है कि–

"न शंका न सन्देहो न चापि संभ्रमः क्वचित्।
संस्कृते वाक्यनिर्माणे धारणा यदि निर्मला।।"

न केवल उच्चकोटिक साहित्य के ज्ञान के लिए अपितु ज्योतिष, कर्मकाण्ड, तंत्र, मंत्र, मृत्यु, पुनर्जन्म, मोक्ष की अवधारणाओं को समझने के लिए, श्रेयस्–प्रेयस् ज्ञान के

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, संस्कृतशतकम्

लिए, लोक–परलोक विषयक जिज्ञासा के शमन के लिए, काव्यानन्द के लिए, भारतीय संस्कृति एवं संस्कारों के लिए संस्कृत भाषा अनिवार्य है–

"संस्कृतेनैव संस्काराः संस्कारैरेव संस्कृतिः।
संस्कृत्यैव संस्काराः संस्कारैव राष्ट्रकार्यं नु भारतम्।।"

सांस्कृतिक संक्रमण के इस दौर में सम्पूर्ण अद्यतन समाज अपनी पुरातन देवसंस्कृति एवं देववाणी को विस्मृत कर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का अंधानुकरण कर रहा है। इस मनोदशा का कारण निश्चित रूप से संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रति उदासीनता ही है।

संस्कृतशतकम् का प्रत्येक श्लोक उद्धरणीय है। कवि ने संस्कृत को लोक–परलोक सिद्ध करने वाला एक महामंत्र स्वीकार किया है। हिन्दी एवं अंग्रेजी रूपान्तरों के साथ वर्ष 1999 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से यह रचना प्रकाशित हुई।

(14) अभिराजसहस्रकम्[1]

'अभिराजसहस्रकम्' अभिराजराजेन्द्र मिश्र प्रणीत चतुर्थ कोशकाव्य है। इसमें समान प्रकृति वाले दस शतककाव्यों–प्रबोधशतकम्, भोजशतकम् (धारामाण्डवीयम्) हिमाचलशतकम्, भारतीपरिदेवनशतकम् (राजीवश्रद्धाञ्जलिशतकम्), उज्जयिनीशतकम् (कालिदासमहोत्सवशतकम्), वैशालीशतकम्, विस्मयशतकम् (विस्मयलहरी), सौवस्तिकशतकम्, गुर्जरशतकम् तथा पाकशासनशतकम् (कार्गिलशतकम्) का संकलन है।

प्रबोधशतकम् में यक्षिणी को प्रेषित यक्ष के वे सन्देश हैं जो यथा–कथञ्चित् उत्तरमेघ में अभिव्यक्त नहीं हो पाये हैं। कालिदास का मेघ, जो कह न सका, उस संदेश को कवि कल्पना ने साकार रूप प्रदान किया है। इस दृष्टि से इसे 'मेघदूत का पूरककाव्य' अथवा 'उत्तर मेघदूत' कहा जा सकता है। इस काव्य के 100 पद्य उपजाति छन्द में लिखे गये हैं।

धारामाण्डवीयम् में मालवेश्वर महाराज भोजदेव के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का वर्णन स्रग्धरा छन्द के माध्यम से किया गया है। काव्य के अन्तिम सात (101–107) पद्य वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध है।

हिमाचलशतकम् में हिमाचल प्रदेश की भौगोलिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक एवं धार्मिक समृद्धि का अत्यन्त मनोरम वर्णन है। इसमें 107 पद्य हैं। भारतीपरिदेवनशतकम् में कवि ने

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजसहस्रकम्

राजीव गांधी की मृत्यु पर उनको अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित की है। यह काव्य भारतमाता के (राजीव–निमित्तक) विलाप के रूप में लिखा गया है। इसमें 107 अनुष्टुप् छन्द हैं।

उज्जयिनी तथा वैशालीशतकम् में क्रमशः 103 तथा 102 श्लोकों में दोनों नगरियों के ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक वैभव को रेखांकित किया गया है। उज्जयिनीशतकम् में कवि ने कालिदास–महोत्सव की परम्परा का सांगोपांग चित्रण किया है।

विस्मयलहरी (105 पद्य) एक अधिक्षेप–काव्य (Satire) है जिसमें प्रत्येक पद्य का चतुर्थ चरण 'दृष्ट्वेति मे विस्मयमेति चित्तम्' से समाप्त होता है। कविवर इन पद्यों में राष्ट्र की ढेर सारी आपराधिक, षाड्यान्त्रिक विकृतियों को देखकर विस्मय व्यक्त करते हैं। समूचा काव्य उत्कट राष्ट्रभक्ति की भावना से ओत–प्रोत दिखाई देता है। सौवस्तिकशतकम् प्रो. अभिराजराजेन्द्र के उस वक्तव्य की काव्यात्मक प्रस्तुति है जो उन्होंने मैनपुरी में आयोजित देववाणी–परिषद्, नई दिल्ली के वार्षिक समारोह में अध्यक्षीय भाषण के रूप में प्रस्तुत किया था। इस काव्य में संस्कृत विरोधियों को खुलकर फटकारा है। इसमें 100 श्लोक हैं।

गुर्जरशतकम् में 104 अनुष्टुप् छन्दों में गुजरात यात्रा के सन्दर्भ में गुर्जर भूमि के वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रतिबिम्बन है।

'पाकशासनशतकम्' करगिल युद्ध के तुरन्त बाद की रचना है। इसमें आर्य संस्कृति विद्रोही पाकिस्तान की शत्रु सेना का संहार करने वाली भारतीय सेना को पाक नामक दानव का वध करने वाले पाकशासन अर्थात् इन्द्र के समकक्ष शत्रुविजयी स्वरूप चित्रित किया है साथ ही करगिल युद्ध में अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले भारतीय वीरों का स्तवन किया गया है।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 2000 ई. में यह काव्य प्रकाशित हुआ।

(15) मृगाङ्कदूतम्[1]

मेघदूत की तरह 'मृगाङ्कदूतम्' कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र की अपनी माँ के प्रति, देश के प्रति, प्रकृतिसौंदर्य के प्रति आत्मानुभूति की सुन्दर अभिव्यक्ति है। दूतकाव्यों की

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, मृगाङ्कदूतम्

श्रेणी में रखा जाने वाला यह काव्य भारत को जावा एवं बालीद्वीप से जोड़ने वाला एवं समकालीन संस्कृत साहित्य के पुरोधा साहित्यकारों के प्रति प्रशस्ति प्रकट करने वाला असाधारण काव्य है। काव्य का हिन्दी पद्यान्तर स्वयं कवि ने तथा अंग्रेजी अनुवाद डॉ. रंगनाथ ने किया है।

1987 ई. से 1989 ई. तक बालीद्वीपीय उदयन यूनिवर्सिटी में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में प्रवास के समय अपनी जन्मभूमि एवं वृद्धा जननी की स्मृति में संतप्त कवि पूर्णिमा

मेघदूत की तरह मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध यह काव्य पूर्वमृगाङ्क (55 पद्य) एवं उत्तरमृगाङ्क (75 पद्य) में विभक्त है। पूर्वमृगाङ्क में चन्द्र की बाली से धनुष्कोटि तक की यात्रा का वर्णन है जिसमें सुमात्रा के घने जंगल, अण्डमान–निकोबार तथा कम्बोडिया के मन्दिरों का वर्णन है। उत्तरमृगाङ्क में चन्द्रमा की भारतयात्रा का वर्णन है जिसमें वह तिरुवनन्तपुरम्, मदुरई, रामेश्वरम्, पुरी, कलकत्ता, गौहाटी, दिल्ली, जयपुर, उज्जैन आदि की यात्रा कर अन्ततः कवि के घर प्रयाग पहुँचकर कवि की माँ अभिराजी देवी को कवि के सन्देशों से सांत्वना देता है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा पण्डित बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में 2003 ई. में यह काव्य प्रकाशन में आया।

(16) चर्चरी[1] (स्फुटकाव्य–संग्रह)

सात खण्डों में विभाजित चर्चरी–संस्कृत काव्य में प्रायः हजार स्फुट पद्यों में वाक्‌चर्चा, देवचर्चा, राष्ट्रचर्चा, आत्मचर्चा, जगच्चर्चा, गुणचर्चा तथा तपश्चर्चा के रूप में आत्मानुभूति प्रकट की गई है। वाक्‌चर्चा में वागीश्वरी की आराधना के रूप में तीन कवितायें, 'देवचर्चा' में सरस्वती, जयन्ती (जीणमाताधाम, सीकर, राजस्थान), काशी विश्वनाथ तथा कालभैरव की स्तुतियाँ हैं। इसी खण्ड में संकलित 'जयशिव गौरि! जननि जय गङ्गे!' शीर्षक काव्य स्वयमेव एक शतककाव्य है जो काशी के विविध ऐश्वर्यों का प्रकाशन करता है। 'राष्ट्रचर्चा' में राष्ट्रीय विषयों से सम्बन्धित मार्मिक कवितायें है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, चर्चरी (स्फुटकाव्य–संग्रह)

'आत्मचर्चा' में आत्मसंवेदना को व्यक्त करने वाली सात कवितायें हैं। 'जगच्चर्चा' में पाँच शीर्षक हैं। 'गुणचर्चा' में सुभाष, पटेल, वर्णेकर, आचार्य बलदेवोध्याय, आचार्य विष्णुकान्तशास्त्री, डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, आचार्य मुंशीराम शर्मा 'सोम', श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी आदि देश की विलक्षण विभूतियों की प्रशंसा युक्त नाराशंसी कवितायें हैं। 'तपश्चर्चा' में दीक्षागुरु स्वामी रामभद्राचार्य जी, आचार्य तुलसी, आचार्य महाप्रज्ञ आदि श्रेष्ठ गुरुवृन्दों की प्रशस्तियाँ संकलित हैं।

यह काव्य वर्ष 2004 ई. में खिस्ते ग्रन्थ माला के द्वितीय पुष्प के रूप में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ।

(17) जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्[1]

'जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्' में स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के जन्म, शैशवकाल, युवावस्था, कर्त्तव्यबोध, स्वतंत्रता संग्राम के प्रति समर्पण, स्वतन्त्रता एवं स्वाधीनता के लिए संघर्ष, नवीन भारत के निर्माण आदि के परिचायक विषयों को प्रशस्तिमङ्गलम्, उदयपृष्टभूमिः, कोमलशैशवम्, प्रबुधयौवनतम्, कर्त्तव्यबोधः, स्वातन्त्र्यसमराङ्गणम्, स्वाधीनतोत्सवः, अभिनवराष्ट्रनिर्माणम्, महाप्रयाणम् तथा उपसंहार : नामक दस खण्डों तथा 201 पद्यों में विभक्त किया है। पं. नेहरू के जीवन के सन्दर्भ में इन्दिरा, राजीव आदि से सम्बद्ध कवि–प्रणीत स्फुट कवितायें भी ग्रन्थान्त में संकलित हैं।

(18) मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्[2]

मृग (हिरन) तथा मृगेन्द्र (सिंह) का आश्रय लेकर अन्योक्ति के माध्यम से मानवीय प्रवृत्तियों को वर्णित कर सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने वाला यह अपनी तरह का एक विलक्षण 'अन्योक्तिशतक' है। कविवर ने मृग तथा मृगराज के चरित्र, आचरण, मूल प्रवृत्तियों, स्वभाव एवं क्रियाओं का अत्यन्त सूक्ष्म अवलोकन किया है। साथ ही मनुष्य के जीवन एवं इसकी मूल प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अध्ययन किया है तथा अन्योक्ति के माध्यम से बहुत सुन्दर साम्य स्थापित किया है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्

'हिरन' के जीवन में वर्तमान सुख, वात्सल्य, निर्भयता, भाग्याश्रम, विपत्ति, संघर्ष, दुर्भाग्य, पराधीनता, छल, सौभाग्य का गर्व, कृपा, धैर्य, संन्यास, कृतज्ञता, पुरुषार्थ, प्रणय एवं विरह की अवस्थाओं के आश्रय से मनुष्य को लक्ष्य बनाते हुए पुरुषार्थ के लिए प्रेरणा देने का कार्य भी किया है। मृग का जीवन सामान्य मनुष्य के जीवन का प्रतिबिम्ब है।

मृगराज के प्रणय, वात्सल्य, विकत्थना, पश्चात्ताप, काल एवं व्याधिग्रस्त होना, सुभटता, वंचकत्व, कृतघ्नता, धिक्कार, कदर्थना, एकाकीपन, बाल्यावस्था, अभिशप्तता, क्षमाशीलता, स्वाभिमानता, सुख, प्रभुत्व आदि का वर्णन करते हुए प्रभुत्व सम्पन्न मनुष्य के जीवन को लक्ष्य बनाते हुए मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

विषयानुसार रेखाचित्रों के साथ इसको कवि ने संपादकत्रय रत्नकीर्ति विजय, धर्मकीर्ति विजय एवं कल्याणकीर्ति विजय के गुरु यतिराट् आचार्य श्री विजयशीलचन्द्र सूरि महाराज को समर्पित किया है। इस काव्य का प्रकाशन सन् 2008 ई. में श्री भद्रङ्करोदय शिक्षण ट्रस्ट, गोधरा द्वारा नन्दनवनकल्पतरु–प्रकाशन के चतुर्थ पुष्प के रूप में किया।

(ग) नवगीत–संग्रह

(19) वाग्वधूटी[1]

'वाग्वधूटी' प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत 54 मधुर गीतों का संग्रह है। इन सरस एवं सुखबोध्य, गीतों में राष्ट्रीय संवेदनाएँ, प्राकृतिक सौन्दर्य, लोकचित्र एवं मानव मनोभूमि प्रतिबिम्बित होती है। लगभग समस्त गीत पीड़ाओं के चित्रण हैं। डॉ. राजेन्द्र मिश्र के अपने शब्दों में उनके गीत उनकी 'जीवन व्यथा के चित्र' हैं। इसका प्रथम संस्करण अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा सन् 1978 ई. में प्रकाशित किया गया।

(20) मृद्वीका[2]

'मृद्वीका' में नमस्या, रूपश्रीः, ऋतुश्रीः, जिजीविषाः, राष्ट्रश्रीः तथा प्रकीर्णम्, शीर्षकों के अन्तर्गत 53 नवगीतों को छः खण्डों में विभाजित करके कवि ने अपने लोकगीतों को संकलित किया है। इन खण्डों के शीर्षक इनकी विषयवस्तु का प्रतिनिधित्व करते हैं।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वाग्वधूटी–सम्पूर्ण नवगीतसंग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, मृद्वीका, वही

जिनमें क्रमशः मातृवन्दन, सौन्दर्य, शृङ्गारवर्णन, ऋतुसौन्दर्य, मानवजिजीविषा, राष्ट्रगौरव तथा अन्य प्रकीर्ण विषयों को समाहित किया गया है। इन नवगीतों में वाग्वधूटी के गीतों से कहीं अधिक परिष्कार, प्रौढि तथा लोक–व्याप्ति है।

(21) श्रुतिम्भरा[1]

'श्रुतिम्भरा' नवगीतसंग्रह का प्रकाशन वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 1989 में हुआ है। कुल 37 गीतों की इस संकलना में 'संस्कृत ध्वनि' व 'राष्ट्रध्वनि' के अन्तर्गत कवि ने राष्ट्रीय गौरव के लिए तथा भारतीय संस्कृति एवं सांस्कृतिक विरासत के सरंक्षण एवं संवर्धन हेतु संस्कृत की अनिवार्यता को प्रतिपादित किया है। 'प्रवासध्वनि' के गीतों में मातृभूमि को छोड़कर अन्यत्र रह रहे लोगों की मनोभूमि का शाब्दिक रेखांकन किया गया है। 'निसर्गध्वनि' में प्रकृति के गीत हैं। इसमें भारतीय पर्वों, ऋतुओं, नदियों, पर्वतों, समुद्रों एवं भारतभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य सम्पदा का वर्णन किया गया है। 'आत्मध्वनि' में कवि के जीवन से सम्बन्धित कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं। कवि के अनुसार सांस्कृतिक संकट के दौर में भी भारतीय संस्कृति अपने पृथ्वीपुत्रों के अदम्य साहस और उत्साह के सहारे सुरक्षित रहेगी। वस्तुतः श्रुतिम्भरा विविध भावों की सुन्दर अभिव्यञ्जना करने वाला एक सफल गीतिकाव्य है।

(22) मधुपर्णी[2]

1989 से 2000 ई. के मध्य प्रणीत नवगीतों, ग़ज़लों तथा छन्दोमुक्त कविताओं का संकलन है– 'मधुपर्णी'। यह ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त है। 'गलज्जलिका' शीर्षक नामक प्रथमखण्ड में 22 गजलें हैं, 'गीतयः' नामक द्वितीय खण्ड में 28 नवगीत है तथा 'मुक्तच्छन्दांसी' नामक तृतीय खण्ड में 18 छन्दोमुक्त, लम्बी भावप्रवण काव्याभिव्यक्तियाँ हैं।

जय–पराजय, सुख–दुःख, आशा–निराशा, सम्पत्ति–विपत्ति के जीवन सागर मंथन से जीवनमूल्यों रूपी जीवनामृत की खोज 'मधुपर्णी' में लोकहित एवं लोकमङ्गल के लिए कवि के शब्द समर्पित है। सांसारिक संतापों से अथवा प्रेम की ऊष्मा से क्रान्तदर्शी कवि का

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, श्रुतिम्भरा, सम्पूर्ण नवगीतसंग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, मधुपर्णी, वही

हृदय जब पिघलता है तो काव्य रूपी सरिता प्रवाहित होती है। इसी मन्तव्य को सार्थक करता प्रथम खण्ड 'गलज्जलिका' भावबोध एवं रचनाशिल्प की दृष्टि से उर्दू–फारसी गजलों की झलक है। ये रचनाऐं जीवन के विविध भावों को शब्दार्थरूप में सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। 'गीतयः' नामक द्वितीय खण्ड में संकलित गीतों में मानवीय संवेदनाओं की सहज एवं भावपूर्ण सचित्र अभिव्यक्ति जीवन चंचलता, गहनता, स्निग्धता, प्रवाहशीलता एवं सहजता का भावपूर्ण प्रस्तुतिकरण है। मधुपर्णी प्राचीन जीवन मूल्यों एवं अर्वाचीन विसंगतिपूर्ण यथार्थ के बीच सामञ्जस्य का नूतन मार्ग प्रशस्त करती हुई सी जीवन की महाधारा है। इसका प्रकाशन 2000 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वारा हुआ।

(23) अभिराजगीता[1]

'अभिराजगीता' प्रो. मिश्र प्रणीत प्रायः सौ नवगीत रचनाओं का सचित्र संकलन है। इसमें मङ्गलगीतम्, स्वागतगीतम्, वागीश्वरीगीतम्, सुरभारतीगीतम्, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्), राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्), भारतीयसंस्कृतिगीतम्, प्रकृतिविलासगीतम्, शिशुभावनागीतम् तथा प्रकीर्णम् ये दस खण्ड हैं। 'मङ्गलगीतम्' शीर्षक युक्त रचनाओं में कविवर ने जीवन के मङ्गलमय होने की कामना की है। इस हेतु कवि सभी से कामना करते हुए कहते हैं जब हमारा चिन्तन, मनन व आचरण सदा मधुर, बन्धुतापूर्ण एवं प्रेमयुक्त होगा तो हम सबका सम्पूर्ण जीवन मङ्गलमय हो जावेगा। 'स्वागतगीतम्' शीर्षक युक्त रचनाओं में अतिथि सत्कार हेतु स्वागतवेला में गाये जाने वाले स्वागत गीतों का संग्रह है। 'वागीश्वरीगीतम्' यह खण्ड भगवती वागीश्वरी माँ सरस्वती की आराधना में कविवर द्वारा अर्पित सुमनों का सुमनोहर पुष्पगुच्छ है। 'सुरभारतीगीतम्' इस शीर्षक से कवि द्वारा संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार, अक्षुण्णता, जीवन्तता, सुमधुरता आदि का वर्णन करते हुए लिखा है कि राष्ट्र की समृद्धि हेतु संस्कृतभाषा का एक बार पुनः जनभाषा बनना आवश्यक है। राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्) में भारतभूमि की महिमा, गुरुता व श्रेष्ठता का बखान मिलता है, वहीं राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्) में कवि द्वारा भारतदेश में व्याप्त

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजगीता, सम्पूर्ण नवगीतसंग्रह

समकालीन समस्याओं से रूबरू कराया है। 'भारतीयसंस्कृतिगीतम्' शीर्षक के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन हेतु प्रेरक गीतों का संग्रह है। 'प्रकृतिविलासगीतम्' में कवि द्वारा भगवान् भास्कर, रजनी, चन्द्रिका, मेघ, षड्ऋतुओं, गङ्गा आदि प्रकृति के समूचे बिम्बों को अपनी रचनाओं का विषय बनाते हुए प्रकृति का सुमनोहारी वर्णन किया है। 'शिशुभावनागीतम्' इस खण्ड में बालोपयोगी सुन्दर कविताओं का संकलन है। जिसमें लोरी, अक्षरगान, कीट–पतंगों, पशु–पक्षी, रेलगाड़ी, चन्दामामा आदि का परिचय कराने वाली रचनाऐं हमें बरबस ही बचपन की ओर खींच ले जाती हैं। अन्तिम 'प्रकीर्णम्' खण्ड में अपने गीतों के माध्यम से गाँधी जी की जीवनी को चित्रित किया है और अन्त में सम्पूर्ण राष्ट्र की मङ्गलकामना व्यक्त की है। विषयानुसार रेखाचित्रों के साथ इसको कवि ने संपादकत्रय रत्नकीर्तिविजय, धर्मकीर्तिविजय एवं कल्याणकीर्तिविजय के गुरु श्री विजयशीलचन्द्र सूरी महाराज को समर्पित किया है। इस काव्य का प्रकाशन सन् 2011 ई. में श्रीभद्रङ्करोदय शिक्षण ट्रस्ट, गोधरा द्वारा नन्दनवनकल्पतरु प्रकाशन के षष्ठ पुष्प के रूप में किया।

(घ) गलज्जलिका–संग्रह

(24) कनीनिका[1]

'कनीनिका' प्रो. अभिराज राजेन्द्र प्रणीत प्रारम्भिक कालखण्ड की गज़लों का ही स्वतन्त्र संग्रह है, जो वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा तथा मधुपर्णी आदि नवगीत संग्रहों में ही संकलित थी। परन्तु अपने ग़ज़ल कोटिक गीतियों का संकलन 'कनीनिका' शीर्षक से किया है। इसमें कुल 53 ग़ज़लें हैं।

'कनीनिका' अर्थात् आँख की पुतली जो दृष्टि एवं सौन्दर्य की प्रतीक है। इसकी विलक्षण भाव–भंगिमाएँ जीवन के विविध रूपों को सहज ही हृदयांकित कर देती है। कवि की युवावस्था के अनुकूल ग़ज़लों में रूमानियत एवं चंचलता है। इसकी प्रस्तावना में कवि ने अपनी ग़ज़ल यात्रा का विस्तारपूर्वक एवं प्रामाणिक ऐतिह्य प्रस्तुत किया है। वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 2008 ई. में यह संग्रह प्रकाशित हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कनीनिका, सम्पूर्ण गलज्जलिका–संग्रह

(25) मत्तवारणी[1]

'मत्तवारणी' प्रो. मिश्र प्रणीत 60 ग़ज़लों का संकलन है। समस्त ग़ज़लें लगभग सवा साल की अवधि में लिखी गई हैं तथा वे जिस क्रम में लिखी गई हैं उसी क्रम में अंकित हैं। यह संकलन संस्कृत ग़ज़लविधा के सूर्य–चन्द्र कहे जाने वाले भट्ट मथुरानाथ शास्त्री एवं बच्चूलाल अवस्थी के श्रीचरणों में समर्पित किया है।

प्रो. मिश्र की ग़ज़लों का अपना एक संविधान है। उनका एक–एक शेर अलग–अलग प्रसंग, देशकाल, मनःस्थिति, घटनाप्रसंगों की अनुभूति करवाते हुए कहीं भी पाठक की तन्मयता को भंग नहीं होने देता है। विलोकिता, शनैःशनैः, भूरि–भूरि, धाराधरोऽहम्, मत्तवारणी जैसी बहुश्रुत एवं प्रशंसित ग़ज़लें इसी संग्रह में विद्यमान हैं। गज़लों के रचना–विन्यास एवं संयोजन कौशल से कवि की अद्‌भुत प्रतिभा एवं सतत काव्य–साधना परिलक्षित होती है।

इस ग़ज़ल संग्रह का प्रकाशन 2001 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा हुआ।

(26) शालभञ्जिका[2]

अपनी जीवन–सहचरी तथा गलज्जलिका–लेखन की प्रेरणास्रोत डॉ. (श्रीमती) राजेश कुमारी मिश्र को समर्पित कवि की रचना में कुल 68 ग़ज़लों का संकलन विद्यमान है।

उपालम्भा न दीयेरन्, प्रीतिवीथी, गभीरा–गभीरा, भविता तदेव विलक्षणम्, मामवेहि क्षुमाम्, गतभीरहं जातः, यदा वहन्नासम्, हन्तः भूयो मरिष्ये, त एव बन्धुवराः, भुजङ्गाः कथम्? पथमती जाता, यत्र काकोदराश्चन्दनचन्दने, शालभञ्जिका आदि शीर्षकाश्रित ग़ज़लों का यह संग्रह सहृदय सामाजिकों के लिए अत्यन्त लोकप्रिय तथा चित्तानुरञ्जक सिद्ध हुआ है। वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 2007 ई. में यह संग्रह प्रकाशित हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, मत्तवारणी, सम्पूर्ण गलज्जलिका–संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, शालभञ्जिका, वही

(27) हविर्धानी[1]

कनीनिका, मत्तवारणी, शालभञ्जिका, स्वनामानुरूप, रागात्मक अभिव्यक्तियों के प्रतीक इन तीनों संग्रहों से भिन्न 'हविर्धानी' की ग़जले धर्मोन्मुख जीवन का प्रतीक हैं। 'हविर्धानी' का अर्थ ही है—यज्ञकुण्ड, हविष्यान्न की वेदी, जो शुचिता, पवित्रता, विवेक, अन्तश्शम तथा वैराग्य का भाव प्रकाशित करता है। तद्वत् हविर्धानी की ग़ज़लें पारलौकिक श्रेयमार्ग तथा भोग—विरक्ति को संकेतित करती हैं। हविर्धानी निःश्रेयस में पर्यवसित है।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 2009 ई. में यह संकलना प्रकाशित हुई।

(ङ) नाटिका—नाटक

(28) प्रमद्वरानाटिका[2]

श्रीमद्भागवत महापुराण एवं महाभारत में उपलब्ध महर्षि प्रमति के पुत्र 'रूरू' एवं महर्षि स्थूलकेश की कन्या 'प्रमद्वरा' की प्रणयकथा पर आधारित एवं विशुद्ध नाट्यशास्त्रीय मानदण्डों पर लिखी गई यह चार अंकों की शृंगाररसप्रधान नाटिका है।

नाट्य शास्त्रीय मानदण्डों के अनुरूप कवि ने 'रुरु' को आनर्त—नरेश का जामाता, परन्तु राजोचित वैभव—विलास से विरक्त एक धीरललित नायक के रूप में चित्रित किया है।

यह 1984 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित हुई।

(29) विद्योत्तमानाटिका[3]

महाकवि कालिदास एवं उनकी अर्धाङ्गिनी राजकुमारी विद्योत्तमा के मिलन—विछोह की पीठिका पर आधारित इस ऐतिहासिक नाटिका में प्रो. मिश्र ने इतिहास एवं कविकल्पना का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है, जिससे कालिदास—विषयक अनेक विप्रतिपत्तियों का समाधान मिल जाता है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, हविर्धानी, सम्पूर्ण गलज्जलिका—संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रमद्वरानाटिका, सम्पूर्ण नाटिका—नाटक संग्रह
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, विद्योत्तमानाटिका, वही

नाटिका में हिमालयवर्ती भागीरथी क्षेत्र के कपिष्ठल ग्राम के अनाथ देवदत्त एवं विद्योत्तमा के विवाह, देवदत्त की पूर्व पत्नी 'सुतनुका' में आसक्ति की भ्रांति के कारण वियोग, उज्ज्यन्यस्थ गढकालिका मन्दिर में तपश्चर्या से विद्वत्ता एवं कवित्व–प्राप्ति तथा अन्ततोगत्वा पश्चात्तापयुक्त विद्योत्तमा एवं कालिदास का मिलन इस नाटिका की विषय वस्तु है। यह ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यूचन्द्रावल जवाहर नगर, दिल्ली द्वारा वर्ष 1992 ई. में प्रकाशित हुई।

(30) प्रशान्तराघवम्[1]

रामायण के कथानक को आधार बनाकर लिखा गया यह नाटक नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के कुटुम्ब प्रवण प्रशान्तचरित्र को प्रस्तुत करता है। 'प्रशान्तराघवम्' में समकालीन जीवन मूल्यों एवं स्वयं के मौलिक चिन्तन को सार्थकता प्रदान करते हुए कवि ने कुछ नवीन प्रयोग किए हैं जैसे–रामकथात्मक नाटकों की परम्परा के विपरीत इस नाटक में विदूषक (पिण्डोदक) की अवधारणा, विदूषक का परम्परायुक्त व्यक्तित्व, नाटक में प्राचीन प्राकृतों के स्थान पर आधुनिक प्राकृतों (भोजपुरी, अवधी, ब्रजभाषा) का प्रयोग। इन प्रयोगों के अतिरिक्त कविवर ने इस नाटक के कथानक को सीता निर्वासन से मुक्त करते हुये कथानक को सकारात्मक एवं सुखान्त बनाकर समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया है।

कविवर प्रणीत इस सप्ताङ्क नाटक में रजक अपनी जड़बुद्धि, क्षुद्र व्यवहार एवं अपनी सांस्कारिक जड़ता को स्वीकार करते हुए तथा पश्चात्ताप युक्त होकर राम से क्षमा मांगता है। करुण–हृदय राम उसे क्षमा कर देते हैं। इस प्रकार सीता–निर्वासन का संकट स्वयं टल जाता है।

इस काव्य में लवकुश का जन्म अयोध्या में होता है तथा वे पाँच वर्ष की उम्र में शिक्षा ग्रहण हेतु लक्ष्मण व माँ सीता के साथ वाल्मीकि आश्रम में जाते हैं। देवी सीता लव–कुश के साथ मास पर्यन्त रुककर अयोध्या आ जाती है। इस प्रकार नाटक का मंगलमय समापन होता है।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से वर्ष 2008 में यह नाटक प्रकाशित हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रशान्तराघवम्, सम्पूर्ण नाटिका–नाटक संग्रह

(31) लीलाभोजराजम्[1]

मालवराज भोज के जीवनवृत्तान्त को आधार बनाकर लिखा गया 'लीलाभेजराजम्' यह नाटक पाँच अंकों में विभाजित है। ऐतिहासिक विषयवस्तु होते हुए भी कविवर ने इसे अपनी कल्पना व कवित्व शक्ति से चमत्कारिक सौन्दर्य प्रदान किया है।

खरगोन के एक सामन्त द्वारा निर्मित शिव–मंदिर में राजा भोज अभिषेकार्थ जाते हैं। सामन्त की अनिन्द्य–सुन्दरी कन्या पहले से ही राजा भोज को हृदय से अपने वर रूप में स्वीकार कर चुकी है और ऐसा न होने पर आजीवन कुमारी रहने का संकल्प भी ले चुकी है।

सामन्त कन्या एक तेंदुए के आक्रमण से भोजराज के पुत्र उदयादित्य को बचाती है। अतः उनके परिवार की वह प्रिय बन जाती है। भोजराज भी उसकी ओर आकर्षित है परन्तु महारानी लीलावती के प्रति दृढ़निष्ठ हैं।

राजा की प्रेम–व्याधि को जानकर बड़े ही नाटकीय ढंग से उदार हृदया रानी लीलावती स्वयं कर्वा चतुर्थी (करवा चौथ) की रात में सामन्त कन्या का हाथ मालवेश्वर को सौंपते हुए उसे सपत्नी स्वीकार कर लेती है। सारा राजकुल महारानी की सहृदयता, पतिनिष्ठा एवं कृतज्ञता से विस्मित हो उठता है।

अपने नाट्यगुरु रंगकर्मी आचार्य चण्डिकाप्रसाद शुक्ल को समर्पित कवि की इस रचना का प्रकाशन 2010 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा किया गया है।

(च) एकांकी–संग्रह

(32) नाट्यपञ्चगव्यम्[2]

यह पाँच एकांकियों का संग्रह है। कविसम्मेलनम्, राधामाधवीयम्, फण्टूसचरित (प्रत्यूषचरित) भाणः, नवरसप्रहसनम् तथा कचाभिशापम् नामक ये पाँचों एकांकी कवि के राजकीय सेवा में आने से पहले लिखे जा चुके थे।

यह संग्रह वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 1971 ई. में प्रकाशित हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, लीलाभोजराजम्, सम्पूर्ण नाटिका–नाटक संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नाट्यपञ्चगव्यम्–सम्पूर्ण एकांकी–संग्रह

(33) अकिञ्चनकाञ्चनम्[1]

यह एकांकी एक यूनानी कथा का मौलिक नाट्यरूपान्तर है। मीडोस् नामक एक सुवर्ण प्रेमी राजा को देवदूत से स्वप्न में वरदान प्राप्त होता है कि वह जिस भी वस्तु को स्पर्श करेगा वह सुवर्ण की हो जाएगी। सुवर्ण मोहान्त होकर नींद खुलते ही वह राजा प्रत्येक वस्तु को स्पर्श करता है। परन्तु इसी प्रवाह में उसकी एकमात्र पुत्री भी स्पर्श करते ही स्वर्ण प्रतिमा में बदल जाती है तब उसे अपने अमर्यादित लोभ पर अपराधबोध होता है। सुवर्ण–मोह से हमेशा के लिए मुक्त हो जाता है। पुनः देवदूत के आशीर्वाद से ही अपनी पुत्री को प्राप्त करता है।

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत यह नाट्यकृति 1974 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई।

(34) नाट्यपञ्चामृतम्[2]

अमृतहरण कर पक्षिराज गरुड़ का अपनी जननी विनता को सर्पमाता कद्रू की दासता से मुक्त करने के कथानक वाले 'दास्यापनोदनम्', अर्जुन द्वारा स्वर्ग में अप्सरा उर्वशी के प्रणय को ठुकराना तथा शापवश वृहन्नला बनने के कथानक युक्त 'अर्जुनोर्वशीयम्', 1965 के भारत–पाक युद्ध में डोगराई मोर्चे पर मेजर आशाराम त्यागी के आत्मबलिदान को चित्रित करता 'समर्पितमृत्तिकम्', आलमगीर औरंगजेब तथा चचलम की नर्तकी जैनाबाई की मर्मस्पर्शी प्रेम–कथा को प्रस्तुत करने वाला 'प्रीतिनिर्यातनम्' तथा दहेज लोभी एक बाप हार्ट–अटैक का बहाना बनाकर अपने शिक्षित एवं विनयशील बेटे से एक अनमेल विवाह को स्वीकार करवाने रूप कथानक को दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत करने वाला 'छलिताधमर्णम्', इन पाँच एकांकियों का संकलन है– 'नाट्यपञ्चामृतम्'।

इसका प्रकाशन 1977 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अकिञ्चनाकाञ्चनम, सम्पूर्ण एकांकी संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नाट्यपञ्चामृतम्, वही

(35) चतुष्पथीयम्[1]

इन्द्रजालम्, वैधेयविक्रमम्, निर्गृहघट्टम् तथा मोदकं केन भक्षितम् ? नामक चार लघुनाट्यों का यह एकांकी–संग्रह नुक्कड़ नाटकों का उद्‌भावक है। चारों लघु नाट्यों में क्रमशः मदारी और जमूरे द्वारा सामाजिक अधिक्षेप, असन्तुलित परिवार के दुष्परिणाम, कार्यालय तथा घर में दुर्दशाग्रस्त एक कर्मचारी की जीवनी तथा एक रोचक लोकवृत्त वर्णित है।

उत्तरप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत यह कृति वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 1983 ई. में प्रकाशित हुई।

(36) रूपरूद्रीयम्[2]

यह सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा पौराणिक विषयों पर आधारित ग्यारह एकांकियों का संग्रह है। 'अभीष्टमुपायनम्' में दहेज समस्या, नात्मानमवसादयेत् में लूट और चोरी की समस्या, 'पुनर्मेलनम्' में दस्यु समस्या, 'कन्थामाणिक्यम्' में जातिगत विद्वेष, 'स्वप्नाज्जागरणं वरम्' में अधकचरे ज्ञान वाली सोर्स सिफारिश के बल पर नौकरी करती महिलाओं का मनोजगत्, 'कुटुम्बरक्षणम्' में राव हम्मीरसिंह एवं मीर महिमाशाह का वृत्तान्त, 'राजाराजौदार्यम्' में चोल राजा राजराज से सम्बद्ध कथानक', 'को विजयते नैव ज्ञातम्' में चोल नरेश राजराज एवं मालवराज भोज की कथा, 'रक्ताभिषेकम्' में खालिस्तान समस्या एवं इन्दिरा गाँधी की मृत्यु, 'काश्यपाभिशापम्' में शकुन्तला–कथा का थोड़ा परिवर्तित रूप तथा 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' में पाँचों पाण्डवों का सम्मिलित इन्द्र–व्यक्तित्व वर्णित है।

उत्तरप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत यह कृति वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 1986 ई. में प्रकाशित हुई।

(37) नाट्‌यसप्तपदम्[3]

पञ्चसीमनी, वाणीघटकमेलकम्, बधिरप्रहसनम्, साक्षात्कारः, रूपमती, देहलीपरिदेवनम् तथा द्विसन्धानम्, इन सात रोचक, मर्मस्पर्शी, अधिक्षेपात्मक लघुनाट्‌यों का एक उत्तम–कोटिक एकांकी–संग्रह है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, चतुष्पथीयम्, सम्पूर्ण एकांकी–संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, रूपरुद्रीयम्, वही
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नाट्‌यसप्तपदम्, वही

वाणीघटकमेलकम् में यङन्त, यङ् लुगन्त, कर्मवाच्य, एकवचन तथा कृदन्त जैसे व्याकरणिक तत्त्वों को पात्र रूप में प्रस्तुत कर विलक्षण हास्य की सृष्टि करने वाला यह संग्रह ईस्टर्न बुक लिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर दिल्ली–7 द्वारा वर्ष 1996 में प्रकाशित हुआ।

(38) नाट्यनवरत्नम्[1]

लचर एवं शिथिल न्याय व्यवस्था, कारागार निरीक्षण, भीख माँगने के विलक्षण तरीके, कन्या विवाह की समस्याएँ, बुद्धिजीवियों की उपेक्षा इत्यादि विषयों से युक्त यह एकांकी–संग्रह प्रो. मिश्र द्वारा मण्डूकप्रहसनम्, प्रतिभापरीक्षणम्, प्रत्यक्षरौरवम्, स्वयंवरकेन्द्रम्, वादनिर्णयनम्, बधिरप्रहसनम् संवाददातृसम्मेलनम्, क्रीतानन्दम् तथा शारदावमानम् नामक लघुनाटकों में प्रस्तुत किया है।

यह कृति 2007 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई।

(39) नाट्यनवग्रहम्[2]

पौराणिक प्रेरणादायी प्रसंगों से युक्त बालोपयोगी नौ एकांकियों का संकलन कवि ने 'नाट्यनवग्रहम्' के रूप में किया है। कुमार ध्रुव के कथानक पर 'ईश्वरान्वेषणम्', द्रोणाचार्य एवं द्रुपद की शत्रुता तथा अर्जुन द्वारा द्रुपद की पराजय के कथानक पर 'गुरुदक्षिणा', कद्रू–वनिता के कथानक पर 'दास्यमुक्तिः', रामायण में वर्णित श्वेतकथा पर आधारित 'श्वेतोद्धारः', सत्यकाम महर्षि गौतम के कथानक पर 'सत्यकामजाबालः', पितामह भीष्म द्वारा द्रोण की ससम्मान शिक्षक रूप में नियुक्ति के विषय पर 'रत्नप्रत्यभिज्ञानम्', रावण द्वारा कैलासोत्थापन का प्रयास व शिव द्वारा दण्डित किये जाने के कथानक युक्त 'नामकरणम्' पञ्चतंत्र के कथानक पर 'सिंहजम्बुकीयम्' तथा काल्पनिक कथानक पर 'गुणाः पूजास्थानम्' की रचना करके कविवर ने नई पीढ़ी के लिए पुराने जीवन–मूल्यों के सेतु का काम किया है। इस प्रकार समाजोपयोगी, युवकों के लिए पथ–प्रदर्शक यह रचना नाट्यकार द्वारा अपने पुत्र क्षेमेन्द्र को समर्पित की है।

इसका प्रकाशन 2007 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नाट्यनवरत्नम्, सम्पूर्ण एकांकी संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नाट्यनवग्रहम्, वही

(40) नाट्यनवार्णम्[1]

मुण्डितमण्डनम्, खोंखीप्रहसनम्, विद्यालयनिरीक्षणम्, कलिकौतुकम्, उपनेत्रप्रहसनम्, वेतालप्रहसनम्, द्विजच्छात्रीयम्, अद्भुतज्योतिषम् तथा मृदङ्गदासप्रहसनम् नामक नौ नुक्कड़ नाटकों का संग्रह है–'नाट्यनवार्णम्'। इसका प्रकाशन 2010 ई. में वैजयन्त प्रकाशन इलाहाबाद से हुआ।

(छ) कथा–संग्रह (कथानिका एवं लघुकथा)

(41) इक्षुगन्धा (कथानिका–संग्रह)[2]

साहित्य अकादमी–पुरस्कार, 1988 से श्रीमण्डित 'इक्षुगन्धा' चिरपरिचित लोकसंवेदनाओं पर आधारित आठ कथानिकाओं का संग्रह है। एकमात्र ऐतिहासिक कहानी 'ताम्बूलकरङ्कवाहिनी' के अतिरिक्त संकलित समस्त कहानियों के केन्द्र में 'नारी' है। माँ की विवशता, बहिन की पढ़ाई, भाई के दूध जैसी असहाय परिवार की जरुरतों को पूरा करने के लिए यौवन के मूल्य पर नौकरी पाने के लिए प्रयासरत नवयुवती 'जिजीविषा', अवैध प्रणय–सम्बन्ध से जन्मी कन्या का सामाजिक विवशता के चलते गन्दी नाली में प्रक्षेप 'अनामिका', अनीप्सित वर को प्राप्त करने वाली माँ का उपेक्षित जीवन 'एकहायनी', आरोपित वैधव्य की असह्य पीड़ा के प्रतिकार स्वरूप परित्यक्त 'भग्नपञ्जरः', एक जैसी दो समस्याग्रस्त जिन्दगियों का अकस्मात् संयोग 'सुखशयितप्रच्छिका', मिथ्या, सामाजिक प्रतिष्ठा के अहंकार से टूटे बचपन के रिश्ते का युवावस्था में प्रकारान्तर से नवसृजन 'इक्षुगन्धा', सात पुत्रियों के पिता की उपेक्षा की शिकार 'शतपर्विका' जैसी बेटियाँ तथा नायक–नायिका के मिलन 'ताम्बूलकरङ्कवाहिनी' आदि मर्मस्पर्शी कहानियाँ पाठक के मन को रसाप्लावित कर देती हैं।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, नाट्यनवग्रहम्, सम्पूर्ण एकांकी–संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, इक्षुगन्धा, सम्पूर्णकथासंग्रह

देश के अनेक विश्वविद्यालयों में अर्वाचीन संस्कृत के पाठ्यक्रमों में निर्धारित 'इक्षुगन्धा' का द्वितीय संस्करण वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 2010 ई. में प्रकाशित हुआ।

(42) राङ्गडा[1] (कथानिका–संग्रह)

'राङ्गडा' संस्कृत–मूलक जावी शब्द है। यह संस्कृत के 'रण्डा' (विधवा) का तद्भव रूप है। कथानिका संग्रह की यह प्रतिनिधि मर्मान्तक कथानिका बालीनरेश धर्मोदयनदेव वर्मा की विधवा रानी महेन्द्रदत्ता की करुणाभरी जीवनकथा पर आश्रित है, जो अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कापालिक क्रियाओं में आसक्त हुई और इसी कारण जनता के बीच अनादृत एवं कलंकित होकर राज्य से निष्कासित हुई, परन्तु अंत में पुत्री के कल्याण के लिए ममताामयी माँ का स्वरूप धारण करने वाली चित्रित हुई है। वह आज भी बाली तथा जावा में 'प्रेताधीश्वरी राङ्गडा' के रूप में समर्चित की जा रही है।

अन्य कथायें कुलदीपकः, अधमर्णः, कुक्की, चञ्चा, महानगरी, एकचक्रः, पोतविहगौ तथा सिंहसारिः भी अत्यन्त संवेदनामूलक विषयों से युक्त है। कुक्की में मानवीय संस्कारों से ओत–प्रोत एक मार्जारी की प्रस्तुति है तो पोतविहगौ द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित, निहालपाण्डे एवं महुली की प्रणयकथा है। इसी प्रकार चञ्चा (धोख) दोहरा जीवन जीने वाले एक अधिवक्ता तथा उसके दुराचरण से पीड़ित 'मुन्नीबाई' की कथा है।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 1992 ई. में यह कथासंग्रह प्रकाशित हुआ।

(43) पुनर्नवा[2] (कथानिका–संग्रह)

विधवा विवाह को ठोस, तार्किक एवं धर्मशास्त्रीय आधार प्रदान करने वाली, वैधव्य का दंश झेल रही कृष्णा को पुनर्जीवन देने वाली कथानिका 'पुनर्नवा' को प्रतिनिधि कथा के रूप में रखने वाला 'पुनर्नवा' यह कथानिका संग्रह ग्यारह कथानिकाओं का संकलन है।

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राङ्गडा, सम्पूर्णकथासंग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पुनर्नवा, वही

इस संकलन की मात्र एक कथा 'प्रणयी प्रीतिकूटस्य' महाकवि बाणभट्ट से सम्बद्ध होने के कारण ऐतिहासिक कोटि की है। शेष सभी कथायें हमारे दैनन्दिन समाज में उभरती सत्प्रवृत्तियों एवं दुष्प्रवृत्तियों को उजागर करती हैं। वर्ण–व्यवस्था को सामाजिक समरसता एवं जाति व्यवस्था को वर्गभेद का आधार बताने वाली 'संकल्पः', संतान प्राप्ति हेतु सपत्नी को लाने पर आई जटिलताओं एवं अप्रत्याशित परिणामों की ओर संकेत करती 'सपत्नी', प्रगतिशील विचारधारा की पोषक 'वाग्दत्ता', अपनी बुआ पर अन्याय करती माँ को न्याय का रास्ता दिखाने वाली मुदिता की कहानी 'न्यायमहं करिष्ये', माँ की ममतामयी छवि वाली नर्तकी की उदारता को व्यक्त करती 'नर्तकी', पथभ्रष्टा नायिका को सन्मार्ग दिखाती 'ध्रुवस्वामिनी', वन्ध्या की मनोदशा का विश्लेषण करती 'वन्ध्या', अपने वचन के लिए सौतेले पुत्र की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने वाली सुनन्दा की कथानिका 'न्यासरक्षा', रेगिस्तान के एकाकी बरगद की तरह शोकसंतप्त श्यामा को शरण देने वाले दयालु की कहानी 'मरुन्यग्रोध' आदि विषयों से गुम्फित कथानिकाएँ यहाँ संकलित हैं।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 2008 ई. में यह कृति प्रकाशित हुई।

(44) चित्रपर्णी[1] (लघुकथा–संग्रह)

अपने काव्य शास्त्रीय समीक्षा ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में तथा 'चित्रपर्णी' एवं 'पुनर्नवा' की भूमिका में कथानिका एवं लघुकथा के अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने लघुकथा का लक्षण इस प्रकार किया है–'विद्युदुन्मेषसन्निभा', 'नातिविस्तृतसंदर्भा' एकपात्रावसायिनी लघुकथा। 'इन विशिष्टताओं के सन्दर्भ में 'चित्रपर्णी' लघुकथा के समस्त मापदण्डों को पूरा करती है। चित्रपर्णी की 65 लघुकथाएँ अपनी विषयवस्तु, कलेवर, तकनीक एवं संवेदना सभी दृष्टियों से 'लघुकथा' की श्रेणी में आती हैं। ये कहानियाँ एकवाक्यीय संवेदनायें हैं जो बिजली की कौंध सी प्रकट होती है तथा तन–मन को झङ्कृत, उदीप्त कर गायब हो जाती है। इन लघुकथाओं में समरस मर्म चेतना को चमत्कृत कर देता है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, चित्रपर्णी, सम्पूर्ण लघुकथा–संग्रह

दोहरे चरित्र पर प्रहार करती 'द्विसन्धानम्', भ्रष्टाचार जैसी समसामयिक समस्या पर कटाक्ष करती 'नियुक्तिः', आत्मविश्लेषणम्, काष्ठभाण्डम्, पितृभक्तिः, अभिनयः मद्यनिषेधः, पर्यावरण चेतना के लिए सजग करती 'अश्रुमूल्यम्', विवाह की विसंगतियों पर प्रहार करती 'जामाता' आद्यन्तम्, वरान्वेषणम्, ऊर्ध्वरेता इत्यादि लघुकथायें यहाँ संकलित हैं।

यह कृति 2000 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई।

(45) छिन्नमस्ता[1]

'छिन्नमस्ता' कविवर प्रणीत चतुर्थ कथानिका संग्रह है। इसमें 'स आसीन्मम तातपादः', प्रीतिदर्पणः, मध्यमाञ्जुका, छिन्नमस्ता, प्रायश्चित्तम्, मातुर्निमित्तम्, वाडवाग्निः, पितृष्वसा तथा कन्यादानम् नामक नौ नवीन कथानिका संकलित हैं। साहित्य–शिखर पर अधिष्ठित कविवर प्रणीत ये कथानिकाएं कथाशिल्प की श्रेष्ठ उदाहरण हैं। आमजीवन के चिर–परिचित जीवन्त पात्रों को आधार बनाकर लिखी गयी इन कथानिकाओं में कवि ने अपने कथाशिल्प एवं काव्यवैशिष्ट्य से अद्भुत रूप प्रदान किया है परन्तु इनकी आत्मा को अक्षुण्ण रखा है।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 2010 ई. में यह संग्रह प्रकाशित हुआ।

(ज) बाल–साहित्य

(46) कौमारम्[2]

यह बच्चों की बढ़ती अवस्था के साथ उत्तरोत्तर प्रवर्धमान उनकी चिन्तन–शक्ति, कल्पना–विस्तार, मनोवृत्ति तथा परिचय क्षेत्र के अनुपात में लिखे गये बालोपयोगी 52 गीतों का संग्रह है। इस गीतमाला में बड़े ही सरल, सरस व सुमधुर गीतों के माध्यम से अक्षर ज्ञान, संख्याओं के गणितीय आकलन, लीख से लेकर पर्वत तक प्रकृतिस्थ पदार्थों, नदियों, तीर्थों, बगीचे, पोखर, बन्दर, चन्दामामा, त्योहार राष्ट्रीय घटनाओं आदि का ज्ञान बालकों को करवाने का सफल प्रयास किया गया है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, छिन्नमस्ता, सम्पूर्ण कथानिका संग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कौमारम्, सम्पूर्ण बालगीतसंग्रह

नयनाभिराम चित्र–वीथी के साथ यह ग्रन्थ राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली से 2009 ई. में प्रकाशित हुआ।

(47) अभिनवपञ्चतन्त्रम्[1]

'अभिनवपञ्चतन्त्रम्' में प्राक्तन वक्ता एवं श्रोता को आधार बनाकर पूर्ण रूप से नवीन सोलह कथाऐं संग्रहीत हैं। इनमें भी मित्रप्राप्ति, मित्रभेद तथा काकोलूकीय प्रकरण की कथायें तो भारतीय परिवेश की हैं। परन्तु लब्धप्रणाश एवं अपरीक्षितकारक–प्रकरण की कहानियाँ जावा–बालीद्वीपों के परिवेश से सम्बद्ध है।

यह कृति वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 2009 ई. में प्रकाशित हुइ।

(48) कान्तारकथा[2]

'कान्तारकथा' में मुद्‌गल नामक ग्रामीण ब्राह्मण युवक के डेढ़ माह के बच्चे को एक भेड़िया अपनी नवप्रसूता मादा के भोजन के लिए उठा ले जाता है, परन्तु मादा भेड़िये को उस मुद्‌गल पुत्र मोद्‌गलि से पुत्रवत् स्नेह हो जाता है। वह अपना दूध पिलाकर उसका पालन–पोषण करती है। मोद्‌गलि जंगली जानवरों के साथ रहकर उनके गुण सीख लेता है। मोद्‌गली जिसे जंगल में सब मोगली कहते हैं, वह जंगली जानवरों का स्नेह पाकर जंगल का नायक बन जाता है। यह कथा वन्य संस्कृति की एक झलक प्रस्तुत करती है।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से 2009 ई. में यह कथा–कृति प्रकाशित हुई।

(झ) समीक्षात्मक–साहित्य

(49) अभिराजयशोभूषणम्[3]

'अभिराजयशोभूषणम्' वर्तमान शती का अभिनव–काव्यशास्त्र है। इसके पाँच उन्मेषों में कविवर ने अनेक अभिनव प्रमेयों के साथ ही साथ, प्रायः समस्त प्राचीन पारम्परिक काव्यशास्त्रीय प्रमेयों का समायोजन किया है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिनवपञ्चतन्त्रम्, सम्पूर्ण कथानिकासंग्रह
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कान्तारकथा, द जंगल एपिसोड
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, समीक्षात्मक साहित्य

युगानुकूल संशोधनों के साथ ग्रन्थकार–प्रणीत इस काव्य में 568 मौलिक कारिकायें तथा 177 उदाहरण पद्य हैं जिनमें अधिकांश उदाहरण–पद्य कवि की मौलिक रचनायें हैं।

प्रथम 'परिचयोन्मेष' में काव्यप्रशंसा, काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, काव्यलक्षण एवं काव्यविभाजन दिया गया है। प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र 'लोकोत्तराख्यान' को ही काव्य मानते हैं जो रसगर्भ हो तथा स्वभावन हो। आप काव्य को पारम्परिक उत्तम–मध्यम–अधम कोटि के स्थान पर सहृदयास्वाद्य, कोविदास्वाद्य तथा लोकास्वाद्य इन तीन श्रेणियों में विभाजित करते हुये इसका औचित्य भी निरूपित करते हैं। काव्यप्रयोजन भी आपकी दृष्टि में परमार्थतः यश–प्राप्ति ही है।

द्वितीय 'शरीरोन्मेष' में शब्दशक्ति, रीति–वृत्ति एवं गुणालंकार का विवेचन किया गया है।

तृतीय 'आत्मोन्मेष' में रसादि की काव्यात्मकता का विवेचन है।

चतुर्थ 'निर्मित्युन्मेष' में महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, नाटिका आदि प्राचीन काव्यभेदों को युगानुकूल संशोधनों के साथ प्रस्तुत किया गया है। अनेक नई काव्यविधाओं को प्रथमतः परिभाषित किया गया है।

अन्तिम 'प्रकीर्णोन्मेष' में गीतकाव्य, गलज्जलिका तथा छन्दोमुक्त काव्य–प्रकरण आदि सर्वथा नवीन काव्य शास्त्रीय विषयों के रूप में विवेचित किए गए हैं। गजल को गलज्जलिका नाम देकर उसे मतला, मक्ता एवं शेर को क्रमशः प्रारम्भिका, अन्त्यिका एवं मध्यिका के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

गद्य के कथा एवं आख्यायिका के अतिरिक्त नवयुगीन गद्यबन्धों जैसे कथानिका, लघुकथा, दीर्घकथा तथा उपन्यास को भी सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार कविवर प्रणीत यह अभिनव काव्यशास्त्र युगानुकूल अपेक्षाओं पर खरा उतरते हुए काव्यशास्त्रीय आदर्श प्रतिमान के रूप में स्थापित होता हुआ प्रतीत हो रहा है। मिश्र जी व्यक्तिगत रूप से ध्वनिवादी हैं तथापि आपने अन्यान्य सिद्धान्तों के प्रति गहरी आस्था व्यक्त की है। आप शाश्वततावाद के संस्थापक आचार्य हैं।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा वर्ष 2007 ई. में यह अनुपम काव्यशास्त्रीय कृति सुधी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की गई है।

(50) शास्त्रालोचनम्[1]

'शास्त्रालोचनम्' विविध विषयों से सम्बद्ध कुल सत्रह शोध–निबन्धों का संकलन है जिनमें काव्य के विविध पक्षों के विवेचन के अतिरिक्त स्वयं अपनी काव्य, नाट्य एवं गद्ययात्रा को सविस्तार से समझाया है। इसके अलावा भारतीय संस्कृतिपरक जावी साहित्य को भी निबन्ध रूप में संजोने का सफल प्रयास किया है। अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद से वर्ष 1995 में यह शोध–संकलन प्रकाशित हुआ।

(51) समीक्षासौरभम्[2]

'शोधालेखसंकलन' रूप इस समीक्षा–ग्रन्थ में कविवर द्वारा भाषा–समीक्षा, संस्कृति–समीक्षा, धर्म–समीक्षा, दर्शन–समीक्षा, शास्त्र–समीक्षा, काव्य–समीक्षा, अर्वाचीन संस्कृत काव्य–समीक्षा आदि शीर्षकों में शोधालेखों को विभाजित किया गया है।

यह ग्रन्थ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा 2003 ई. में सरस्वती भवन अध्ययन माला–55 के रूप में प्रकाशित किया गया।

(52) बालीद्वीपे भारतीया संस्कृतिः[3]

अपनी बालीद्वीपीय प्रवासावधि में प्रो. मिश्र द्वारा भारतीय संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती बालीद्वीपीय संस्कृति के विविध तत्त्वों–वैदिक धर्म, देवलाय, पूजा–व्यवस्था, दर्शन–दृष्टि, तीर्थाटन, सामाजिक आचार–विचार, धार्मिक महोत्सव–परम्परा आदि को अपनी लेखमाला का विषय बनाया जिसका प्रकाशन संस्कृत श्रीः (श्रीरंगम्) में निरन्तर दो वर्ष तक होता रहा।

वही लेखमाला विविध अध्यायों में व्यवस्थित होकर, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली द्वारा 2009 ई. में शोध–ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हुई है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, शास्त्रालोचनम्, समीक्षात्मक साहित्य
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, समीक्षासौरभम्, वही
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, बालीद्वीपे भारतीया संस्कृतिः

(53) संस्कृत–साहित्य में अन्योक्ति[1]

यह समीक्षा–ग्रन्थ प्रो. राजेन्द्र मिश्र के डी. फिल्. के शोध–प्रबन्ध का ग्रन्थ रूप है। यह शोधकार्य आपने अपने स्व. पितृव्य आचार्य आद्याप्रसाद मिश्र के निर्देशन में सम्पन्न किया।

इस ग्रन्थ में प्रो. मिश्र ने अन्योक्ति के बीज लक्षणों (प्रोत्साहना, तुल्यतर्क, मनोरथ) में खोजे हैं। भामह से लेकर पण्डितराज तक अन्योक्ति की आलंकारिक यात्रा दर्शाने के बाद अन्योक्ति के समस्त स्वतंत्र वाङ्मय की मौलिक खोज की।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 1985 ई. में यह कृति प्रकाशित हुई।

(54) सुवर्णद्वीपीय रामकथा[2]

इस ग्रन्थ में जावा तथा बाली की धर्म–संस्कृति–चेतना की प्राणस्वरूप 'रामकथा' का सविस्तार वर्णन किया गया है।

मतरामवंशीय यवद्वीप–शासक बतुकुर बलितुङ्ग के राजकवि योगीश्वर द्वारा प्रणीत यह रामकथा (रामायणकविन्) 26 अध्यायों तथा 2778 श्लोकों में निबद्ध है। यह कथा वाल्मीकि, भट्टि एवं कालिदास की भाँति राम को ईश्वर का अवतार मानती है। इस प्रकार यह कथा लंका (रामकेत्ति), थाईलैण्ड (रामकियेन), लाओस (फॉ लॉक–फॉ लॉम) तथा मलेशिया (हिकायत महाराजा राम) की रामकथाओं से पूर्णतः भिन्न है, जो बौद्ध–परम्परा से प्रभावित होने के कारण, रामकथा को विकृत रूप में प्रस्तुत करती हैं।

यह कृति राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा 1996 ई. में प्रकाशित हुई।

(55) भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीक : बालीद्वीप[3]

भारतीय साहित्य एवं संस्कृति को प्रतिबिम्बित करती बालीद्वीपीय संस्कृति का अभिव्यंजक, चौबीस परिच्छेदों–शीर्षकों में विभक्त, चार सौ पृष्ठों में निबद्ध यह ग्रन्थ

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, सुवर्णद्वीपीय रामकथा
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीकः बालीद्वीप

प्रो. राजेन्द्र मिश्र के बाली–प्रवास का जीवन्त दस्तावेज है। डायरी के रूप में अभिव्यक्त कवि की अनुभूतियों तथा बाली एवं भारतीय संस्कृति की ज्ञानवर्धक सामग्री का समाहार यह ग्रन्थ राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा 1998 ई. में भारत–स्वातन्त्र्य स्वर्ण जयन्ती–सप्तम पुष्प के रूप में प्रकाशित हुआ।

(56) मणिकाञ्चन[1]

काव्य एवं शास्त्र से जुड़े हुए एवं हिन्दी भाषा में निबद्ध 18 शोध–निबन्धों का यह शोधालेख–संकलन 'मणिकाञ्चन' वैदिक एवं लौकिक संस्कृत से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर शोधपरक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद से वर्ष 1991 ई. में यह संकलन प्रकाशित हुआ।

(57) सप्तधारा[2]

वेद–वेदाङ्ग, पुराणेतिहास, धर्म–दर्शन, संस्कृति, साहित्य–साहित्यशास्त्र, सुवर्णद्वीप (जावा–बाली) तथा अर्वाचीन संस्कृत इन सात शीर्षकों से सम्बद्ध 57 शोधालेखों एवं 804 पृष्ठों में गुम्फित यह ग्रन्थ प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र की विविध विषयों के प्रति गहरी समझ एवं शास्त्रीय प्रतिभा का परिचायक है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा अपनी रजतजयन्ती ग्रन्थमाला–42 के रूप में सन् 2004 में किया गया।

(58) संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र[3]

दस परिच्छेदों एवं 450 पृष्ठों में निबद्ध यह काव्यशास्त्र अर्वाचीन–संस्कृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ परम्परा में अद्वितीय स्थान रखता है। यह काव्यशास्त्र संस्कृत काव्यशास्त्र की वेदमूलकता से प्रारम्भ होता है तथा भरतमुनि से पूर्व के काव्यशास्त्रीय संकेतों की सांगोपांग समीक्षा करता है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, मणिकाञ्चन
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, सप्तधारा
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र

भरतयुगीन काव्यशास्त्र का विश्लेषण करते हुए कविवर द्वारा उसके नाट्यशास्त्रीय एवं काव्यशास्त्रीय तत्त्वों को पृथक्–पृथक् किया गया है। तृतीय परिच्छेद में भारत के परवर्ती एवं पण्डितराज तक संस्कृत काव्यशास्त्र के विकास की समीक्षा की है तथा चतुर्थ परिच्छेद में पण्डितराज के बाद अठारहवीं से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के काव्यशास्त्रियों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का निरूपण किया है।

पंचम परिच्छेद में संस्कृत काव्यशास्त्र के विवेच्य–विषयों का निर्धारण मौलिक रूप से किया है। छठे, सातवें, आठवें तथा नवें परिच्छेदों में शब्दशक्ति, वृत्ति–रीति, गुणालंकार, काव्यदोष, रसालंकार, रीति–वक्रोक्ति, औचित्य एवं ध्वनि का काव्यात्मत्व तथा गद्य–पद्यबन्धों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। अन्तिम दशम परिच्छेद में अर्वाचीन संस्कृत–रचनाधर्मिता की मूलभूत समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए पारम्परिक, गीतात्मक, गलज्जलिकात्मक एंव छन्दोमुक्त काव्य की सोदाहरण व्याख्या की है।

यह रचना 2010 ई. में विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुई।

(59) शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान (शास्त्रग्रंथ)[1]

अपनी धर्मपत्नी डॉ. (श्रीमती) राजेशकुमारी मिश्र के साथ लिखे गये प्रो. मिश्र के इस ग्रन्थ में भारतीय वाङ्मय में मौजूद, परन्तु अभी तक पूर्णतः अछूते, शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञानमूलक तत्त्वों का विस्तृत विवेचन किया गया है। शोधार्थियों के लिए यह सर्वथा मौलिक एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है।

अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 2008 ई. में यह रचना प्रकाशित हुई।

(60) स्वाध्यायपर्व[2]

प्रो. मिश्र प्रणीत इस अनुसंधानात्मक ग्रन्थ में शास्त्रसन्दर्भ, संस्कृतिसंदर्भ, पुराणेतिहास–सन्दर्भ, साहित्यसन्दर्भ तथ अर्वाचीन संस्कृत–सन्दर्भ परक 23 शोध–निबन्ध संकलित है।

ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली से 2009 ई. में यह संकलन प्रकाशित हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, स्वाध्यायपर्व

(61) पोयेट्री एण्ड पोयटिक्स[1] (Poetry and Poetics)

अंग्रेजी भाषा में लिखे गये 15 शोधालेखों का यह संग्रह सम्प्रति मुद्रणालयस्थ है।

(62) ग्लिंम्प्सेज ऑफ मॉडर्न संस्कृत पोयेट्री(Glimpses of modern Sanskrit Poetry)[2]

आंग्ल भाषा में विलिखित यह लघु ग्रन्थ अर्वाचीन संस्कृत कविता के परिचय, उद्भव, विकास, प्रकृति, दर्शन, राष्ट्रीय एकता में योगदान आदि विविध पक्षों को ग्यारह अध्यायों में प्रस्तुत करता है।

(63) सेजराह कसुसास्त्रान् संसकिर्त (Sejarah Kesustraan Sanskerta)

जावा तथा बालीद्वीपों की वर्तमान राष्ट्रभाषा बहासा इण्डोनेशिया में विलिखित यह संस्कृत साहित्य का इतिहास कवि द्वारा अपने बालीद्वीपीय प्रवासावधि में बालीद्वीप के संस्कृत अध्येताओं के लिए लिखा गया। नौ परिच्छेदों में विभक्त इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में वैदिक वाङ्मय, द्वितीय में पुराणेतिहास, तृतीय में आर्षकाव्य, चतुर्थ में महाकाव्य एवं खण्डकाव्य, पंचम में कथा एवं आख्यायिका, षष्ठ में दशरूपकसाहित्य, सप्तम में शास्त्रीय साहित्य, अष्टम में अर्वाचीन भारतीय संस्कृत साहित्य तथा अंतिम नवम परिच्छेद में संस्कृत एवं जावी–बाली की समान कृतियों का अन्तः सम्बन्ध निरूपित किया गया है।

मात्र 110 पृष्ठीय यह लघुग्रंथ बालीद्वीप की राजधानी देनपसार के मुद्रणालय नवच्छाया (**Cahaya Baru**) द्वारा 1988 ई. में प्रकाशित हुआ।

(64) विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम् (Catalogue of 20th Century Snaskrit Works)[3]

1901 ई. से 2000 ई. तक प्रणीत महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, दशरूपकों, कथोपन्यास–कृतियों, चम्पूग्रन्थों, शास्त्रीयग्रन्थों एवं अन्य भाषा के ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत करने वाला यह ग्रन्थ वस्तुतः समीक्षात्मक वाङ्मय की कोटि में ही रखा जा सकता है। प्रत्येक ग्रंथ, ग्रंथकार तथा ग्रंथ–रचनाकाल को देवनागरी एवं रोमन दोनों लिपियों में एक साथ प्रस्तुत किया गया है।

अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद से 2002 ई. में यह महनीय ग्रंथ प्रकाशित हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पोयेट्री एण्ड पोयटिक्स
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, ग्लिम्प्सेज ऑफ मॉडर्न संस्कृत पोयेट्री
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम्

(ञ) अनूदित एवं सम्पादित ग्रन्थ

(65) रामायणककविन्[1]

जावा–नरेश वतुकुर बलितुङ्ग के शासनकाल में महाकवि योगीश्वर द्वारा कवि भाषा (प्राचीन जावा अथवा प्राचीन बाली लिपि) में लिखी गई इस रामकथात्मक कालजयी कृति में 26 सर्ग तथा 2778 श्लोक हैं। प्रो. मिश्र द्वारा अपने अथक परिश्रम से इसका देवनागरी लिप्यन्तरण एवं हिन्दी भाषारूपान्तर किया है।

यह अनूदित कृति 1995 ई. में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित की गई।

(66) रसों की संख्या (Number of Rasas)[2]

विश्वविश्रुत प्राच्यभाषाविद् तथा संस्कृत रंगकर्मी प्रो. वेङ्कट राघवन् की अंग्रेजी भाषा में लिखित अनुपम कृति 'नम्बर ऑफ रसाज़' का प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने हिन्दी में अनुवाद किया है।

यह अनुवाद ग्रन्थ रूप में 2007 ई. में विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित हुआ।

(67) महालक्ष्मीमुक्तिसंवादः[3]

डॉ. प्रदीपवाघ के आध्यात्मिक काव्य का संस्कृत काव्यानुवाद है। इसमें नौ पुष्पमाला तथा सौ गीत है।

डेवलपमेण्ट एजूकेशन इण्टरनेशनल सोसाइटी, पुणे से फरवरी, 2010 ई. में यह कृति प्रकाशित हुई।

(68) देववाणीसुवासः[4]

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के यशस्वी कवि तथा राष्ट्रीय विचारधारा से सुवासित डॉ. रमाकान्त शुक्ल का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रो. राजेन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित किया गया है।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, रामायणककविन्, सम्पूर्ण अनूदित एवं सम्पादित ग्रन्थ
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, रसों की संख्या
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, महालक्ष्मीमुक्तिसंवादः
4. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, देववाणीसुवासः

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पर केन्द्रित यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभक्त है तथा अर्वाचीन संस्कृत के अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपादेय है।

देववाणी–परिषद्, वाणीविहार, नई दिल्ली द्वारा 1993 ई. में यह रचना प्रकाशित हुई।

(69) प्रतानिनी[1]

बीसवीं शती के वरिष्ठतम कवि, संस्कृत–फारसी एवं हिन्दी के प्रकृष्ट विद्वान् आचार्य बच्चूलाल अवस्थी की विविध कविताओं का यह संकलन कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र के अथक प्रयासों का परिणाम है। 'प्रतानिनी' में स्तवक, अन्योक्ति, गज़ल–गीति, विराग तथा प्रकीर्ण नामक पञ्च प्रतानों में समस्त कलेवर समेटा हुआ है। ग्रन्थारम्भ में 'मन्मुखेनेदमाह' शीर्षक में अवस्थी जी का विलक्षण आत्मवृत्त है।

वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 1996 ई. में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

(70) विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामृतम्[2]

इस बृहत्तम काव्य संकलन में बीसवीं शती की वरिष्ठ, मध्यम तथा नवीन पीढ़ी के 130 कवियों की कविताऐं उनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के साथ संकलित की गई हैं। दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा 2000 ई. में यह काव्य संकलन प्रकाशित हुआ।

(71) संस्कृतवाङ्मय में हिमाचल[3]

हिमाचलप्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला में विभागाध्यक्ष पद पर रहते हुए प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपने निर्देशन में 'संस्कृतवाङ्मय में वर्णित हिमाचलप्रदेश एवं हिमालयक्षेत्र' इस विषय पर एक त्रिदिवसीय संस्कृत–संगोष्ठी आयोजित की। संगोष्ठी के दौरान 36 उत्कृष्ट शोधालेखों का संकलन एवं सम्पादन कवि के द्वारा किया गया है।

यह शोध ग्रन्थ अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा 2009 ई. में प्रकाशित हुआ।

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रतानिनी
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामृतम्
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, संस्कृतवाङ्मय में हिमाचल

(ट) पाठ्य–ग्रंथ[1]

क्र.सं.	पाठ्य–ग्रंथ	प्रकाशक	प्रकाशन–वर्ष
1.	किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्गः)	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	2008 ई.
2.	कादम्बरीकथामुखम्	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	2009 ई.
3.	छान्दोऽलङ्कारसौरभम्	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	2009 ई.
4.	रसनिरूपणम्	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	1986 ई.
5.	संस्कृतगद्यामृतम्	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	1996 ई.
6.	साहित्यदर्पणः (तीन परिच्छेद तथा रस–संदर्भ)	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	2000 ई.
7.	संस्कृतकाव्यत्रिपथगा	अशोक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद	2000 ई.
8.	संस्कृतामृतचन्द्रिका	अशोक प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद	2000 ई.

संस्कृतेतर–अभिराजवाङ्मय

अभिराजवाङ्मय : हिन्दीसाहित्य[2]

संस्कृतवाङ्मयजगत् की सर्वविध विधाओं में अपनी बहुमुखी काव्य–प्रतिभा के प्रतिष्ठापक कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र ने हिन्दी, अंग्रेजी एवं भोजपुरी भाषाओं के माध्यम से भी अपने काव्यत्व को उद्भाषित किया है, जिनका संक्षिप्तोल्लेख निम्न प्रकार से है–

(क) काव्य–संग्रह

क्र.सं.	काव्य–संग्रह	प्रकाशक	प्रकाशन–वर्ष
1.	दो पात नींबू : तीन पात अमोला (51 बालोपयोगी गीत)	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद	1968 ई.
2.	मुक्तधारा (20 गीत)	कोटद्वार (पौढ़ी गढ़वाल)	1972 ई.

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 214–217
2. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 218–222

3.	सपनों में डूब गया मन (55 गीत)	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	1972 ई.
4.	पलकों के बन्द द्वार (53 गीत)	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद	1990 ई.
5.	तटस्था (जनवादी कविताऐं)	रत्ना पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी	2002 ई.

(ख) खण्डकाव्य

क्र.सं.	**खण्डकाव्य**	**प्रकाशन**	**प्रकाशन–वर्ष**
1.	वेदना	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद	1966 ई.
2.	पनघट	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद	1967 ई.
3.	मुक्तिदूत	अशोक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद	1975 ई.
4.	गृहत्याग	अशोक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद	1975 ई.
5.	पूर्णकाम	अशोक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद	1975 ई.

(ग) कहानी–संग्रह एवं उपन्यास

क्र.सं.	**रचना का नाम**	**प्रकाशक**	**प्रकाशन–वर्ष**
1.	देवरा हजारी (कथासंग्रह)	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद	1994 ई.
2.	रक्तवैतरणी (कथासंग्रह)	शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी	2004 ई.
3.	विधवा (आञ्चलिक उपन्यास)	ग्रन्थाकार प्रकाशन	1975 ई.

(घ) बालोपयोगी–साहित्य

क्र.सं.	**कृति व विधा**	**प्रकाशक व प्रकाशन–वर्ष**
1.	बच्चों के पाहुन (पञ्चतन्त्र की सचित्र कथायें)	1975 ई.

2.	पढ़ो और बनो (सचित्र गद्यात्मक बालकथायें)	अशोक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद 1975 ई.
3.	वन के गीत : मन के गीत (सचित्र पंचतंत्र की कथायें)	1974 ई.
4.	नया विहान (तीन बाल सचित्र एकांकी)	हरि प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976 ई.
5.	महाभारत की किशोरकथायें	1981 ई.
6.	तितली के पंख (30 बालोपयोगी सचित्र गीत)	1982 ई.
7.	रक्ताभिषेक (तीन एकांकी)	अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985 ई.

अभिराजवाङ्मय : भोजपुरी साहित्य[1]

क्र.सं.	कृति व विधा	प्रकाशक व प्रकाशन–वर्ष
1.	फगुनी बयार (पूर्वांचल संस्कृति के ध्वजवाही 120 गीतों का संग्रह)	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004 ई.

अप्रकाशित अभिराज–वाङ्मय

हिन्दी से भी कहीं अधिक सरल, सरस, सुमधुर किन्तु अर्थगम्भीर एवं मार्मिक संस्कृत लिखने वाले प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र निश्चय ही बीसवीं शती के प्रतिष्ठित एवं इक्कीसवीं शती के पुरोधा रचनाकार हैं। विविध विधामय एवं विविध भाषाओं में उनका जितना वाङ्मय प्रकाशित है, उसे भी कहीं अधिक अप्रकाशित है। आप सतत रूप से माँ वाणी की समर्चना में संलग्न हैं।

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 222

(क) संस्कृत–साहित्य[1]

क्र.सं.	काव्य का नाम	विधा
1.	पृथुवंशम्	(21 सर्गात्मकमहाकाव्यम्)
2.	गीतभारतम्	(वृहत्तमरागकाव्यम्)
3.	अभिराजचम्पूः	(चम्पूकाव्यसंग्रहः)
4.	अभिराजदण्डकम्	(दण्डककाव्यसंग्रहः)
5.	बालीविलासम्	(खण्डकाव्यम्)
6.	अभिराजशतकम्	(खण्डकाव्यम्)
7.	सोनियाप्रशस्तिकाव्यम्	(खण्डकाव्यम्)
8.	जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्	(खण्डकाव्यम्)
9.	चौरशतकम्	(प्रणयकाव्यम्)
10.	अभिराजगीतमाधुर्यम्	(गीतकाव्यम्)
11.	नाट्यदशाननम्	(हास्यैकाङ्कसङ्कलनम्)
12.	गृम्भ्णामि त्वां सौभगत्वाय	(आत्मवृत्तम्)
13.	मरुवणमाकन्दः	(आत्मकथा)
14.	वैतरणी	(विविधकाव्यसंग्रहः)
15.	काव्यतरङ्गिणी	(विंशतितरङ्गात्मिका साहित्येतिहासकृतिः)
16.	छन्दोऽभिराजीयम्	(अभिनवच्छन्दश्शास्त्रम्)
17.	शतकपञ्चदशी	(शतकसंग्रहः)
18.	विवेचवनचन्द्रोदयः	(संस्कृतशोधालेखों का अभिनव–संकलन)

(ख) हिन्दी–साहित्य[2]

क्र.सं.	कृति का नाम	विधा
1.	रोदसी	15 सर्गात्मक महाकाव्य
2.	गन्धमादन	राष्ट्रीय काव्यसंग्रह

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 223–224, 263–264
2. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 223–224, 263–264

3.	अस्थिकलश	खण्डकाव्य
4.	सुपर्ण	खण्डकाव्य
5.	पाषाणी	खण्डकाव्य
6.	त्रिणाचिकेत	काव्यरूपक
7.	अदृश्यन्ती	पौराणिक नाटक, तीन अंक
8.	दुर्योधनवध	मञ्चीय नाटक, पाँच अंक
9.	टिटनेस–वार्ड की पाँच रातें	संस्मरण
10.	हिमाचल की बाहों में सात दिन	संस्मरण
11.	महाकाल की नगरी में	संस्मरण, यात्रावृत्त
12.	मेरी प्रथम दक्षिण भारतीय यात्रा	संस्मरण, यात्रावृत्त
13.	आत्मख्यात कालिदास	व्यक्तित्व–कर्तृत्व
14.	पुण्यश्लोको नलो राजा	संस्मरण
15.	नाच्यौ बहुत गोपाल	आत्मकथा
16.	प्रज्ञालोक	तीस हिन्दी शोध लेखों का संकलन
17.	सुवर्णद्वीप में भारतीय वर्चस्व	

(ग) भोजपुरी–साहित्य[1]

क्र.सं.	**रचना**	**विधा**
1.	बदरा भइल मोरा दूत	मेघदूत का भोजपुरी रूपान्तर
2.	बिरहा कै रैन	खण्डकाव्य
3.	सकुन्तला	नौ सर्गों का लोकभाषा–महाकाव्य

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', साहित्यकल्पतरु : अभिराज राजेन्द्रमिश्र, पृ.सं. 224

अन्य भाषाओं में अनुदित अभिराज साहित्य[1]

किसी भी साहित्यकार के साहित्य की प्रासंगिकता अथवा उपादेयता इस बात से सहज बोध है कि उसके साहित्य को अन्य भाषाओं के साहित्य समाज द्वारा शिरोधार्य करके अनुवाद के माध्यम से अपने साहित्य–क्षेत्र में प्रविष्टि दी जाती है। अन्य भाषाओं में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के साहित्य का अनुवाद होना उनकी लोकप्रियता एवं साहित्यिक गुणवत्ता को दर्शाता है।

उनकी कृतियाँ निम्नानुसार अन्यान्य भाषाओं में अनुदित हो चुकी हैं–

क्र.	कृति	भाषा–रूपान्तण	अनुवादक	प्रकाशक व प्रकाशन वर्ष
1.	अनामिका व महानगरी (कथा)	अंग्रेजी	डॉ.वी.कामेश्वरी	साहित्य–अकादमी, बैंगलौर, 1995 ई.
2.	पोतविहगौ (कथा)	अंग्रेजी	डॉ. गंगाधर पण्डा	साहित्य–अकादमी, नई दिल्ली
3.	इक्षुगन्धा (कथा)	अंग्रेजी	डॉ. रविशंकर नागर	साहित्य–अकादमी, नई दिल्ली
4.	वैशाली (कविता)	अंग्रेजी	डॉ. हर्षदेव माधव	साहित्य–अकादमी, नई दिल्ली 1999 ई.
5.	स्वतन्त्रता (कविता)	हिन्दी	श्री बालस्वरूप राही	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 1990
6.	न्यायामलयवृत्तम्	हिन्दी	डॉ. इन्द्रप्रकाश मिश्र	'किस्सा कचहरी का' साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 2001 ई.
7.	इन्द्रजालम् (एकांकी)	तेलगु	डॉ. श्रीनिवास दीक्षितलु	मार्च, 1995 ई.
8.	जिजीविषा (कथा)	मलयालम	डॉ. वेणुगोपाल कृष्ण	मुत्तूर, तिरुवल्ल (केरल)
9.	विविध कथाएँ	तेलगु	श्रीमती ए. राज्यश्री	'विपुल' पत्रिका, हैदराबाद
10.	भग्नपञ्जरः (कथा)	उर्दू	डॉ. अहमद नसीम	'नया दौर' लखनऊ 1999ई.
11.	महानगरी (कथा)	हिन्दी	श्री मधुरशास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
12.	इक्षुगन्धा (कथा)	हिन्दी	डॉ. प्रमोद भारतीय व डॉ. शैल वर्मा द्वारा पृथक्–पृथक्	भाषा, 1997 ई. केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', साहित्यकल्पतरुः अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ.सं. 233–235

13.	इक्षुगन्धा (कथा)	बंगला संस्करण	डॉ. रामकुमार भट्टाचार्य	साहित्य अकादमी 2009 ई. (कलकत्ता शाखा)
14.	जिजीविषा (कथा)	हिन्दी	डॉ. शैल वर्मा	साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2001ई.
15.	इक्षुगन्धा (कथासंग्रह)	हिन्दी	डॉ. राजाराम शुक्ल	अद्यावधि अप्रकाशित
16.	भग्नपञ्जरः (कथा)	हिन्दी	डॉ. अजय कुमार मिश्र	'टूटा पिंजरा' साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005 ई.
17.	सुभाषितोद्धारशतकम् एवं आर्यान्योक्तिशतकम्	गुजराती	डॉ. राधा एम. पटेल	ग्रंथाकार प्रकाशन, पालनपुर, 2009 ई.
18.	संस्कृतशतकम्	अंग्रेजी	डॉ. एस. रंगनाथ	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहबाद 1999 ई.
19.	त्वया विना (संस्कृत गीत) आदि विविध गीत	सरगुजिमा बोली	श्री अनिरुद्ध नीरव	दूर्वा, अगस्त 1989 व अगस्त 1990 ई.
20.	जानकीजीवनम् (महाकाव्य)	अंग्रेजी	डॉ. एस. रंगनाथ	अद्यावधि अप्रकाशित
21.	विविध संस्कृत कविता	मराठी	श्री पृथ्वीराज तौर	स्वामी रामानन्द तीर्थ मराठवाड़ा विद्यापीठ, नान्देड
22.	मृगाङ्कदूतम्	गुजराती	प्रो. दशरथलाल गौरीशंकर वेदिया	प्रकाशनाधीन

अहर्निश साहित्य–साधना में रत प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के काव्यजगत् की सीमाएं निर्धारित करना संभव नहीं है। 1966 ई. से लेकर आज तक शायद ही कोई ऐसा वर्ष होगा, जिसमें आपकी कोई रचना प्रकाशित नहीं हुई हो। प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य–सूची से ही हम समझ सकते हैं कि कविवर अपनी साहित्य–साधना में कितने लीन हैं। संस्कृत कविता के धनी एवं भारतीय संस्कृति व दर्शन के निष्ठावान् पाठक होने के कारण आपका रचना–संसार मिलन–बिछोह, उत्थान–पतन, जीवन–मृत्यु, सुख–दुःख

आदि परस्पर–विरोधी ध्रुवों की संगमस्थली बन गया है। यह साहित्य सरिता उत्तरोत्तर निरन्तर प्रवाहमान है। आपके व्यक्तित्व व कर्तृत्व के साथ–साथ विविध–विधामय साहित्य शोधार्थियों के रूचिकर विषय रहे हैं। अर्वाचीन साहित्य के पर्यायस्वरूप आपको मानने लगे हैं। इस प्रकार प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत यह विपुल साहित्यजगत् उनकी साहित्यिक ऊर्जा व अथक परिश्रम को प्रतिपादित करता है।

प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र के निजी एवं काव्य जीवन को एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में पाठकों के सम्मुख रखने वाली उनकी जीवन–सहचरी डॉ. (श्रीमती) राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री' के भूमिका भाग में कविवर के सम्बन्ध में उल्लिखित शब्दों के साथ इस अध्याय का समापन करना चाहूँगा कि– "कोमलवय में प्रारंभ की गई कवि की यह सारस्वत–यात्रा आज जीवन के छठें दशक में प्रौढ़ि के शिखर पर है। प्रौढ़ि का यह शिखर भी, हिमालय की पञ्चकूली चोटी जैसा है, छोटे–छोटे पृथक् उपशिखरों से युक्त! ये उपशिखर हैं–महाकाव्य, खण्डकाव्य, रूपक कथा एवं समीक्षा आदि। प्रो. मिश्र ने वाङ्मय की प्रत्येक विधा को अलङ्कृत किया है पूर्ण परिष्कार एवं मौलिक योगदान के साथ। प्रत्येक क्षेत्र में प्रो. मिश्र ने कुछ ऐसा अवश्य जोड़ा है जो अश्रुतपूर्व एवं अदृष्टपूर्व था। सब कुछ मिलाकर देखा जाये तो प्रो. मिश्र का सारस्वत व्यक्तित्व उस विशाल न्यग्रोध सा प्रतीत होता है जिसमें स्कन्ध, शाखा, वृत्त, पर्णसमूह, प्ररोह सब कुछ है, परस्पर विसंवादी होते हुए भी अपने वृक्ष के साथ पूर्ण संवादी।"[1]

♦ ♦ ♦ ♦

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र : त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ.सं. 8

द्वितीय अध्याय

अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों का पूर्ण परिचय एवं वस्तु–विश्लेषण

मदयति नहि कं सुमधुररचना!
नवरुचिरपदा मधुमयवचना!!
क्वचिदमरधुनीव धुनोति कलिम्
विलसति रमणीव तनोति रतिम्
क्वचिदुन्मादयति विशदमदना!
मदयति नहि कं सुमधुररचना!!
सान्त्वयति विपदि सुखयति सदने
अवतरति कदाचिदियं नयने
भूवि मूर्तिमतीव कलितकरुणा!
मदयति नहि कं सुमधुररचना!!
जननीव कदाचिदियं दयते
दयितेव रतिं क्वचिदातनुते
स्निह्यति भगिनीव विनतवचना!
मदयति नहि कं सुमधुररचना!!

द्वितीय अध्याय

अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीत नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों का पूर्ण परिचय एवं वस्तु–विश्लेषण

शोधग्रन्थ के केन्द्रीय विषय **"कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मक–संस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्"** पर आने से पूर्व यह नितान्त अपरिहार्य हो जाता है कि समीक्ष्य संस्कृत नवगीत–संग्रहों के कथ्य पर विचार किया जाये। इन रचनाओं के भाव सौन्दर्य एवं शिल्प सौन्दर्य के समीक्षापरक अध्ययन से पूर्व इनके कथ्य पर दृष्टिपात करना समीचीन प्रतीत होता है। कवि को स्वातन्त्र्योत्तर काल के एक 'कालजयी गीतकार' के रूप में प्रतिष्ठापित करने वाले एवं लोककल्याण के साधनभूत कवि के संस्कृत नवगीतों के निहितार्थों तक पहुँचने से पूर्व इनकी विषयवस्तु को परखना व उससे रूबरू होना समीक्षा की भूमिका बांधने की ओर एक सार्थक सोपानक्रम सिद्ध होगा। कवि विरचित संस्कृत नवगीत कृतियों के उद्देश्य, विषयवस्तुपरक बिम्ब–प्रतीक, वातावरण, शैली, शब्द–शिल्प, लोकोपकारता एवं नवगीतों में निहित कवि के ज्ञानगाम्भीर्य का अनुसंधान करने से पूर्व उनकी नवगीतात्मक संस्कृत कृतियों की विषय वस्तु से परिचित नहीं होना समीक्षात्मक अनुशीलन में बाधक सिद्ध हो सकता है। अतः शोध–प्रबन्ध के इस अध्याय में अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के संस्कृत निबद्ध नवगीत संग्रहों का परिचय प्रदान करते हुए उनमें निहित जीवन–दर्शन एवं मूलमंत्र को खोजने का भी प्रयास किया गया है। यहाँ क्रमशः विधाओं का परिचय एवं विस्तृत वस्तु विश्लेषण मुख्य प्रतिपाद्य हैं।

अपनी सारस्वत साधना, सात्त्विक अनुभूति और साधनापूत वृत्ति के लिए लोक में ख्यात संस्कृति और संस्कृत के इस देश में काव्य–रचना की एक अखण्ड और अनवद्य परम्परा रही है। विपरीत परिस्थितियों में भी यह परम्परा शिथिल होने की बजाय प्रबलता के साथ अनवरत काव्यमार्ग पर चलती आ रही है। संस्कृत–साहित्य और काव्य के इस मनोरम पथ में अन्तःकरण को मधुरिमा से भरने के लिए, आलोक प्रतिष्ठित करने के लिए और सांस्कृतिक समुल्लास से परिप्लुत करने के लिए संस्कृत मनीषियों ने अपनी अथक साधना से लोक को आलोकित करने का संकल्प रखा है। उन्हीं सारस्वत–साधना–पथ के

पथिकों में अपने वैदुष्य से संस्कृत–जगत् में नयी कीर्तिमाला स्थापित करने वाले एवं मधुर गीतों और उसकी परम्पराओं को प्रोल्लसित करने वाले प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का महनीय स्थान है।

प्रगीत–परम्परा को अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से सींचते हुए जयदेव ने जिस–विधा को नवीन–दीप्ति व दिव्यता प्रदान की, वाल्मीकि, व्यास और कालिदासादि महान् कवियों ने जिसे बिम्बविधायिनी अभिव्यक्ति–भंगिमा प्रदान की, नवीन चेतना एवं नूतन प्राणानुभूति से जिसे प्रभातशास्त्री प्रभृति ने भव्य–भूमि दी, उसे प्रो. मिश्र जी ने महिमाभरी भूमि तो दी ही, निरन्तर साधना के जल से सींचकर नये अंकुरण से समलंकृत कर, उसे बल, पुष्टि और प्रेरणा भी दी। आपके गीत पूर्ण प्रकर्ष और प्रेरणा का ऐसा परिपाक बनते हुए अग्रसर होते हैं जिनमें भाषा की परिनिष्ठित कला और रसवाहिनी शैली का ज्वलंत चित्र अपनी पद्धति में सर्वथा अनूठा है।

गीतों के विभिन्न प्रकारों के उद्धरणों से अपनी शक्ति के भास्वर स्वर आपने दिये हैं। गीतात्मकता, लयात्मकता और भाव–पल्लवन की प्रशंसनीय भूमिका आपने अद्भुत ढंग से प्रस्तुत की है। लोकधुन पर आश्रित कितने ही लोककंठ में बसे और फूटे स्वरों को आपने नयी भाव–भंगिमा प्रदान की है। नूतन अभिव्यक्ति व नूतन–चेतना रूपी माला पहनायी है।

'कविकंठाभरण' के महाकवि क्षेमेन्द्र ने कवि बनने के लिए तीन प्रकार के सापेक्ष साधन निर्धारित किये हैं–अल्पप्रयत्नसाध्य, कृच्छ्रप्रयत्नसाध्य और असाध्य। प्रो. मिश्र 'अल्पप्रयत्न–साध्य' श्रेणी के 'आरोचकी प्रतिभा' के सुकवि हैं। आपने लयात्मकता के आधार पर ही संस्कृत की काव्य रचना प्रारंभ की है। आपने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में स्कूली शिक्षा के दिनों में अपने गाँव तथा आस–पास के क्षेत्रों में गाये जाने वाले 'चैता', कजरी, सोहर, जाँत और भिन्न–भिन्न प्रकार के लोकगीतों को सुना तथा अपनी कारयित्री सहज प्रतिभा से उन लोक गीतों को अपनी उमड़ती वाणी दी। अपनी रसपरिपाक–योजना तथा लोककंठ में रची बसी लोकानुभूति से इन विधाओं को आपने संस्कृत का कलेवर दिया और रस छलकाती आत्मा से अलंकृति दी।

इस प्रकार अभिराज राजेन्द्र मिश्र संस्कृत गीत–परम्परा में स्वातन्त्र्योत्तर काल के एक कालजयी गीतकार हैं, जिन्होंने अपनी सहजाभिव्यक्ति से संस्कृत गीतों को नित

नये–नये रूप, नये–नये आस्वाद एवं नये–नये छन्दः परिधान दिये। आपने संस्कृत गीतों को हिन्दी एवं समकालीन लोक–भाषाओं के समानान्तर उन्हीं छन्दों, लोकधुनों एवं प्रतिष्ठित गीत–प्रकारों से ढालते हुए उन्हें संस्कृत नाम दिया। आपने लोकभाषायी गीत चैता को 'चैत्रकम्', कहरवा को 'स्कन्धहारीयम्', सोहर को 'सूतगृहम्' तथा कजरी को 'कं प्रियाऽऽगमनसुखंजरयति या सा कजरी' इस रूप से शुद्ध संस्कृत शब्द सिद्ध करते हुए इन्हें संस्कृत में उपनिबद्ध कर संस्कृत गीत होने का पवित्र गौरव प्रदान किया। आपके इन्हीं विविध आयामी गीतों की छटा से सुशोभित वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता स्वरूप ये आपकी पाँच नवगीत संकलनाएँ हैं।

(क) वाग्वधूटी[1]

बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने अपनी नवगीत रचनाओं द्वारा स्वातंत्र्योत्तर संस्कृत कविता को अभूतपूर्व लोकप्रियता देनी प्रारम्भ की थी। ये समस्त गीत सरस पदबन्धों से संवलित तथा मनोहारी ताल–लय से समन्वित हैं। छन्दशास्त्र के ज्ञान के अभाव में भी अपनी कारयित्री प्रतिभा के बल पर कविवर ने अपने अध्ययन काल में ही लेखनी चलाना शुरु कर दिया था। अपने गाँव तथा आस–पास के ग्रामीण अंचल में भिन्न–भिन्न अवसरों पर गाये जाने वाली विभिन्न लोकगीत विधाओं 'चैता', 'कजरी', 'सोहर', जाँत का गीत आदि को सुनकर कवि ने अनायास ही उनको गुनगुनाना आरम्भ कर दिया। लोककंठ में लोकानुभूतिपरक इन विधाओं को कवि ने संस्कृत के कलेवर में ढालकर उन्हें अपनी रस छलकाती आत्मा से अलंकृति प्रदान की। इस प्रकार कविवर मिश्र जी ने संस्कृत कविता की सरलता एवं सहजता को प्रतिपादित करने के लिए उत्तरप्रदेश के पूर्वाञ्चलीय उपर्युक्त लोकगीत विधाओं को संस्कृत स्वरूप में प्रस्तुत किया जिससे वे सम्पूर्ण सहृदय समाज में समादृत हुए एवं 'मूर्द्धन्य नवगीतकार' के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

ऐसे ही सरस, सुमधुर, सुखेन गेय एवं अवबोध्य 54 नवगीतों का संग्रह है– 'वाग्वधूटी'। इसका प्रथम संस्करण अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा सन् 1987 ई. में प्रकाशित किया गया। इस संग्रह में जहाँ एक ओर छन्द–बन्धन से मुक्त, सरस, प्राजञ्ल

---

1. साहित्यकल्पतरु अभिराज राजेन्द्र मिश्र, डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राज श्री', पृ. 180

गीतिकाएँ हैं वहीं दूसरी ओर उत्तरप्रदेश में प्रचलित आञ्चलिक लोकगीत भी विद्यमान है। 'गलज्जलिका' गजल, 'स्कन्धहारीयम्' कहरवाँ, 'चैत्रक' चेता, 'कजरी' कजली, सूतगृहम् 'सोहर' तथा अन्यान्य लोकगीत निश्चय ही कविवर मिश्र जी की मौलिक सूझबूझ हैं।

'वाग्वधूटी' के नवगीतों में राष्ट्रप्रेम के हृदयानुरंजक चित्र हैं, प्रकृति की संश्लिष्ट योजना के रूप–चित्र हैं। लोकचित्र के आकर्षक बिम्ब हैं। सामान्य मानवीय मनोभूमियों के चित्र भरे पड़े हैं। भूमिका में स्वयं कविवर लिखते हैं–मेरी जीवन–व्यथा के विविध चित्र हैं। डायरी में प्रत्येक गीत का दिनांक और समय दिया है, वे दिनांक और समय मेरी जीवन–यात्रा के पड़ाव के रूप में है। गीतों के गायक तो 'सुवर्णभूमि' के व्यामोह में औरों की राह पर चले गये; किन्तु कवि का 'गीतपथिक' अभी भी गीतों के माध्यम से 'चिरसंस्तुत पथ' पर संचरण कर रहा है।[1]

कविवर अभिराज जी हमेशा लोकमंगल के समाराधक रहे हैं। मनुष्यमात्र के जीवन में कोई विघ्न–बाधा नहीं हों, सभी सुखी रहें, आनन्दित रहें। आपसी कलह, मनमुटाव, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुण हमारे जीवन से माधुर्य को कलुषित नहीं करें। यही शुभाशंसा अपने प्रथम नवगीत संग्रह 'वाग्वधूटी' के प्रथम गीत में कविवर कर रहे हैं–

मधुरं विचिन्तयामो मधुरं हि मानसे स्यात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!!
कलहादिकेन किं स्यात्
विरहादिकेन किं स्यात्
सङ्गममये हि लोके सायुज्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!![2]

एक सुकवि का काव्य ही उसका सौन्दर्य है। इस लोक में जो भी दृश्यमान व परोक्ष जगत् का माहात्म्य है, उसका श्रेय उन कवियों को जाता है, जिनकी रचनाओं के माध्यम से वे लोक में चर्चित हुये हैं। इसी सन्दर्भ में कविवर मिश्र जी लिखते हैं कि जब तक यह वायु प्रवाहमान रहेगी, जब तक चन्द्रमा की कला सुशोभित रहेगी तब तक कवित्व का अभिराम रहेगा–

---

1. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. राजेशकुमारी मिश्र 'राजश्री', पृ. 198
2. वाग्वधूटी, प्रथमगीति / माल्यमेव भूयात्!!

समीरणोऽयं प्रवाति यावत्
कलाऽपि चान्द्री विधौ यथावत्
जयन्तिकेयं विभाति तावत्
न कालिदासामृतं व्यतीतम्
तवाभिरामं कवित्वगीतम्!![1]

'वाग्वधूटी' के विविध आयामी गीतों की छटा सराहनीय है। 'वंदे सदा स्वदेशम्' गीत राष्ट्रीय भावना का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसमें भारत राष्ट्र की बहुरंगी संस्कृति तथा संवेदनात्मक प्रगाढ़ एकता के प्रति अटूट निष्ठा व्यक्त की गई है। कविवर स्वतंत्र भारत के विश्ववन्दित स्वरूप के प्रति श्रद्धावनत हैं—

गङ्गा पुनाति भालं रेवा कटिप्रदेशम्
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशं स्वदेशम्!!
अद्यापि यस्य नीतिर्विस्मापयत्यनल्पम्
उद्घोष्य विश्वशान्तिं भावञ्च मित्रकल्पम्
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशं स्वदेशम्!![2]

कविवर की रचनाओं विशेषतः नवगीतों में कवि की आत्मव्यथा, पीड़ा, सहज रूप में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। व्यथाओं की यह भावप्रवण अभिव्यक्ति ही कविवर मिश्र जी के गीतों को प्रतिष्ठा के महाफलक पर सहज ही बिठा देती है। वेदना को हर पल स्व से ही समुपासित एवं सुभगीकृत देखकर कविवर वेदना से बड़ी ही आत्मीयता के साथ प्रश्न करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वेदनारूपी नायिका सामने खड़ी हो—

अयि मम हृदन्तरवेदने! क्रुधमीदृशं कुरुषे कथम्!!
समुपासिताऽसि मयैव किम्
समुगीकृताऽसि मयैव किम्
अयि गगनगोचरजल्पने! पदमीदृशं लभसे कथम्!![3]

---

1. वाग्वधूटी, तृतीयागीति / तवाभिरामं कवित्वगीतम्!!
2. वही, 'वन्दे सदा स्वदेशम्!!', पृ. 12
3. वही, 'अपि मम हृदन्तरवेदने', पृ. 6

डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' मानते हैं कि 'कविवर मिश्र अपने गीतों में पूर्णतः भाग्यवादी हैं, इनके गीतों में भाग्यवाद की प्रतिष्ठा है।[1] अपनी असफलताओं के दौर में वे भाग्यरूपी बाला को ही अपना परिहास करने वाली मानते हैं। अपने से सम्बद्ध नायिका विशेष को इसका दोषी नहीं मानते।

कमलया न हसितं मृदुलया न हसितम्
अये भाग्यबाले! त्वयैवोपहसितम्!![2]

कविवर मिश्र जी के प्रारम्भिक गीतरचनाओं में यौवनजन्य कामातिरेक स्पष्टतः परिलक्षित होता है। वे प्रेयसी का गोपनशून्य आवाहन करने में भी संकोच नहीं करते हैं–

मानिनि! गणय न खलु मम दोषं
परितोषय मृदुमारम्!
न कुरु विलम्बं यौवनमिच्छति
तव वदनामृतसारम्!![3]

अभिव्यक्ति के धरातल पर ऐसा ईमानदार रचनाकार संस्कृत साहित्य को दुर्लभ है। मिश्र जी प्रियतमा के बिना जीवन को जीवन नहीं मानते। उसकी कोमल भुजाओं में उन्होंने जिस बन्धन का अनुभव किया, उसके रसीले होठों की मदिरा का जो स्वाद लिया, जो अनंग सुख भोगा, उसे वे कैसे भूल सकते हैं? इसके समकक्ष कोई दूसरा बन्धन उन्हें स्वीकार नहीं है–

जीवनं रे जीवनं त्वां विना किमु जीवनम्
अयि विदलिते प्राणतलिके! त्वां विना किमु जीवनम्!!
तव सुकोमलबाहुपरिधौ बन्धनं यदहोऽनुभूतम्
अधरमदिरा या निपीता स्मरसुखं कलितं प्रभूतम्
बन्धनं रे बन्धनं त्वां विना किमु बन्धनम्!![4]

प्रेम–वंचना का सटीक चित्रण मिश्र जी के गीतों में बखूबी हुआ है। प्रेमबन्धन के शिथिल पड़ जाने, प्रीति के शुष्क हो जाने अथवा प्रेयसी की विमुखता पर कविवर बड़ी

---

1. त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्रमिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ.115
2. वाग्वधूटी, 'त्वयैवोपहसितम्', पृ.57
3. वाग्वधूटी, मानिनि! गणय न खलु मम दोषम्, पृ.14
4. वही, जीवनं जीवितं रे, पृ.77–78

शालीनता से पूछते हैं कि मेरे जीवन के लिए संकल्पित तुम्हारी प्रीति कहाँ लुप्त हो गयी? वह अमृतसदृश मधुरवचन व कामोद्दीपक नेत्रकटाक्ष सब कहाँ चले गये ?

क्व गता प्रिये! त्वदीया प्रीतिः

मम जीवनाय रम्या गीतिः!!

मधुरभाषणं तदमृतसारम्

नयनवीक्षणं विकलितमारम्

अयि शोभने! क्व याता रीतिः।।[1]

कविवर मिश्र जी प्रेयसी को पूर्णतया विमुख देखकर तथा अपने रूप को बेचने के लिए आतुर अपनी उस रूपसी को विपरीत लक्षणा के माध्यम से प्रणाम करते हैं। वे कहते हैं कि इसी रूप के द्वारा कभी पुरुरवा छले गये, विश्वामित्र विकल कर दिये गये तथा दशरथ को भी प्राण त्यागने को विवश होना पड़ा–

रूपाय तस्मै नमः!!

यूपाय तस्मै नमः!!

छलितो हि येन पुरुरवाः

देवर्षिरपि विकलीकृतः

प्राणैर्वियुक्तो दशरथस्तस्मै नमस्तस्मै नमः!!

विद्यागजाननकल्पितम्

अभिराजभक्तमनारतम्

गतमेव सम्प्रति पण्यतां तस्मै नमस्तस्मै नमः!![2]

प्रेम–पीड़ा का कठोर अनुभव जब दर्द और उलाहने के साथ अभिव्यक्त होता है, तो फिर पीड़ित हृदय की वेदना गीत रूप में प्रस्फुटित हो उठती है–

हृदयेन किन्न सोढं गरलायितं त्वदीयम्

नयनेन किन्न सोढं शबलायितं त्वदीयम्!![3]

कविवर अभिराज जी के भक्तिपरक गीतों की भी अद्भुत छटा है। वे लिखते हैं कि मैं तो भवसागर, भवतारण किसी को भी नहीं जानता। मैं तो इन सबके एकमात्र स्वामी

---

1. वाग्वधूटी, क्व गता प्रिये त्वदीया प्रीतिः, पृ. 9
2. वही, रूपाय तस्मै नमः, पृ. 84–85
3. वही, हृदयेन किन्न सोढम्?, पृ. 30

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र भगवान् मुरलीधर को ही जानता हूँ। गीत की लय व पदबन्ध सुधीपाठकों को स्वतः अपनी ओर आकृष्ट कर भक्तिरस से सरोवार कर देते हैं–

भवसागरं न जाने भवतारणं न जाने
त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!!
ब्रह्माऽसि सृष्टिमूलं वैशेषिके विशेषः
न्याये त्वमीश्वरोऽसौ सांख्येऽप्यसङ्गवेषः
तदपि त्वदीयरूपं मुरलीधरं विजाने।।[1]

'मातस्तव चरणकमलकृपया' में कविकृत मातृवन्दना में प्रदर्शित समर्पण भाव तथा 'निखिलं जगन्मदीयम्' गीत में द्योतित समग्र दृष्टि अवश्य ही अवलोकनीय है।

आपके इस प्रथम संस्कृत नवगीत संग्रह में लोकगीत छन्दों के अनेक उदाहरण समाहित हैं जिनकी भाषायी सहजता, गीतसंज्ञानुरूप ही भावार्थ विधान तथा लयात्मक छन्दानुरूप नाद–सौन्दर्य, सामान्य संस्कृत का अध्येता तो क्या, संस्कृत–ज्ञानशून्य किन्तु रागप्रियजन को भी बरबस ही आकृष्ट कर लेता है। लोकगीत विधा के सम्बन्ध में कविवराभिराज जी अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में लिखते हैं कि ये लोकगीत अपनी आंचलिकता के प्रभाव तथा अन्य अनेकों प्रकार से अपनी अभिव्यक्ति में समर्थ होते हैं परन्तु इनकी प्रस्तुति में स्थान, जाति, कुल, परम्परा आदि का भेद होने के कारण ये अनेकों विधाओं का रूप ले लेते हैं यथा–

"लोकेन सङ्गीतशास्त्रज्ञानविरहितेन प्राकृतजनेन गीतं लोकगीतम्। तत्र जनपदोदाहरणं यथा रसिकाख्यं लोकगीतं व्रजेष्वेव गीयते तावत्कोसलेषु। बाउलगीतं बङ्गेष्वेव, पाण्डवानीनक्तक प्रचरण–वटुक स्कन्धहारीय–चैत्रक, फालगुनिकादीनि उत्तरप्रदेशष्वेव, दण्डरासक गीतं (डंडियेतिभाषायाम्) गुर्जष्वेव अभङ्गारव्यं गीतं महाराष्ट्रष्वेव गीयन्ते।।"[2]

इस प्रकार पूर्वांचल क्षेत्र की विविध लोकगीत विधाओं को कविवराभिराज जी ने 'चैता' को (चैत्रकम्), 'कँहरवा' को (स्कंधहारीयम्) गजल को (गलज्जलिका), 'कजली' को (कजरी), 'सोहर' को (सूतगृहम्) आदि अपने स्वाभाविक रूप में संस्कृत नामकरणों के साथ उतारा है। इन लोकगीतों की अद्भुत छटाएँ संस्कृत वाग्वधूटी को संजाती, संवारती नजर आती हैं।

---

1. वाग्वधूटी, त्वामेकमेव जाने, पृ. 33
2. अभिराजयशोभूषणम्, मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः, पृ. 257

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अञ्चल में चैत्रमास में पति के विरह में विरहणियाँ अपनी चिन्ता को लक्ष्य करके जो गीत गाती हैं उसे 'चेता' अथवा 'चैत्रक' कहा जाता है। अभिराज जी ने क्षेत्रीयता को स्मरण–पथ में रखते हुए तथा तद्भावानुरूप उसे 'चैत्रकम्' ऐसा संस्कृत नाम देकर बहुत सहजता से इस प्रकार व्यक्त किया है–

विधुमभिसरति कुमुदिनी रे मातः किमु करवाणि
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातः किमु करवाणि
पवनो वहति मयलगिरि सूतः
रेवातटगतवञ्चुलपूतः
वितरति सुममधु नलिनी रे मातः किमु करवाणि
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातः किमु करवाणि
रौति रसालतरौ कलकण्ठी
श्रुतिकुहराय भवति ननु शुण्ठी।।
न खलु भवामि कुशलिनी रे मातः किमु करवाणि
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातः किमु करवाणि।[1]

'सोहर' गीत की ऐसी विधा है जो मंगलमय अवसरो विशेषतः पुत्रजन्म के अवसर पर महिलाओं द्वारा साभिनिवेश गाई जाती है। कविवर ने इसे 'सूतगृहम्' ऐसा संस्कृत नाम देकर लोकख्याति प्रदान की है तथा अभिराजयशोभूषणम् में इसे परिभाषित करते हुए कहा है–

"पुत्रजन्मविवाहादिमङ्गलावसरे पुनः।
गीयते ननु नारीभिर्गीतं सूतग्रह्यभिधम्।[2]
दुरितानि विधुतानि कुरुते शुभानि साधु विदधाति रे
गङ्गे! तव नीरगाहनं वितनुते विबुधलोकमनुयाति रे!!
कमलारमणचारुचरणब्जजनिते! त्रिपथगे! त्वया
गङ्गे! विहितं न कस्य पापहरणं मनुजदेवदनुजस्य रे!![3]

वर–यात्रा के समय डोली (शिविका) को जो सेवक उठाकर चलते हैं वे अपने श्रम के परिहार के लिये जिस गीत को समवेत स्वर में गाते हैं, उसे अभिराज जी ने

---

1. वाग्वधूटी, 'चैत्रकम्' (किमु करवाणि), पृ.61–62
2. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.267
3. वाग्वधूटी, सूतगृहम् (गङ्ग! तव नीरगाहनम्11), पृ.73

'स्कन्धहारीयम्' नाम दिया है। वस्तुतः इसका शाब्दिक अर्थ भी यही है। यह गीत उत्तर प्रदेश में भी इसी प्रकार से गाया जाता है। लोक भाषा में इसे 'कँहरवा' भी कहते हैं। 'स्कन्धहारीयम्' से डोली के वाहकों को आनन्दानुभव तथा उनकी थकान तो मिटती ही है, साथ ही नववधू भी अपने मायके का विछोह भूलकर आनन्दित होती है। मार्ग कब बीत जाता है पता ही नहीं चलता है। कविवर द्वारा अपनी लेखनी के माध्यम से इसे निम्न प्रकार से चित्रित किया है–

नभसि विभाति चमत्कृतचन्द्रो भाति चन्द्रमसि छाया
सरसि विभाति सरागकमलिनी कमलिन्यामलिजाया
भाति भवने वधूटी षोडशीसदङ्गना
भाति गगने मुदी सतारका निरञ्जना।।[1]

विविध मंचों पर सर्वाधिक रूप से सराही जाने वाली 'कजरी' विधा की रचना 'रौति कोकिला' को सुनकर अनायास ही चौपाल की संस्कृति, ढोलक की थाप, तालियों की लयबद्धता कानों में गुँजायमान होने लगती है। कजरी के स्पष्टीकरण में कविवराभिराज जी अपना मन्तव्य देते हुये कहते हैं कि ब्रजप्रदेश में 'रसिया', बुन्देलखण्ड में 'लांगुरिया' गीत जिस प्रकार सोद्देश्य गाया जाता है उसी भाँति पूर्वोत्तर प्रदेश के जनपदों में वर्षा के समय कजरी गाई जाती है। इसमें प्रकृति चित्रण के साथ–साथ विरही कामिनियों द्वारा निर्दयी प्रियतम को उलाहने दिये जाते हैं। कविवर ने कजरी को 'कं प्रियाऽऽगमनसुखंजरयति या सा कजरी' ऐसा संस्कृत रूप दिया है। इसकी छटा दर्शनीय है–

रौति कोकिला मदालसा रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे!!
क्षणं पल्लवे निलीय
मञ्जरीरसं निपीय
स्तौति सम्मुखं वसन्तकं रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे!!
नन्दनन्दनं विहाय
कीर्तिनन्दिनी सुखाय
वेत्ति नेषदप्यनामयं रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे!![2]

---

1. वाग्वधूटी, स्कन्धहारीयम् (भाति!!), पृ. 2
2. वही, सा कजरी, पृ. 63

उपर्युक्त लोकगीतों की लोक–लुभावन छटा के अतिरिक्त कवि मन की व्यथा उनकी गजलगीति (गलज्जलिका) 'वाचिकं ददे कस्मै' में इस प्रकार व्यक्त हुई है–

श्रणोति कोऽपि न मे वाचिकं ददे कस्मै?
वृणोति कोऽपि न मे वाचिकं ददे कस्मै?
व्यथाकथेयमहो मामकी पुरावृत्ता
अनिर्व्यथे हि भवे वाचिकं दधे कस्मै?
विनम्रसौम्यघनैर्भो न किं ममापकृतम्
कदर्थितेऽत्र मरौ वाचिकं सुवे कस्मै?[1]

इस पूरा का पूरा संग्रह रसपेशल गीतों से आप्लावित है। इन रचनाओं को पढ़कर व सुनकर सुधीजन मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। कथमसि दिने–दिने दीना, रूपाय तस्मै नमः, को नु भणतु महिमानम्, अये प्रभातारजनी, तादृशमेव नयनयुगलम्, किं जलेन तर्पणम्, श्रृणु रे हृदय..............प्रभृति गीतों की भाषा–माधुरी, भावाभिव्यक्ति और व्यञ्जकता से कविवर मिश्र जी ने गीति–परम्परा के विविध मनोभावों एवं परिप्रेक्ष्यों को नूतन–श्री से विभूषित कर एक अभिनव चेतना और प्रेरणा दी है। आपकी लोकगीतियों में हमारी मिट्टी की सौंधी महक है एवं सामान्यजन के करीब पहुँचने का संकल्प भी। इस प्रकार यह संस्कृत वाग्वधूटी रूपी संकलना सर्वत्र अपना लावण्य विखेरती नजर आती है–

प्रागलभ्यं काश्ययोऽस्याः प्रणतिपरिमितो बच्चुलालोऽपिमानः,
कारुण्यं श्रीनिवासस्मितचटुलकाला भास्करो वल्लभोऽङ्कः।
रोषः कान्तो रमाया निभृतरसकथा दीक्षितव्यूढपुष्पा,
लावण्यचाभिराजो जयति जवनवा संस्कृता वाग्वधूटी।।[2]

(ख) मृद्वीका

'मृद्वीका' प्रो. अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीत द्वितीय नवगीत संग्रह है। इसमें संकलित 53 नवगीत कुल छह खण्डों–नमस्या, रूपश्रीः, ऋतुश्रीः, जिजीविषा, राष्ट्रश्रीः तथा प्रकीर्णम् में विभक्त हैं। ये शीर्षक नाम प्रत्येक खण्ड में संकलित नवगीतों की प्रकृति व उनमें निहित

---

1. वाग्वधूटी, गलज्जलिका (वाचिकं ददे कस्मै!!)
2. श्रुतिम्भरा, पृ. 30

कवि के भाव और संदेश को पूर्णतः अभिव्यक्त करते हैं। वर्ष 1985 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित इस कृति के नवगीतों में पूर्व में प्रकाशित कवि की नवगीत संकलना 'वाग्वधूटी' के गीतों से कहीं अधिक परिष्कार, प्रौढता तथा लोक–व्याप्कता है। त्वदीयवदनं मया दिने–दिने पीतम्, नहि जगदतिरूचिरं त्वया विना, शोभते नहि राका शशिना विना, जीवामि भूतलेऽहम्, यत् प्रयाचितं त्वया तत्समर्पितं मया जैसे लोकप्रिय गीतों की रसमयता से इस संकलना का शीर्षक 'मृद्वीका' अर्थात् अंगूरों की बेल या गुच्छा (मृदु+ङीष्, पक्षे कन्+टाप् च) सचमुच सार्थक बन उठा है।

'नमस्या' शीर्षक खण्ड में कुल पाँच नवगीत संकलित हैं, जिनमें कविवर द्वारा अपने काव्य–पाक की अधिष्ठात्री वाग्देवी माँ सरस्वती की आराधना करते हुए लोकमंगल की कामना व्यक्त की है। कविवर कहते है कि हे माँ सरस्वती! आप ही मेरी शरणस्थली हो, मेरे जीवन जीने का साधन व अन्तिम लक्ष्य तुम ही हो अर्थात् काव्य–साधना ही मेरा जीवन–लक्ष्य है–

त्वमसि जननि! शरणम्!!
त्वमसि जीवितम्
जीवितलक्ष्यम्
त्वमसि मदुपकरणम्!![1]

माँ भारती की नमस्या की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति कविवर ने शान्त रस की सरसता के साथ की है–

व्यासाम्बुधिजृम्भणबिधुलेखे! दीपय जीवनगेहम्!
राधामाधवचरणकमलयुगमधुना सज्जय देहम्!!
इन्दिन्दिरमाणवकसन्निभो ननु निरपेक्षं सहजम्!
भ्रमन् रौमि सततं भवाटवीमन्येऽहं प्रतिकुसुमम्!![2]

मानव को हमेशा अच्छे–विचार, अच्छा–व्यवहार, सह–चिन्तनपरक जीवन जीते हुए कर्म–पथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए। विघ्न–बाधाओं से डरकर बैठने की बजाय डटकर उनका सामना करते हुए सिद्धिमार्ग पर आगे बढ़ते रहना चाहिए। यही संदेश व प्रेरणा मानवमात्र को देते हुए कविवर लिखते हैं–

---

1. मृद्वीका : शीर्षक नमस्या, प्रथमा गीतिः, पृ. 03
2. वही, द्वितीया गीतिः, पृ. 04

चिन्तनीयं सदा मङ्गलं मङ्गलम्

वर्तनीयं सदा मङ्गलं मङ्गलम्।

..

सिद्धिमार्गे मनस्वी पदातिर्भवेत्

नेक्षणीयं सदा स्पन्दनं स्पन्दनम्!![1]

'रूपश्रीः' शीर्षक खण्ड के अन्तर्गत संकलित सातों गीतियों में प्रो. अभिराज का सौन्दर्यलोक एवं प्रेमलोक चित्रित है। आपके इन गीतों में यौवन भोगाभिलाष कुछ इस प्रकार मुखरित है कि प्रेयसी का गोपनशून्य आवाहन करने में भी कविवर को कोई संकोच नहीं है। वस्तुतः अभिव्यक्ति के धरातल पर ऐसा ईमानदार रचनाकार संस्कृत साहित्य में शायद ही कोई और दृष्टिगोचर हो। आप प्रियतमा के बिना जीवन को जीवन नहीं मानते। कवि का सौन्दर्य से तो प्रेम है ही, किन्तु उसमें भी ज्यादा अनुराग उस व्यक्तित्व से है, उस नायिका से है, जिसका अनुगमन सौन्दर्य का सारा संसार करता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर जिसे चाहते हैं, सौन्दर्य उसकी पूजा करता है, कवि की वही हृदयवल्लभा है। इसी कारण कविवर लिखते हैं कि जब तुम चलती हो, तो तुम्हारे साथ ही दुकूल परिधान–धारिणी सुन्दरता चलती है–

त्वया समं प्रचलति सुन्दरता धृतदुकूलपरिधाना

हसति विविधकुसुमान्वितवाटी मञ्जुलमधुकरगाना!![2]

कवि कहता है कि तुम्हारे बिना यह संसार अच्छा नहीं लगता। जीवन भी तुम्हारे बिना अधिक नहीं चल सकता। कवि की दृष्टि से यहाँ संसार एवं जीवन दोनों की सरसता एवं चारुता का हेतु उसकी अपनी सौन्दर्यधारिणी प्रियतमा है। आकाश में चमचमाते चन्द्रमण्डल पर कवि अपनी इसी रूपसी की कृपा का अनुभव करता है। बिम्बफल के उपमान करकमल का संस्पर्शमात्र पाकर कवि का शरीर अमृतमय हो जाता है। मधु की मादकता भी उस प्रियतमा के ही अधीन है। उसके बिना घर का आँगन भी विजन है, यौवन भी विधुर है–

---

1. मृद्वीका, शीर्षक नमस्या, पञ्चमी गीतिः, पृ. 08
2. वही, शीर्षक रूपश्रीः, अष्टमी गीतिः, पृ. 13

न हि जगदतिरुचिरं त्वया विना!
जीवितमपि न चिरं त्वया विना!!
तव भालतिलककृपयाऽनुदिनम्
गगने चकास्ति ननु विधुवदनम्
न भवेन्मधु मदिरं त्वया विना!!
त्वदधरयुगलेन विशदविमलम्
उपमानभाग्भवति बिम्बफलम्
विजनं लसदजिरं त्वया विना!!
तव पाणिसरोरुहसंस्पृष्टम्
वपुरिदं भाति सुधयाऽऽविष्टम्
यौवनं विधुरं त्वया विना!![1]

कविवर प्रो. मिश्र जी प्रेम के उदात्त स्वरूप के उपासक है। उनकी यह शृङ्गारपरक रचना कवि के भावों को इस प्रकार व्यक्त करती है–

तव चिन्तया विगता निशा तव चिन्तया विगतं दिनम्
तव काम्यया महिता निशा तव काम्यया महितं दिनम्!!
स्नेहो विना क्व नु वर्त्तिकाम्
चन्द्रो विना क्व नु चन्द्रिकाम्
हृदि चिन्तितैरिति मामकं तव चर्यया विगतं दिनम्!![2]

पृथक्–पृथक् ऋतुओं में प्रकृति के जो मनोहारी व चित्ताकर्षक नाना रूप नजर आते हैं तथा ऋतुगत इन परिवर्तनों से मानव मन में क्या–क्या भाव आते हैं और तिरोहित होते हैं, इन सबका साक्षात्कार हमें कविवर द्वारा 'ऋतुश्रीः' शीर्षकान्तर्गत संकलित नौ गीतियों में होता है। प्रकृति–चित्रण के कुशल–चितेरे प्रो. मिश्र जी कोयल की मधुर कूक के नाना–प्रभावों का वर्णन करते हुए कहते हैं–

मन्दं मन्दं विरावं रे कुरुतेऽयं पिकः
चित्रं चित्रं प्रभावं रे कुरुतेऽयं पिकः!!

---
1. मृद्वीका, शीर्षक रूपश्रीः, सप्तमी गीतिः, पृ. 12
2. वही, दशमी गीतिः, पृ. 15

विरहिजनानां स्मरपल्लवनम्

द्विगुणोकृतरतिभावं रे कुरुतेऽयं पिकः!![1]

वर्षाकाल का सचित्र वर्णन कविवर अपनी रचना में इस प्रकार करते हैं–

रिमझिम वर्षति सजलजलधरो
नृत्यति केकी कानने!!
गर्जति धावति नदति च कूर्दति
तारापथे पयोदो बाले!
अयिभोः शिशुरिव नटति जलधरो
नृत्यति केकी कानने।[2]

श्रावणमास में एक विरहिणी की चित्त–विह्वलता और अपनी सखि से वार्तालाप के माध्यम से अपनी विरह–वेदना को व्यक्त करती नवयुवती का चित्र कविवर इस प्रकार खींचते हैं कि हे सखि! यह श्रावणमास आ रहा है और मेरी कामाग्नि बढ़ती जा रही है। घर पर मेरे पति के नहीं होने के कारण मैं अपने प्राणों को धारण करने में भी अशक्त सी हो रही हूँ–

सखि रे! समागच्छति श्रावणमास उदारोऽयम्
संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!!
भवने नैव मम प्राणेशः
श्वासः प्राणेष्वपि नो शेषः
सखि रे! भाति शर्वरी गूढसपत्नीसारयेम्
संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!![3]

व्यक्ति (कवि) कभी सौभाग्य के शिखर पर होता है। परन्तु यह शिखर–स्थिति चिरस्थायी नहीं होती। आंगन में आती है घनी बदलियाँ परन्तु बिना बरसे ही चली जाती है। जीवन बन जाता है खंडहर और उसी खंडहर पर लोग बना लेते हैं अपनी हवेलियाँ! कुछ अच्छा या बुरा स्मरण करने को शेष नहीं रह जाता क्योंकि व्यक्ति स्वयं 'स्मरणीय'

---

1. मृद्वीका, शीर्षक ऋतुश्रीः, त्रयोदशतमी गीतिः, पृ. 21
2. वही, विंशतितमी गीतिः, पृ. 29
3. वही, एकोनविंशतितमी गीतिः, पृ. 28

बन जाता है। परन्तु तब भी वह जीना ही चाहता है और जीता है। व्यक्ति के जीवन की इसी जिजीविषा को अपनी लेखनी का विषय बनाते हुए 'जिजीविषा' शीर्षक खण्ड में कविवर द्वारा अठारह गीतियों को संकलित किया है। कविवर स्वयं को जीवन–व्यथा को, पीड़ा को इन गीतों में व्यक्त करते हैं।

कवि ने बड़ी ही संजीदगी के साथ स्वाभिमानपूर्ण तरीके से अपने जीवन–मर्मों को अपनी रचनाओं, गलज्जलिकाओं में अभिव्यक्त किया है। कविवर लिखते हैं कि वह तो लोकानुराग के मूल एवं लोकाभिशापरूपी शूल सबको अपने सिर पर धारण करके जी रहा है और शायद इसलिये जी भी पा रहा है कि मृत्युरूपी बाला यमराज के घर में कहीं भटक गयी है।

लोकानुरागमूलं लोकभिशापशूलम्
शीर्षे निधाय सर्वं जीवामि भूतलेऽहम्!!
भवनाङ्गणे कदाचित् दृष्टा पयोदमाला
प्रपलायितोऽप्यवृष्टिः जीवामि भूतलेऽहम्!!

———————————————

निर्मापितं न जाने केनेदमूर्ध्वहर्म्यम्
मम खण्डितावशेषे जीवामि भूतलेऽहम्!!

———————————————

किं संस्मरामि मधुरं किं विस्मरामि कटुकम्
स्मरणीयतामुपात्तो जीवामि भूतलेऽहम्!!

———————————————

मन्ये कृतान्तगेहे भ्रान्तास्ति मृतयुबाला
यस्मादहोऽभिराजो जीवामि भूतलेऽहम्!![1]

प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि के जीवन से आजिज आ जाने तथा उनकी पीड़ा की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करती हैं। कविवर कहते हैं कि जीवन से मुझे वितृष्णा सी हो गयी है। मेरा शापित व तापित मन हमेशा क्षुब्ध सा रहता है, मुझे सब कुछ अरुचिकर सा लगने लगा है। मेरी विद्वत्ता व बुद्धि पिंजरे में कैद शुकी की भाँति फड़फड़ा रही है–

1. मृद्वीका, शीर्षक जिजीविषा, द्वितीयागीतिः, पृ. 35–36

चन्दनं वन्दनं नोऽधिकं रोचते
तापितं शापितं मे मनः क्षोभते!!
पञ्जरस्था शुकी मेऽभवद्वैदुषी
बुद्धिमन्निर्विशेषा स्फुरच्छेमुषी
संशयापन्नभाग्येषु को मोदते?[1]

कविवर अपने जीवन में घटित संतापदायक एवं पीड़ादायक घटनाओं को तद्भावानुरूप छन्दों के माध्यम से गीत रूप में गाते नजर आते हैं। ऐसी विलक्षण जीवन्तता हमें कविवर कृत रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है। अपने जीवन से प्रेम के चले जाने पर अर्थात् अपना सर्वस्व चला जाने पर कवि की अनुभूतिपरक हृदय–वेदना इस प्रकर व्यक्त होती है–

सौख्यं गतं भाग्यं गतम्
मन्येऽधुना सर्वं गतम्!!
यस्याः कृते गर्वोऽभवत्
यस्या कृते सर्वोऽभवत्
प्रेमाद्भुतं तस्या मृतम्!![2]

सौन्दर्य के उपासक कविवर मानते हैं कि यौवन का भी सौभाग्य सौन्दर्य के ही अधीन है, सौन्दर्यवती के ही अनुग्रह का अपेक्षी है। रूपसी के बिना यौवन विधुर है। इस रूपसी के सौन्दर्य के समक्ष अच्छे–अच्छे संयमी भी नियंत्रणमुक्त होते हुए नजर आते हैं। मेनका के दृष्टिपथ में आते ही विश्वामित्र सदृश दृढ़व्रत तपस्वी भी संयम खो देते हैं। कविवर कहते हैं कि सौन्दर्य के इस प्रगाढ़बन्ध में उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया था–

जीवनं रोचते नो विधानं विना
मोदते नैव हंसो निपानं विना!!
आगतेयं कुतो मेनका दृक्पथे
खण्डितः कौशिकोऽयं प्रमाणं विना!!
कीदृशीयं शिखाऽग्नेः हृदि प्रोत्थिता
स्वप्नहर्म्यं हुतं तैलदानं विना!![3]

---

1. मृद्वीका, शीर्षक जिजीविषा, तृतीया गीतिः, पृ. 37
2. वही, चतुर्थी गीतिः, पृ. 38
3. वही, नवमी गीतिः, पृ. 44

डॉ. मिश्र जी के नवगीतों में राष्ट्रीय भावना बड़े ही मुखर रूप में व्यक्त हुई है। उनके गीतों में राष्ट्रीयता का सन्देश प्रतिपद परिलक्षित होता है। 'राष्ट्रश्रीः' शीर्षक के अन्तर्गत समाहित कुल नौ रचनाओं में कवि का राष्ट्र–प्रेम तथा राष्ट्र को खण्डित करने में संलग्न समकालीन समस्याओं का चित्रण हमें दिखाई देता है। पारम्परिक विषयों के अलावा कवि ने राजनीति के क्षेत्र का भी बखूबी चित्रण किया है। कविवर लिखते हैं कि आज राजनीति पतित हो चुकी है। आज सद्गुणी लोगों के लिए कोई जगह नहीं है। केवल भ्रष्ट, पतित, पाखण्डी व दुर्गणी लोगों का भला करना ही इसका एकमात्र मकसद बन गया है–

दोषमलं कलङ्कं प्रपुनाति राजनीतिः
किं किं न लोकपुण्यं प्रददाति राजनीतिः!!
निर्भर्त्स्य नीतिमार्गं शप्त्वा च सत्यनिष्ठाम्
गहनं तमोऽपि भानुं विदधाति राजनीति!!
आहिण्डनं पदातिः कृतवाननारतं यः
आरोह्य तं विमानं प्रहिणोति राजनीतिः!![1]

कविवर आगे लिखते हैं कि आज भारत–देश का प्राक्तन–गौरव कहीं अदृश्य सा हो गया है। जिस देश में कभी विद्यावान्, कलावान्, वैदुष्ययुक्त व्यक्तियों को पूजा जाता था, आज वहाँ सर्वत्र वञ्चना ही परिलक्षित हो रही है। इस कारण यहाँ रहना दूभर सा हो गया है–

जीवितुं शक्यते नेदृशे भारते!!
नास्ति विद्याकलावैदुषीवन्दना
सर्वतो दृश्यते सम्मता वञ्चना
हन्त! चञ्चद्विषाणे शशे भारते!![2]

कविवर प्रो. मिश्र जी की सबसे बड़ी पीड़ा है भारत–देश के सामाजिक परिवेश में असन्तुलन का पैदा होना जिसके कारण जन–सामान्य का जीना दूभर हो गया है। आज धनिक वर्ग निम्न वर्ग का शोषक व भक्षक बन गया है–

---

1. मृद्वीका, शीर्षक राष्ट्रश्रीः, प्रथमा गीतिः, पृ. 57
2. वही, तृतीया गीतिः, पृ. 60

तिमिङ्गिलो निगरति लघुमीनम्
धनदो जठरे क्षपयति दीनम्
मरुसिकतायां छलयति हरिणं
कुटिलां सलिलतृषा म्रियते जिजीविषा!![1]

प्रो. मिश्र जी के नवगीतों में राष्ट्रीय भावना के मुख्यतः दो रूप हैं, एक तो राष्ट्रप्रेम का शाश्वत स्वरूप और दूसरा, उसका वह तात्कालिक स्वरूप जो नित्य परिवर्तित होता रहता है। इस नित्य परिवर्तनशील स्वरूप के अन्तर्गत खालिस्तान की समस्या, पोखरण का अणुविस्फोट, काश्मीर की समस्या, पाकिस्तान का भारत के प्रति बद्धमूल द्वेषभाव आदि आते हैं। बालीद्वीप में रहते हुए भी कविवर खालिस्तान की समस्या में उलझे हुए भारत देश के लिए सदैव चिन्तित रहते हैं–

हन्तः खालिस्तानयाचनया भृशम्
रक्षिभिस्स्वयमेव राष्ट्रमुपेक्ष्यते!!
धूलिधूसरिता निदेशा गान्धिनः
चित्रमेव निधाय फलके पूज्यते!![2]

कविवर प्रो. मिश्र जी भारत देश की बहुरंगी संस्कृति तथा संवेदनात्मक प्रगाढ़ता के प्रति अटूट–निष्ठा व्यक्त करते हैं परन्तु उनका अन्तर्मन अनास्था एवं क्षोभ से तब भर उठता है जब वे कुछ सिरफिरों को अलगाववाद तथा सामाजिक अस्थिरता फैलाने में संलिप्त देखते हैं। कहीं खालिस्तान की मांग तो कहीं गोरखालैण्ड की। कहीं हिन्दू–मुस्लिम दंगे तो कहीं राजनैतिक उठापटक। आखिर हम क्या चाहते हैं? कहाँ जाना चाहते हैं? अमृतमय वातावरण को क्यों विषमय बना रहे हैं? कविवर का कोमल मन आहत हो गा उठता है–

वाञ्छति कोऽपि नवीनविधानम्
कोऽपि याचते खालिस्तानम्
रोदिति गङ्गा द्रवति नगेशः समुच्छलति सिन्धुः,
को नु राष्ट्रबन्धुः??

1. मृद्वीका, शीर्षक राष्ट्रश्रीः, षष्ठी गीतिः, पृ. 65
2. वही, अष्टमी गीतिः, पृ. 69

एकमेव भारतं समेषाम्

एकमेव गौरवं समेषाम्

एकमेव गगनं सर्वेषां स्याद्रविरथवेन्दुः

को नु राष्ट्रबन्धुः??[1]

अंतिम 'प्रकीर्णम्' शीर्षकान्तर्गत कविवर द्वारा संस्कृतभाषा के पुनः जनभाषा बनने की कामना, प्रेम की स्थिरता की प्रतिपादक काव्याली (कव्वाली), बालोपयोगी दोधकम् (दोहावली), धनाक्षरी की महनीयता तथा जीवन के सभी पक्षों की मङ्गलकामना को अपनी रचनाओं में पिरोया है। यहाँ अपनी मातृभूमि एवं राष्ट्र के प्रति कविवर का अनन्यानुराग अभिव्यक्त होता है। अपनी मातृभाषा संस्कृत के प्रचारार्थ, प्रसारार्थ एवं विकासार्थ कविवर उत्साह एवं आवाहन के गीत गाते हैं। कविवर कामना करते हैं कि संस्कृत भाषा गाँव–गाँव में घर–घर में कल्याण का विस्तार करे। सबके कान–कान में, कण्ठ–कण्ठ में सुख का प्रसार करे। सबको एकसूत्र में बाँधकर, विश्वबन्धुता को धारण करती हुई संस्कृत भारत को पुनः प्रेमासक्त कर दे।–

ग्रामे–ग्रामे गेहे–गेहे शं तनोतु संस्कृतम्

कर्णे–कर्णे कण्ठे–कण्ठे कं तनोतु संस्कृतम्!!

एकसूत्रतां विधाय

विश्वबन्धुतां निधाय

प्रीतिभारतन्नु भारतं करोतु संस्कृतम्!![2]

प्रो. मिश्र जी ने अन्य भाषाओं के छन्दों को भी अपनी संस्कृत कविता में स्थान दिया है। आपने हिन्दी के छन्द दोहा, सोरठा, धनाक्षरी आदि को स्थान दिया है। इसके अलावा उर्दू की ग़ज़ल और कव्वाली को भी संस्कृत की पंक्ति में प्रेमपूर्वक बिठाया है। कव्वाली का एक उदाहरण जिसमें कविवर प्रेम की महनीयता को प्रतिपादित करते हैं–

प्रीतिरास्वद्यते प्राणैः

गीतिरास्वद्यते कर्णैः

शक्तिरास्वद्यते देहैः

---

1. मृद्वीका, शीर्षक राष्ट्रश्रीः, नवमी गीतिः, पृ. 70
2. वही, शीर्षक प्रकीर्णम्, प्रथमा गीतिः, पृ. 73

भक्तिरास्वद्यते स्नेहैः
धनान्धकारे बलिदीपिकेव बलाहके चञ्चलचञ्चलेव!
मधौ प्रफुल्ला नवमालिकेव प्रतीयते प्रीतिरियं पुराणी!![1]

वर्षाकाल का सुमनोहारि वर्णन कविवर अपने इस दोधक (दोहा) के माध्यम से करते हैं–

नदति पयोदो निर्भरं वर्षति शीतलवारि।
नन्दति वसुधाकामिनी रूपमहो सुखकारि।।
वारिधरो निकषा धरां समुपयाति यन्नाम।
प्रेम तदेव नु कथ्यते रागमयं शुभधाम।।[2]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के हाथों रोपी गई यह 'मृद्वीका' अपने मधुर–मधुर, लुभावने नवगीतों रूपी परिपक्व द्राक्षाफलों के माध्यम से सुधीपाठकों को हमेशा रसप्लावित करती रहेगी। यहाँ सुधीपाठकों के स्वादानुसार नाना–रसों की अनुभूति दायक गीतियाँ संकलित हैं। यहाँ ब्रह्मा की सृष्टि के प्रति नमन भाव से खड़ा कवि नजर आता है, तो कहीं प्रकृति के नाना ऋतुओं में परिवर्तन सौन्दर्य की उपासना में रत नजर आता है। कहीं जीवन के थपेड़ों से निराश परन्तु जीने की कामना करता हुआ, तो कहीं राष्ट्र की प्रोन्नति के प्रति चिन्तित। कहीं कव्वाली के माध्यम से प्रेम की महनीयता को स्थापित करते हुए, तो कहीं सर्वमङ्गल की कामना में रत। इस प्रकार 'मृद्वीका' सचमुच में मृद्वीका है।

(ग) श्रुतिम्भरा

'श्रुतिम्भरा' कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत तृतीय नवगीत–संग्रह है। इसमें डॉ. मिश्र द्वारा 1984 से 1989 के मध्य रचे गये कुल सैंतीस संस्कृत गीत संग्रहीत हैं। ये समस्त गीत विषयवार पाँच भागों में विभक्त हैं–संस्कृतध्वनि (सात गीत), राष्ट्रध्वनि (छः गीत), प्रवासध्वनि (छः गीत), निसर्ग ध्वनि (नौ गीत) तथा आत्मध्वनि (नौ गीत)। इस संकलना का प्रथम संस्करण 1989 ई. में तथा द्वितीय संस्करण 2004 ई. में, वैजयन्त प्रकाशन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ। इस संग्रह का नाम 'श्रुतिम्भरा' भी अन्वर्थ प्रतीत होता है, क्योंकि इन गीतों को एक बार सुनने अथवा पढ़ लेने के उपरान्त उनकी अनुगूँज कानों में निरन्तर गुँजायमान रहती है।

1. मृद्वीका, शीर्षक प्रकीर्णम्, द्वितीया गीतिः, पृ. 74
2. वही, द्वितीयागीतिः, पृ. 75

प्रस्तुत गीत–संग्रह के प्रारम्भ में कविवर ने 'मदीया काव्ययात्रा' शीर्षक से सोलह पृष्ठीय भूमिका लिखी है। यह भूमिका भी कवि–हृदय से निःसृत होने के कारण एक सरस कविता ही बन उठी है। इसमें जहाँ पर कवि ने अपने दुःखद शैशव का चित्रण किया है, वहाँ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे एक हतभाग्य शिशु आँखों के सामने मिठाई और खिलौनों के लिए मचलकर भूमि पर लोट–पोट हो रहा हो। इस चित्रण से द्रवीभूत होकर एक सहृदय पाठक उस शिशु को अपनी अंक में लेकर पुचकारने दुलारे की चेष्टा से स्वयं को नहीं रोक पायेगा। इसके साथ ही यहाँ पर विधवा माँ की विवशता भी पाठक को झकझोर देती है। मात्र ढाई वर्ष की अल्पायु में ही पितृ–स्नेह से वंचित कवि की शिक्षा एवं काव्य–जगत् में आपका प्रवेश भी यहाँ प्रेरणादायी रूप में वर्णित है। कविवर की यही पीड़ा बार–बार कविता रूप में प्रवाहित होने लगती है–

अल्पवय में ही बना अनाथ
स्वप्न बन गया पितृव्यवहार।
तदपि किस पूज्य पिता के हेतु
व्यथित होता मन बारम्बार?[1]

1960 से लेकर अब तक संस्कृत, हिन्दी एवं भोजपुरी में विविध विधाओं में सैंकड़ों ग्रन्थों के प्रणेता कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र आज संस्कृत–हिन्दी जगत् के लिये एक सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर हैं। इस भूमिका में आपने स्वयं लिखा है कि प्रतिदिन, प्रति सप्ताह अथवा प्रतिमाह लिखने का आपका कोई नियम नहीं है। परन्तु जिस दिन भी वाणीकृपा से आपकी भावनाएँ जाग्रत हुई, उस दिन थोड़े समय में ही आप पूरा का पूरा काव्य–ग्रन्थ लिखने में समर्थ हैं। किसी एक विषय पर ही बारम्बार लिखना आपको पसन्द नहीं है। अपितु नवीन–नवीन विषयों पर नवीन–नवीन रचनाएँ करना ही आपको अच्छा लगता है– **"नाहं प्रत्यहं लिखामि न वा प्रतिसप्ताहं प्रतिमासं वा। काव्यप्रणयने न कोऽपि नियमो न पूर्वाग्रहः पूर्वानुरोधो वा।..............परन्तु यावदेव मल्लिकाक्षवाहिनी प्रहवीभवति, मयि दयते वा, निखिलमेव काव्यं निर्मीयते अल्पेनैव कालखण्डेन। तत्सर्वं परम्बाया महामायाया विजृम्भितम्।"**[2]

1. वेदना
2. श्रुतिम्भरा, भूमिका भाग, पृ. 19

कविवर आगे लिखते हैं कि मुझसे अनेकशः प्रश्न किये जाते हैं कि आपने कौन–कौन से काव्य कब–कब और किस उद्देश्य से लिखे? प्रत्युत्तर में कवि भूमिका भाग में लिखते हैं कि वस्तुतः काव्य यात्रा कैसे प्रारम्भ हुई यह महत्त्वपूर्ण है। जब एक कवि हृदय दुःसह वेदना की अग्नि से द्रवीभूत होकर पिघलने लगता है, तब वह कवि ही काव्यस्वरूप में प्रस्फुटित हो जाता है और इसी प्रक्रिया से गुजरने पर ही आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, भर्तृहरि आदि महाकवि के रूप में जाने जाते हैं– **"सन्ततिजननाच्छतगुणमहीयसी भवति सन्ततिजननपीड़ा। सा पीडैव वन्ध्याऽभिनन्द्या च भवति। यतो हि दुस्सहव्यथाज्वालाभिरात्मचेतनां द्रढीयसीं द्रवीकृत्य स्वयं कविररेव काव्यरूपेण परिणमति। एतएवासौ दहननिस्यन्दनप्रक्रियैव कविकर्मसर्वस्वभूता।"**[1]

काव्य क्या है? इसके कितने भेद है? इत्यादि प्रश्नों पर विस्तृत चर्चा करते हुए कविवर द्वारा सोपानक्रम से अपनी सृजनयात्रा से परिचय करवाया है। किन–किन समस्याओं से उद्वेलित होकर कविवर की लेखनी सृजनता को प्राप्त होकर कौन–कौन सी रचनाओं के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थिति हुई, इन सब पर रचनाओं के दृष्टान्तों के माध्यम से कवि ने अपनी सृजनधर्मिता से रूबरू करवाया है।

गीतिकाव्य–मर्मज्ञों ने भाव–प्रवणता, गीतिमयता एवं सरलता–सहजता को ही गीत के प्रमुख तत्त्व माने हैं। इस दृष्टि से 'श्रुतिम्भरा' को देखने पर ज्ञात होता है कि डॉ. राजेन्द्र मिश्र संस्कृत–गीत रचना के क्षेत्र में एक 'कालजयी गीतकार' का नाम है। 'संस्कृतध्वनि' के अन्तर्गत अपनी प्रथम रचना में ही आप लिखते हैं कि–

मदयति न हि कं सुमधुरचना।
नवरूचिरपदा मधुमयवचना।।[2]

नवरूचिर पदावली एवं मधुमय वचनों से युक्त जिस मादक समधुर रचना का उल्लेख यहाँ हुआ है, उसका रूप 'श्रुतिम्भरा' में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। संस्कृतध्वनि में संकलित निम्न सातों गीतों में कवि हृदय में राष्ट्र एवं भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के प्रति अगाध प्रेम व्यञ्जित होता है–

1. सुमधुररचना!
2. रमयति नहि कम्?

---

1. श्रुतिम्भरा, भूमिका भाग, पृ. 13
2. वही, सुमधुररचना, 01

3. संस्कृतमयं भवतु मम राष्ट्रम्!

4. राष्ट्रभारती भवतु संस्कृतम!

5. न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा!

6. कारुण्यश्रृङ्गाटके!

7. भवभूतिरेव महीयते!

कवि उपर्युक्त रचनाओं के माध्यम से कहते हैं कि राष्ट्रीय गौरव के लिये भारतीय संस्कृति एवं सांस्कृतिक गौरव के लिये संस्कृत भाषा की उन्नति अनिवार्य है। अतएव कवि हृदय गा उठता है–

संस्कृतममं भवतु मम राष्ट्रम्।
नवगौरवं दिशतु मम राष्ट्रम्।।
विना संस्कृतं कुत्र संस्कृतिः
विना संस्कृतं कुत्र निष्कृतिः?
राष्ट्रभारती भवतु संस्कृतम्।
लोकभारती भवतु संस्कृतम्।।[1]

संस्कृत को मृतभाषा कहने वालों को कविवर ललकारते हुए कहते हैं कि–

न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा!
सुखागमृता सुखदा वरदा
द्विषतां नियतिं रचयिष्यति वा।।[2]

अर्थात् संस्कृत न तो मरी, न मर रही है, और न ही मरेगी ही। यह तो अमरवाणी है, जो सदैव बनी रहेगी।

संस्कृत भाषा के प्रति प्रशासन व आमजन की उपेक्षा से खिन्न कवि लिखता है–

वेदशास्त्रेतिहासत्रिवेणी नवा
ज्ञानविज्ञानशैलेन्द्रसानूद्भवा।
निर्जरैर्नन्दिता कोविदैर्वन्दिता
क्लिश्यते साऽद्य नग्नाटिनां नाटके।।
देववाणी व्यथोच्छूननेत्राऽधुना
हिण्डते हन्त! कारुण्यश्रृङ्गाटके।।[3]

---

1. श्रुतिम्भरा, संस्कृतमयं भवतु मम राष्ट्रम् 03
2. वही, न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा 05
3. वही, कारुण्यश्रृङ्गाटके 06

इसी भाँति 'राष्ट्रध्वनि' के अन्तर्गत 'भारतं वन्दे!!, जयताद् भारतराष्ट्रम्!!, रक्ष मदीयं देशम्!!, कीदृशी स्वतन्त्रता?, रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्!! तथा निर्झरी हन्त कूलङ्कषा! ये छः गीत संकलित है। इनमें भारतदेश के प्राचीन गौरव के गुणगान के साथ राष्ट्र की उन्नति हेतु कामना व्यक्त की है। इसके अलावा देश की वर्तमान दुर्दशा भी पर आक्रोश व्यक्त किया है।

भारतीय गौरव का चित्रण करते हुए कवि गाता है–

यस्यं हृदयं धर्मनिलयं दर्शनं दृष्टिः
विश्वबन्धुत्वं निसर्गाश्चिन्मयी सृष्टिः
सङ्गतं वन्दे।
भारतं वन्दे।।[1]

विश्वबन्धुत्व एवं समभाव के लिए समस्त विश्व के लिए समादरणीय इस धर्मप्राण देश की वन्दना से कवि का सच्चा राष्ट्रप्रेम व्यञ्जित होता है। भारत–माता के समग्र स्वरूप को स्मरण करते हुए उसकी विजय की कामना करते हुए कवि गुनगुनाते हैं–

बङ्गकलिङ्गतमिलकेरलमरुभूगुर्जराऽभिरामा
भाति गले खलु जनपदमाला विविधनिसर्गललामा
काश्मीरं किल लसति ललाटे प्रभवति हिन्दुस्थानम्
जयताद् भारतराष्ट्रम्।।[2]

पड़ौसी शत्रु देशों की कुदृष्टि तथा कुचक्रों से रक्षा की कामना करते हुए कवि गाते हैं–

हिमधवले शैलेयशीर्षको कुरुतेऽनिशं प्रहारम्
असमीचीनं दुर्मदचीनं तनुते मृषा प्रचारम्

...
अधमर्णो दुर्भावविशीर्णो लालाटिको वराकः
नो समीहते भारतसौख्यं द्वेषजर्जरः पाकः
परित्यज्य लज्जामेकां ननु वाञ्छति विजयमशेषम्।
भगवन् रक्ष मदीयं देशम्!![3]

---

1. श्रुतिम्भरा, भारतं वन्दे 08
2. वही, जयताद् भारतराष्ट्रम् 09
3. वही, रक्ष मदीयं देशम् 10

आज स्वतन्त्र भारत में विभिन्न राष्ट्रीय संकटों को देखकर स्वतन्त्रता के विषय प्रश्नचिह्न लगाते हुए कवि हृदय लिखता है–

शोकतापजर्जरा द्रोहभारभङ्गुरा
अद्य दृश्यते न किं भारतीवसुन्धरा
दुर्गते हि भारते कीदृशी स्वतंत्रता?
मामके हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता??[1]

स्वतन्त्र भारत देश की दुर्दशा से व्यथित होकर, पंजाब प्रान्त में बन्धुओं के द्वारा ही बन्धुओं का रक्तपात देखकर, कविहृदय चीत्कार कर उठता है। यहाँ तक कि आपको गंगा नदी भी रुदन करती हुई दिखाई पड़ती है–

या कृपाणी गृहीता क्वचिद्रक्षणे
हन्ति सैवात्मबन्धून् निकामं रुषा।।
नेत्रनीरं वहन्तीव देवापगा
ईक्षते भारतीयान् रुदत्या दृशा।।[2]

इसके बाद 'प्रवासध्वनि' के अन्तर्गत 'जलधर! नय सन्देशम्!!, स्मृतिमञ्चति स्वदेशः!!, महीसीयं भारतभूमिः!!, भारतं कीदृशं वर्तते?, क्वासि गुरो गोविन्द!!, बाल्यां निखिलं भारतायते ये छः गीत संकलित हैं। ये समस्त रचनाएँ कविवर द्वारा अपने बाली–प्रवास के दौरान ही लिखी हैं। विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में बालीद्वीप स्थिति उदयन विश्वविद्यालय, डेनपसार में सेवा देते हुए कवि का मन रह–रहकर अपनी मातृभूमि के लिए व्याकुल हो उठता है। भले ही विदेश में भौतिक–सुख की प्रचुरता हो, किन्तु एक देशप्रेमी व्यक्ति का हृदय अपनी जननी व जन्मभूमि को कभी नहीं भुला सकता है। उसका मन मातृभूमि के दर्शनार्थ सदैव उद्विग्न रहता है। जैसाकि प्रवासध्वनि के प्रारम्भ में कवि लिखता है–

बाल्यां सर्वेन्द्रियाणि स्वविषयपरिधौ दत्तचित्तानि किन्तु
चित्तं तन्मेऽसहायं भ्रमति निजगृहे भारतस्थे निकामम्।।
यामुनगाङ्गतरङ्गविलासी

---

1. श्रुतिम्भरा, कीदृशी स्वतन्त्रता 11
2. वही, निर्झरी हन्त कूलङ्कषा 13

अभिराजः साम्प्रतं प्रवासी
प्रणमति सुहृत्स्वजनसमुदायं सदयं सविनयमेषः!
सन्धारयतु परेशः!![1]

प्रवासकाल में अपने प्रियजनों के पास अपना–कुशल–सन्देश भेजकर तथा प्रियजनों के कुशलता के समाचार प्राप्त कर प्रवासी–जन को कुछ शान्ति मिल जाती है। अपने प्रवास काल में कविवर भी मेघदूत के यक्ष की भाँति मेघ से अपने देश भारत में अपने प्रियजनों व अपनी वृद्धा माता तक सन्देश भेजने को उत्कंठित है–

सान्वय जरातुरां जननीं मम स्नेहमयीमभिराजीम्।
पुत्रप्रणयविमोहकातरामश्रुमयीं पालिताङ्गीम्।।

बन्धुसमूहमशेषम्!
जलधर! नय सन्देशम्!![2]

कविवर आगे लिखते हैं कि काल के प्रभाव से यद्यपि देश की स्थिति पहले जैसी नहीं रही। परन्तु इस दयनीय दशा में भी सनातन मूल्य अभी भी यथावत् विद्यमान हैं, जो अन्यत्र कहीं भी परिलक्षित नहीं होते। अतः मुझे गर्व है कि मेरा जन्म भारतभूमि पर हुआ।

यद्यपि निखिलं विपरिवर्तितम्
त्रेताद्वापरकृतयुगचरितम्
कलौ तथापि केचिदवशिष्टाः प्राक्तनगुणसंघाताः।
यत्र वयं सञ्जाताः।।[3]

इसके बाद 'निसर्गध्वनि' के अन्तर्ग प्रकृति से संबंधित 'मेघो वितरति बहु–बहु वारि!, 'वसन्तो भुवमवतरति सुखाय, दीपकमाला, गङ्गां विलसति!, कावेरी, पुरुरूप सागर!!, दक्षिणाशाऽवनी शोभते!, शिलादुर्गमन्दिरम्!, मिहिरावलि, ये नौ गीत संकलित हैं। इन गीतों में भारतीय ऋतुओं, पर्वों, नदियों एवं महासागर आदि संबंधित चित्रण है जो कविवर के प्रकृति–प्रेम के द्योतक हैं। वर्षा ऋतु में गाई जाने वाली कजलियों का एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है–

---

1. श्रुतिम्भरा, स्मृतिमञ्चति स्वदेशः 15
2. वही, जलधर! नय सन्देशम् 14
3. वही, महीसीयं भारतभूमिः, 16

प्रिया चपला पयोदम्

समालिङ्गति समोदम्

मेघो वितरति बहु–बहु वारि

मदनसुखमातनुते।।[1]

इसी भांति वसन्त ऋतु का चित्रण करते हुए कविवर कहते हैं–

"दिशि दिशि पीता मधुकरगीता

लसति रसालवनाली!

'कुहू–कुहू' कूजति परभृतिका

दयितं रहसि निधाय!

वर्सन्तो भुवमवतरति सुखाय!!"[2]

'श्रुतिम्भरा' के अन्तिम भाग 'आत्मध्वनि' के अन्तर्गत संकलित गीतों में प्रायः कवि हृदय निसर्गतः सत्य, शिव एवं सुन्दर का उपासक होता है। तदनुरूप माँ पार्वती की शोभा का स्वाभाविक वर्णन करते हुए कविवर लिखते हैं–

दयितनिलयनवपरिचयभीता

चकितमृगीव सरति गौरी शिवसदने!![3]

'प्रथिता सुवर्णता मे!!' शीर्षक गीत में कविवर अपने जीवन के यथार्थ का चित्रण करते हुए कहते हैं कि विपत्ति की अग्नि में तपकर मेरी सुवर्णता खरी उतरी है, और समाज को सर्वस्व प्रदान करके मैंने सारा ऋण चुका दिया है। यद्यपि मैंने धनिकों के घर में जन्म नहीं प्राप्त किया, परन्तु नयनों की मुक्तामणियों के द्वारा ही मेरी सारी दरिद्रता ध्वस्त हो गई।

दग्ध्वा विपत्तिदहने प्रथिता सुवर्णतामे

दत्वाऽखिलं जनेभ्यो लुप्ताऽधमर्णता मे!!

कामं कुबेरगेहे प्राप्तं मया न जननम्

नयनाम्बुमुक्तयैव ध्वस्ता दरिद्रता मे!![4]

---

1. श्रुतिम्भरा, मेघो वितरति बहु–बहु वारि, 20
2. वही, वसन्तो भुवमवतरति सुखाय 21
3. वही, विलसति गौरी 29
4. वही, प्रथिता सुवर्णता मे 32

इसके अतिरिक्त कविवर ने 'मञ्जुरूपे त्वदीये' गीत में 'विशुद्ध प्रेम', 'पदं पदं भूरि धृतम्' में सद्वृत्तियों के विकासार्थ अभ्यास की महत्ता, 'युगं वर्तमान प्रणम्यम्' में वर्तमान युग की भयावहता, 'क्वचिन्नास्ति सौख्यम्' में आज के संघर्षमय एवं स्पर्धापरक जीवन में सुखाभाव, 'सहसा प्रयातम्' में लोक की छद्मपरक जीवन शैली तथा 'मणिकर्णिकाघट्टे' इस गीत में वर्तमान काल में भारतीय संस्कृति पर मंडरा रहे खतरों तथा कविवर द्वारा उसके संरक्षणार्थ किये जा रहे प्रयासों का जीवन्त चित्रण किया गया है।

इस प्रकार 'श्रुतिम्भरा' इस गीत संकलना में विविध भावों की अभिव्यञ्जना युक्त गीत रचनाओं में कविवर की प्रसादगुणमयी प्राञ्जल शब्दावली तथा गेयता रोचक बन पड़ी है। इसी कारण समकालीन काव्यमंचों पर आज भी इन गीतों की प्रस्तुति इस रचना की सफलता व महत्ता को उजागर करती है।

(घ) मधुपर्णी

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर एवं सर्जनशील महाकवि डॉ. अभिराज राजेन्द्र प्रणीत चतुर्थ नवगीत संकलन है– 'मधुपर्णी'। 'मृद्वीका', 'वाग्वधूटी' और 'श्रुतिम्भरा' के पश्चात् संस्कृत वर्ष 2000 ई. में वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद से यह गीतसंकलना 'मधुपर्णी' प्रकाशित हुई जिसमें 1989 से 2000 ई. के मध्यवर्ती ग्यारह वर्षों में प्रो. मिश्र प्रणीत नवगीतों, गज़लों तथा छन्दोमुक्त कविताओं का संकलन है। कुल 68 गीतों का यह संकलन सहृदय पाठकों की सुविधा के लिए तीन भागों में विभक्त है– गलज्जलिकाः, गीतयः, मुक्तच्छन्दांसि।

'गलज्जलिका' शीर्षक प्रथम खण्ड में वे 22 मात्रिक गीत हैं जो विशुद्ध रूप से उर्दू–फारसी गज़ल के भावबोध, रचनाशिल्प, कथ्य एवं तथ्य का पालन करते हुए लिखे गये हैं। इन गज़लों में भी संवेदनात्मक वैविध्य विद्यमान है। ये गज़लें कहीं तो वस्तुनिष्ठ हैं और कहीं आत्मनिष्ठ हैं।

'गीतयः' शीर्षक द्वितीय खण्ड में 28 वे नवगीत रचनाऐं हैं जो पारम्परिक गीतों की शैली में लिखी गयी हैं। इन गीतों में विविध मानवीय संवेदनायें, राष्ट्रियनिष्ठा, भारतीय–संस्कृति, प्रकृति–वैभव तथा कतिपय प्राचीन सन्दर्भ दृष्टिगोचर होते हैं।

इस संकलन के अन्तिम खण्ड 'मुक्तच्छन्दांसि' में 18 ऐसी छन्दोमुक्त, लम्बी भावप्रवण काव्याभिव्यक्तियाँ हैं, जो कि अनेक प्राचीन, ऐतिहासिक तथा साहित्यिक पात्रों पर आधारित हैं। कहीं वसन्तसेना का आत्मकथ्य है तो कहीं रोहसेन के निरवधि दैन्यभाव का चित्रण! कहीं महाराणाप्रताप के प्रति कवि के उदात्त प्रश्न हैं तो कहीं अहंकारी नरेश हर्ष को लिखा गया स्वाभिमान–परायण बाणभट्ट का पत्र! कहीं शुष्क–वृक्ष का जीवन–दर्शन विद्यमान है तो कहीं आकाश के साथ तादात्म्य का अनुभव करके कवि का अपना उद्गार! वस्तुतः इस खण्ड की समस्त रचनाएँ कवि की मौलिक कल्पनाओं और उदात्त चिन्तनों से ओत–प्रोत हैं। सद्यः प्रस्फुटित शतदल के समान इसका प्रत्येक दल या मधुपर्णी का प्रत्येक पर्ण अपने प्रत्यग्र सौंदर्य, अनाघ्रात सुरभि, अनास्वादित रसमाधुर्य और अभिनव वर्णशोभा से सहृदय–हृदय में अलौकिक आनन्द का संचार करता है। मरुस्थल बनती संवेदनाओं की भूमि पर कवि ने उस मधुपर्णी की सृष्टि की है जिसमें वाङ्मधु, नयनमधु और हृदयमधु के साथ ही आत्मा का वह मधु भी है जिसे उपनिषदों की भाषा में 'मधुविधा' कहा गया है। 'मधुपर्णी' का शाब्दिक अर्थ होता है– **'नील का पौधा'।**

'मधुपर्णी' में संकलित कविवर कृत संस्कृत गजल–गीतियों के कथ्य, तथ्य एवं भावसौन्दर्य को आत्मसात् करने के लिए यहाँ संस्कृतेतर गजलविधाओं विशेषतः उर्दू व फारसी गजलविधा पर एक संक्षिप्त दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है। उर्दू–फारसी ग़ज़लों के भाव पक्ष–कलापक्ष, रचना–कौशल आदि पर विचार करना यहाँ प्रसंगानुकूल होगा। 'गलज्जलिका' यह अभिधान सर्वथा नवीन है जो वागर्थ के कुशल शिल्पी मिश्र जी की प्रयोगधर्मिता को सूचित करता है। यह शब्द काव्यधारा के उस उत्स की ओर संकेत करता है जो हिमशिला के गलने से जन्म लेती है। राजशेखर के अनुसार काव्यपुरुष को जन्म देने के लिए सरस्वती ने हिमशिला पर बैठकर तप किया था। संसार के दुःख–ताप से या प्रणय की ऊष्मा से कविहृदय की वह हिमशिला जब–जब द्रवित हुई तब–तब प्रवाहित हुआ है वह काव्य–निष्यन्द। संभवतः इसी उद्‌गम को लक्ष्य कर हिन्दी के प्रसिद्ध ग़ज़लकार दुष्यन्त कुमार ने कहा है–

हो गई है पीर पर्वत सी, पिघलनी चाहिये,
इस हिमालय से कोई गङ्गा निकलनी चाहिये।[1]

1. साये ये धूप के, पृ. 30

ग़ज़ल उर्दूकाव्य की एक लोकप्रिय कलात्मक विधा है जो अपनी नाजुक ख़याली और खूबसूरत अन्दाज़े बयाँ के कारण प्रसिद्ध रही है। आशिक और माशूका की मोहब्बतभरी गुफ्तगू को ग़ज़ल कहा जाता है। हुस्न–इश्क और साकी–शराब की रसीली अभिव्यक्ति इसकी भावभूमि में गुँथी रही है। ग़ज़ल की उत्पत्ति छठवीं शती में सर्वप्रथम अरबी भाषा में हुई। अधिकांश ग़ज़लकारों का यह मत है कि ग़ज़ल उर्दू से नहीं अपितु फ़ारसी से हिन्दी भाषा में आई। सर्वप्रथम अमीर खुसरो (1255–1325 ई.) ने हिन्दी की पहली ग़ज़ल लिखी। कबीर, रघुपति सहाय (फिराक गोरखपुरी), निराला, रामप्रसाद बिस्मिल, पण्डित आनन्द नारायण मुल्ला, प्रताप नारायण मिश्र, स्वामी रामतीर्थ, लाला भगवानदीन, जयशंकर प्रसाद, कृष्ण बिहारी 'नूर', त्रिलोचन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, जानकी वल्लभ शास्त्री आदि ने हिन्दी में ग़ज़लें रची हैं। संस्कृत भाषा में ग़ज़लकारों के रूप में जानकी वल्लभ शास्त्री, पं. बच्चूलाल अवस्थी, जगन्नाथ पाठक एवं डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं।

एक ग़ज़ल में कम से कम तीन या अधिकतम पच्चीस शेर होते हैं। प्रत्येक शेर अपने में पूर्ण और स्वतन्त्र होता है। ग़ज़ल की प्रारम्भिक दो पंक्तियाँ शीर्षक मानी जाती है, मतला (आरम्भिका) कहलाती हैं। अग्रिम पंक्तियों में इन्हीं दोनों पंक्तियों के विषय का समर्थन किया जाता है, शेर (मध्यिका) कहलाती है तथा अन्तिम दो पंक्तियों में ग़ज़लकार/कवि/लेखक का नाम होना जरुरी है, मक़्ता (अन्त्यिका) कहलाती है। यद्यपि ग़ज़ल का उद्‌भव रोमानीपन से हुआ है फिर भी इसमें प्राकृतिक सौंदर्य, अध्यात्म और दार्शनिकता के अनेक रंग मिलते हैं। ग़ज़ल क्रमशः नई ज़मीन पर सामाजिक यथार्थ से जुड़ी है। मधुपर्णी की गलज्जलिकायें भी भावों के विविध रंग बिखेरती हैं।

मधुपर्णी का प्रारम्भ 'धूमतां यामो वयम्' से और उपान्त होता है–'वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य' से। दोनों में ही लोकहित और मङ्गल के लिए जीवन के समर्पण की कामना है।

कविवर इस प्रथम ग़ज़ल–गीति में सृष्टि–यज्ञ की अग्नि में जीवन–हवि को अर्पित कर 'धूम' बन जाने की भावना व्यक्त करते हैं, एक ऐसा धूम जो मेघ बनकर पुनः हवि की सृष्टि करे। कविवर द्वारा अपनी इस ग़ज़ल–गीति में भारतीय दर्शन की उस अवधारणा को गूँथ दिया है जो सृष्टि को एक वृत्त के रूप में देखती है। यह जीवन–यात्रा हवि से धूम की और धूम से पुनः हवि की है; बिन्दु से सिन्धु की ओर, सिन्धु से बिन्दु की ओर। यही इस जगत् को जन्म देने वाला ऋत, अस्तित्व देने वाला सत्य और धारण करने वाला धर्म

है। कविवर, मधुपर्णी के बासन्ती परिमल से जीवन की साँसों को सुवासित करने के लिए पुनः पुनः इस कर्मभूमि में आने की अभिलाषा रखते हैं। वे वन्य तृण बनकर पृथ्वी की परुषता को एक मृदुल–कोमल आवरण और मिट्टी के मटमैले स्याह रंग को स्निग्ध हरीतिमा प्रदान करने की कामना करते हैं। इस प्रकार जीवन को त्याग, कर्म एवं पुरुषार्थ की साधना से सुवासित करने की प्रेरणा देते हुए कविवर लिखते हैं–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्
धूमतो घनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।
सञ्चिनोति सुखं स्वकीयं, बन्धुनिवहार्थं भवान्
वन्यतृणकल्पाभिराजं साधु निवपामो वयम्।।[1]

कविवर अपनी ग़ज़ल गीति में लिखते हैं कि मेरा 'वर्तमान' अनगिनत संघर्षों का निस्यूत है। मैंने जलते हुए अंगारों से खेलकर, पग–पग पर दुःख की वेदना को सहकर, दुष्टों के बीच दिन गुजारकर कटु–कटाक्षों को सहकर इस जीवन यश को प्राप्त किया है। अतः अपने जीवन से शिक्षा देते हुए कहते हैं कि व्यक्ति कैसी भी दीन–हीन दशा में क्यों न हो, बिना विचलित हुये जीवन–लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना चाहिए।

वैशद्यमाप्तुं ज्वलनदनलपिण्डैर्मया संक्रीडितम्
सोढं, चिरं सोढं, धृतं संघर्षनिवहैर्जीवितम्।।
सुप्तं भुजङ्गेष्वनुदिनं, कण्ठे कृतं हलाहलम्
त्रिपुरारिगेहिन्यै मया सततं श्मसानमुपासितम्।।[2]

'गलज्जलिकाः' संग्रह की धूमतां यामो वयम्', न हन्तव्यो न हन्तव्यः, दर्पणोऽहं मृषा नैव भाषे, मनो लग्नम्, भिल्लकेः! कटाक्षस्ते, वृथा जल्पन्ति, क्व याताऽधुना?, अतः परं किं भविता?, तव स्मरणम्, क्व यामो वयम् तथा भुवमागता भागीरथी आदि संस्कृत ग़ज़लें सुधीजनों में अत्यन्त लोकप्रिय हुई हैं। इस कारण ध्वनि–मुद्रिका (कैसेट) रूप में भी आज उपलब्ध हैं। इनमें कवि ने अपने जीवन–यथार्थ, संघर्ष एवं कष्टपूर्ण जीवन, अपने दर्पण

---

1. मधुपर्णी, धूमतां यामो वयम्, 01
2. वही, सोढं, चिरं सोढम्, 02

सदृश आत्मस्वभाव आदि के परिचय के साथ–साथ समाज को सदाचरण की शिक्षा, सौन्दर्य का अभिनन्दन, भौतिकता की अंधी–दौड़ में व्यक्ति की स्थिति, दोगला चरित्र, कविता की वंदना आदि का भी साङ्गोपाङ्ग चित्रण किया है। इस प्रकार इन ग़ज़ल–गीतियों के माध्यम से कवि की कविता–कामिनी जीवन–यथार्थ को अपने हाव–भावों से व्यक्त करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

'मधुपर्णी' के 'गीतयः' द्वितीय खण्ड में कवि ने विविध विषयों से युक्त गीतों की सर्जना की है। इन गीतों में कवि प्रकृति के विविध स्वरूपों का सहारा लेकर मानव–मात्र को जीवन के विविध रंगों से रंगते नजर आ रहे हैं। प्रकृति कवि की चिर सहचरी है। यह प्रकृति या बाह्य सृष्टि की चिरन्तनकाल से कवि के लिए काव्य–सर्जन की प्रेरणा और उपादान जुटाती आई है। मधुपर्णी के स्रष्टा कविवर को; कला–सर्जन और कला के आस्वाद दोनों के लिए आवश्यक सौंदर्य–बोध ब्रह्म की इस कला अर्थात् प्रकृति से ही मिला है। मधुपर्णी का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें बाह्य प्रकृति के विविध रूप अन्तः प्रकृति के रंग में रंगकर आते हैं जैसे–

मेघान्तरितो जातश्चन्द्रमा
भीषयते जलदागमयामिनी।
सम्प्रत्यति परदेशे वल्लभो
भवने सीदति बाला भामिनी।।[1]

आज देश के प्रशासकों का अपने लोक लुभावने नारों से भोली–भाली आम जनता को बहला–फुसलाकर कुर्सी पाना ही मुख्य ध्येय रह गया है। प्रजा के उत्थान से उनको कोई लेना–देना नहीं है। इसी वास्तविकता को या विकृत राजनीति को कवि ने अपनी इस रचना का विषय बनाया है–

क्वचिद् रामः क्वचिद् रोटी क्वचित्सर्वोदयाऽऽकाङ्क्षा।
अभिप्रायन्तु युष्मद्भाषणानां भूरि जानेऽहम्।।
भृशं निर्भर्त्सितः कर्णिकपदैरपि, राजनीतौ त्वम्
यथा काष्ठाधिरुढस्तत् प्रतिष्ठामर्म जानेऽहम्।।[2]

---

1. मधुपर्णी, जलदागमयामिनी, 23
2. वही, रहस्यं साधु जानेऽहम्, 24

अपने अद्‌भुत प्राकृतिक सौंदर्य उन्नत सांस्कृतिक धरोहर तथा तपोभूमि भारत में बार–बार जन्म लेने, गङ्गा–यमुना–कावेरी–नर्मदा आदि महानदियों के पावन जल से पवित्र मिट्टी में लोटने, गिरि–शिखर–निर्झर–वनप्रान्तो से समृद्ध इस तपोभूमि में घूमने के लिए कवि का मन मचल उठा है–

भवेदिह मर्त्यलोके जन्म मम भूयोऽपि शतवारम्
परं स्यात् भारते।।
विराजन्तामनन्ताः शाल्यो नतमञ्जरीपुञ्जाः
सुशोभन्तां वनान्ता दुष्प्रवेशसन्निचुलकुञ्जाः
भवेदिह मृत्तिकायां विलुठनं भूयोऽपि शतवारम्
परं स्याद् भारते।।[1]

इस प्रकार भारतीय देश के समृद्ध प्राकृतिक सौन्दर्य के सूचक पर्वतों, अपने जलकणों से सिंचन करती हुई नदियों, वन–प्रान्तों, सरोवरों, लता कुञ्जों, नीलनभ में उन्मुक्त उड़ान भरने वाले विहगों, ग्रामों और विभिन्न जनपदों स्थानों के प्रति प्रेम–'क्वनु भवितासि दृशोर्मे; 'भवेदिह मर्त्यलोके जन्म', 'भुवमागता भागीरथी', 'पूर्णां प्रति' आदि गीतों में अभिव्यक्त होता है।

कवि के देश–प्रेम का अपर रूप उस राष्ट्रभावना के रूप में अभिव्यक्त है जिसने इस वसुधा पर मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही अनेक गौरवशाली परम्पराओं को जन्म दिया है। भारतीय सनातन संस्कृति के महानतम आदर्शों और उसकी वाहिका 'संस्कृत' भाषा के प्रति गौरव–बोध–'भारतीयोऽहम्', 'जयति विबुधवाणी', 'भारतीया संस्कृतिः पुनरेधताम्' आदि गीतों का केन्द्रीय भाव है।

"विश्वकल्याणे मतिः
विश्वनिर्माणे रतिः
भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।
..
देववाणी संस्कृता मे पावनी भाषा
विश्वभाषाऽम्बा समृद्धौ न्यक्कृताऽऽकाशा

1. मधुपर्णी, भवेदिह मर्त्यलोके जन्म, 27

....

देश एषोऽग्रेसरः

विश्वमङ्गलशेखरः

भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।"[1]

जो समस्त विश्व–संस्कृतियों का पथ–प्रदर्शक रहा है विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा देता रहा है, ऐसे राम–कृष्ण की भूमि, न्याय और धर्म की संरक्षिणी, भगतसिंह और चन्द्रशेखर के बलिदान–गाथा से सुशोभित भारतभूमि स्वयं अपनी स्थिति पर विलाप करती नजर आ रही है। कविवर भारतवासियों को उनके अतीत का स्मरण कराते हुए तथा भारत की रक्षा की गुहार लगाते हुए कहते हैं–

विश्वसंस्कृतेर्विधायकं विश्वबन्धुतासमर्थकम्।

अद्य सीदति स्वके गृहे देववन्दितं नु भारतम्।।

प्रान्तभूमयो न रक्षिताः कम्पतेऽचलो हिमालयः।

आह्वयत्यलं स्वपुत्रकान् रक्ष रक्ष रक्ष भारतम्।।[2]

इस प्रकार 'क्व नु भवितासि दृशोर्मे', 'भवेदिह मर्त्यलोके जन्म', 'भुवमागता भागीरथा', 'पूर्णां प्रति' इत्यादि गीतों में कवि का राष्ट्र–प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

वर्तमान में पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, सांस्कृतिक मूल्यों का अधः पतन और संस्कृति की धारिका देवभाषा की उपेक्षा कवि हृदय को बहुत ही व्यथित करती है। 'रक्ष रक्ष भारतम्', 'इन्दिरे! त्वदीय भारतम्', 'देवभाषया विना', 'कारुण्यश्रृङ्गाटके' आदि गीतों में कविवर की यही हृदय–विह्वलता व्यक्त हुई है–

कम्पते चिनारकाननं केसरो हुताशनायते

ध्वस्तकाशमीरमङ्गलं दीनतामुपैति भारतम्।।

....

सिक्खहिन्दुभेदभावना हिन्दुमुस्लिमप्रवञ्चना

अद्य किन्निमितमुत्थिता खण्ड्यते तयैव भारतम्।।[3]

---

1. मधुपर्णी, भारतीयोऽहम्, 28
2. वही, रक्ष रक्ष भारतम्, 29
3. वही

इस सृष्टि का मूल कारण; मानव को मानव से बाँधने वाला कोमलतम तंतु; सुन्दरतम भाव है—प्रेम या रति।[1] विश्वसाहित्य का शायद ही कोई ऐसा कवि होगा जिसने इस भाव को अपनी लेखनी का विषय न बनाया हो। ग़ज़लों की मूल प्रकृति के अनुरूप कविवर मिश्र जी की निम्न ग़ज़लें हुस्न और इश्क के रोमानीपन को बयाँ करती हैं— भिल्लिके! कटाक्षस्ते, वृथा जल्पन्ति, दृष्टयैव ते, तव स्मरणम् और मे मनो लग्नम्।

प्रणय का अङ्कुर सर्वप्रथम मन में ही फूटता है। 'कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसो रेतः प्रथमं यदासीत्' के द्वारा वेद सृष्टि के इस रहस्य को ही संकेतित करते हैं। इस 'मन की लगी' को शायरों, कवियों और कलाकारों ने नाना प्रकार से व्यंजित किया है किन्तु अपनी प्रातिभ कल्पना और व्युत्पत्ति—जन्म वैदुषी से अछूते विश्वों और प्रतीकों की सृष्टि करते हुये; इस अमूर्त भाव को मिश्र जी ने जिस प्रकार मूर्त किया है; वह अभिनव ही है। कवि का प्रणयी मन कभी भ्रमर बन जाता है तो कभी सोदर, कभी प्रेमिका की कल्पना मेनका के रूप में करता हुआ 'कौशिक' के समान आचरण करता है तो कभी 'कण्टक' बनकर प्रेयसी के वात—लोल आँचल में फँस जाता है। कभी नायिका की क्षीण कटि के लिए मेखला बन जाता है; प्रिया के नाट्य में मारिष बनकर लग जाता है, तो सौध पर शिखर पर स्थित प्रिया के मुखचन्द्र को देखकर सागर की भाँति उछलना शुरु कर देता है[2]—

रोदरीभूय मे मनो लम्नम्
सोदरीभूय मे मनो लग्नम्।।
मेनकां त्वां निजाश्रमे लब्ध्वा
कौशिकीभूय मे मनो लग्नम्।।
वातलोलं तवाञ्चलं दृष्ट्वा
कण्टकीभूय मे मनो लग्नम्।।
पार्वणं प्रेक्ष्य हन्त वक्त्रेन्दुम्
सागरीभूय मे मनो लग्नम्।।[3]

कवि—प्रतिभा और व्युत्पत्ति का मणिकाञ्चनयोग 'वृथा जल्पन्ति' शीर्षक ग़ज़ल में परिलक्षित होता है जहाँ दर्शन, व्याकरण और काव्यशास्त्र के सभी प्रस्थानों की संगति प्रिया के आलिंगन, वचन, अवलोकन आदि क्रियाओं में होती है—

---

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व, पृ.221—222
2. वही
3. मधुपर्णी, मे मनो लग्नम्, 6

भवेद् वेदान्तिना भ्रान्तिः क्वचिद्रज्जौ भुजङ्गानाम्
त्वदीये बाहुपाशे भ्रान्तिकोटिनिराकृतिं जाने।।
निपीतं खफछठथचटतवकपयशषसरहलिति बाल्ये
परं स्त्रीप्रत्ययैः शब्दानुशासननिष्कृतिं जाने।।[1]

इसके अलावा एक युगद्रष्टा कवि की भाँति कविवर ने न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बन्धुता जैसे लोकतान्त्रिक आदर्शों के प्रति स्वप्न भंग, प्रजातंत्र की विफलता, भ्रष्टाचार, राजनीति का अपराधीकरण, प्रौधोगिकी सभ्यता के दुष्परिणाम, पर्यावरण विनाश, जीवन की यांत्रिकता और एकाकीपन और देश की दुर्दशा आदि को मधुपर्णी के अपने गीतों में गहरे धारधार व्यंग्य, वेदना या विरोधाभास के स्वर में व्यक्त किया है।

संकलना के अन्तिम खण्ड 'मुक्तच्छन्दांसि' की छन्दोमुक्त रचनाओं में कविवर द्वारा कवि स्वभाव, गरीबी, कर्मयोग, राजनीति का चरित्र, कवि की साक्षीभूत तटस्थ दृष्टि व चिंतन, स्त्री–संघर्ष, स्वयं कविवर का दार्शनिक व वैदिक ज्ञान, ढोंग व आडम्बरपूर्ण जीवन–शैली, पर्यावरण–चेतना, ईश्वर–सृष्टि की महनीयता, बालोपयोगी लोरियों का छटा आदि को नूतन अलंकारों, बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से संजोया है। सनातन परम्परा से अनवरत प्रवाहमान यह काव्य–धारा कविवर के मुक्तछन्दपरक गीतों में लघु–गुरु के बंधनों से मुक्त होकर उन्मुक्त भाव से; स्वच्छंद में 'चरैवेति–चरैवेति' को चरितार्थ करते हुए उस रससिंधु में लय के लिए अग्रसर होती हुई दिखाई पड़ती है। कविवर इन रचनाओं में पारम्परिक विषयों से हटकर साहित्य और इतिहास के सागर में डुबकी लगाकर मोतीयों का संकलन करते हुए परिलक्षित होते हैं। 'अभिलषामि', 'उपालम्भो रोहसेन', 'वसन्तसेना', 'पत्रश्रीबाणभट्टस्य', 'पूर्णां प्रति', 'महाराणाप्रतापसिंह प्रति' आदि इसी प्रकार की ऐतिहासिक बिम्बों व प्रतीकों युक्त रचनाएँ हैं।

कविवर स्वयं आपनी जीवन–व्यथा का चित्रण करते हुए कहते हैं कि मेरे कुछ समकालीन कवि है, जो मेरे सहारे अपनी स्वार्थपूर्ति में लगे रहते हैं और मुझे गिराने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं। किन्तु मैंने उनके आघातों से बहुत कुछ सीखा है, स्वयं को निखारा है–

---

1. मधुपर्णी, वृथा जल्पन्ति, 8

मम स्कन्धोपरि भुशुण्डीं निधाय

ये गुलिकाप्रहारमैच्छन्

त एव मां तुहिनाचलशिखरमधिरोपितवन्तः

त एव सम्प्रति मद्व्याजेन

आत्मस्वार्थान् साधयन्ति।।[1]

कविवर ने राजनीति को हवालाकाण्ड के ऊपर उगी हुई दूर्वा की भाँति बताया है तथा समस्त राजनेता उसके भक्षण से कृष्णसारमृग बनकर मूर्च्छित से प्रतीत हो रहे हैं–

काण्डात्काण्डं प्ररोहन्ती

राजनीतिदूर्वा

पश्य

हवालाकाण्डमधिरूढ़ा

तत्संस्पर्शाच्चविषाक्ता सञ्जाता

सम्प्रति

दूर्वाभोजिनो

राजनेतृकृष्णसाराः

विषमूर्च्छिताः।।[2]

शकारतंत्रपरक राजनीति के कुचक्रों के कारण भारतदेश में चारूदत्त रूपी निर्धन व्यक्ति की स्थिति दिन प्रतिदिन बदतर होती जा रही है। आर्थिक–समानता, सम्मानपूर्वक जीवन यापन का अधिकार अब दिवा स्वप्न बनकर रह गया है। कवि की यह पीड़ा इस प्रकार व्यक्त होती है–

रदनिके!

साम्प्रतं हताशोऽस्मि सञ्जातः

त्वत्सान्त्वनावैर्थ्यमवगच्छामि

सुष्ठ्वनुभवामि राष्ट्रेऽस्मिन्

रोहसेनानां भविष्यम्!

एषु व्यतीतप्रायेषु

---

1. मधुपर्णी, कदा मयाऽभिलषितम्, 52
2. वही, दूर्वा, 54

अष्टादशशतहायनेषु

....

एष ते रोहसेनः

परमार्थतः पञ्चत्वमुपयियासति

इह शकारतन्त्रे भारते

अपुनरागमनाय!![1]

इसी प्रकार जब हम कवि की तलावगाहिनी प्रतिभा के साथ वसन्तसेना के अन्तस्तल में उतरते हैं तब एक गणिका के हृदय–सम्पुट में बन्द अमित मोती पाते हैं–

मनुजो मनुजान्तराद् व्यतिरिच्यते

केवलं सद्गुणैः स्वैः!!..................

रमणी पश्यति पुरुषपौरुषं

स्वपौरुषं सदर्थय!

रमणी कलयति पुरुषवाचिकं

स्ववाचिकं संस्कुरु

रमणी पश्यति पुरुषचरित्रं

स्वलम्पटतां नियंत्रय।।[2]

सनातन वैदिक धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म को संरक्षण देने वाले हर्षदेव के प्रति बाणभट्ट का पत्र 'पत्रं श्रीबाणभट्टस्य' शीर्षक से जीवन में निष्काम कर्मयोग की शिक्षा देता है वहीं 'मृत्घट्टोऽहम्' और 'आकाशोऽहम्' जैसी रचनाएँ जीवन के अन्तिम सत्य को समझाती हुई प्रतीत होती हैं।

नाऽहं परिवृतः

नाऽहमवसितः

नाऽपि समाप्तः

आकाशोऽहं निरवधिविपुलः

1. मधुपर्णी, उपालम्भो रोहसेनस्य, 57
2. मधुपर्णी, वसन्तसेना, 58, पृ. 113

कूटस्थश्चाद्यन्त–विरहितः
आकाशोऽहम्।।[1]

कविवर उसी मानव–जीवन को श्रेष्ठ मानते हैं जो अपने कर्म से अन्य लोगों के जीवन में रोशनी का संचार करता हो। शुष्कवृक्ष के वक्तव्य से इसी बात को समझाते हुए कवि लिखते हैं–

शुष्कतामुपेत्य मृतोऽहमद्य
परं भो नाऽयं मृत्युर्निरर्थकः
निधनमपि सार्थकीकृत्य यास्याम्यहम्
मम दृढकाष्ठैः संघटयत पर्यङ्कान्
मम शाखावचयैः पचत पक्वान्नानि
तेनैवाहं पुनर्जीविष्यामि।।[2]

कविवर अभिराज स्वयं अपने एवं कवि–चिन्तन की विलक्षणता के विषय में लिखते हैं कि जिस विषय पर सामान्यजन की दृष्टि भी नहीं पड़ती है, उस विषय पर कवि सोचता है। वह तटस्थ रूप से मानव–जीवन के विविध–रूपों का वर्णन करता है–

स्वलक्षणः
कविरस्मि संसृतौ विलक्षणः
स्यामहं कथं जगदासक्तो
मदभीष्टं जगत् किमप्यन्यत्
स्यामहं कथं रूपासक्तो
मदभीष्टरूपमन्यत् किञ्चित्
ननु गन्धमृगोऽहं
ग्रन्थिपर्णप्रणयी
दूर्वा अश्नानि कथम्?[3]

---

1. मधुपर्णी, आकाशोऽहम्, 66, पृ. 137
2. वही, वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य, 67, पृ. 139
3. वही, अहमस्मि कविः, 64, पृ. 133–134

इस प्रकार 'मधुपर्णी' जीवनसत्य को आत्मसात् कर लेने वाले कवि समग्र–दृष्टि का परिचायक है जिसमें सुख–दुःख, हास–अश्रु, आशा–निराशा, उल्लास–विषाद, लौकिक–अलौकिक, जीव–अजीव इत्यादि सभी विषयों का चित्रण है। प्राचीन साहित्य के समान यह आदर्शों का उन्नत शिखर भी प्रस्तुत करती है और अर्वाचीन साहित्य के सदृश यथार्थ का कठोर धरातल भी।

मानव–जीवन की अधुनातन समस्याओं और विसंगतियों का सजीव चित्रण कर कविवर आमजन के सोये हुए चित्त को कचोट कर जगा देते हैं, उसमें एक सुन्दर समाज की सर्जना करने की प्रेरणा देते हैं। मानव को परिस्थितियों से हारकर कभी नहीं बैठना चाहिए, उसे अनवरत अपने कर्मपथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए।

(ङ) अभिराजगीता

'अभिराजगीता' प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत पंचम एवं अभिनव नवगीत संकलना है। मानव जीवन के विविध पक्षों को मुखर करने वाली यह कृति वर्ष 2011 में श्रीभद्रङ्करोदय शिक्षण ट्रस्ट, गोधरा द्वारा नन्दनवलकल्पतरुप्रकाशन के षष्ठ पुष्प के रूप में प्रकाशित हुई। इसका सम्पादन **मुनिश्रीरत्नकीर्तिविजय, मुनिश्रीधर्मकीर्तिविजय तथा मुनिश्रीकल्याणकीर्तिविजय (कीर्तित्रयी) द्वारा किया है। यह गीत संकलन मंगलगीतम्, स्वागतगीतम्, वागीश्वरीगीतम्, सुरभारतीगीतम्, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्), राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्), भारतीयसंस्कृतिगीतम्, प्रकृतिविलासगीतम्, शिशुभावनागीतम् और प्रकीर्णम्** इन दस भागों में विभक्त है। विषयवार विभक्त इन दस भागों में विविध विषयों से सम्बन्ध कुल 97 सचित्र गीत इस रचना में संकलित हैं। प्रारम्भिक मङ्गलगीत से लेकर राष्ट्रमङ्गलपरक अन्तिम गीत पर्यन्त सभी विषयों में कविवर प्रो. मिश्र की काव्य प्रतिभा सहृदय पाठकों को निश्चित ही मंत्रमुग्ध कर देती है। इस कृति के स्वागत में स्वयं 'विजयशीलचन्द्रसूरिः' द्वारा लिखा गया स्वागत गीत इस रचना के माहात्म्य को सार रूप में इस प्रकार प्रकाशित करता है–

स्वागतं स्वागतं स्वागतं
अभिनवगीते! तव स्वागतम्।
अस्तीहैका 'भगवद्गीता'

महाभारते भगवदुपज्ञा
उपदीक्रियतेऽभिनवा गीता
अद्येयं तद्भक्तोपज्ञा।।
गीतमालिकारूपेयं किल
गीता भारतवर्षे मधुरा।
'अभिराजा' भिधविदुषाऽकलुषा
सृष्टा सम्भूषतु सुरगिरम्।
अभिराजगीते! स्वागतम्।
स्वागतं स्वागतं स्वागतम्.................[1]

अभिराजगीता के प्रथम 'मङ्गलगीतम्' शीर्षक में संकलित चार गीतों में जीवन में सर्वविध व सर्वत्र मंगल की कामना कविवर द्वारा की गई है। मङ्गल प्रसङ्गों पर मङ्गलगीत के गायन की परम्परा तथा ग्रन्थारम्भ में मङ्गलाचरण की प्राचीन परम्परा रही है। प्रो. मिश्र प्रणीत इन मङ्गलगीतों में परम्परानुरूप लोक तथा लोकभाषा का ही स्पर्श है। कविवर अपने प्रथम मङ्गलगीत में कहते हैं कि हमें केवल सैद्धान्तिक मङ्गल कामना की बजाय हमारे आचरण और व्यवहार से मङ्गलाचरण द्योतित होना चाहिए और यदि हम ऐसा कर पाये तो सर्वत्र मङ्गल ही मङ्गल होगा।

जीवनं दृश्यते विघ्नबाधामयम्
कल्पनीयं सदा नन्दनं नन्दनम्!!
निन्दया वा परेषां किमास्वाद्यते?
कीर्तनीयं सदा वन्दनं वन्दनम्!![2]

कविवर की इन रचनाओं में लोकमङ्गल की कामना भी है और जीवन में व्याप्त विषमताओं के विरुद्ध विद्रोह का स्फुरण भी है–

परितोऽपि पामराणां तृणशालिका इमाः
होलानलं समिन्धय बन्धो! शनैः शनैः।।[3]

---

1. अभिराजगीता–अभिराज राजेन्द्र मिश्र, भूमिका–भाग–स्वागत गीत 'अभिनवगीते! तव स्वागतम्'।
2. वही, मङ्गलं मङ्गलम्, 01
3. वही, शनैः शनै, 03

'स्वागतगीतम्' शीर्षकान्तर्गत बहुत ही मनमोहक चार स्वागत गीत संकलित हैं। 'अतिथि देवो भव' हमारी संस्कृति का आदर्श रहा है अतः आगत का स्वागत–अभिनन्दन हमारी परम्परा है फिर वह स्वागत चाहे ऋतुओं के आगमन का हो, अतिथि का हो, अन्धकार का हरण करने वाले सूर्य का हो, अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले गुरु का हो या सम्पूर्ण सृष्टि का नियमन करने वाले परमात्मा का हो, सबके प्रति भावों के सुमन कवि ने अपनी इन रचनाओं में अर्पित किये हैं।

भात्यरण्यं यथा कोकिलोत्कूजनैः
स्थानमेतत्तथा श्रीमतां पूजनैः
पूज्यपादातिथिं भावयामो वयम्
अर्चनं वन्दनं कल्पयामो वयम्।।[1]
त्वं सिन्धुरसि रत्नाकरो नूनं वयं ते बिन्दवः
अङ्गिन्! तवाऽङ्गेष्वेव ते सुस्वागतं सुस्वागतम्।।[2]

'वागीश्वरीगीतम्' शीर्षक में समाहित कुल 12 गीत वाणी व ज्ञान की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती को समर्पित है। पुराणों में माँ शारदा के रूप की कल्पना एक हाथ में वीणा और दूसरे हाथ में पुस्तक रखकर 'वीणापुस्तकधारिणी' के रूप में की गयी है। अभिप्राय स्पष्ट है कि साहित्य व संगीत दोनों ही माँ शारदा के स्वरूप में समाहित हैं। माँ वागीश्वरी के उपासक कविवर द्वारा अपनी इस रचना में माँ शारदा के श्रीचरणों में अपने सुमनोहारी काव्यप्रसूनों का अर्पण किया है। कविवर अपनी समस्त कवित्व–प्रतिभा को माँ वागीश्वरी का कृपा प्रसाद मानते हुए लिखते हैं–

यत्कवयामि तदसि जननि! त्वम्
स प्रतिभाऽपि ययाऽस्ति कवित्वम्
त्वामन्तरा भवामि न किञ्चित्
तनुजस्ते जगदुपकरणाय!
अनुजानीहि कवनकरणाय!![3]

1. अभिराजगीता, स्वागतं श्रीमताम्, 05
2. वही, सुस्वागतं सुस्वागतम् 06
3. वही, अनुजानीहि कवनकरणाय, 09

कविवर कहते हैं कि हे महामाये! विन्ध्यपर्वत पर चण्डिका रूप में, मैहराचल शिखर पर शारदा रूप तथा काञ्ची में त्रिपुरसुन्दरी रूप आप ही सर्वत्र निवास करती हो तथा आप ही समस्त समृद्धियों की स्रोत हो–

विन्ध्यगिरि मेहरशिखरे वा
काञ्च्यां वससि समानम्!!
त्वमसि जननि! धनजनसुखदात्री
निखिलसमृद्धिनिधानम्!![1]

'प्रणमामो वाग्देवीम्' में कविवर ने वाराणसी स्थित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रांगण में प्रतिष्ठित भगवती वाग्देवी की सचित्र स्तुति की है क्योंकि विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर रहते हुए कविवर उसकी आराधना में हमेशा तत्पर रहे है। साथ ही कविवर मानते है कि विश्वविद्यालय की सफलता माँ वाग्देवी की कृपा स्वरूप ही है–

सफलीकृतसम्पूर्णानन्दां वितरितकाव्यमरन्दाम्
यतिजयेन्द्रसौभाग्यविधात्रीं प्रणमामो वाग्देवीम्!![2]

कवि कहते हैं कि मेरा मन न धनार्जन में लगता है, न मुझे यश और प्रशंसा की भूख है। मुझे जैसा सुख माँ वागीश्वरी के श्रीचरणों की सेवा में मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता।

न धनार्जने न यशोऽर्जने न च लोकबन्द्यपदार्जने
अपि वाणि! मे यादृशसुखं तव पदकमलयुगलार्चने!![3]

'सुरभारतीगीतम्' में कविवर द्वारा देववाणी संस्कृत की प्रशंसा में दर्जनभर गीत गाये हैं और कामना की है कि संस्कृत भाषा जन–जन के कण्ठ तक पहुँचे तथा सबका कल्याण करे। कवि ने संस्कृत भाषा के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण कराते हुए पुनः वही महात्म्य स्थापित करने का संकल्प दोहराया है। संस्कृत धर्म–कर्म–चर्म–मर्म के साथ–साथ मत–पंथ–वर्ण–जातिपरक सर्वविध विद्रूपताओं को दूर कर राष्ट्रीय एकता स्थापित करने वाली है। संस्कृत समाज के बाह्यशोधन के साथ–साथ आत्मशोधन का कार्य भी करती है। अतः संस्कृत का चहुँमुखी विकास हो–

---

1. अभिराजगीता, महामाये! को नु भणतु महिमानम्, 10
2. वही, प्रणमामो वाग्देवीम्, 12
3. वही, किमतः परं त्वदुपायने?, 13

राष्ट्रद्वेषं हरति संस्कृतं
प्रान्तद्वेषं हरति संस्कृतम्।
वेषद्वेषं हरति संस्कृतं
भूषाद्वेषं हरति संस्कृतम्।।[1]
विना संस्कृतं याति न शोकः
असंस्कृतश्शोभते न लोकः
चतुष्पथे, वणिक्पथे संस्कृत व्रजेत्।।[2]

यहाँ पर कविवर ने संस्कृत भाषा की सुमधरता, रमणीयता, सरसता, सुबोधता और शाश्वता का चित्रण किया है। आपने संस्कृत भाषा को 'मृतभाषा' कहकर संबोधित करने वालों को करारा जवाब देते हुए कहा है– 'न मृता म्रियते न मरिष्यति वा' शीर्षक से सम्पूर्ण गीत लिखा है। 'जयतु संस्कृतम्' और 'वर्धतां देववाणी' जैसे गीत संस्कृत के प्रति श्रद्धावनत सहृदयी पाठकों की जिह्वा पर सदैव नर्तन करेंगे। कविवर कहते हैं कि एक सुमधुर रचना सबका मन मोह लेती है–

मदयति नहि कं समधुररचना!
नवरुचिरपदा मधुमयवचना!![3]

कविवर कहते हैं चाहे संस्कृति का विकास हो, भावना का विकास हो, संशय का विनाश हो, लोक मर्यादित जीवन की स्थापना का स्वप्न हो, रामराज्य की स्थापना का संकल्प हो, विश्वबन्धुत्व की पुनर्स्थापना हो, ये सब देवभाषा संस्कृत के बिना संभव नहीं है–

रामराज्यमुज्ज्वलं प्रतिष्ठितं पुनर्भवेत्
क्वेति भारताभिलाषो देवभाषया विना?[4]

इस प्रकार देववाणी संस्कृत की सुकुमारता, रमणीयता, रसमयता, जीवन्तता लोकधर्मिता सब सुरभारती के गीतों में प्रतिबिम्बित है।

'राष्ट्रप्रशस्तिगीतम्' (सम्पन्नराष्ट्रम्) के 15 गीतों में कविवर ने अपने देश, अपनी जन्मभूमि भारत के भौगोलिक सौन्दर्य आदि के गुणगान के साथ भारतीय जीवन–मूल्यों की

1. अभिराजगीता, जयतु संस्कृतम्, 24
2. वही, संस्कृतं व्रजेत्, 21
3. वही, मदयति नहि कं सुमधुरचना, 25
4. वही, देवभाषया विना, 31

प्रशंसा की है। सर्वविध सम्पन्न भारतदेश की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर तथा इसके गौरव की हृदयावर्जक वन्दना कवि द्वारा यहाँ प्रस्तुत की है। भारत के विश्वबन्धुत्व, 'वसुधैवकुटुम्बकम्', धर्ममूलकता आदि आदर्शों के चित्रण स्वरूप ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

यस्य हृदयं धर्मनिलयं दर्शनं दृष्टिः
विश्वबन्धुत्वं निसर्गश्चिन्मयी सृष्टिः
सङ्गतं वन्दे।
भारतं वन्दे।।[1]

जब व्यक्ति अपनी जननी व जन्मभूमि से कोसों दूर रहता है, तो रह–रह कर उसे उनकी याद आना स्वाभाविक होता है। अतः बाली–प्रवास जनित स्वदेश की तड़पन में कविवर मिश्र कालिदास बन यूँ गा उठते हैं–

प्रतिजनपदं प्रतिपुरं बन्धो! राष्ट्रे सन्ति सखायः
सर्वत्राऽपि मदर्थसमुत्कण्ठितपरिजनसमुदायः
ब्रूहि शुभं परिवेशम्!
जलधर! नय सन्देशम्!![2]
यामुनगाङ्गतरङ्गविलासी
अभिराजः साम्प्रतं प्रवासी
प्रणमति सुहृत्स्वजनसमुदायं सदयं सविनयमेषः।
सन्धारयतु परेशः।।[3]

कविवर विरचित राष्ट्र महिमा के गीतों का वर्णन हो और कवि की 'भगवन्! रक्ष मदीयं देशम्!!' कविता का उल्लेख न हो, तो अधूरापन ही रहेगा। अपनी समकालीनता के कारण चित्ताकर्षक तथा होठों पर स्थायी निवास बना लेने वाले इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार है–

भगवन् रक्ष मदीयं देशम्!
भूतलरत्नं त्रिभिस्सिन्धुभिः कृतरूचिकरपरिवेशम्!!
हिमधवले शैलेयशीर्षके कुरुतेऽनिशं प्रहारम्
असमीचीनं दुर्मदचीनं तमुते मृषा प्रचारम्

---

1. अभिराजगीता, भारतं वन्दे, 36
2. वही, जलधर! नय सन्देशम्, 38
3. वही, स्मृतिमञ्चति स्वदेशः, 39

निर्मानं मानसं विलोक्य लोकय हंसनिवेशम्!
भगवन् रक्ष मदीयं देशम्!![1]

'राष्ट्रप्रशस्तिगीतम्' (विपन्नराष्ट्रम्) के अन्तर्गत 10 गीतों में वर्तमान भारतदेश में व्याप्त विषमताओं व विद्रूपताओं का चित्रण है। जो देश प्राचीन काल से लेकर अन्य संस्कृतियों व राष्ट्रों का पथ–प्रदर्शक रहा है, सर्वत्र विश्वबन्धुत्व के भाव का प्रसारक रहा है, वही आज अपनी दुर्दशा पर चीत्कार कर उठा है और अपनी सन्ततियों से रक्षा की गुहार लगा रहा है। कविवर देश की रक्षार्थ समस्त भारतवासियों को आह्वान करते हुए कहते हैं–

'विश्वसंस्कृतेर्विधायकं विश्वबन्धुतासमर्थकम्।
अद्य सीदति स्वके गृहे देववन्दितं नु भारतम्।।
प्रान्तभूमयो न रक्षिताः कम्पतेऽचलो हिमालयः।
आह्वयत्यलं स्वपुत्रकान् रक्ष रक्ष रक्ष भारतम्।।[2]

आज भारत देश की स्थिति बहुत ही भयावह है। आज विद्वानों की बेकद्री हो रही है और धूर्त लोग पूजित हो रहे हैं, मनुष्य पशुवत् आचरण करते हुए इन्द्रियसंयम को पूर्णतः भुला बैठा है, पवित्र तीर्थस्थल भोग–विलासों के अड्डे बन चुके हैं, अपराधी प्रवृत्ति के लोग जनप्रतिनिधि बनकर देश के संचालक बन बैठे हैं। अतः कवि का उद्वेलित मन गा उठता है कि अब इस देश में रहकर जीवनयापन करना संभव नहीं हो पा रहा है–

जीवितुं शक्यते नेदृशे भारते!!
नास्ति विद्याकलावैदुषीवन्दना
सर्वतो दृश्यते सम्मता वञ्चना।।[3]

राष्ट्रभूमिविक्रयसंलग्नाः
वाहनभोगसमृद्धिनिमग्नाः
संरक्षतां कृते मरणोर्ध्वं वीरचक्रकलशाः
म्रियते जिजीविषा!![4]

---

1. अभिराजगीता, भगवन्! रक्ष मदीयं देशम्, 66
2. वही, रक्ष रक्ष भारतम्, 48
3. वही, जीवितुं शक्यते नेदृशे भारते, 49
4. वही, म्रियते जिजीविषा, 50

कविवर स्वतन्त्र भारत की तथा लोकतन्त्र के विकृत स्वरूप को देखकर बहुत विचलित है। 'कीदृशी स्वतन्त्रता'? गीत में कवि कहते हैं कि क्या स्वतन्त्रता के यही मायने हैं? 'कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है' इस प्रकार अखण्डता का गुणगान करने वाले भारत में जगह–जगह से विभाजन के स्वर सुनाई पड़ रहे हैं–

वाञ्छति कोऽपि नवीनविधानम्
कोऽपि याचते खालिस्तानम्
रोदिति गङ्गा द्रवति नगेशः समुच्छलति सिन्धुः
को नु राष्ट्रबन्धुः?[1]
द्वेषदैन्यधर्षितं शोकतापतर्जितम्
हन्त रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्!![2]

आज देश में चहुँओर दिखावे की राजनीति हो रही है। लोगों के सामने मंच पर जो नेता जाति–धर्म के समभाव, साथ–साथ चलने का संकल्प लेते हैं, वही स्वहित पर आँच आने पर समस्त मर्यादाओं को लांघ जाते हैं। इन्हीं स्वभावों को कविवर द्वारा अपने 'यूयं यूयं वयं वयम्' गीत में मुखरता के साथ अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार वर्तमान दुर्दशा का वर्णन करते हुए इन गीतों में कविवर द्वारा भारत के वैभवशाली अतीत का स्मरण करवाया है तथा इन गीतरचनाओं के माध्यम से जनभावनाओं को जागृत करने का प्रयास किया है अतः यहाँ मूलभाव राष्ट्रीयता का ही है।

'भारतीयसंस्कृतिगीतम्' में दो गीतों में कवि ने भारतीय संस्कृति के महानतम् आदर्शों, सिद्धान्तों व मूल्यों को पुनः स्थापित करने का आह्वान किया है। साथ ही अखण्ड भारत का गुणगान करते हुए कर्णसुख प्रदान करने वाली गीति के फलित होने की कामना भी की है–

सागरहिमगिरिरक्षितकीर्तिः
वेदपुराणसमर्थितनीतिः
देवैरपि फलिता यद्गीतिः कर्णसुखं दत्ते।
भारत संस्कृति कथा विजयते![3]

---

1. अभिराजगीता, को नु राष्ट्रबन्धुः?, 52
2. वही, रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्, 53
3. वही, भारतसंस्कृतिकथा विजयते, 59

प्रकृतिविलासगीतम् में कविवर ने प्रकृति के नाना रूपों को सुमनोहारी वर्णन किया है। इस शीर्षकान्तर्गत संकलित 18 गीतों में कवि ने प्रकृति को मानव की सहचरी के रूप में चित्रित किया हैं अतः जब मनुष्य ने गुनगुनाना सीखा होगा, तब उसके आन्तरिक हर्ष–विषाद, पीड़ा आदि भावों को अभिव्यक्त करने में प्रकृति का साथ रहा होगा। इसी कारण हमारे प्रथम साहित्यिक गीतों स्वरूप 'वैदिक ऋचाओं' में प्रकृति के ही गीत है। कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र कृत अभिराजगीता में भी इस खण्ड में प्रकृति के गीतों का माधुर्य व सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। वह चाहे उगते सूरज की प्रथम किरण हो, रात की चांदनी हो, ऋतुओं का परिवर्तन हो, मधुमास की मादकता हो, वर्षा की रिमझिम हो या कोयल की कुहू–कुहू हो सबका वर्णन इन गीतों में है।

अभिराजयशोभूषणम् में गीत–भेद का निरूपण करते हुए शास्त्रीय व लोकगीतों के आधार पर गीत के दो रूपों की चर्चा की है। संगीतशास्त्र के ज्ञान से विरहित सामान्य जनों द्वारा गाये जाने वाला गीत लोकगीत (Folk Song) है। मिश्र जी के गीतों में उत्तरप्रदेश में गाये जाने वाले लोकगीतों को शुद्ध संस्कृत रूप दिया गया है। अभिराजगीता के 'प्रकृतिविलासगीतम्' इस खण्ड में प्रायः नयी ऋतुओं के आगमन पर, तीज–त्योहारों पर, घरेलू मांगलिक कार्यों तथा रीति–रिवाजों के उपलक्ष्य में गाये जाने वाले लोकगीतों को समाहित किया है। प्रकृति–विलास के ये गीत कजरी के विविध रागों पर आधारित है। प्रो. मिश्र ने भोजपुरी कजरी को पुनर्जीवित कर दिया है यथा–

व्यालीव दशति धनरजनी
दयितो नन्दनन्दनो न सदने!![1]

इस प्रकार पावस ऋतु के आगमन पर कोसल व काशी क्षेत्र में, अनेक रागों पर आश्रित कजरी गीत गाया जाता है। परदेशी नायक के प्रति विरहिणी नायिका के उलाहने इस गीत में अभिव्यक्त होते हैं जो कि नायक की विस्मृतिशीलता के प्रति क्षोभ को प्रकट करते हैं–

कोसलेषु च काशीसु गीयते हि घनागमे।
गीतिका कजरीनाम्नी नैकरागसमाश्रिता।।
वियोगिन्या हि गीतेऽस्मिन् प्रोषितं नायकं प्रति।
उपालम्भाः प्रदीयन्ते विस्मृतिक्षोभकारकाः।।[2]

---

1. अभिराजगीता, व्यालीव दशति धनरजनी, 69
2. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष, 23–24, पृ. 258

इसके अलावा अभिराजगीता में होलिकोत्सव पर गाया जाने वाला फाल्गुनिक (फाग या फगुआ), वसन्त के आगमन पर गाया जाने वाला सोहर (सूतगृहगीतम्), हिन्दी के दोहा (दोधक) व सवैया इत्यादि लोकविधाओं में कविवर द्वारा गीत रचनाएँ की है।

'शिशुभावनागीतम्' शीर्षकान्तर्गत संकलित कुल 18 बालोपयोगी गीतों में लयेरिका (लोरी) की थपकी, खेल–खेल में अक्षर गान, कीट–पतंगों व जीवों का परिचय, रेलगाड़ी का स्वरूप आदि के रोचक व मनोहारी गीतों द्वारा बालमन में उत्पन्न सहज जिज्ञासाओं का शमन कविवर द्वारा किया गया है।

अन्त में 'प्रकीर्णम्' शीर्षक के अन्तर्गत 'गान्धिगीतम्' व 'राष्ट्रमङ्गलम्' ये दो गीत संकलित हैं।

'गान्धिगीतम्' गीत में महात्मा गाँधी के सम्पूर्ण जीवनचरित्र का वर्णन किया गया है। कृति के अन्त में 'राष्ट्रमंगलगीतम्' में "भारते सर्वं भवेदिह मङ्गलम्!!" गीत 'अभिराजगीता' गीतसंकलन का भरतवाक्य कहा जा सकता है। इस गीत में भारतदेश में सर्वत्र मङ्गल की कामना की गयी है।

सर्व एव भवन्तु सुखिनः सर्व एव निरामयाः
हे प्रभो! मम भारते सर्वोऽपि लभतां मङ्गलम्!![1]

इस प्रकार 'अभिराजगीता' में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने विविध विषयों पर संस्कृत में गीत ही नहीं लिखे अपितु संस्कृत भाषा में लोकगीतों के आधार पर कजरी, फाल्गुनिक, सोहर आदि अनेक विधाओं में गीत लिखे तथा गीतों में हिन्दी के दोहा व सवैया छन्दों का भी सफल प्रयोग किया है। शिशुगीतों में लोरी व बच्चों को कण्ठस्थ कराने के लिए विविध विषयों पर सहज व सरल भाषा में गीत लिखकर संस्कृत के बाल–साहित्य को भी समृद्ध किया है। 'अभिराजगीता' कवि के नवनवोन्मेषशालिनी काव्य प्रतिभा की परिचायिका है। प्रो. मिश्र प्रणीत यह गीत–संकलन सिद्ध करता है कि गीत मनुष्य की जीवन–यात्रा के सहचर रहे हैं। जीवन के उतार–चढ़ाव, सुख–दुःख, आशा–निराशा, स्वप्न और संकल्प सभी कुछ इन गीतों में चित्रित है।

♦ ♦ ♦ ♦

1. अभिराजगीता, राष्ट्रमङ्गलगीतम्, 97

तृतीय अध्याय

मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों में वर्णित लोकचेतना

वन्दनायै समुद्गता कविता
नन्दनायै समुद्गता कविता।।
शोकमोहाऽवमान– कारासु
सान्त्वनायै समुद्गता कविता।।
नग्नतानां हि राक्षसीवाचाम्
छादनायै समुद्गता कविता।।
राघवार्तिश्रवस्फुटद्दृषदाम्
शंसनायै समुद्गता कविता।।
मर्त्यलोकस्य जाड्यभावानाम्
वारणायै समुद्गता कविता।।

तृतीय अध्याय

मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत कृतियों में वर्णित लोकचेतना

अभिराज राजेन्द्रमिश्र का नवगीतात्मक संस्कृत साहित्य उनकी अन्तश्चेतना का लोक की अन्तश्चेतना से साक्षात्कार का प्रतिफल है। उनके नवगीतों में लोक, लोक की पीड़ाएं, व्यथाएं, संवेदनाएं, समस्याएं, अनुकूलताएं व प्रतिकूलताएं प्रतिबिम्बित होती हैं। नवगीतों में लोकचेतना पर शोधपरक दृष्टिपात करने से पूर्व यह प्रतिपादित करना समीचीन प्रतीत होता है कि वस्तुतः लोकचेतना का निहितार्थ क्या है? विशेषतः साहित्य के क्षेत्र में इसके मूलार्थ क्या–क्या हैं? अतः लोकचेतना के स्वरूप एवं क्षेत्र का विमर्श करने से पूर्व 'लोकचेतना' इस सामासिक पद के निहितार्थ पर किञ्चित् दृष्टिपात अपेक्षित है।

(क) लोकचेतना से तात्पर्य तथा उसके विविध आयाम

'लोकचेतना' अर्थात् लोक की चेतना, लोक के लिए चेतना, लोक में चेतना आदि अनेक विग्रह सम्भावित हैं। 'लोक' व्यापक अर्थ संवाही शब्द है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से भावार्थक 'घञ्' प्रत्यय जुड़कर निष्पन्न होता है। तदनुसार **'लोक्यतेऽसौ लोकः'**[1] अथवा लोकते, भासते, लोकयति, पश्यति वा इति लोकः[2] इस व्युत्पत्ति के अनुसार लोक शब्द दृश्य तथा द्रष्टा दोनों का ही वाचक है। कोशग्रन्थों में इस शब्द के द्विविध अर्थ मिलते हैं। प्रथम 'इहलोक परलोकादि' स्थानों के लिए द्वितीय 'जन सामान्य' अर्थ के लिए। यथा–हलायुध कोश[3] में संसार, सप्त लोक, प्रजा, जन अर्थ में तथा वृहद् हिन्दी कोश[4] में भुवन, संसार, विश्व का एक भाग, पृथ्वी, मानव जाति, समाज, प्रजा, प्रान्त, निवास, स्थान, दिशा, सांसारिक व्यवहार, दृश्य और यश अर्थों के लिए लोक

---

1. संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 848–849 तथा
   वृहत्संस्कृताभिधानम्, षष्ठ भाग, पृ. 4833
2. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 1/1/1, पृ. 3
3. अभिधानरत्नमाला, पृ. 58
4. वृहत् हिन्दी कोश, सं. मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, कालिका प्रसाद, पृ. 997

शब्द का व्यवहार है। अमरकोश में भारतवर्ष के लिए **'लोकोऽयं भारतवर्षम्'**[1] इस शब्द का प्रयोग है। पौराणिक साहित्य, स्मृति साहित्य में सप्त उर्ध्व तथा सप्त अधो लोक के लिए लोक शब्द प्रचलित है।[2] रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों में संसार तथा जनसामान्य के लिए लोक शब्द का प्रयोग अनेकशः किया गया है।[3] महर्षि पाणिनि ने वैदिक शब्दों से भिन्न लौकिक शब्दों को स्वीकार कर उनके प्रयोग को आम लोगों के वाग्व्यवहार से जोड़ा है।[4] महर्षि पतञ्जलि ने धूल–धूसरित तथा शिक्षादि से दूर ग्रामीणों के लिए लोक शब्द का व्यवहार किया है।[5] अभिनवगुप्त ने लोक शब्द का अर्थ जनपदवासी जन के लिए किया है– **'लोको नाम जनपदवासीजनः, जनपदश्च देशविशेषः।**[6] इस प्रकार लोक पद से प्रसूत नाना अर्थों से समस्त चराचर जगत् लोक की परिधि में आ जाता है। साहित्यिक एवं सामाजिक विमर्श की दृष्टि से लोक शब्द सीमित अर्थ में जन सामान्य तथा व्यापक अर्थ में पूरे वैश्विक समाज के लिए प्रयुक्त होता है।

वर्तमान में लोक शब्द मुख्य रूप से दो अर्थों में व्यवहृत होता है– प्रथम, विश्व अथवा समाज, द्वितीय जनसाधारण। आधुनिकता के सन्दर्भ में लोक का अर्थ ग्राम्य अथवा जनपदीय होता है। **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** के शब्दों में– "नगरों और गाँवों में फैली हुई वह सम्पूर्ण जनता जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार नहीं है, जो नगरों में परिष्कृत रूचि, सम्पन्न सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है तथा परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करती है, लोक के अन्तर्गत आती है।"[7] डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल का मन्तव्य है कि– "लोक हमारे जीवन का समुद्र है, उसमें भूत, वर्तमान, भविष्य सभी कुछ संचित रहता है। यह राष्ट्र का अमर स्वरूप है। कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सभी शास्त्रों का

---

1. अमरकोश 2/1/6
2. मनुस्मृति 1/31
3. रामायण 3/50/4–5, 5/5/2, 6/40/101 तथा महाभारत 11/1/401, 1/154/44, 2/22/8
4. अष्टाध्यायी–पाणिनी 5/1/434
5. व्याकरण–महाभाष्य, प्रथम आह्निक, पृ.21
6. अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र टीका)–अभिनवगुप्त/13/69
7. जनपद, वर्ष–1, पृ. 65

पर्यवसान है। लोक और लोक धात्री, सर्वभूतरता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नये जीवन का आध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार है, निर्माण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी और मानव इस त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।"[1] डॉ. सत्येन्द्र ने लोक को परिभाषित करते हुए कहा है– "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता, पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है, जो एक परम्परा में जीवित रहता है।"[2] काव्यशास्त्रीय आचार्य मम्मट ने समस्त स्थावर जंगम की क्रियाओं, आचारों एवं उनके जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को लोक कहा है।[3]

चेतना शब्द 'चित्' धातु से भावार्थक 'ल्युट्' व स्त्री प्रत्यय 'टाप्' से निष्पन्न होता है। जो ज्ञान, संज्ञा, प्रतिबोध, समझ, प्रज्ञा, जीवन, प्राण, सजीवता, बुद्धिमत्ता, विचार–विमर्श आदि अर्थों को उद्भासित करता है।[4]

ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्सनरी के अनुसार लोक शब्द का अंग्रेजी अनुवाद Folk होता है जो कि बहुवचन संज्ञक है तथा लोगों के समूह विशेष के लिए यह प्रयुक्त होता है– " Folk, used as a group of people."[5] तथा चेतना शब्द का अंग्रेजी अनुवाद ' Consciousness' होता है जो कि मानसिक सतर्कता (Mental Awareness) के लिए प्रयुक्त होता है–'The state of being aware of and responsive to one's surroundings.'[6]

संस्कृत के अभिनव काव्यशास्त्रीय आचार्यों में प्रतिनिधिभूत प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी का मानना है कि मम्मटादि द्वारा स्वीकृत स्थावरजङ्गमात्मक जगत् मात्र ही लोक नहीं है अपितु चेतना से विभाव्यमान सकल भुवन ही लोक है– **"न केवलं स्थावरजङ्गमात्मकम्, अपि तु चेतनया विभाव्यमानं सकलमेव भुवनं लोक इति वक्तव्यम्। लोकोऽयं न स्थाणुः, न वा**

---

1. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक), पृ. 65 सं. 201
2. डॉ. सत्येन्द्र : ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 5–6
3. काव्यप्रकाश, मम्मट : व्याख्याकार श्रीनिवास शास्त्री, पृ.12
4. संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 378
5. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 178
6. https : en.oxforddictionaries.com

स्थिरोऽपि तु प्रतिक्षणं परिवर्तमानो विकसँश्च वरीवर्ति।[1] **इसी कारण त्रिपाठी जी अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' में 'लोक' को काव्य का सारतत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं– 'लोकानुकीर्तनं काव्यम्'।"**[2] अर्थात् लोक का अनुकीर्तन अथवा प्रकाशन ही काव्य है। इस काव्यलक्षण के अनुसार जो कुछ लोक में है उसका प्रकाशन अथवा कथन काव्य में है। त्रिपाठी जी आगे इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– **"कविना यद् दिव्येन आर्षेण चक्षुषा चर्मचक्षुषा वा साक्षात्क्रियते तदपि लोकः।"**[3] **स च लोकस्त्रिविधः।**[4] **आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिकश्च।**[5] **अनुषक्तत्वं चैतेषां त्रयाणामपि।**[6] **त्रयाणां च सकलः समुल्लासो जीवनम्।**[7] **तच्च साहित्ये प्रतिफलति।**[8] अर्थात् कवि के द्वारा दिव्य आर्षचक्षु से अथवा चर्मचक्षु से जो भी देखा जाता है, वह भी लोक है। वह लोक तीन प्रकार का है– आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। ये तीनों परस्पर अनुषक्त हैं। इन तीनों का सकल समुल्लास ही जीवन है और वह जीवन साहित्य में प्रतिफलित होता है। आचार्य भरतमुनि ने भी कहा है कि इस लोक के नष्ट होने पर समस्त शास्त्र, विद्याएं, कला, शिल्प, बल आदि सब कुछ नष्ट हो जाते हैं–

कर्म शिल्पानि शास्त्राणि विचक्षणबलानि च।
सर्वाण्येतानि नश्यन्ति यदा लोकः प्रणश्यति।।[9]

इस प्रकार लोक की यह त्रिविधता सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल तत्त्वों को अपने में समेटे है। इस विषय में एक परिकर श्लोक है–

आब्रह्मस्तम्बावधि लोकः प्रसृतः सनातनोऽक्षय्यः।
लोकाद् बहिर्न किञ्चिल्लोके सर्वं प्रतिष्ठितं च।।[10]

---

1. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, व्याख्याकार, डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, पृ. 4
2. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 1/1/1, पृ. 3
3. वही, पृ. 4
4 वही, 1/1/2, पृ. 5
5 वही, 1/1/3, पृ. 5
6 वही, 1/1/4, पृ. 5
7 वही, 1/1/5, पृ. 5
8 वही, 1/1/6, पृ. 5
9 भरतमुनि–नाट्यशास्त्र, 29/127
10 अभिनव काव्यालंकारसूत्रम्, पृ. 7

अर्थात् ब्रह्म से लेकर तृण आदि पर्यन्त यह सनातन अक्षय लोक फैला हुआ है। इस लोक से बाहर कुछ भी नहीं है। सब कुछ लोक में ही प्रतिष्ठित है।

इसी सम्बन्ध में आचार्य हर्षदेव माधव जी अपने अभिनव काव्यशास्त्र 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' में काव्यलक्षण का निरूपण करते हुए कहते हैं–

'लोकलोकोत्तरापूर्ववर्णनक्षमं कविकर्म काव्यम्।'[1] अर्थात् लोक, लोकोत्तर के अपूर्व वर्णन में समर्थ कवि कर्म काव्य है। इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं– **'लोकोऽयं मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षामयः। लोकोत्तरञ्च मुदितामयं ह्येव। उभयस्यापूर्ववर्णनक्षमं काव्यम्।**[2] अर्थात् यह लोक मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा मय है और लोकोत्तर केवल मुदिता मय ही है। इन दोनों के अपूर्व वर्णन में समर्थ कविकर्म काव्य है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के शिखरारूढ कवि, अपनी बेबाक अन्दाजी के लिए मशहूर तथा हम सभी के सुपरिचित कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी लोकगीत प्रकरण में 'लोक' को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– **"लोक एवं लोकगीतानां सर्वविधप्रमाणम्। रसियाख्यं गीतं ब्रजमण्डलख्यातं कथं गीयेत, कया शैल्या गीयेत, केन कण्ठध्वनिना गीयेतेति सर्वत्रापि ब्रजक्षेत्रमेव प्रमाणं, न पुनर्महाराष्ट्रं न चापि बङ्गक्षेत्रम्! अतएव विशिष्टलोक एव तत्तल्लोकगीतानां नियामकं शास्त्रं भवति।**

किञ्च, लोकाः प्रायेण लोकसाहित्य एव दक्षा भवन्ति न पुनः शिष्टसाहित्ये। परन्तु शिष्टसाहित्यदक्षा नागरास्तु लोकसाहित्येऽपि पारङ्गता भवन्ति महाकविराजशेखरवत्।....... वस्तुतः लोकं संस्कृतमनस्कं विधातुमेव यथा लोकगीतं समाश्रितम्।"[3]

अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में काव्यलक्षण का निरूपण करते हुये मिश्र जी कहते हैं कि– रहसबिहारी द्विवेदी ने जिस प्रकार काव्य को परिभाषित किया है उस विषय में मुझे कोई संशय नहीं है। उन्हीं के शब्दों में–

---

1 वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्–आचार्य हर्षदेव माधव, 1/13, पृ. 43–44
2 वही, वही, पृ. 44
3 संस्कृतप्रतिभा, अङ्क : (जुलाई–सितम्बर 2016), उन्मेष : 60, पृ. 58–60

"सुहृदां हृदयाह्लादे लोकोद्बोधे च सङ्गता।

प्रज्ञावतः कवेः सद्वाक् काव्यमित्यभिधीयते।।"[1]

अर्थात् सहृदयों के हृदयाह्लादन एवं लोक के उद्बोधन में संगत प्रतिभाशाली कवि की सद्वाक् ही काव्य कही जाती है।

इस प्रकार अर्थ–निर्वचनों से प्रतिपादित होता है कि दृश्यमान चराचर जगत् के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता, विचारविमर्श, संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता को समष्टि रूप में लोकचेतना कहा जा सकता है।

लोकचेतना जीवन को सम्पूर्णता में परखने की एक बौद्धिक प्रणाली है। इस प्रणाली में ज्ञान का कठोर अनुशासन और भाषा का परिष्कृत विधान उतना महत्त्व नहीं रखता जितना जीवन–बोध के प्रति सर्जक या समीक्षक की आस्था का महत्त्व होता है। लोकचेतना की पूरी प्रक्रिया में व्यक्ति सत्ता की अपेक्षा सामूहिक जीवन के प्रति साधारणीकृत संवेदना महत्त्वपूर्ण होती है। एक लोकचेतनाधर्मी रचनाकार की लेखनी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व, संस्कृति, प्रकृति, आमजन, दलित, स्त्री, भ्रष्टाचार, कुरुतियां, आडम्बरपूर्णजीवन शैली, मजदूर, किसान आदि विविध रंगों को चित्रित करती हुई दृष्टिगोचर होती है और यह समग्रता, सामूहिक बोध आध्यात्म के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार जितना विस्तार जीवन का है, सृष्टि का है, उतना ही विस्तृत फलक लोकचेतना का है। जीवन का कोई क्षेत्र लोकचेतना की परिधि से बाहर नहीं है।

नवगीतकारों ने इस लोक–जीवन की शक्ति को पहचाना तथा अपनी रचनाओं में लोकचेतना की अधिकाधिक अभिव्यक्ति की। अभिराज राजेन्द्रमिश्र का तो सम्पूर्ण कर्तृत्व ही लोकचेतनापरक है। यद्यपि त्रिवेणीकवि काव्य की सभी विधाओं के माध्यम से लोककल्याण के पावन लक्ष्य को सम्पादित कर रहे हैं फिर भी उनके नवगीत साहित्य में बड़ी मुखरता एवं बेबाकीपन के साथ लोक को अभिव्यक्ति मिली है तथा शोधार्थी का ध्येय भी उनकी संस्कृत नवगीत रचनाओं के लोकचेतनामय दृष्टिकोण की समीक्षा ही है। अतः कविवर प्रणीत नवगीतात्मक संस्कृत संकलनाओं में संकलित नवगीतों के सामाजिक, आर्थिक,

1 अभिराजयशोभूषणम्, पृ. 49

राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक पक्षों तथा स्त्री, दलित, पर्यावरण, राष्ट्रीयता, आतंकवाद, भ्रष्टाचार आदि के प्रति उनके दृष्टिकोण का यहाँ समालोचन किया जा रहा है। कविवर अभिराज जी स्वयं कहते हैं कि समाज व परिवेश में जो कुछ भी गलत, अनुचित, अमंगलकारी अथवा भारतीय संस्कृति में स्थापित मर्यादाओं एवं आचार संहिता के विरुद्ध घटित होता है, वह सब मुझे उद्विग्न व विचलित करता रहा है एवं वही उद्वेग गीत रूप में परिणत होकर सुधी पाठकों के समक्ष उपस्थित हुआ है–

निजाऽभ्यस्तमार्गे विरुढाश्मखण्डान्
अपाकर्तुमेव प्रयत्नानकर्षम्।
तदप्यात्तवैरैः सुहृद्भिर्न सोढं
परिव्राजनम्मे सदाऽऽतङ्कितं रे।।[1]

(ख) सामाजिक चेतना

साहित्य समाज का दर्पण है। इस लोकप्रसिद्धि के अनुसार साहित्य रूपी दर्पण में समाज प्रतिबिम्बत होता है। एक साहित्यकार समाज को जैसा महसूस करता है वही उसके साहित्य में अथवा काव्य में प्रतिफलित होता है। समाज के प्रति संवेदनशीलता ही कवित्व का मूल होता है।

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी अपने 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्' में लोक–जीवन के स्वरूप का निर्वचन करते हुए राजशेखर के सन्दर्भ से कहते हैं कि– **"जीवन कवि के मतिदर्पण में प्रतिबिम्बित होता है।** राजशेखर ने भी कहा है– महाकवियों के मतिदर्पण में विश्वप्रतिफलित होता है। परन्तु महाकवियों के मति–दर्पण का यह प्रतिबिम्ब साधारण दर्पण के प्रतिबिम्ब के समान निर्जीव नहीं होता। अतः वह न तो मिथ्या है, न प्रातिभासिक और न ही व्यावहारिक। वह परमार्थतः सत्य ही है। साहित्य में प्रतिफलित जीवन भी किसी एक व्यक्ति का, केवल धीरोदात्त नायकों का, पौराणिक ऋषियों या केवल व्यक्तिमात्र का नहीं होता अपितु समग्र समाज और राष्ट्र का भी जीवन होता है।"[2]

---

1 डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, श्रुतिम्भरा, भूमिका भाग–मदीया काव्ययात्रा, पृ.18

2 अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, पृ.17–18

इसी कथन को और स्पष्ट करते हुए त्रिपाठी जी आगे लिखते हैं– "साहित्य में सभी–आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार के जीवन सर्वांगीण और नवनवोन्मेषशाली होते हैं। जीवन यहाँ प्रतिबिम्बता को प्राप्त करता है, समुल्लसित होता है और वृद्धि को प्राप्त करता है। बिम्ब का विभाजन करता हुआ और उसे संस्कृत करता हुआ यह प्रतिबिम्बित अदभुत है। इसमें समवेत होकर जीवन नवीनता को प्राप्त करता है। जीवन में साहित्य है और साहित्य में जीवन है। इनके द्वारा की गयी सिद्धि सम्प्रवर्तित होती है।"

साहित्ये जीवनं सर्वं सर्वाङ्गीणं नवं नवम्।
प्रतिबिम्बत्वमायाति समुल्लसति वर्धते।।
अद्भुतः प्रतिबिम्बोऽयं बिम्बमेव विभावयन्।
संस्कुर्वन् जीवनं तस्मिन् समवेतो नवायते।।
जीवने चास्ति साहित्यं साहित्ये जीवनं यथा।
परस्परकृता सिद्धिरनयोः सम्प्रवर्तते।।[1]

साहित्य और समाज के परस्पर तादात्म्य के विषय में कविवर अभिराज जी अपने लेख "अर्वाचीन संस्कृतकविता में जीवनदर्शन" में लिखते हैं कि– "वस्तुतः कला एवं कलाकार के समान काव्य एवं काव्यकार (कवि) के बीच कोई तादात्म्य होना चाहिये। ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन भी इस सच्चाई को प्रकारान्तर से स्वीकार करते हैं। उन्हीं के शब्दों में–**"तस्मान्नास्त्येव तद्वस्तु यत्सर्वात्मना रसतात्पर्यवसतः कवेस्तदिच्छाया तदभिमतरसाङ्गतां न धत्ते। तथोपनिबध्यमानं वा न चारुत्वाति–शयं पुष्णाति। सर्वमेतच्च महाकवीनां काव्येषु दृश्यते।"** –ध्वन्यालोक–3/43 पर कारिकावृत्ति

इसका अभिप्राय यह है कि काव्यवस्तु अथवा समूची काव्यकृति सर्वात्मना कवि की इच्छा के अनुरूप ही तदभिमत रसाङ्गता को धारण करती है। 'तदभिमतरसाङ्गतां' शब्द यहाँ उपलक्षण–मात्र है, ऐसा मैं मानता हूँ। अतएव जिस प्रकार काव्य, कवि की अभिरूचि के अनुकूल रस को धारण करता है, उसी प्रकार तदभिमत लोकचित्रण, तदभिमत

---

1 अभिनवकाव्यलंकारसूत्रम्, पृ 17–18

जीवन–दर्शन, तदभिमत लोकसंवेदना–यहाँ तक कि उसकी अभिरूचि के ही अनुकूल काव्य का विषय बनने वाले सम्पूर्ण संविधानक को धारण करता है। उसी बात को ध्वनिकार खुलकर कहते हैं–

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।

..

भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत्।
व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया।।[1]

इसी क्रम में डॉ. उमेशदत्त भट्ट एवं डॉ. मञ्जुलता द्वारा लिये गये साक्षात्कार के प्रश्न संख्या (24) आपके सृजन का प्रमुख परिवेश क्या है? का उत्तर देते हुए अभिराज जी कहते हैं– **"मेरे सृजन का प्रमुख परिवेश है प्राचीन जीवन मूल्यों की प्रत्यग्र चरितार्थता। परम्पराओं का अभिनवीकरण, सामाजिक संवेदना की अविच्छिन्नता की पुष्टि! मैं सर्जना के नाम पर थोथी भड़ास निकालने अथवा सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करने का पक्षधर नहीं।"**[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि परम्परानुरूप कविवराभिराज के साहित्य में अथवा संस्कृत नवगीत रचनाओं में वही सब कुछ चित्रित है, वर्णित है जो कुछ कवि ने स्वयं अनुभूत किया है। उनके साहित्य में समकालीन सामाजिक विसंगतियों तथा सुसंगतियों का जीवन्त चित्रण है।

सामाजिक चेतना से तात्पर्य है–समाज से सम्बन्धित चेतना, ज्ञान, समझ, प्रज्ञा, बोध, संवेदनशीलता, चिन्तन, विचार–विमर्श अथवा जागरूकता। लोककल्याणपरक समाज व्यवस्था की स्थापना के लिए साहित्य के माध्यम से प्रयत्न करना तथा सामाजिक मूल्यों का प्रचार–प्रसार करना साहित्य में सामाजिक चेतना का अभिप्राय है। सामाजिक पद 'समाजः समावेशनं प्रयोजनमस्य ठञ्'[3] से बना है और समाज पद 'सम्' उपसर्ग

---

1 दृक्, दृग्–भारती, इलाहाबाद अंक–6, पृ. 2
2 वही, वही, अंक–8, पृ. 106 तथा साहित्यकल्पतरुः अभिराजराजेन्द्र मिश्र, पृ. 166
3 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोष, पृ. 1098

(साथ–साथ के साथ मिलकर) पूर्वक अज् (जाना) धातु से भावार्थक घञ्[1] प्रत्यय से निष्पन्न है, जिसका तात्पर्य है सभा, मिलन, मण्डल गोष्ठी, समिति, परिषद्, संख्या, समुच्चय, संग्रह, आमोद–प्रमोद इत्यादि। इस शाब्दिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि समाज मनुष्यों का एक ऐसा समूह है जो साहचर्य भाव से एक साथ मिलकर जीवन–लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नरत होता है।

समाज का अंग्रेजी पर्याय शब्द Society भी लगभग इसी अर्थ का द्योतक है– "Society means The sun of human conditions and activity regarded as a whole functioning interdependently or a social community or a social model of lite or the customs and organization of an ordered community or the socially advantaged or prominent members of a community or participation in hospitality; other people's homes or company or companionship, company or an association of persons united by a common aim or interest or principle." [2]

हिन्दी के प्रगतिवादी समीक्षक मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि– **"आधुनिक युग में साहित्य में सामाजिक सन्दर्भों और राजनैतिक परिस्थितियों का जितना निर्णायक और व्यापक प्रभाव पड़ रहा है उतना पहले कभी नहीं रहा। आज के जमाने में साहित्य की दुनियाँ केवल सौन्दर्य और प्रेम की ऐकान्तिक साधना के बल पर नहीं चलती, वह समाज के आर्थिक ढाँचे, राजनैतिक परिवेश, सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक संरचनाओं से बहुत दूर तक प्रभावित होती है।"[3]**

इस सम्बन्ध में अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर आचार्य हर्षदेव माधव लिखते हैं कि– "काव्य चैतन्य का स्पन्द युग प्रभाव है। प्रत्येक युग में काव्य प्रवाह में परिवर्तन आते ही हैं।......अतः प्रतियुग युगचेतना अनुभव कर नये तत्त्वों को स्वीकारते हैं।.......ऋतुओं के प्रभाव से जो पल्लवित होता है, वह यह वृक्ष है। जो अपरिवर्तित रहता है, वह यह पत्थर है। संस्कृत काव्य कर्म में महिलाओं की पीड़ा, निम्न वर्ग की यातना, सामान्य

1 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोष, पृ. 1076
2 ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पृ. 788
3 साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका–मैनेजर पाण्डेय, पृ. XI

जनता का आक्रोश, नेताओं की भर्त्सना, धर्मदम्भ का तिरस्कार, प्रेम में स्वानुभूति का निरूपण यह सब युग प्रभाव से जन्मा है। वही काव्य का सौन्दर्य है।" यथा–

"युगप्रभावः काव्यचैतन्यस्पन्दः।
प्रतियुगं काव्यप्रवाहे परिवर्तनान्यागच्छन्त्येत।"[1]

अतः प्रतियुगं युगचेतनामनुभूय नूतनतत्त्वानां स्वीकारं कुर्वन्त्येव।............ऋतूनां प्रभावेण यः पल्लवितो भवत्यसौ स वृक्षः, अपरिवर्तितो भवत्यसौ स पाषाणः। संस्कृतकाव्यकर्मणि नारीणां पीडा, निम्नवर्गस्य यातना, सामान्यजनताया आक्रोशः, नेतृभर्त्सना, धर्मदम्भं प्रति तिरस्कारः, प्रेम्णि स्वानुभूतिनिरूपणम् एतत् सर्वं युगप्रभावजन्यमेवास्ति। वस्तुतः क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रमणीयता रूपम्। तदेव काव्यसौन्दर्यमप्यस्ति।[2]

सामाजिक चेतना अथवा सामाजिक वास्तववाद का निरूपण करते हुए माधव जी आगे लिखते हैं–

"उपेक्षितान् प्रति प्रतिबद्धः करुणामूलः
सामाजिकवास्तववादः।"[3]

अस्मिन् वादे निम्नवर्गस्य जनानां सुखदुःखानां, सामाजिक–वैषम्यस्य संक्षोभकं चित्रणं, दीनता–शोषण–अत्याचार–लोकजीवन–कुत्सितांशानां समालेखनं प्राप्यते।............. श्रमिकाणामव दशाऽपि वर्ण्यते वादेऽस्मिन्। साम्प्रतकवीनां काव्यरचनास्वपि सामाजिकवादमयं निरूपणमस्त्येव। निरलङ्कारा निराडम्बरा नैसर्गिकी भाषा सर्जकैः स्वीक्रियते। कामलो–लुपत्व–तृष्णा–स्वार्थ– सुख–प्राप्त्युद्यमादीनामपि काव्याभिव्यक्तिर्भवति।[4] अर्थात् उपेक्षितों के प्रति प्रतिबद्ध करुणामूल सामाजिक वास्तववाद (समाजवादी यथार्थवाद) है। इस वाद में निम्न वर्ग के लोगों के सुख–दुःखों, सामाजिक विषमता का क्षुब्ध करने वाला चित्रण, गरीबी, शोषण, अत्याचार और लोकजीवन के कुत्सित अंशों का आलेखन प्राप्त होता है।....श्रमिकों की अवदशा का वर्णन भी इस वाद में होता है। आधुनिक कवियों की

---

1 वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/2.1, पृ. 72
2 वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, द्वितीय अध्याय, पृ. 75
3 वही, 2.2 पृ. 74
4 वही, द्वितीय अध्याय पृ. 75

रचनाओं में सामाजिक (समाजवादी) यथार्थवाद का निरूपण है। अलङ्कार–आडम्बर रहित नैसर्गिक भाषा का प्रयोग होता है। कामलोलुपता, तृष्णा, स्वार्थ, सुखप्राप्ति, उद्यम आदि की काव्याभिव्यक्ति होती है।

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीत रचनाओं में उपर्युक्त समस्त सामाजिक संवेदनापरक तत्त्वों का साकार चित्रण किया गया है। कविवर अभिराज जी सदैव लोकमंगल के समाराधक रहे हैं। उनके प्रत्येक नवगीत संकलन में लोकमंगल की कामनापरक रचनाएं अवश्य मिलती हैं। वे लिखते हैं–

मधुरं विचिन्तयामो मधुरं हि मानसे स्यात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात् !!
कलहादिकेन किं स्यात्
विरहादिकेन किं स्यात्
सङ्गममये हि लोके सायुज्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!![1]

अर्थात् कविवर मिश्र जी मनुष्य मात्र को संदेश देते हुए कहते हैं कि हम सब मन–वचन–कर्म अपितु सम्पूर्ण जीवन मधुरता से युक्त हो। हम सभी के जीवन में कोई विघ्न–बाधा नहीं हो, हम सब आपसी वैमनस्य, कलह, ईर्ष्या, द्वेष से रहित होकर परस्पर मिलजुल कर रहें। लगभग इसी पुनीत भाव को अन्यत्र इस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है–

चिन्तनीयं सदा मङ्गलं मङ्गलम्
वर्तनीयं सदा मङ्गलं मङ्गलम्!!
विष्ठया लेपनं भूतले न श्रुतम्
लेपनीयं सदा चन्दनं चन्दनम्!!
जीवनं दृश्यते विघ्नबाधामयम्
कल्पनीयं सदा नन्दनं नन्दनम्!![2]

---

1 वाग्वधूटी, 'माङ्गल्यमेव भूयात्', पृ. 1

2 मृद्वीका, नमस्या, पंचमी गीतिः, पृ 8

'धूमतां यामो वयम्' तथा 'वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य' मधुपर्णी की इन दोनों रचनाओं के माध्यम से कवि त्यागपूर्ण जीवन जीने तथा लोकहित में जीवन समर्पण करने की प्रेरणा देते हुए कभी लिखते हैं कि हमें यज्ञाग्नि से उत्पन्न धूम्र से प्रेरणा लेनी चाहिए। वह धूम्र ऊपर उठकर मेघरूप धारण करके और वृष्टि के माध्यम से पुनः पृथ्वी पर आकर एक नूतन व नवीन सृष्टि को जन्म देता है। ठीक इसी भांति हमें भी अपने जीवन में कुछ ऐसे कर्म अवश्य करने चाहिए जिससे औरों के जीवन में उजाला हो, जीने का हौंसला मिले। चाहे हमें ऐसा करते हुए अपने अस्तित्व को मिटाना पड़े–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्
धूमतो घनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।[1]

हमें जीवन में सदैव ऐसे कर्म करने चाहिए अथवा अपने–आपको ऐसा बनाना चाहिए, जिसके कारण हम न केवल जीते हुए अपितु मरणोपरान्त भी समाज के काम आ सकें। जिस प्रकार एक वृक्ष निःस्वार्थ भाव से आश्रय में आये हुए लोगों की बिना किसी भेदभाव के शुष्कता को प्राप्त होने तक सेवा देता रहता है और शुष्क होने के उपरान्त भी ईंधन, पर्यङ्क, फर्नीचर आदि के रूप में लोकोपकारक बनता है–

यावज्जीवम्मया
स्वादुफलैर्भोजिता यूयं
परितोषिता यूयं
निषेविता यूयम्!
....
शुष्कतामुपेत्य मृतोऽहमद्य।।
परं भो नाऽयं मृत्युर्निरर्थकः
निधनमपि सार्थकीकृत्य यास्याम्यहम्
ममदृढकाष्ठैः संघटयत पर्यङ्कान्

1 मधुपर्णी, 'धूमतां यामो वयम्', पृ. 13

मम शाखावचयैः पचत पक्वान्नानि
तेनैवाहं पुनर्जीविष्यामि।।[1]

प्रो. मिश्र जी लोक व्यवहार के कुशल चितेरे हैं। उनकी रचनाओं में मानव–मात्र को लोक–जीवन की शिक्षा मिलती है। हमें जीवन में मानव–मूल्यों की रक्षा करते हुए बड़ी ही सजगता व सतर्कता के साथ लोक–व्यवहार करना चाहिए। व्यक्ति को हमेशा सोच–समझकर एवं सत्यता पर विचार करके ही बोलना चाहिए। किसी भी अज्ञात जन के साथ पूर्णरूपेण परखने के उपरान्त ही मैत्रीभाव रखना चाहिए–

"त्वामपि न कौशिकोऽसौ चाण्डालतां नयेत्
सत्यं विचिन्त्य भाषय बन्धो! शनैः शनैः।।
अज्ञातहृत्सु वैरीभवति स्मरोत्सवः
हृदयं ततस्समर्पय बन्धो! शनैः शनैः।।"[2]

जीवन में चाहे कितनी भी समस्याएँ, आपदाएँ, विघ्नबाधाऐं क्यों न आये, हमें कभी भी आशा का दामन नहीं छोड़ना चाहिए। निराश होकर बैठने की बजाय अपने यात्रा–पथ पर धीरे–धीरे निरन्तरता के साथ हमें आगे बढ़ते रहना चाहिए। यही प्रेरणा देते हुए कविवर मिश्र जी कहते हैं–

अभितो गभीरनद्यौ गिरिशृङ्खला पुरः
यात्रामिमां समापय बन्धो! शनैः शनैः।।
पक्वैः पतन्त्वपक्वान्यपि नो समं फलानि
शाखां ततो विधूनय बन्धो! शनैः शनैः।।[3]

अर्थात् दोनों तरफ गहरी नदियाँ और सामने उन्नत पर्वत शृंखला आ जाने पर भी पथिक को अपने यात्रा–पथ पर धीरे–धीरे बिना रुके आगे बढ़ते रहना चाहिए, तभी वह अपनी मंजिल को पा सकता है ठीक इसी प्रकार हमें जीवन में बिना किसी हड़बड़ाहट के आगे बढ़ते रहना चाहिए क्योंकि शीघ्र फल–प्राप्ति की कामना से काम बिगड़ जाते हैं। हमें पके फलों की प्राप्ति की आतुरता में पेड़ की शाखा को उतना तेज नहीं हिलाना चाहिए कि बिना पके फल भी गिर जाते।

---

1 मधुपर्णी, 'वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य', पृ. 139–140
2 अभिराजगीता, मङ्गलगीतम्, 'शनैः शनैः', पृ. 4
3 वही, वही, वही, पृ. 4

हमें समाज के प्रत्येक तबके को चाहे वह गरीब हो या अमीर हो, शिक्षित हो या अशिक्षित, ग्राम्य हो या शहरी सबको साथ लेकर आगे बढ़ना चाहिए। इसी में हम सबकी, सम्पूर्ण विश्व की उन्नति सम्भव है। इसी भाव को द्योतित करने वाली कविवर मिश्र जी की ये पंक्तियाँ यहाँ उद्धरणीय हैं–

परितोऽपि पामराणां तृणशालिका इमाः

होलानलं समिन्धय बन्धो! शनैः शनैः।।[1]

अर्थात् हे बन्धु! आप अपने होली का त्योहार इस प्रकार मनाना जिससे कि होली दहन के साथ पास में स्थित गरीबों की बस्ती, झुग्गी–झोंपडियाँ अथवा कच्ची बस्ती आग की भेंट न चढ़ जाये।

उद्यमशील बनने के लिए मनुष्य मात्र को संदेश देते हुए कविवर मिश्र श्री कहते हैं कि हमें विघ्न बाधाओं से डरकर बैठने की बजाय उनका धैर्यपूर्वक सामना करते हुए सिद्धिमार्ग पर आगे बढ़ते रहना चाहिए–

सिद्धिमार्गे मनस्वी पदातिर्भवेत्
नेक्षणीयं सदा स्पन्दनं स्पन्दनम्!![2]

समाज में प्रत्येक प्राणी को सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार है। अतः अमर्यादित आचरण से दूसरे की जिंदगी में कोई खलल उत्पन्न नहीं हो इस बात का हमें ध्यान रचना चाहिए। इसी बात को मिश्र जी हमें मृगया–बिहारी दुष्यन्त के दृष्टान्त से समझा रहे हैं–

भवानग्रेसरो राजन्! जनानामर्हतां लोके
अतोऽध्वा कोऽप्यमर्यादो न गन्तव्यो न गन्तव्यः।।[3]

अर्थात् हे राजन्! आप इस संसार में सबसे योग्य प्रथम व्यक्ति हो, अतः आपके रहते हुए कोई भी अमर्यादित आचरण नहीं करे, यह आपका दायित्व हो जाता है।

---

1 अभिराजगीता, मङ्गलगीतम्, 'शनैः शनैः', पृ. 4

2 मृद्वीका, नमस्या, पंचमी गीतिः, पृ. 8

3 मधुपर्णी, प्रथमखण्ड : गलज्जलिकाः, 'न हन्तव्यो, न हन्तव्यः', पृ. 15

आज व्यक्ति को रुककर स्वयं का आत्मावलोकन अथवा आत्ममूल्याङ्कन करने की आवश्यकता है। यदि हमें कोई सीख देता है, सत्पथ पर चलने की प्रेरणा देता है तो उसकी बात हमें सुननी चाहिए। इस सुनने और सुनाने की परम्परा के विछिन्न हो जाने के कारण व्यक्ति को स्वयं के सम्बन्ध में यह पता ही नहीं रहता कि वह किस अंधी दौड़ का शिकार हो रहा है, इसका क्या परिणाम होगा? इसी सम्बन्ध में कविवर अपनी गलज्जलिका में लिखते हैं–

शृणोति कोऽपि न मे वाचिकं ददे कस्मै?
वृणोति कोऽपि न मे वाचिकं ददे कस्मै??[1]

अर्थात् कविवर अपने आपको पथ–प्रदर्शक की भाँति प्रस्तुत करते हुये अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए कह रहे हैं कि मैं सत्प्रेरणा, अच्छी सीख, अच्छे विचार लोगों को देना चाहता हूँ लेकिन लोगों को मेरे विचार, मेरी वाणी को सुनने की फुरसत ही नहीं है।

कविवर अभिराज जी अपने नवगीत संकलन 'श्रुतिम्भरा' की भूमिका में स्वयं कहते हैं कि 'समाज में जो कुछ भी अमङ्गलकारी अथवा गलत होता हुआ दिखाई देता है। वह सब कुछ मेरे मन को उद्विग्न और व्याकुल कर देता है और यही व्याकुलता गीत रूप में मेरी लेखनी का विषय बनती है। ऐसी ही व्यथामूलक रचना यहाँ प्रस्तुत है–

तिमिङ्गिलो निगरति लघुमीनम्
धनदो जठरे क्षपयति दीनम्
मरुसिकतायां छलयति हरिणं कुटिला सलिलतृषा
म्रियते जिजीविषा!!
समुद्घोषिता हरिता क्रान्तिः
समजायत दयनीया भ्रन्तिः
भाण्डागारसमाहितमन्नं भवने मरणदशा
म्रियते जिजीविषा!!
द्रुतं भञ्जितास्तटमर्यादाः
ऋज्भूता अभिनयसंवादाः

1 वाग्वधूटी, गलज्जलिका (वाचिकं ददे कस्मै!!), पृ. 75

शतधा द्रवति कुसंस्कृतितटिनी नितरां तटङ्कषा

म्रियते जिजीविषा!![1]

अर्थात् समाज सब ओर कोहराम सा मचा हुआ है, समुद्री न्याय की भाँति जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है ठीक उसी प्रकर धनिक लोग निर्धनों का शोषण करने में लगे हुए हैं। समाज में विषमता की खाई बढ़ती ही जा रही है। सीधे–साधे, भोले–भाले सरल हृदयीजन निरन्तर ठगे जा रहे हैं। समाज में अव्यवस्था फैली हुई है। एक तरफ भाण्डागारों में अन्न सड़ रहा है और दूसरी तरफ प्रजाजन–किसान भूख से मर रहे हैं। हरित क्रान्ति का बिगुल बजाया जा रहा है। व्यक्ति मर्यादाहीन होकर नग्न नृत्य कर रहा है। पाश्चात्य संस्कृतिपरक विकृतियाँ निरन्तर पाँव–पसार रही हैं, फिर भी इस ओर किसी का ध्यान नहीं है। जिसका ध्यान है, उसकी कोई सुन नहीं रहा है। ऐसा लगता जैसे अब जीने की इच्छा ही समाप्त हो चुकी हो।

कवि अपनी रचना के माध्यम से हम सभी को परस्पर बन्धुत्व, भाईचारे, जाति–वर्ग–क्षेत्र की भेद भावना से रहित जीवन जीने का आह्वान करते हुये कहते हैं–

एत सौम्यबान्धवा बन्धुता विधीयताम्

क्षेत्रवर्गभावना सत्वरं निवार्यताम्।[2]

जिस मातृशक्ति ने कृपाण धारण कर देश की स्वतन्त्रता, अखण्डता और अक्षुण्णता की रक्षार्थ अपने प्राण तक न्यौछावर किये वही नारी आज उत्पीडन का शिकार हो रही है। वह भी किसी परायों से नहीं बल्कि अपनों से।

या कृपाणी गृहीता क्वचिद्रक्षणे

हन्ति सैवात्मबन्धून् निकामं रुषा।।[3]

समाज में व्याप्त भेदभाव की भावना पर तंज कसते हुए बड़ी ही मुखरता के साथ कविवर मिश्र जी कहते हैं कि आज पंजरबद्ध तोते की भाँति योग्य व्यक्ति की कोई पूछ

---

1 मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, पंचचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 65
2 श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः, 'रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्', पृ 60
3 वही, वही, 'निर्झरी हन्त कूलङ्कषा', पृ. 61

नहीं है और अयोग्य व्यक्ति अपनी पहुँच एवं भ्रष्टाचार के बल पर पितृपक्ष के कौआ की तरह सुखों का उपभोग कर रहे हैं एवं सरकारी पदों पर जमे हुए हैं—

ध्वंसते शुष्ककण्ठः शुकः पञ्जरे

चिन्वते पितृपक्षे बलिं वायसाः।।[1]

'वचस्येकं मनस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्' के आदर्श पर चलने वाली भारतीय सन्तति आज मायावियों की भाँति विपरीत आचरण करती हुई दृष्टिगोचर हो रही है। किस पर विश्वास किया जावे किस पर नहीं, समझ नहीं आता है। कविवर कहते हैं कि यह युग का प्रभाव है। अतः हमें प्रयत्नपूर्वक भारतीय जीवन—मूल्यों के अनुसार आचरण करना चाहिए—

न जननी प्रणम्या न जनकः प्रणम्यः

युगं वर्तमानं प्रणम्यं प्रणम्यम्!!

विषम्मानसे वाचि पीयूषधारा

जनं नौमि मायाविनं धन्यधन्यम्!![2]

इसी प्रसङ्ग में एक अन्य रचना में कविवर अभिराज जी कह रहे हैं कि समाज की स्थिति बड़ी भयावह है। लोग दिखावे की जिन्दगी जी रहे हैं। जो लोग सभाओं—सम्मेलनों में जोर शोर के साथ सुरापान जैसे कुरुतियों का खुलकर विरोध करते हुए नजर आते हैं, वे ही दोगले लोग निजी जीवन में सारी विकृतियों व कुप्रथाओं के पोषक होते हैं। आज जिन लोगों, व्यक्तियों, परिवारजनों, प्रशासकों अथवा कानून के पहरेदारों पर नारी की सुरक्षा व सम्मान की रक्षा का दायित्व है, वे ही लम्पटजन नारी की अस्मिता के साथ खेल रहे हैं—

गोष्ठ्यां सुराविरोधो गेहे यथेच्छपानम्

लोकद्वयं कराग्रे प्रतिभाति सोमपानम् !!

ये लम्पटास्त एते शिविकां वहन्ति मार्गे

प्रभुरेव हन्त! रक्षेत् पातिव्रतं वधूनाम् !![3]

---

1 श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः, 'निर्झरी हन्त कूलङ्कषा', पृ. 62

2 श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः, 'युगं वर्तमानं प्रणम्यम्', पृ. 109

3 श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः, 'हरते मनोऽभिराजः', पृ. 116

कवि ने 'पत्रं श्रीबाणभट्टस्य' नामक छन्दोमुक्त रचना के माध्यम से व्यक्ति के परिवारिक दायित्वों का बोध बड़े ही रोचक एवं सांकेतिक तरीके से कराया है। आज की नई पीढ़ी निजी सुख–सुविधाओं के भोग में इतनी आसक्त है कि उसको अपने अन्य दायित्वों का बोध तक नहीं रहता है। वह भूल जाता है कि वह किसी का बेटा है, भाई है, पति है और एक सभ्य समाज का दायित्ववान् सदस्य है। इन्हीं सब दायित्वों का बोध कराते हुए कविवर कहते हैं–

गर्वितोऽसि त्वं तेन तथागतेन
यो गृहदायित्वमपि नो सम्पादयामास
तत्याज प्रसुप्तं दुग्धमुखं दारकं
यौवनभारभङ्गुराञ्च भार्याम्
तनयवियोगकातरम्
अशक्तं वृद्धजनकं
क्लीब इवोद्विज्य संसारात्
यः प्राद्रवत् संसाररक्षार्थम्?[1]

अर्थात् क्या बुद्ध द्वारा सोते हुए दुधमुँहे शिशु, यौवनभार से भङ्गुर भार्या व पुत्रवियोग से कातर, अशक्त माता–पिता को छोड़कर संसार के दायित्वों से पराङ्मुख हो जाना उचित था? क्या इन सबके प्रति उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं थी?

समाज में वर्तमान में नैतिक अद्योपतन चरमसीमा पर पहुँच चुका है। दुश्चरित्र और दुराचारी जन मठाधीश बनकर बैठे हैं। लोग स्वार्थ की खातिर रिश्ते के ताने–बाने बुन रहे हैं। आज समाज में जिधर दृष्टि डालें, उधर ही धूर्त, लम्पट, बेईमान और आततायी लोगों का साम्राज्य नजर आता है। आखिर जायें तो जायें कहाँ? इससे अधिक इस पृथ्वी पर क्या होना बाकी रह गया है? कवि की यही व्यथा गीत रूप में इस प्रकार प्रकट होती है–

"अतः परं किं भविता भूतले विचित्रम्
आत्मानं वायसोऽपि मन्यते पवित्रम्।।

---

1 मधुपर्णी, 'पत्र श्रीबाणभट्टस्य', पृ. 114–115

वेशयोषितां वृन्दे शीलगता चर्चा
मलिम्लुचानां गेहे शाम्भवी समर्चा।।
अतः परं किं भविता भूतले विचित्रम्
मन्यते हुताशं यदि शुष्कतृणं मित्रम्।।
प्रतिशाखं चन्दनेषु वेष्टिता भुजङ्गाः
मानवैः पवित्रीक्रियते सम्प्रति गङ्गा।।"[1]

"उद्याने यस्मिन् सान्द्रतरौ
प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते।
कल्याणं तस्य कथं भविता
सुषमा क्व वसन्तस्यागमने।।"[2]

अर्थात् इस भूतल पर इससे अधिक आश्चर्य क्या होगा कि इस समय कौए भी स्वयं को पवित्र व सच्चरित्र मानने लगे हैं। सर्वत्र नारी उत्पीड़न चर्चा का विषय बना हुआ है। अग्नि भी सूखे तिनकों से मित्रता दिखला रहा है। प्रत्येक शाखा पर चन्दनवृक्षों पर सर्प अठखेलियां कर रहे हैं। यहाँ तक कि जो गङ्गा अब तक इन्सानों को पवित्र कर रही थी, वही आज मानवों के द्वारा पवित्र की जा रही है।

आज समाज रूपी उद्यान के प्रत्येक वृक्ष की प्रत्येक शाखा पर उल्लू बैठे हुए हैं और आनन्दानुभव कर रहे हैं। कविवर आह भरते हुए कहते हैं कि इससे अधिक भूतल पर और क्या होगा?

शिक्षित समाज ही अपने प्रति, आस–पास के घटनाक्रम के प्रति सचेष्ट रह सकता है तथा समाज, राष्ट्र व विश्व की उन्नति में योगदान दे सकता है। शिक्षा प्राप्त करके ही समाज शोषण मुक्त हो सकता है। किसी के भी जीवन में जड़ता और करुणा स्थायी रूप से नहीं होती। शिक्षा की रोशनी से इन दोनों को दूर किया जा सकता है। साथ ही अपने साथ–साथ औरों के जीवन में भी उजियारा लाया जा सकता है। जो व्यक्ति आज भी यदि अनपढ़ है और अपनी सन्तति को भी इससे वंचित रख रहा है, उसका जीवन धिक्कार है–

---

1 मधुपर्णी, 'अतः परं किं भविता', पृ. 26
2 वही, 'प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते', पृ. 27

करुणा कोशे यस्य न लिखता
जड़ता यस्य ललाटे जटिता
अद्यावधि नो पठति न पठिता धिक् तादृशं जीवनम्!
ब्रूते धिग् धिग् धिगिति मृदङ्गो धिक् तादृशं जीवनम्!![1]

इस प्रकार हम सबको आज की स्थिति का बोध कराने के लिए कविवर कृत रचना ने झकझोर दिया है। सम्पूर्ण समाज में व्याप्त विसंगतियों व सुसंगतियों के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट किया है तथा हमें सोचने को मजबूर किया है कि हम क्या थे? और अब क्या हो गये? हम कहाँ थे? और अब कहाँ आ गये? अतः हमें अपने सनातन जीवन–मूल्यों के आधार पर जीवन–जीना चाहिए। तभी एक सुव्यवस्थित समाज का निर्माण हो सकता है।

(ग) राजनीतिक चेतना

राजनीतिक शब्द राजपूर्वक नीति शब्द से क प्रत्यय जुड़कर निष्पन्न हुआ है।[2] राज अर्थात् राजा या प्रशासक या प्रशासन तथा नीति अर्थात् उपाय, योजना, कूटयुक्ति, व्यवहार, चाल–चलन, प्रबन्ध, निर्देशन, दिग्दर्शन, औचित्य, शालीनता इत्यादि। इस प्रकार राजा या प्रशासन द्वारा निर्धारित नियम, निर्देशन, दिग्दर्शन, कार्यक्रम, योजना, व्यवहार आदि को 'राजनीति' की संज्ञा दी जा सकती है और इस राजनीति सम्बन्धी ज्ञान को राजनीतिक ज्ञान कहा जाता है।

राजनीतिक का अंग्रेजी समानार्थक शब्द 'Political' का अर्थ है– 'of relating to or engaged politics अथवा belonging to or forming part of a civil administration.'[3]

राजनैतिक चेतना का समाज, संस्कृति तथा साहित्य से बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। राजनीतिक हलचलों ने लोकजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। राजनीतिक चुनाव

---

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, चतुश्चत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 63
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 818 (राज्+कनिन्, रञ्जयति रञ्ज्+कनिन् नि.वा। तत्पुरुष समास के अन्त में 'राजन्' का बदलकर 'राज' बन जाता है।)
3. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 633

और दलगत राजनीति ने व्यक्ति–व्यक्ति को टुकड़ों में बांट दिया है। राजनीतिक दलों के निरंकुश नेतृत्व और अनुशासनहीन शक्ति–प्रदर्शन के साथ निकृष्ट स्वार्थपरता की धुन्ध में सारे आदर्श तिरोहित हो गये हैं। परिणामस्वरूप चारों ओर छल–छद्म और अपना उल्लू सीधा करने के लिये कुछ भी करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला है। समूचे परिवेश के साथ ही लोकजीवन में भी साम्प्रदायिक विद्वेष, जातिगत–भेदभाव, भ्रष्टाचार इत्यादि का कारण राजनीतिक स्वार्थ ही है। लोकतन्त्र का उदय भारत देश के लिए नया सवेरा लेकर उपस्थित हुआ था किन्तु राजनीतिक चेतना के अभाव में आज लोकतन्त्र भी हमें घुटनभरा महसूस हो रहा है जिसका प्रभावी उपाय राजनीतिक चेतनापरक साहित्य का सृजन और अनुशीलन हो सकता है। हमारे संस्कृत–सृजनकारों की लेखनी से निःसृत राजनीतिक चेतनामूलक साहित्य की समृद्ध परम्परा रही है। समकालीन राजनीतिक घटनाक्रमों ने संस्कृतलेखन को अवश्य प्रभावित किया है। डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीत रचनाएँ भी इससे अछूती नहीं है। कविवर मिश्र जी ने बड़ी ही मुखरता के साथ राजनीति और राजनेताओं के आचरण पर तीखा प्रहार किया है।

आज राजनीति समस्त नैतिक मर्यादाओं, मानदण्डों, आदर्शों तथा शिष्टाचार आदि को पूर्णतः भुला चुकी है। ऐसा कोई दोष, कलङ्क या बुराई नहीं है जो राजनीति में नहीं है। कविवर व्यंग्य रूप में कहते हैं कि आज राजनीति किस–किस जनकल्याणकारी कार्य को नहीं कर रही है। यह नीतिमार्ग की भर्त्सना करके और सत्यनिष्ठा को ठोकर मारकर गहरे अंधकार स्वरूप बुराईयों को भी अच्छाईयों के रूप में सूर्य की भाँति चमका रही है। जिस राजनीति को हमारे पूर्व विद्वानों तथा संस्कृत लेखकों ने वेश्या के समान बतलाया है आज उसी राजनीति को अपनी प्रेयसी की भाँति प्रेम करने लगे हैं। जिसको कहीं सफलता नहीं मिलती है, वह राजनीति में अपना भविष्य ढूँढने लगता है। इस प्रकार समस्त बुराईयों, दुर्गणों, भ्रष्टलोगों का अड्डा बन चुकी है 'राजनीति'। विद्वान् का बेटा विद्वान् हो, अभियन्ता का बेटा अभियन्ता हो, यह निश्चित नहीं लेकिन राजनेता का बेटा राजनेता स्वतः हो जाता है। इस प्रकार आज राजनीति कुल क्रमागत हो चली है। योग्य, सच्चरित्र, विद्वान् तथा जनहितकारी लोगों को यहाँ जगह ही नहीं है। इसलिए कविवर मिश्र जी दूर से ही राजनीति को नमस्कार करते हैं–

दोषं मलं कलङ्कं प्रपुनाति राजनीतिः
किं किं न लोकपुण्यं प्रददाति राजनीतिः!!
निर्भर्त्स्य नीतिमार्गं शप्त्वा च सत्यनिष्ठाम्
गहनं तमोऽपि भानुं विदधाति राजनीतिः!!
विदुषस्सुतो न विद्वान् न च यान्त्रिकस्य यन्त्री
नेतुस्तु नेतुधुर्यं विचिनोति राजनीतिः!!
साञ्जलिपुटप्रणामं विनिवेद्य दूरसंस्थम्
अभिराजमिन्द्रजालैर्न दुनोति राजनीतिः!![1]

भ्रष्टाचार पर तीखा व्यंग्य करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि जो नेता कुछ समय पहले तक पैदल–पैदल भटककर लोगों से वोटों की याचना करता था, एकाएक राजनीति उसे विमानों आलीशान यात्रा करवा देती है जो कि एक सामान्य लोकसेवक अथवा आमजन के लिए दिवा स्वप्न की भाँति है। आखिर यह पैसा, सम्पत्ति, यह धन–दौलत कहाँ से आई? यह हमारे लिए सोचनीय है–

आहिण्डनं पदातिः कृतवाननारतं यः
आरोह्य तं विमानं प्रहिणोति राजनीतिः!!
बहुगुणमपि प्रमूढं चरणञ्च भूरिपङ्कम्
कमलापतिं दरिद्रं प्रकरोति राजनीतिः!![2]

कविवर अभिराज जी कहते हैं कि आज देश के सौदागर, तस्कर एवं देश की दृढ़ता को दीमक की भाँति चाटने वाले लोग सांसद व विधायक चुने जा रहे हैं। राजनीतिक दलों को मूल्यनिष्ठ, ईमानदार तथा प्रजाहितैषी उम्मीदवार की बजाय धन–शक्ति–बल से युक्त जिताऊ उम्मीदवार चाहिए। इस प्रकार धीरे–धीरे सम्पूर्ण देश की प्रभुसत्ता इन छली–कपटी–पाखण्डी–दम्भी कलियुगी रावणों के हाथों में चली गयी है। इनके रहते भला इस देश का एवं देश की जनता का कैसे उद्धार हो सकता है। कविवर यहाँ तक कहते हैं कि अब इस प्रकार के भारत देश में जीना दूभर हो रहा है–

---
1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, चत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 57
2. वही

नास्ति विद्याकलावैदुषीवन्दना

सर्वतो दृश्यते सम्मता वञ्चना!!

तस्करश्चीयते सांसदः साग्रहम्

नाश्नुते ज्ञानविज्ञानसिन्धुर्गृहम्!!

सञ्चरद्रावणानां वशे भारते

जीवितुं शक्यते नेदृशे भारते!![1]

आज राजनीति इतनी कुटिल और इतनी विस्तृत हो चुकी है कि कोई घर, आँगन, कस्बा, शहर, नगर, बाजार, वन इससे अछूता नहीं है। हर रिश्ता, सम्बन्ध, व्यवहार राजनीति की नींव पर आधारित है। इसके कारण आज भारतीय सनातन मूल्यों पर आधारित परिवार व्यवस्था एवं समाज व्यवस्था खण्डित होती जा रही है। यहाँ तक राष्ट्र की सम्प्रभुता भी खतरे में आ चुकी है। इस कारण प्रतिपल जीवन में समस्याऐं बढ़ती जा रही है तथा जीवन व्यर्थ प्रतीत होने लगा है–

वर्धते क्षणे–क्षणे पदे–पदे व्यथा

जीवनं कथा!

जीवनं वृथा!!

आपणे गृहे वने पुरे च गोपुरे

राजनीतिरेव लक्ष्यते स्थिरेऽस्थिरे

क्वास्ति राष्ट्रशम्भुता विदग्धमन्मथा?

जीवनं कथा!

जीवनं वृथा!![2]

आज व्यक्ति का, समाज का सम्पूर्ण जीवन राजनीति से पूर्णतः दूषित और कलुषित हो चुका है। योग्य जन आजीविका या सम्मानपूर्वक जीवन–यापन के लिए दर–दर भटक रहे हैं और मौकापरस्त लोग राजसुख और ऐश्वर्यों का उपभोग कर रहे हैं। दुष्ट राजनेताओं के द्वारा भारत की आम जनता द्रोपदी की भाँति खुले आम लूटी जा रही है।

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, द्विचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 60 तथा अभिराजगीता, पृ. 82
2. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, चतुश्चत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 63

ऐसे भ्रष्ट प्रशासक जनतन्त्र रूपी शिव को नष्ट करने को आतुर दिखाई पड़ रहे हैं। अपनी स्वार्थपरता के आगे नेता व प्रशासक वर्ग लाचार नजर आ रहे हैं। यह स्वार्थपरता सुरसा के वदन की भाँति विकराल होती जा रही है। राष्ट्र–भूमि–देश–समाज उनके लिए विक्रय की वस्तु बन गये हैं तथा दिन–रात गाड़ी–घोड़े, वाहन, घर, सम्पत्ति, रूपया–पैसा आदि जुटाने में लगे हुये हैं। जो देश के वास्तविक संरक्षक हैं उनको कोई सुख–सुविधा न देकर मरणोपरान्त वीरचक्ररूपी कलश मिलता है, इस कारण कविवर कहते हैं कि अब इस देश में जीने की मेरी इच्छा समाप्त प्रायः हो चुकी है–

आहिण्डनं सहति कौन्तेयः
राजसुखं भुङ्क्ते राधेयः
दुश्शासनं शपति जनतेयं पाञ्चालीव कृशा
म्रियते जिजीविषा!!
भस्मासुर इव शिवं स्वतन्त्रम्
दग्धुं धावति किल जनतन्त्रम्
स्वार्थान्धतागिरिजया छलिता नेतारो विवशाः
म्रियते जिजीविषा!!
राष्ट्रभूमिविक्रयसंलग्नाः
वाहनभोगसमृद्धिनिमग्नाः
संरक्षतां कृते मरणोर्ध्वं वीरचक्रकलशाः
म्रियते जिजीविषा!![1]

आज इन राजनीतिक कुचक्रों के कारण सर्वत्र आक्रोश फैला हुआ है। **'यत्र यत्र धूमः तत्र–तत्राऽग्निः'** इस न्याय के विपरीत अग्नि के अभाव में सर्वत्र इस आक्रोश और असन्तोष की अग्नि का सूचक धुआँ मंडरा रहा है। नेता लोग अपनी रोटी सेकने के लिए इस आक्रोशाग्नि को हवा दे रहे हैं। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि जिन लोगों के कन्धों पर राष्ट्र की सुरक्षा का भार है, वही लोग देश की सुरक्षा को नजर अन्दाज कर रहे हैं और खालिस्तान जैसी पृथकता की मांग उठाई जा रही है। जिस गाँधी जी के

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, पंचचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 65–66 तथा अभिराजगीता पृ. 84

आदर्शों के कारण भारत देश को आजादी मिली और सम्पूर्ण विश्व में सम्पूजित हुआ, उसी गाँधी के वे नैतिक आदर्श एवं प्रतिमान धूल खा रहे हैं। वे केवल मंच की शोभा बनकर रह गये हैं। अतः आज देश की स्थिति बड़ी ही शोचनीय हो गयी है–

अग्न्यभावे कोऽन्वयो वद सम्भवेत्
धूम एव समन्ततः परिलक्ष्यते!!
सन्निकर्षो दर्शने षोढा मतः
एकधापि न किन्तु संसदि विद्यते!!
यो न मञ्चाक्रोशमवगन्तुं क्षमः
नेतृभिस्सरलं विधाय स शिक्ष्यते!!
हन्त! खालिस्तानयाचनया भृशम्
रक्षिभिस्स्वयमेव राष्ट्रमुपेक्ष्यते!!
धूलिधूसरिता निदेशा गान्धिनः
चित्रमेव निधाय फलके पूज्यते!![1]

'साथ–साथ चलें, साथ–साथ देखें', साथ–साथ बैठें, हम सबका एक राष्ट्र है, हम सब भारतवासी हैं, हमें जाति–धर्म–मत–पंथ के भेद से मुक्त होकर समभाव से रहना चाहिए, ऐसे उच्च आदर्शों व प्रेरणास्पद वचनों को अपने भाषणों में सम्मिश्रित कर लम्बे–लम्बे लच्छेदार भाषण देने वाले राजनेता ही जब उनके अपनों पर या स्वार्थ पर कोई बात आती है, तो वे इन सब वचनों को भुलाकर अपना उल्लू सीधा करते हुए नजर आते हैं। कविवर मिश्र जी ने इस भाव व स्थिति को अपने नवगीत 'यूयं यूयं वयं वयम्' में चित्रित किया है–

सङ्गच्छामः सम्पश्यामः सन्तिष्ठामः क्षणे–क्षणे
संसदि किन्तु हते निजपक्षे, यूयं यूयं वयं वयम्।।
राष्ट्रमेकमस्माकं बन्धो! वयं भारतीयाः सर्वे
परं स्वजनपदपक्षरक्षणे, यूयं यूयं वयं वयम्।।

---

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, सप्तचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 69

उपदिशन्ति नेतारो मञ्चे जातिधर्मयोः समभावम्

गृहमासाद्य परं मन्यन्ते यूयं यूयं वयं वयम्।।[1]

भारतीय राजनीति व राजनेताओं के अस्थिर चरित्र पर तीखा प्रहार करते हुए कविवर मिश्र जी कहते हैं कि राष्ट्रचिन्तारत मेरे मन में यह शंका उत्पन्न हो रही है कि क्या यह भारत है? क्या सुभाष, गान्धी, पटेल–नेहरू–भगतसिंह–आजाद के सपनों का भारत यही है? यहाँ कोई भी सुरक्षित नहीं है। संसद में बड़ा ही नाटक किया जाता है। राष्ट्रद्रोह और आक्रोश की अग्नि को बुझाने की अपेक्षा भड़काया जा रहा है। निश्चित ही भारत की स्थिति बेहद चिन्ताजनक है–

राष्ट्रचिन्तातुरम्मे मनश्शङ्कते!
भारतं हे प्रभो! कीदृशं वर्तते??
पञ्चनद्ये प्रदेशे खलैर्ज्वालितः
द्रोहरोषानलः किन्तु निर्वापितः
सुस्थिरा वा न वा राजनीतेर्गतिः
आश्रयेत्पार्श्वकं कं क्रमेलस्थितिः
सांसदा अद्भुतं नाट्यमातन्वते!
भारतं हे प्रभो! कीदृशं वर्तते??[2]

आज भारत में क्या–क्या नहीं हो रहा है? अमरनाथ यात्रियों पर हमला किया जा रहा है। किन्तु बड़े ही दुःख की बात है कि आज के शासन में इस पर सही–गलत का विचार किया जाता है। अतः कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी कहते हैं कि यह कैसा विधान है?

साम्प्रतिके भारते हन्त किं किं न सम्भवति चित्रम्
अमरनाथयात्रिणो म्रियन्ते हा कियदिदं विचित्रम्
किन्तेऽधुना जगत्यवशेक्ष्यति प्रमथाधिप! प्रमाणम्।
कीदृशमिदं विधानं शम्भो! कीदृशमिदं विधानम्।।[3]

---

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्), यूयं यूयं वयं वयम्, पृ. 96
2. श्रुतिम्भरा भारतं कीदृशं वर्तते? पृ. 71
3. मधुपर्णी, कीदृशमिदं विधानम्, पृ. 33

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में राजनेताओं का हस्तक्षेप हो गया है। जिनकी राजनीतिक पहुँच है वे सुखपूर्वक रह रहे हैं लेकिन जो इन सब पर विश्वास नहीं करते हुए अपनी मेहनत पर विश्वास करते हैं उनकी दशा चिन्ताजनक है। इसी बात को 'गजेन्द्र–मोक्ष वृतान्त' के द्वारा कविवर हमें समझा रहे हैं–

वेदविद्यागजं ग्राहतो मोचितुम्
ते विमानैः प्लवन्ते क्व यामो वयम्?
सांसदो वल्लभस्साम्प्रतं दृश्यताम्
वल्गते शौण्डिकीत्थं क्व यामो वयम्?[1]

हमारे राजनेताओं के क्रियाकलाप, उनकी गतिविधियाँ, दोहरे मापदण्ड और धनलोलुपता उन्हें न्याय के कठघरे में बारम्बार खड़ा करती है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी राजनेताओं पर कटु प्रहार करते हुए कहते हैं कि स्वार्थान्ध और मदान्ध ये राजनेता विवेकशील दृष्टिवान् लोगों के तथा विद्वानों के नियन्ता बन बैठे हैं। यह आज की दुष्ट राजनीति का ही परिणाम है कि इस लोकतन्त्र में ऊर्जावान् एवं सामर्थ्यवान् व्यक्तियों के रक्षक बनकर ये नपुंसक और मूर्ख राजनेता घूम रहे हैं–

अन्धा नेतारो दृष्टिवतां
मूर्खाश्च नियन्तारो विदुषाम्।
त्वत्प्रवर्तिते जनतन्त्रेऽस्मिन्
क्लीवास्त्रातारो महौजसाम्।।[2]

राजनीति को विषयुक्त दूर्वा बताते हुए कविवर मिश्र जी पुनः कहते हैं कि ऐसी दूर्वा का भक्षण करने वाला राजनेता रूपी कृष्ण मृग स्वयं ही काल का ग्रास बन जाता है–

काण्डात्काण्डं प्ररोहन्ति
राजनीति दूर्वा
पश्य
हवालाकाण्डमधिरूढ़ा

---

1. मधुपर्णी, क्व यामो वयम्, पृ. 31
2. मधुपर्णी, नमो नमः, पृ. 56

तत्संस्पर्शाच्च विषक्ता संजाता
सम्प्रति
दूर्वाभोजिनो
राजनेतृकृष्णसाराः
विषमूर्च्छिताः
प्राणव्यथां सहमानाः
स्वनियतिं प्रतीक्षन्ते।[1]

इस प्रकार अपने नवगीतों के माध्यम से कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने समकालीन राजनीति तथा राजनीतिक हलचलों व स्थितियों पर सीधा कटाक्ष किया है। कविवर का मुख्य ध्येय हम सबको जागरूक करना है। ताकि हम अपने आस–पास के लोगों, क्षेत्रों और समाज को वास्तविकता से परिचित करवाकर राजनीति के स्वरूप को सुधार सके एवं देश की छवि सुधारने में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

(घ) सांस्कृतिक–चेतना

संस्कृति शब्द से ठक् प्रत्यय लगाकर सांस्कृतिक शब्द निष्पन्न होता है। सांस्कृतिक–चेतना अर्थात् संस्कृति से सम्बन्धित चेतना। **सम् उपसर्गपूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय जुड़कर निष्पन्न संस्कृति शब्द का अर्थ होता है– 'सम्यक् क्रियाकलाप'।** तदनुसार मानव मात्र के श्रेष्ठ आदर्श तथा अनुकरणीय आचार–विचार संस्कृति की परिधि में समाविष्ट होते हैं। संस्कृति मानव जीवन की संवाहिका है। किसी भी राष्ट्र की जीवनधारा का प्राणस्रोत है।[2]

श्री राजगोपालाचारी के शब्दों में– **"किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का, जो रूप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है।"**[3]

रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि– **"संस्कृति एक ऐसा गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग–युगान्तर में होता है।"**[4]

---

1. मधुपर्णी, दूर्वा, पृ. 90
2. भारतीय संस्कृति के मूल–तत्त्व–डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, पृ. 2
3. वही, पृ. 2
4. वही, पृ. 2

कोई भी राष्ट्र अपने किसी वैशिष्ट्य के कारण ही विश्व–समाज में अपनी पहचान बनाता है और समादृत होता है। भारतदेश मानवीय चिन्तनधारा और जीवन विषयक सर्वतोमुखी उदात्त दृष्टिकोण के कारण एक विशेष जीवन–पद्धति का आविष्कर्ता और प्रवक्ता रहा है। राष्ट्रीय जीवन के लम्बे काल–प्रवाह में उसने जो सांस्कृतिक चेतना अर्जित की है वह मानवता की उच्च मनोभूमि और विकासशील सामाजिक सभ्यता की कहानी है। अनेक विदेशी जातियों के आक्रान्ताओं ने भौतिक दृष्टि से उसे जितना झकझोरा है, जीवन–पद्धति और दृष्टिकोण के स्तर पर अपने निर्धारित जीवन–मूल्यों का परीक्षण कर उसने स्वयं को उतना ही गतिशील बनाये रख है। भारतीय संस्कृति प्राणीमात्र के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की बात करती है। यह आत्मा, मन, बुद्धि एवं कर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। सनातन काल से चली आ रही भारतीय संस्कृति कर्मप्रधान संस्कृति है। इसमें पुरुषार्थ चतुष्टय, वर्णाश्रम व्यवस्था पञ्च महायज्ञ, त्रिविध ऋण, विवाह एवं संस्कार पद्धति, पुनर्जन्म एवं मोक्ष, आध्यात्मिकता, त्याग, तपस्या, शील, सदाचार, समन्वयशीलता, आत्मा की अमरता, कर्म की प्रधानता, पुरुषार्थ, परोपकार, पाप–पुण्य की परिकल्पना एवं विश्वबन्धुत्व की भावना आदि विलक्षण तत्त्व विद्यमान हैं।

नवगीत काव्यधारा में भारतीय संस्कृति की अजस्र उर्मियाँ प्रवाहमान हैं। वस्तुतः नवगीतकारों की मान्यता है कि संस्कृति स्थूल रूप में जीवनोपयोगी चाहे न हो, किन्तु वह जीवन या व्यक्तित्व को गुणात्मक समृद्धि व सौष्ठव प्रदान करती है। वह किसी जाति–समूह के सोच, विकास व दृष्टिकोण को नियोजित करने और उसे धार देने की सान का कार्य करती है। वह भाषा की ही तरह मनुष्य–अर्जित चेतना–अनुषंग है। सामाजिक यथार्थ की चुनौतियों को समझते हुए मनुष्य पर गहरी आस्था रखने वाले साहित्यधर्मी संस्कृति की महत्ता से न सिर्फ विज्ञ हैं अपितु वे उसे काव्य का मूलाधार भी मानते हैं। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. देवराज तो इसे काव्य के प्राण–तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठा देते हैं।[1]

मार्क्सवादी लेखक रैल्फ फॉक्स संस्कृति को लेखक के ज्ञान प्रयोग की आवश्यक शर्त बतलाते हुए कहते हैं– **"लेखक को इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने राष्ट्र की**

---

1. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध–डॉ. देवराज, पृ. 85

सांस्कृतिक विरासत का उपयोग कर सके।.....संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे हमें जीवन के अमल को गहरा बनाने के काम में लाना है।"[1]

भारतीय सन्दर्भ में तो संस्कृति का खास महत्त्व है, क्योंकि इस विशाल राष्ट्र की एकता के सूत्र राजनीतिक प्रभुत्व या दबाव से अधिक सांस्कृतिक स्तर पर नियोजित है। और इस संस्कृति का प्रवाह हमारी काव्य परम्परा में सतत वर्तमान है। प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं– "यहाँ राष्ट्रीयता......मुख्यतः संस्कृति और इतिहास की देन है। इस संस्कृति के निर्माण में इस देश के कवियों का सर्वोच्च स्थान है। इस देश की संस्कृति से रामायण और महाभारत को अलग कर दें तो भारतीय साहित्य की आन्तरिक एकता टूट जाएगी।"[2]

"नवगीत की लोक–संवेदना को जातीय–स्मृतियों, संस्कारों का रचना संसार कहा जाए तो अतिरंजना न होगी। क्योंकि भारतीय जन की बाहरी दुनिया में हुए तेजी से बदलाव के फलस्वरूप व्यक्ति की आन्तरिक टूटन और चिर–परिचित वस्तुलोक से बिछुड़ने का विवश संत्रास नवगीत में ही अभिव्यक्त हुआ है।"[3]

संस्कृत नवगीतकार एवं प्रखर कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र भारतीय संस्कृत सरिता के साथ ही भारतीय संस्कृति के भी संवाहक एवं संरक्षक है। डॉ. मिश्र जीवन की व्यापक अनुभूति से ओत–प्रोत है। अनुभूति के क्षेत्र में उनमें जितनी व्यापकता है अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उतनी ही स्पष्टता एवं सरसता भी। डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' का कथन है कि– "डॉ. मिश्र प्रणीत गीतों में कवि ने राष्ट्र के वैषम्य एवं दौर्भाग्य के जीवन्त चित्र खींचे हैं। युगबोध गीतों में उभरा है तथा लोकमङ्गलैकधर्मी कवि की आत्मा चीख पड़ी है।"[4] कविवर मिश्र जी संस्कृति के मात्र गायक नहीं हैं अपितु उसके सृजनकर्ता भी है। आप संस्कृति को जीते हैं तथा नए युग के अनुकूल संस्कृति–बोध की पीठिका में नए मानव–मूल्यों के उद्गाता व प्रवक्ता हैं। यही संस्कृति–परक बोध आपकी नवगीत रचनाओं में झलक उठा है।

---

1. रैल्फ फॉक्स : उपन्यास और लोक जीवन (अनु. नरोत्तम नागर) पृ. 143
2. डॉ. रामविलास शर्मा : परम्परा का मूल्यांकन, पृ. 15
3. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत संवेदना और शिल्प, पृ. 213
4. डॉ. जनार्दनप्रसाद पाण्डेय 'मणि', त्रिवेणीकवि अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, सं. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', पृ. 117

किसी के साथ अकारण वैर और शत्रुता रचना, दूसरों को पीड़ित कर आनन्दित होना, सौहार्द की बजाय परस्पर कलह पैदा करना, व्यर्थ में दूसरों के साथ ईर्ष्या व द्वेष रखना तथा दूसरों की मजबूरी व आवश्यकता को नजर अन्दाज करना किसी सभ्य भारतीय के लक्षण नहीं हो सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाववश ऐसा करता है, तो कविवर मिश्र जी उसको व उसके जीवन को हेय बताते हुए एवं धिक्कारते हुए कहते हैं–

ईर्ष्यामर्षे गतिः प्रवृत्ता
स्वप्नेऽपि न वराटिका दत्ता
शक्ति कोशसञ्चये युक्ता धिक् तादृशं जीवनम्!!

प्रीतं नित्यमकारणवैरम्
परसंतापेऽपरिमितधैर्यम्
स्थैर्यं क्षणमपि नो सौहार्दे धिक् तादृशं जीवनम्!![1]

प्रत्येक संस्कृति के संवाहक तथा विश्वपटल पर उसे स्थापित करने वाले प्रमुख तत्त्व विद्या, ज्ञान, शिक्षा तथा नानाविध कलाएँ होते हैं। ये ही वे तत्त्व हैं जिनके माध्यम से किसी राष्ट्र की संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचरण करती है और विश्वमंच पर अपनी पहचान बनाती है। अतः शिक्षा व कला की अपरिहार्यता प्रतिपादित करते हुए कविवर अभिराज जी कहते हैं कि जो व्यक्ति इस युग में भी इनसे विरहित है, उस विवेकहीन मृदङ्गसम व्यक्ति के जीवन को धिक्कार है–

विद्याध्ययनं विना व्यतीतम्
यस्याभिमतं नो सङ्गीतम्
यस्मिन् कला न कापि निलीना धिक् तादृशं जीवनम्
ब्रूते धिग् धिग् धिगिति मृदङ्गो धिक् तादृशं जीवनम्!![2]

---

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, चतुश्चत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 63
2. वही, वही, वही, पृ. 63

संस्कृति कोई स्थूल वस्तु नहीं है। यह उस राष्ट्र विशेष में रहने वाले व्यक्तियों के आचार–विचार, रहन–सहन, वेश–भूषा तथा क्रिया–कलापों से द्योतित होती है। भारतीय संस्कृति एवं उसमें निहित जीवन–मूल्य हम सब भारतीयों में कूट–कूट कर भरे हुए हैं। अतः न चाहते हुए भी वे स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। भारतीय संस्कृति में चारित्रिक उन्नति पर बहुत अधिक बल दिया गया है क्योंकि समस्त गुण, वैभव, समृद्धि, सौहार्दता आदि सकल गुणों का यह निधान है। अतः कविवरकृत स्तुतियों व वन्दनाओं में अपनी आराध्य से कविवर मिश्र जी सुचरित की कामना करते हुए दिखते हैं–

मोहकलुषबुद्धिभ्रममर्दिनि!
वर्धय सुचरितवृद्धिम्!
वितर वितर ननु मातः सिद्धिम्!![1]
जननि सुहासिनि बुद्धिविकासिनि!
हंसविलासिनि! धारय रे!
द्रुतमपसारय मोहतमो मम
मूढमनोऽपि विसारय रे![2]
सङ्गममये हि लोके सायुज्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!!
मन एव बन्धहेतुः
मन एव मोक्षहेतुः
अतः एव मानसेऽस्मिन् मासृण्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!![3]

भारतभूमि सम्पूर्ण विश्व में अपने विश्वजनीन आदर्शों व सिद्धान्तों के लिए समादरणीय है। इसी कारण से यह भारतराष्ट्र देवभूमि, भव्यभूमि, शीलभूमि, योगभूमि, सौम्यभूमि, मञ्जुभूमि, शान्तिभूमि, पुण्यभूमि, वन्द्यभूमि, नन्द्यभूमि तथा काव्यभूमि आदि नामों से जानी जाती है। ये समस्त उपाधियाँ इसमें निहित जीवनमूल्यों के कारण इसे प्राप्त हुई

1. मृद्वीका, नमस्या, द्वितीया गीतिः, पृ. 4
2. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, तृतीया गीतिः, पृ. 5
3. अभिराजगीता, मङ्गलगीतम्–'माङ्गल्यमेव भूयात्', पृ. 3

है। चरैवेति द्वारा नित्य कर्मपथ पर आगे बढ़ते रहने, अपने सतत् प्रयत्नों से सम्पूर्ण विश्व को श्रेष्ठत्व प्रदान करने, विश्व में शान्ति स्थापित करने वाले प्रयत्नों, सदाचार–सद्धर्म–सद्भावना के विकास करने के लिए भारतीय संस्कृति अन्य संस्कृतियों से बहुत ही उन्नत आसन पर विराजमान है। इसी का बोध कराने के लिए अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने 'मामकी जन्मभूमिः' यह रचना रची है तथा आत्मगौरव का अनुभव करवाते हुए वे लिखते हैं–

चिरं वर्धतां मामकी जन्मभूमिः
चिरं मोदतां मामकी जन्मभूमिः।।
समुद्घोषयन्ती चरैवेति मन्त्रम्
चिरं राजातं मामकी जन्मभूमिः।।
प्रशस्तोद्यमैः कृण्वती विश्वमार्यम्
चिरं भ्राजतां मामकी भव्यभूमिः।।
किरन्ती मुदा संस्कृतिं विश्ववाराम्
चिरं शोभतां मामकी शीलभूमिः।।
रताऽनानारतं विश्वशान्तिप्रयासे
सतां धीमतां मामकी मञ्जुभूमिः।।
सदाचार–सद्धर्म–सद्भावनानाम्
जनिर्जायतां मामकी नन्द्यभूमिः।।[1]

लगभग इसी भाव को व्यक्त करते हुए कविवर मिश्र जी अपने अन्य गीत 'भारतं वन्दे' में कहते हैं कि भारतीय संस्कृति की आत्मा धर्म और दर्शन है। विश्वबन्धुत्व की भावना उसका प्रधानतम आदर्श है–

यस्य हृदयं धर्मनिलयं दर्शनं दृष्टिः
विश्वबन्धुत्वं निसर्गश्चिन्मयी सृष्टिः
सङ्गतं वन्दे।
भारतं वन्दे।।[2]

---

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्), मामकी जन्मभूमिः, पृ.56
2. वही, वही, भारतं वन्दे, पृ. 58 तथा श्रुतिम्भरा राष्ट्रध्वनि, पृ. 49

आज पाश्चात्य संस्कृतियों की चकाचौंध में हमारी युवा पीढ़ी कुछ भटक सी गई है। जिनके कारण भारतीय संस्कृति विश्व के लोगों के लिए आश्चर्य का विषय हुआ करती थी वे उन्नत स्वरूप संयुक्त परिवार व्यवस्था, वृद्धजनों की सेवा–सुश्रुषा, उनसे प्राप्त मार्गदर्शन, धन–धान्य व सुख–समृद्धि युक्त गाँव, उपवन, नगर इत्यादि धूमिल होते जा रहे हैं। अतः हमें जागरूक करते हुए तथा अपने मूल्यों के संरक्षण हेतु सनद्ध रहने के लिए कविवर कहते हैं–

ग्रामटिका–बहिरुपवन–विलसितधान्यसमृद्धिनिधानम्
स्वजनसदसि निशि वृद्धपितामहलोककथामृतपानम्।
क्व नु भुवि सा सहजामृततटिनी याऽञ्चति राष्ट्ररजो मे
क्व नु भविताऽसि दृशोर्मे।।[1]

भारतीय संस्कृति प्रत्येक भारतवासी के आचरण में रची–बसी हुई है। इस कारण उसके मन–वचन व कर्म से वह संस्कृतिपरक ओज रह–रहकर प्रकट होने लगता है। अतः कविवर कहते हैं कि मुझे गर्व है कि मैं भारतीय हूँ। यहाँ हम कर्म पर विश्वास करते हैं, हमेशा मधुर वचन बोलने तथा दूसरे की भलाई करने का ही प्रयास करते हैं–

कर्म कुर्वन्नेव याचेऽहं शतायुष्यम्
सुनृतां वाचं दधे काङ्क्षे न पारुष्यम्
श्रेयसां मार्गं वृणे
श्रद्दधे च तृणे तृणे
भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम्।।[2]

जो सम्पूर्ण विश्व के लोगों को श्रेष्ठ आचरण की शिक्षा देती है, जो हमेशा जन–जन के कल्याण को अपना ध्येय मानती है, जो शस्त्र और शास्त्र में पारङ्गत होते हुए भी क्षमाशीलता जिसका भूषण है, जो हमेशा सर्वोदय की कामना तथा नीति की बात करती है, जिसकी जड़े देववाणी संस्कृत और उसमें उपनिबद्ध निगम–आगमों में निहित हैं, ऐसी

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्), क्व नु भविताऽसि दृशोर्मे, पृ. 68
2. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम्, भारतीयोऽहम्, पृ. 71

'युवति–पुराणी' भारतीय संस्कृति हमेशा विजयशील रहे, ऐसी कामना तथा ईश्वर से प्रार्थना करते हुए मिश्र जी लिखते हैं–

निखिलविश्वमार्यं कुर्वाणा
कल्पितजनजनसुखकल्याणा
भारतीयसंस्कृतिः पुराणी
पुनर्नवा तनुताम्!!
शस्त्रे–शास्त्रे भवतु कौशलम्
क्षमाभावभूषितं स्याद् बलम्
नहि दैन्य, नो वा पलायनं
नीतिरिति ध्रियताम्!!
सर्वोदयनिरता सुरवाणी
निगमागमसंश्रिता पुराणी
भारतीयशासनं विजयतां
सत्यमेव जयताम्!![1]

कविवर कहते हैं कि हम भारतदेश के वासी हैं तथा उस संस्कृति के उपासक हैं जहाँ हमेशा सम्पूर्ण विश्व के लोगों के बीच परस्पर समरसता और बन्धुता पर बल दिया जाता है। सम्पूर्ण विश्वकल्याण ही जिसका मकसद है–

विश्वसौख्यरक्षिणी यदीयसंस्कृतिः
विश्वबन्धुतारता यदीयसन्मतिः
विश्वमङ्गलं हि यद्व्रतम्।।[2]

यहाँ न केवल मनुष्य जाति अपितु प्राणीमात्र के कल्याण की भावना व्यक्त हुई है–

क्रौञ्चवधाच्छ्लोकत्वं याता कवेर्व्यथा।
विश्वदुरितहन्त्री सा रामायणी कथा।।[3]

---

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम्, भारतीयशासनं विजयताम्, पृ. 74
2. वही, वही, मामकं तदेव भारतम्, पृ. 76
3. मधुपर्णी, जयति विबुधवाणी, पृ. 74

परन्तु किसी कारण से आज हम अपनी धरोहर से हटते जा रहे हैं। जो उच्चतम प्रतिमान हमारे पूर्वजों ने स्थापित किये थे, कहीं न कहीं उनको हम विस्मृत कर रहे हैं। जो सम्पूर्ण विश्वसंस्कृति का नियामक रहा है, विश्वबन्धुता का समर्थक रहा है, न्याय–धर्म और सत्य की रक्षा करने वाला रहा है, आज उस राम और कृष्ण की देववन्दित भूमि भारत देश या भारतीय संस्कृति अपने पुत्रों को या यूँ कहें कि हम सबको रक्षा हेतु चीख–चीख कर गुहार लगा रही है। कवि की यही व्यथा उनके नवगीतों में इस प्रकार व्यक्त हुई है–

विश्वसंस्कृतेर्विधायकं विश्वबन्धुतासमर्थकम्
अद्य सीदति स्वके गृहे देववन्दितं नु भारतम्।।
प्रान्तभूमयो न रक्षिताः कम्पतेऽचलो हिमालयः
आह्वयत्यलं स्वपुत्रकान् रक्ष रक्ष रक्ष भारतम्।।
रामकृष्णयोरियं धरा न्यायधर्मसत्यरक्षिणी
जैनबौद्धशासनरते रतं धुर्यतामवाप भारतम्।।
क्वाऽद्य यद् व्यतीतगौरवं क्वाऽद्य तच्चरित्रवैभवम्
गम्यतेऽद्य केन वर्त्मना येन नाशमेति भारतम्।।[1]

इतना सब कुछ होने के उपरान्त भी, विश्व की अन्य संस्कृतियों के इस धरा से विलुप्त हो जाने पर भी, सतयुग–द्वापर–त्रेतायुग इन तीन युगों के उपरान्त इस कलियुग में भी भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण बनी हुई। यह सब इसके सनातन मूल्यों की देन है और हमारे लिए गौरव का विषय है कि हमने इस देश में जन्म लिया है। आज हम न केवल अक्षुण्ण हैं अपितु सम्पूर्ण विश्व में विश्वबन्धुत्व की रक्षा कर रहे हैं। अखिल विश्व हमारी ओर बड़ी ही उम्मीद के साथ निहार रहा है–

यद्यपि निखिलं विपरिवर्तितम्
त्रेताद्वापरकृतयुगचरितम्
कलौ तथापि केचिदवशिष्टाः प्राक्तनगुणसंघाताः।
यत्र वयं सञ्जाताः।।

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम), रक्ष रक्ष भारतम्, पृ. 80

श्रयति भारतं यावद् वाणी
देवचरितमहिता कल्याणी
तावद्देशोऽयं भुवि भविता विश्वबन्धुतात्राता।
यत्र वयं सञ्जाताः।।[1]

अतः कविवर मिश्र जी हम सबका आह्वान करते हुए कह रहे हैं कि आओ, हम सब मिलकर कुछ ऐसा करें व स्वयं के आचरण से कुछ ऐसा करें जिससे भारतीय संस्कृति एक बार पुनः अपने प्राक्तन गौरवमय पद को प्राप्त करे। सभी लोग जाति–पाँति, खान–पान, वेश–भूषा, उत्तर–दक्षिण, निम्न–उच्च आदि के भेद को भुलाकर सबको साथ लेकर देश व समाज की उन्नति में अपना योगदान देवें–

विन्दते स्वाधीनता पञ्चाशतं
भारतीया संस्कृतिः पुनरेधताम्।
राष्ट्रमेतत् प्राक्तनं निजगौरवं
सार्जवं भूयोऽपि सम्प्रति विन्दताम्।।[2]

भारतीय संस्कृति की छटा निराली है। इसकी विश्वबन्धुता, सर्वधर्मसमभाव की भावना, समरसता, सहिष्णुता, शिष्टता, सहजता, शरणागतवत्सलता, दीनोद्धारचरितता, आचरण की मर्यादा आदि गुण इसके वैशिष्ट्य और माहात्म्य के परिचायक हैं। निश्चित ही भारतीय संस्कृति विश्व की महानतम, प्राचीनतम तथा सार्वकालिकी संस्कृति है–

भारतसंस्कृतिकथा विजयते!
राष्ट्रगौरवं हृदि हृदि दधती, दिशि दिशि समुदयते।।
विश्वबन्धुतास्थापनलीना
सर्वधर्मसमभावधुरीणा
कौटुम्बिकपरिवेषविधाने शतयतनं कुरुते।।
निर्धनदलितविवशकल्याणी

---

1. श्रुतिम्भरा, प्रवासध्वनिः, महीसीयं भारतभूमिः, पृ. 69
2. मधुपर्णी, गीतयः द्वितीयखण्डः, भारतीया संस्कृतिः पुनरेधताम्, पृ. 79 तथा अभिराजगीता, भारतीयसंस्कृतिगीतम्, 'भारतीया संस्कृतिः पुनरेधताम्', पृ. 98

शरणागतवत्सला पुराणी

राष्ट्र सङ्गमनी व वसूनां सर्वस्मिन् दयते।।

विविधवेषभाषाप्रसवित्री

अर्बुदमितसुतसुताधरित्री

परमेश्वरलीलास्थलिकेयं विश्वं पालयते।।[1]

अभिराज राजेन्द्र मिश्र के नवगीतों में लोकसंस्कृति की मनमोहक छटायें देखने को मिलती है। मिश्र जी के अनुसार लोकगीत का सुधरा हुआ रूप ही नवगीत है अर्थात् नवगीत का आधार लोकगीत ही है इसलिये नवगीत में लोक संस्कार और रागात्मकता अधिक है। संस्कारों की इस अभिव्यक्ति को नवगीत जिन दिशाओं में उत्पन्न करता है उसका एक छोर है प्रकृति और दूसरा है संस्कृति। प्रकृति के कोण में जहाँ लोकचेतना आंचलिकता और दृश्यात्मकता परिबद्ध है वहीं संस्कृति की व्याप्ति सामाजिक संस्कारों, इतिहास–सन्दर्भों, पुराबिम्बों एवं सामाजिक यथार्थ सापेक्ष स्थितियों के चित्रण में हुई है। बौद्धिकता और भावात्कता का समन्वय ही भारत की समन्वयवादी संस्कृति है, नवगीत इस समन्वयात्मक चेतना का उद्‌बोधक और गायक है। डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के लोकगीतों पर आश्रित या यूँ कहें कि लोकगीतों का संस्कृतरूप हमें इसी लोक संस्कृति के नानारूपों से परिचय करवाता है। मिश्र जी एक लोकधर्मी कवि हैं। आपने अपनी जन्मभूमि के आस–पास पूर्वांचल क्षेत्र में प्रचलित विभिन्न लोकगीत विधाओं को उसी भाव और कथ्य के साथ शुद्ध संस्कृत रूप व नाम देकर प्रस्तुत किया है जिसके कारण सम्पूर्ण संस्कृत जगत् में वे मूर्धन्य कवि के रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। आपने पूर्वोत्तर प्रदेश के जनपदों में वर्षा के समय गाये जाने वाले लोकभाषायी गीत कजरी को 'सा कजरी', उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अञ्चल में चैत्रमास में पति के विरह में प्रिया के द्वारा गाये जाने वाले चैता को 'चैत्रकम्', शिशु को सुनाई जाने वाली लोरी को 'लयेरिका' या 'लोरीगीतम्', वरयात्रा के प्रसंग में डोली को उठाकर चलने वाले सेवकों के द्वारा गाये जाने वाले कहरवा को 'स्कन्धहारीयम्' तथा विभिन्न मङ्गलमय अवसरों पर गाये जाने वाले सोहर को 'सूतगृहम्' इस रूप से शुद्ध संस्कृत शब्द सिद्ध करते हुए संस्कृतगीत होने का गौरव प्रदान किया है। इन लोकगीत परक रचनाओं के माध्यम से कविवर मिश्र जी ने हमें अपनी लोक–संस्कृति

---

1. अभिराजगीता, भारतीयसंस्कृतिगीतम्, 'भारतसंस्कृतिकथा विजयते', पृ. 100

तथा जीवन–मूल्यों से परिचित करवाया है। स्कन्धहारीयम् की मनमोहक प्रस्तुति इस प्रकार है–

नभसि विभाति चमत्कृतचन्द्रो भाति चन्द्रमसि छाया
सरसि विभाति सराग कमलिनी कमलिन्यामलिजाया
भाति भवने वधूटी षोडशी सदङ्गना
भाति गगने मुदी सतारका निरञ्जना।।[1]

मंच पर सर्वाधिक रूप से सराही जाने वाली कज़री 'रौति कोकिला' में चौपाल की संस्कृति, ढोलक की थाप, तालियों की लयबद्धता सहसा ही कानों में गूँजने लगती हैं–

रौति कोकिला मदालसा रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे
क्षणं पल्लवे निलीय
मञ्जरीरसं निपीय
स्तौति सम्मुखं वसन्तकं रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे।।[2]

इस प्रकार कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीत रचनाओं में जहाँ एक ओर भारतीय संस्कृति के महानतम आदर्शों व सिद्धान्तों का स्मरण कराते हुए हमें मंत्रमुग्ध सा कर दिया है तथा आत्मगौरव का भान कराया है साथ ही भारतीय संस्कृति की अक्षुण्णता को प्रतिष्ठापित भी किया है, वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति पर मंडरा रहे गहरे काले संकटों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। साथ ही आह्वान किया है कि समय रहते यदि हम सचेत व जागरुक नहीं हुए तो हम अपनी संस्कृति, जीवन–मूल्य, संस्कार तथा सभ्यता आदि को, यहाँ तक 'स्व' को खो चुके होंगे। किन्तु मिश्र जी ने हमें विश्वास दिलवाया है कि हमारे त्रिकालदृष्टा कवि, लेखक व विचारक ऐसा कभी नहीं होने देंगे। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से देश की जनता को जागरुक करने में लगे हुए हैं।

---

1. वाग्वधूटी, स्कन्धहारीयम् (भाति!!), पृ. 28
2. वाग्वधूटी, कजरी (रौति कोकिला), पृ. 63

इसके अलावा लोकगीतों की अद्‌भुत छटा इनकी रचनाओं में हमें दृष्टिगोचर होती है तथा 'असली भारत गाँवों में रहता है' इस उक्ति को चरितार्थ किया है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के विविध रंगों के कुसुम–प्रसून मिश्र जी के रचना–संसार में विद्यमान हैं।

(ङ) आर्थिक–चेतना

भारतीय ऋषि–मुनियों एवं दार्शनिकों ने अपने चिन्तन–मनन के निस्यूत स्वरूप मनुष्य के जीवन चार लक्ष्य सोपानक्रम से निर्धारित किये हैं। ये चारों लक्ष्य ही पुरुषार्थ–चतुष्टय (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष) के रूप में जाने जाते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि भारतीय मनीषियों ने धर्म के पश्चात् अर्थ को स्थान दिया है अर्थात् मानव जीवन में धर्म के उपरान्त अर्थ ही वह महत्त्वपूर्ण कारक है, जो जीवन के संचालनार्थ अपरिहार्य है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु, सामाजिक मान व प्रतिष्ठा के लिए धन की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता है। इसी कारण महाकवि भर्तृहरि अपने नीतिशतक में कहते हैं–

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः सः श्रुतवान्गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ते।।"[1]

वर्तमान युग के इस भौतिक परिवेश में जीवन अर्थसाध्य हो गया है। अर्थ के अभाव में जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ कदम रखा जा सके। एक ओर जहाँ जीवन की अपरिहार्य आवश्यकताओं–रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति के लिए आज का व्यक्ति संघर्षरत है, वहीं दूसरी ओर भौतिक सुख–सुविधाओं की मांग ने व्यक्ति के ईमान और नैतिक आस्था को बदल दिया है। हर आदमी में आर्थिक रूप से ऊँचा उठने की लालसा बलवती हो गई है। परिणामस्वरूप एक छद्मपूर्ण वातावरण का निर्माण हुआ है। अपरिग्रह, अस्तेय और नैतिकता मूल्यहीन होते जा रहे हैं। किसी भी गलत या सही तरीके से अर्थोपार्जन और उसका संग्रह करना ही मूल उद्देश्य रह गया है। परिणामस्वरूप सामान्य

1. भर्तृहरि नीतिशतक, श्लोक सं. 41

आदमी की कमर टूटती चली गयी। शोषण का यह रूप एक ओर जहाँ अमीर और गरीब के वर्ग के रूप में विकसित हुआ वहीं उच्च और निम्न वर्ण के रूप में। इस शोषण की प्रक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ वर्ग–संघर्ष। जो नानारूपों में हमारे सामने आया।

हमारे नवगीतकारों, कवियों व लेखकों ने इस विषम स्थिति को बहुत ही करीब से समझा और अनुभूत किया तथा अपने नवगीतों में इस यथार्थ को बड़े ही धारदार एवं व्यंग्यात्मक शैली में अभिव्यक्ति दी।

इस प्रकार अर्थ अर्थात् धन से सम्बन्धित चेतना आर्थिक चेतना कहलाती है। अर्थ शब्द से ठक् प्रत्यय [1] से निष्पन्न होता है आर्थिक शब्द। जब कवि या रचनाकार समकालीन लोक–परिवेश के आर्थिक पक्ष पर लेखनी चलाता है तो उसके द्वारा चित्रित वह स्वरूप आर्थिक चेतना के परिक्षेत्र में आता है।

अर्वाचीन संस्कृत के युग–प्रवर्तक कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने अपनी नवगीत रचनाओं में जहाँ आधुनिक युग बोध–सम्पन्न मनुष्य की मानसिकता को व्यक्त किया है, वहीं आधुनिक परिवेश में लोक–जीवन की इस यथार्थ स्थिति का आकलन भी बखूबी किया है, जिसमें उसकी आर्थिक विषमताएँ, संघर्ष, कुरीतियाँ, समस्याएँ, औद्योगिकीकरण और राजनीतिक विद्रूपताएँ समाविष्ट हैं।

भारत देश में तथा हर भारतीय के हृदय में यह संस्कार रूप में स्थित है कि हम अपने से पहले दूसरे की चिन्ता करते हैं। आज पड़ौसी का चूल्हा जला या नहीं इसका अवश्य ध्यान रखा जाता है। भोजन की थाली पर बैठने से पहले यह विशेष ध्यान रखा जाता है कि पहली रोटी गाय की निकाली या नहीं, कुत्ते को रोटी डाली या नहीं तथा सभी बड़ों ने खाना खाया कि नहीं। अतः जिसकी संस्कृति, सभ्यता और संस्कारों का देवता भी यशोगान करते हैं, उसी भारत माँ की वन्दना करते हुए तथा सभी के कल्याण की कामना करते हुए कविवर कहते हैं–

गायन्ति यस्य देवाश्शुभगीतकानि नित्यम्
सर्वे भवन्तु सुखिनो यस्यैतदेव कृत्यम्

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृति–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 162

अभयप्रदोपदेशाः शमयन्ति पापलेशम्
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशं स्वदेशम्!![1]

आज धनलोलुपता, मदान्धता, भोग–लिप्सा तथा स्वार्थपरता इन्सान के ऊपर इस कदर हावी हो गयी है कि उसे इन्सान की पहचान ही नहीं रही। न इन्सान के शरीर की कोई कीमत रह गई है, न ही उसके प्राणों तथा न ही गुणों की। जिसे चाहिए उसे बस पैसा। इसी वेदना को कवि मिश्र जी अपनी इन पंक्तियों में व्यक्त करते हैं–

क्व नु रुचिरं विशोध्य गन्तव्यम्
जीवनं वर्तते न हन्तव्यम्!!
न ममास्थीनि याचते मघवा
क्व नु रुचिरं विचार्य दातव्यम्!!
भोजराजो न मां पुरस्कुरुते
क्व नु कवनं विधाय गातव्यम्!![2]

'सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमात्ते हि रसं रविः।[3] इस व्युत्पत्ति–अनुसार जिस प्रकार सूर्य निरन्तर गतिमान् रहते हुए एवं परिश्रम करते हुए रवि (रस तत्त्व को हजारों रूपों में परिणमित करने वाला) के रूप में मेघों को जलकणों से युक्त करके, वर्षा करके तथा पुनः सृष्टि प्रक्रिया द्वारा मन्दारवृक्ष के रूप में हमें परिलक्षित होता है। ठीक इसी भांति कठिन परिश्रम करते हुए व्यक्ति सारी सुख–सुविधाओं को जुटा सकता है। श्रम की महत्तामूलक इसी भाव को व्यक्त करती कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

अर्को भवति रविर्घनसारः
भवति स एव विटपिमन्दारः
नामबलेन किमपि नहि सिद्धयति पौरुष एव गते
श्रुणु रे ह्रदय! कोऽपि मन्त्रयते!![4]

---

1. वाग्वधूटी, वन्दे सदा स्वदेशम्–9
2. वही, जीवनं वर्तते न हन्तव्यम्–31
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ. 815
4. वाग्वधूटी, श्रृणु रे ह्रदय–33

कविवर स्वयं का उद्धरण देते हुये सुधी पाठकों को कहते हैं कि मेरे जीवन में जो कुछ भी है वह सब ईश्वरीकृपा और मेरी मेहनत का परिणाम है। मैं मेरे जीवन के संकटों और विपदाओं से घिरा होने पर भी निराश होकर नहीं बैठा रहा–

मया जीवनं जीवितं जीवितं रे!!
चरन्वै निकामं यदा मध्वविन्दम्
मयाऽऽकण्ठमास्वादितं स्वादितं रे!!
प्रदत्तं कयाचित् यदा सानुरागम्
मया तत्सुमं स्वीकृतं स्वीकृतं रे!![1]

वर्तमान समय में जिनके पास धन–दौलत है वे अपने धनमद में चूर होकर दूसरों को पीड़ित कर रहे हैं। रिश्तों को तार–तार करते हुए भाई–भाई का उत्पीड़न कर रहा है। जिसके पास शक्ति है, वह दूसरों की भलाई करने की अपेक्षा उन्हें परेशान करने में संलग्न हैं–

पीडयन्ति के न शक्तिभिर्निजं सहोदरम्
विद्ययैव के न योधयन्ति रे परस्परम्
दृश्यते धरातले मदाय कस्य नो धनम्
गजे–गजे मौक्तिकं न केन हन्त भाषितम्!![2]

जब व्यक्ति का समय अनुकूल होता है तब उसके मित्र, सम्बन्धी तथा सहयोगी घनिष्ठता दिखलाते हुए नजर आते हैं किन्तु जब बुरा समय आता है तो सभी साथ छोड़ देते हैं तथा अपरिचित की तरह व्यवहार करते हैं फिर भी उद्यमशील व्यक्ति को इससे निराश होकर बैठने की बजाय निरन्तर अपने कर्मपथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए। इसी बात को कविवर मिश्र जी चन्द्रकला के दृष्टान्त से हमें समझा रहे हैं–

तमीशकले! कथमसि दिने–दिने दीना?
कस्तव तापो रे का तव पीड़ा
कस्तव शापो रे मनसो व्रीडा

---

1. वाग्वधूटी, जीवनं जीवितं रे–50
2. वाग्वधूटी, केन हन्त भाषितम्–45

जाता येन त्वं सततं क्षीणा!!

चन्द्रस्तव रमणो रजनी दासी

कुमुदं तव मित्रं ककुभः काशी

म्लायसि तदपि त्वं परिभवपीना!![1]

अर्थात् हे चन्द्रकले! तुम दिन–प्रतिदिन कृशकाय क्यों होती जा रही हो? तुझे ऐसी कौनसी चिन्ता या पीड़ा है जो दिनरात परेशान कर रही है? हैरानी की बात तो यह है कि चन्द्रमा तेरा प्रिय है, रात तेरी दासी है, कुमुद पुष्प तेरे मित्र हैं, फिर भी ऐसी विषम परिस्थिति में तेरा साथ नहीं दे रहे हैं और आप निरन्तर म्लान होती जा रही हो।

आज निर्धनों, गरीबों तथा किसानों से उनकी पुश्तैनी जमीनों से बेदखल करते हुए तथा नियम विरुद्ध भू–अधिग्रहण करते हुए धनपति कुबेरों को उनकी जमीनें सौंपी जा रही है। जहाँ पर वे जैसे–तैसे अपने बच्चों का पेट पाल रहे थे आज उन जगहों पर ऊँचे–ऊँचे मॉल–बहुमंजिला इमारतें और आलीशान बंगले नजर आते हैं। सर्वत्र धनपति कुबेरों की बादशाहत है। सरकार उनकी मुट्ठी में है। अतः गरीब और लाचार तबके के लोग अपनी व्यथा आखिर कहें तो किससे कहें? इसी का संकेत करते हुए प्रो. मिश्र जी लिखते हैं–

निर्मापितं न जाने केनेदमूर्ध्वहर्म्यम्

मम खण्डितावशेषे जीवामि भूतलेऽहम्!!

कुप्यानि हन्त कस्मै भाग्याम्बरे मदीये

ज्योत्स्ना घनैः परीता जीवामि भूतलेऽहम्!![2]

उपर्युक्त मन्तव्य को ही अपनी अन्य रचना में स्पष्ट करते हुए कविवर पुनः कहते हैं कि जिन खेतों–खलिहानों में हरी–भरी फसलें लहलहाती थी तथा जिनके कारण भारत भूमि शस्यश्यामला कहलाती थी, उन स्थानों पर आज धन के लुटेरों का राज है अर्थात् घन रूपी सरकारों की उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं–

---

1. वाग्वधूटी, कथमसि दिने–दिने दीना–52
2. मृद्वीका, जिजीविषा, त्रयोविंशतितमीगीतिः, पृ. 35–36

वृथा भूरिशस्यैर्धराऽऽलोकितेयम्

खलस्थानके ग्रामलक्ष्मीवृतेयम्

घनैर्लम्पटैर्धर्षितं भो न किं किम्!![1]

मनुष्य कितना भी धनार्जन क्यों न कर ले तथा कितने भी भोग क्यों न भोग ले किन्तु उसे बिना श्रीहरि की शरण में जाये शान्ति व सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः व्यक्ति को न्यायोचित प्रक्रिया से धनार्जन करने की कोई मनाही नहीं है किन्तु उस अर्जित धन का कुछ अंश जरुरतमन्दों पर अवश्य खर्च करना चाहिए। यदि इस प्रकार का हम आचरण करने लगेंगे तो समाज में सर्वत्र शान्ति और समरसता का वातावरण बन जायेगा। इस संकेत में कवि अपनी गलज्जलिका के एक शेर में इस प्रकार करते हैं–

स्यात्कियदेव सुखं धनमहितम्

पूर्णता नहि जाता हरिणा विना!![2]

'संतोष ही सबसे बड़ा धन है' इसी भाव को व्यक्त करती कवि की ये पंक्तियाँ या द्रष्टव्य हैं–

बहुकांक्षितलक्ष्यपरं यतनम्

इयदेव करे मनुजस्य धनम्।[3]

समकालिकी आर्थिक–विषमता तथा भेदभाव की नीति पर तंज कसते हुए कविवर मिश्र जी कहते हैं कि सद्गुण सम्पन्न शुक तो पिंजरों में कैद हैं और कौओं को साग्रह चावल–भात खिलाये जा रहे हैं। 'अन्धा बाँटे रेबड़ी फिर–फिर अपनों को देय' यह लोकोक्ति यहाँ चरितार्थ हो रही है–

कीरस्तु पञ्जरे कृतो वाणीगुणोद्यमैः

काकाय साग्रहं घृतौदनं समर्पितम्!![4]

परन्तु इतना सब कुछ होने के बावजूद भारत देश में सनातन मूल्य अभी जीवित हैं। बहुत से ऐसे लोग हैं जो अपनों से ज्यादा दूसरों की परवाह करते हैं और वे अनेकत्र नाना

---

1. मृद्वीका, जिजीविषा, एकोनत्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 43
2. मृद्वीका, जिजीविषा, त्रयस्त्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 48
3. वही, वही, षट्त्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 48
4. वही, वही, सप्तत्रिंशत्तमी गीतिः, पृ.51

प्रकार से श्रीकृष्ण को घट में बिठाये सुदामाओं का उद्धार कर रहे हैं और सामाजिक न्याय–व्यवस्था में सहयोग कर रहे हैं–

क्रन्दते सुदाम्नि दुर्विपन्नदीनता
द्वारिकाधिपे च भाति यत्र बन्धुता
तण्डुलैरवाप्यतेऽमृतम्!![1]

युग–प्रभाव व भौतिक लिप्सा के कारण बढ़ती आर्थिक–विषमता को हमारे स्वार्थी राजनेता और निकृष्ट प्रशासक भी हवा देने में लगे हुए हैं। जरुरतमन्दों के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने के बारे में वे दिन–रात भाषणबाजी करते रहते हैं किन्तु धरातल पर कोई कार्य नहीं करते। उनका मकसद उन दीन–हीनों की जठराग्नि से अपनी वोट रूपी रोटी सेकना मात्र रह गया है। इसी भाव और व्यथा को प्रकट करती कवि की ये पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं–

क्वचिद् रामः क्वचिद् रोटी क्वचित्सर्वोदयाऽऽकाङ्क्षा
अभिप्रायन्नु युष्मद्भाषणानां भूरि जानेऽहम्।।[2]

स्वतन्त्रतता के ऊषःकाल में जो स्वप्न हमारी भोली–भाली जनता ने देखे थे, वे आज भी स्वप्न ही हैं। आर्थिक समानता के जो नारे तत्कालीन प्रशासकों ने लगाये थे, वे आज भी लगाये जा रहे हैं किन्तु वह लक्ष्य अभी कोसों दूर है। प्रशासनिक नीतियों, योजनाओं तथा असमान वितरण व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कवि अपनी रचना 'उपालम्भो रोहसेनस्य' में लिखते हैं–

रदनिके!
महाऽनृतवादिनी त्वमसि
इतः प्राक्
अष्टादशशतानि वर्षाणि व्यतीतानि
यदा त्वम्मां वञ्चितवती
कथमिति चेत्?
श्रृणु, संस्मारयामि त्वाम्

---

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, एकचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 58
2. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः गीतयः, रहस्यं साधु जानेऽहम्, पृ.39

सुवर्णशकटिकाक्रीडनकातरं
प्रतिवेशिशिशुसमृद्धिस्पर्धिनं
नवनीतधियं
विकलं शिशु मां
प्रलोभयन्ती सान्त्ववचनैः
उपच्छन्दयन्ती च मृच्छकटिकेन
त्वमेवोक्तवती–
'तात! पितू ऋद्धया
पुनस्सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।।[1]

धनिकलोग, कथित रूप से कुलीन लोग तथा प्रशासक वर्ग, जो दिन–रात गरीबों तथा मेहनतकश लोगों को चूस–चूस अपना घर भर रहे हैं तथा प्रतिपल भोगासक्ति की निद्रा में डूबे हुए हैं, उनको 'बाणभट्ट और हर्षवर्धन' के वार्तालाप के माध्यम से सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि अरे ओ! प्रशासक हर्ष! तू जिस गौतम बुद्ध (उपाधि–भूत कुलीन वर्ग) का अनुयायी है। उसी के इशारों पर नाचता है, उसी संभ्रान्त वर्ग को ध्यान में रखकर प्रशासकीय नीतियाँ और योजनाएँ बनायी जा रही हैं। जरा रुककर यह तो विचार कर कि जिन भोगों–सुखों का तुम तथा तुम्हारा चहेता कुलीन वर्ग उपभोग कर रहा है उनकी प्राप्ति कहाँ से होती है? यह बाणभट्ट (आज का जागरुक तथा लोकचेतनाधर्मी कवि) आपको पूछ रहा है कि जिस अन्न का, तरह–तरह के स्वादिष्ट व्यञ्जनों एवं पकवानों का तुम आनन्द लेते हो, वे कहाँ से आते हैं? किसके द्वारा निर्मित वस्त्रों को आप पहनते हो? यह सब आपका नहीं है। यह सब उस वर्ग व तबके का है जिसे तूने असभ्य, अकुलीन, गरीब या गँवार कहकर ठुकरा दिया है। विचार करो यदि वह वर्ग ही नहीं रहा तो क्या होगा?

हर्ष!
किन्तव गौतमस्य काप्यन्या सृष्टिः?
कश्चिदन्यः संसारः?
यत्र सर्वेऽपि श्रमणा एव वसन्ति

---

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः मुक्तच्छन्दांसि, 'उपालम्भो रोहसेनस्य', पृ. 98

सर्वेऽपि परिव्राजका एव सन्ति
न कृषाणाः शिल्पकाराः श्रमजीविनो वा?
त्वन्निर्मितेषु
बहुभूमिकविहारेषु
सर्वसुखानन्दनिचितेषु
एते मुण्डितशिरस्का मल्लाः
स्वैरं विहरन्ति निश्चिन्तम्
पृच्छति बाणभट्टोऽयं
प्रजाप्रतिनिधिः
कस्यान्नं त्वमेतान् भोजयसि?
कस्य वस्त्राणि त्वमेतान् परिधापयसि?
एतत्सर्वं न तवाऽपि हर्ष!
सर्वमेतल्लोकस्य!![1]

धन के मद में उन्मत्त धनिक वर्ग के आचरण और गरीब तबके की उपेक्षा का चित्रण करते हुए अपनी रचना 'उन्मत्तां प्रति' में कविवर मिश्र जी अपनी व्यथा को, अपने दर्द को इस प्रकार बयां करते हैं–

विविधव्यञ्जनसमुच्चयकल्पं
यात्रिभुक्ताऽवशिष्टजातां
भूर्जितां, शष्कुलिकां, पक्ववटिकां, रोटिकाञ्च
साक्षिनिकोचं
साभिनिवेशञ्चाशित्वा
प्रणालतोऽसौ
जलमाकण्ठं पीतवती
चिन्तितम्मया
यत्समेषामेव जीवने

1. मधुपर्णी, तृतीयाखण्डः, 'पत्रं श्रीबाणभट्टस्य', पृ.117

सन्ति सहस्रमिता घटनाः
व्यतीता वर्तमाना भविष्यन्त्यश्च
परन्त्वस्या वराक्या जीवनं
कियन्निर्घटनम्?
कियदेकरूपम्?[1]

इस प्रकार प्रशासक, प्रशासन एवं धनिक वर्ग द्वारा चिरकाल से उपेक्षा का शिकार होते आये सामान्यजन की समृद्धि हेतु तथा धन को मदोन्मत लोगों के अभिमान को चूर–चूर करने के लिए कविवर मिश्र जी माँ महामाया से विनती कर रहे हैं–

त्वमसि जननि! धनजनसुखदात्री
निखिलसमृद्धिनिधानम्!!
विनतजनानां हरसि विपत्तिम्
दृप्तानामभिमानम्!![2]

धनिक वर्ग की शोषण–परक नीतियों तथा निर्धनों के छलित जीवन को देखकर तथा निरोपाय होकर हताशावश कहते हैं कि अब यहाँ, ऐसे परिवेश में मेरी जीने की इच्छा ही समाप्त प्रायः हो गयी है–

तिमिलिङ्गो निगिरति लघुमीनम्
धनदो जठरे क्षपयति दीनम्
मरुसिकतायां छलयति हरिणं कुटिला सलिलतृषा
म्रियते जिजीविषा!![3]

अन्त में देश की इस आर्थिक–दुर्दशा से निराश, हताश तथा अधीर होकर कविवर मिश्र जी सब कुछ नियति पर छोड़ देते हैं। वे कहते हैं कि कुछ लोग केवल भोग के निमित्त जीते हैं, कुछ लोग समस्त अनर्थों से व्याप्त धन–वैभव की सरिता में अवगाहन करना जीवन का लक्ष्य समझते हैं। 'एक दिन इस भोगलिप्सा से मनुष्य ऊबकर पुनः करुणामय जीवन व्यतीत

1. मधुपर्णी, तृतीयाखण्डः, 'उन्मत्तां प्रति', पृ. 141–142
2. अभिराजगीता, वागीश्वरीगीतम्, 'महामाये! को नु भणतु महिमानम्', पृ. 16
3. वही, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्), 'म्रियते जिजीविषा', पृ. 84

करेगा' ऐसे स्वप्न को अपने हृदय बिठाये कविवर अभिराज सब कुछ नियति के हाथों में सौंप देते हैं–

> **केचिज्जीवन्ति भुक्त्यै विकसितरतये भोगमाध्वीजदृप्त्यैः**
> **अर्थानर्थैः परीता धनविभवसरित्स्नानतृप्त्यै च केचित्।**
> **स्वप्नानां संसृतिं तां निरवधिकरुणां मोहभङ्गोपजातां**
> **प्राणेष्वाधाय नित्यं परमिह नियतिं संविधत्तेऽभिराजः।।**[1]

इस प्रकार कहीं स्पष्ट रूप से, कहीं सांकेतिक रूप से तो कहीं अन्य सन्दर्भ में उल्लिखित कविवर मिश्र जी की नवगीत रचनाओं की उपर्युक्त पंक्तियों से वे सर्वहारा व सामान्य जन के साथ खड़े नजर आते हैं तथा उन्होंने उसकी आवाज को, दर्द को, चीत्कार को जन–जन तक पहुँचाने का भरपूर प्रयास किया है।

(च) दलित–चेतना

दलित पद 'दल्' धातु से 'क्त' प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है।[2] धात्वर्थ के अनुसार दलित शब्द का तात्पर्य है–टूटा हुआ, दबा हुआ, कुचला हुआ, पिसा हुआ, उपेक्षित, अधिकारों से वंचित एवं शोषित व्यक्ति। सामाजिक अर्थ में 'समाज का वह वर्ग जो दबा हुआ है, कुचला हुआ है, पिसा हुआ है और शोषित है, दलित कहलाता है।

दलित शब्द का अंग्रेजी रूपान्तरण है– Depressed Class' Depress' का अर्थ Push or pull down; lower, make dispirited or dejected तथा depressed का अर्थ dispirited or miserable, suffering from depression (based on latin 'pressare' to keep pressing)[3]

इस प्रकार दलित समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसे षड्यन्त्रपूर्वक वर्चस्व सम्पन्न वर्ग ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इन आधारों पर मोटे रूप में अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़े वर्गों, लघु

1. श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः, पृ. 100
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 45
3. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ. 219

तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन, मजदूरों एवं परम्परागत श्रमजीवी शोषित लोगों को दलित वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के प्रखर विद्वान् आचार्य हर्षदेव माधव जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्र 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' के अन्तर्गत दलितचेतना का निरूपण बड़े ही विस्तार के साथ एवं उपपत्तिपूर्वक करते हैं। वे कहते हैं कि "शोषित, दलित लोगों की पीड़ा, व्यग्रता, रोष आदि का निरूपण दलित चेतना है।

शोषितदलितजनगतानां पीडाव्यग्रतारोषादीनां
निरूपणं दलितचेतना।"[1]

उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में माधव जी आगे लिखते हैं– '**दलितः अर्थात् मृदितः, पिष्टः, शोषितः। दल् (दलति) धातुना क्तप्रत्ययात् जातोऽयं शब्दः खण्डित–पेषित–पीड़ित–विदीर्णवस्तूनां सङ्केतं ददाति। संस्कृते अन्त्यजः, अस्पृश्यः यः कोऽपि जनो दलितोऽस्ति। दलितशब्दात् शोषण–पीडा–व्यथा–दुःखादिभिः मृदितानां प्राप्तकष्टानां जनानामर्थः सूच्यते। समाजव्यवस्थया, वर्णव्यवस्थया, समृद्धवर्गाणां शोषणेन, बलेन येन कष्टं प्राप्तः स दलितोऽस्ति। दलितेभ्यः स्वात्मगौरवबोधाय तदधिकारज्ञानाय या क्रान्तिः, सा दलितचेतना।**

दलितैः शारीरिककष्टानि सोढानि। तैः प्राप्ता बहिष्कारयातना। अञ्किचनजनानां धार्मिकार्थिकनैतिकशारीरिकशोषणं जातम्। ते मानवाधिकारेभ्योऽपि वञ्चिताः। धनिकैरकिञ्चन–जनानामवज्ञा कृता। तेऽपि दलिता एव सन्ति। साम्प्रतसंस्कृते दलितचेतनाया गूढा अभिव्यक्तयः सन्ति।[2]

अर्थात् दलित अर्थात् मृदित, पिष्ट (पिसा हुआ), शोषित (सोख लिया हुआ)। दल् धातु से क्त प्रत्यय से उत्पन्न यह शब्द खण्डित, पेषित, पीडित, विदीर्ण वस्तुओं का संकेत देता है। संस्कृत में अन्त्यज, अस्पृश्य जो कोई व्यक्ति है, वह दलित है। दलित शब्द से शोषण, पीडा, व्यथा, दुःखादि से मृदित, कष्टापन्न लोगों का अर्थ सूचित होता है। समाज व्यवस्था–वर्णव्यवस्था से, समृद्ध वर्गों के शोषण व बल से, जिन्होंने कष्ट पाया है, वे दलित हैं। दलितों के लिए आत्मगौरव बोध व उनके अधिकार ज्ञान के लिए जो क्रान्ति है, वह दलित चेतना है।

1. डॉ. हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/2.20 पृ. 181
2. डॉ. हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/2.20 पृ. 181–182

दलितों ने शारीरिक कष्ट सहे। उन्होंने बहिष्कार की यातना पाई। गरीबों का धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, शारीरिक शोषण हुआ। मानवाधिकारों से भी उन्हें वञ्चित किया गया। धनिकों ने गरीबों की अवज्ञा (तिरस्कार) की। वे भी दलित हैं। आधुनिक संस्कृत में दलित चेतना की गूढ़ अभिव्यक्तियाँ है। इसका उदाहरण देते हुए वे समकालीन युवा लेखक प्रवीण पाण्ड्या जी को उद्धृत करते हैं–

कामं रामोऽन्वभवद्विरामं शबरि तावकीनेषु बदरीफलेषु,

दूरं सर साध्वि धृतरामायणास्त्वेते रावणान्वयाः।।[1]

अर्थात् राम ने भले ही शबरी को सम्मान दिया हो, किन्तु माथे पर रामायण का बोझा उठाने वाले, राम को अगरबत्ती करने वाले वास्तव में तो क्रूर राक्षस रावण के वंश में जन्मे हैं, साध्वी शबरी के अपमान रूप क्रूर कर्म करने से। ऐसी व्यङ्ग्यगर्भा मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियाँ यहाँ हैं।

डॉ. गोवर्धन बंजारा आदि 'दलित एवं स्त्री विमर्श' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि– "ईश्वर विषयक मान्यताओं का विरोध, पाप–पुण्य, लोक–परलोक, पुनर्जन्म आदि मतों का निरास, भाग्यवाद को निरस्त कर कर्मशीलता की स्वीकृति, वर्तमान का चिन्तन, पारम्परिक ग्रन्थों का विरोध, ऊँच–नीच, जाति–भेद का अस्वीकार, अन्याय, अत्याचार, भेदभाव, असमानता आदि तत्त्वों को विनिष्ट कर न्याय, समानता, मानवतावाद की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न–ये दलितचेतना के लक्षण है।"[2]

इसी सन्दर्भ में श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित लिखते हैं कि– "आर्थिक, बौद्धिक और सामाजिक रूप से पिछड़े हुए कमजोर व्यक्तियों का उत्पीड़न सामाजिक कारणों से उतना नहीं हुआ है जितना कि राजनीतिक कारणों से। वर्तमान समय में दलित साहित्य और दलित चेतना की अवधारणा भी राजनैतिक पृष्ठभूमि में पल्लवित हुयी है।"[3]

---

1. डॉ. हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/2.20, पृ.182–183
2. वही, पृ.184
3. कंचनलता (अक्टूबर–दिसम्बर 2003)–भारतीय साहित्य में दलित चेतना–मथुराप्रसाद सिंह, जटायु, पृ. 9

दलित लेखक केवल भारती कहते हैं– "दलित वह है जिसे कठोर और गन्दे काम करने के लिए बाध्य किया गया, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और जिस पर सवर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की है, वही दलित है।"[1]

इस प्रकार उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दलित वह वर्ग विशेष है जिसका युग–युगों से विभिन्न कारणों से शोषण किया गया, जिसके कारण वे समाज की मुख्य धारा से विच्छिन्न होकर हाँसिये पर पहुँच गये। इसी वर्ग की आवाज जो सदियों से दबायी जाती रही, उसको अभिव्यक्ति देना हमारे समकालीन कवियों, लेखकों, चिन्तकों तथा नवगीतकारों ने अपना युगधर्म समझा है। ऐसे ही युगधर्मी व लोकधर्मी कवि हैं– 'कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र'। इनकी नवगीत रचनाओं में समाज की इस विसंगति पर प्रहार करते हुए उसे सही दिशा देने का प्रशंसनीय कार्य किया है। समाज में व्याप्त धनिकों और पूँजीपतियों की तानाशाही पूर्ण सामन्ती व्यवस्था पर प्रहार करते हुए एवं आर्थिक समता पर बल देते हुए कविवर अभिराज जी कहते हैं कि मजदूर और मालिक के बीच का भेद मिटाकर सबको समान कार्य और समान रूप से जीवन जीने का अधिकार हो। उनकी ये पंक्तियाँ इसी की वकालत करती हैं–

परितोऽपि पामराणां तृणशालिका इमाः
होलानलं समिन्ध्य बन्धो! शनैः शनैः।।[2]

अर्थात् हे धनिको! तुम्हारी आलीशान हवेलियों व बस्ती के चारों ओर समाज का एक सर्वहारा वर्ग भी है, जो अपनी झुग्गी–झोंपड़ियों में गुजर–बसर कर रहा है, अतः अपना होली का त्योहार सावधानीपूर्वक मनाना। कहीं आपकी होलिका–दहन की भेंट नहीं चढ़ जाये इनकी बस्ती। तात्पर्य यह द्योतित होता है कि हमारी नीतियाँ व योजनाएँ तथा उनकी क्रियान्विति इस प्रकार की हो जिससे फायदा निचले तबके तक हो।

'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' भारतीय संस्कृति के प्रमुख सिद्धान्त का स्मरण दिलाते हुए कविवर मिश्र जी कहते हैं कि हम उस सनातन परम्परा के अनुयायी हैं जहाँ प्राणीमात्र के कल्याण की कामना व्यक्त की है। अतः समाज में कोई व्यक्ति ऊँचा–नीचा नहीं होता है और समाज के निर्धन व दलित तबके को पीड़ित करने की बजाय उसे ऊपर उठाने

1. युद्धरत आम आदमी (अंक 41–42) वर्ष 1998 पृ. 41, पंचशील शोध प्रभा में उद्धृत, पृ. 125
2. अभिराजगीता, मङ्गलगीतम्–शनैः शनैः, पृ. 4

तथा बराबर लाने के प्रयास करने चाहिए क्योंकि हम तो इतने उदारचेता हैं कि सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना घर मानकर चलते हैं–

मा परितापय मा परिपीडय
कमपि देहिनम्मा परिकीलय
सहजमेव गमनीयम्
निखिलं जगन्मदीयम्!![1]

इसी क्रम में आगे लिखते हुए कवि कहता है कि हमारा लोकतन्त्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है और हम हमेशा से ही सत्य के ही समर्थक रहें। हम सब परस्पर सुहृद्भाव से रहते हैं किन्तु शत्रु पर एक जुट होकर भीषण प्रहार करने वाले होते हैं और यह सब होगा जब हम सब बिना किसी भेदभाव, छुआ–छूत, ऊँच–नीचे के तथा परस्पर ईर्ष्या व द्वेष रहित होकर मिलकर रहेंगे क्योंकि कहा भी गया है– **'संघे शक्तिः कलौ युगे'।** यदि हम मिलकर रहेंगे तो वह दिन दूर नहीं जब हमारी भारतभूमि पुनः निजगौरव को प्राप्त करेगी–

वयं हि लोकतान्त्रिका ऋतैकपक्षपातिनः
सुहृत्तमाः परन्तु वैरिणां कृतेऽतितापिनः
न भेददर्शिनो वयं न चापि वृत्तमत्सराः
त्रिलोकतो महीयसी जयत्वियं वसुन्धरा!![2]

'भारत देश की अर्थव्यवस्था कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था है' तथा 'मेरे सपनों का भारत गाँवों में बसता है', ये कथन स्पष्ट करते हैं कि भारत की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा ग्रामीण है। तो यह स्पष्ट है कि समस्त सरकारी योजनाएँ व नीतियाँ किसानों, मजदूरों व ग्रामीण जनता को ध्यान में रखकर बनायी जानी चाहिए, तब ही देश का समुचित और सन्तुलित विकास हो सकेगा। यदि भारत के किसान या शोषित वर्ग का चेहरा खिलेगा तब ही हम सुखी रह सकेंगे। परन्तु बड़े खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि यहाँ ऐसा नहीं होता। वर्तमान समय की सरकारें, राजनेता तथा प्रशासक वर्ग दलित–हितैषी या लोक–हितैषी न होकर धनपति कुबेरों के घरों को भरने में लगे हैं। एक तरफ अनावृष्टि, अतिवृष्टि, ओलावृष्टि आदि प्रकृति का कहर तो दूसरी

---
1. वाग्वधूटी–निखिलं जगन्मदीयम्
2. वाग्वधूटी, जयत्वियं वसुन्धरा

तरफ नीति–निर्माता बनकर बैठे हुये कथित रूप से कुलीन वर्ग का कहर। आखिर श्रमजीवी वर्ग की रीढ ही टूट गई है। इसी आशय की ओर संकेत करती हुई कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

वृता भूरिशस्यैर्धराऽऽलोकितेयम्
खलस्थानके ग्रामलक्ष्मीवृतेयम्
घनैर्लम्पटैर्धर्षितं भो न किं किम्!![1]

इक्कीसवीं सदी में पहुँचने पर भी हमारा भारतीय समाज उन्हीं कुरुतियों और कुप्रथाओं में जकड़ा हुआ है जो सामन्ती शासन के समय था। एक तरफ हम चन्द्रमा पर पहुँचकर ऊँचाईयों के शिखरों को चूम रहे हैं, वहीं दूसरी ओर अतिनिकृष्ट मानसिकता और सोच के शिकार हैं। आज भारतीय समाज भयावह स्थिति से गुजर रहा है। शक्तिशाली, प्रभुत्व सम्पन्न एवं धनिक वर्ग, दीन–हीनों, गरीबों, दलितों का खून चूस–चूस कर अपनी जठराग्नि को शान्त कर रहा है। एक तरफ प्रगति के बड़े–बड़े नारे व हरित क्रान्ति जैसी प्रगति सूचक योजनाएँ कागजों पर संचालित हो रही है, वहीं दूसरी तरफ भूख से किसान आत्महत्या कर रहे हैं। हास्यास्पद तो यह है कि उन्हीं कृषकों व श्रमजीवी वर्ग की खून–पसीने की कमाई से उत्पन्न अनाज औने–पौने दामों में खरीदकर भाण्डागारों में सड़ रहा है। इसी स्थिति का जीवन्त चित्रण करते हुए कवि मिश्र जी कहते हैं कि समाज के इस विकृत स्वरूप को देखकर मेरी तो जीने की इच्छा ही मर कट गई है क्योंकि यह शोषण की पराकाष्ठा है–

तिमिङ्गलो निगरति लघुमीनम्
धनदो जठरे क्षपयति दीनम्
मरुसिकतां छलयति हरिणं कुटिला सलिलतृषा
म्रियते जिजीविषा!!
समुद्घोषिता हरिता क्रान्तिः
समजायत दयनीया भ्रान्तिः
भाण्डागारसमाहितमन्नं भवने मरणदशा
म्रियते जिजीविषा!![2]

---

1. मृद्वीका, जिजीविषा–एकोनत्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 43
2. मृद्वीका, जिजीविषा–पंचचत्वारिंश्स्तमी गीतिः, पृ. 65

'दीन–हीनों, गरीबों व दुःखियों की सेवा ही ईश्वर की सेवा है' राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी के ये आदर्श धूल–फांक रहे हैं। जिस गांधी जी ने ग्रामीण स्तर पर व जमीनी स्तर पर सुदृढ़ता लाने के सपने देखे थे, उसी गान्धी जी के नाम पर आज केवल राजनीतिक रोटियाँ सेकी जा रही हैं। उनके नैतिक आदर्शों व आर्थिक–सामाजिक सुधारों को अपनाने वाले नहीं रहे। कवि के ये उद्गार निम्न पंक्तियों में प्रकट होते हैं–

धूलिधूसरिता निदेशा गान्धिनः
चित्रमेव निधाय फलके पूज्यते!!
प्रश्नमभिराजो नु पृच्छति साग्रहम्
उत्तरं न कथं विचार्य समुच्यते!![1]

कविवर पुनः प्रश्न करते हैं कि यह कैसी स्वतन्त्रता है? समाज में घूसखोरों, भ्रष्टाचारियों, रसूख वालों का सर्वत्र आतंक है तथा भेदभाव, ऊँच–नीच, सवर्ण–असवर्ण का ताण्डव छाया हुआ है क्या यही स्वतन्त्रता है–

व्याघ्रधर्षिते वने किन्तु नैव बन्धुता।
मामके हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता??
भेदभावदृष्टिभिर्दीयते समग्रता
मामके हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता??[2]

कविवर मिश्र जी कहते हैं कि भारतदेश की वर्तमान स्थिति को देखकर मेरा अन्तर्मन बहुत ही दुःखी है। मैं जिधर दृष्टि डालूँ उधर ही मुझे, ईर्ष्या, द्वेष, दीनता, गरीबी, शोक, दुःख, संताप, पीड़ा, बेरोजगारी व भुखमरी से भारतदेश रक्तरञ्जित सा दिखलाई पड़ता है। अतः मैं उस परमशक्ति से तथा आम–जन से यह आह्वान करता हूँ कि भारतीय देश से शीघ्र ही इस जाति–पाँति, वर्णभेद, क्षेत्रीयता तथा साम्प्रदायिकता जैसी संकीर्णताओं को उखाड़ फेंको और आपसी सौहार्द विकसित करो–

द्वेषदैन्यधर्षितं शोकतापतर्जितम्
हन्त रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्!!

---

1. मृद्वीका, जिजीविषा, सप्तचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 69
2. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः–कीदृशी स्वतन्त्रता? पृ. 56

बाधते शिरोऽनिशं काऽपि शीर्षवेदना
प्रातिवेशिकैर्न कैः कल्प्यते कदर्थना!!
एत सौम्यबान्धवा बन्धुता विधीयताम्
क्षेत्रवर्णभावना सत्वरं निवार्यताम्!![1]

अपनी रचना 'हरते मनोऽभिराजः!!' में शोषित, दलित, पीड़ित तथा हांसिये पर स्थित वर्गों को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए, उनको उनका वास्तविक हक दिलाने के लिए, उनको सम्मानपूर्वक सिर उठाकर जीवन जीने के लिए तथा अभिजात्य वर्ग के कुचक्रों से बचाने के लिए हमारे दूरद्रष्टा–संविधान निर्माताओं ने जिस आरक्षण की व्यवस्था की और काफी दिनों तक इस वर्ग को इसका लाभ भी मिला है परन्तु अभी तक उसका उद्देश्य पूरा नहीं हुआ है, के सम्बन्ध में कवि मिश्र जी कहीं न कहीं पूर्वाग्रह से ग्रस्त नजर आते हैं। क्योंकि अन्यत्र परिलक्षित उनकी विचारपरम्परा से यह सोच मेल नहीं खाती है। कवि ने यहाँ उस दलित वर्ग के लिए मूर्खता व जड़ता का सूचक गधा (खर) शब्द का प्रयोग किया है जबकि यहाँ कवि को ध्यान में रखना चाहिए था कि जिन कुचक्रों के परिणाम स्वरूप दलित वर्ग को यह जड़ता प्राप्त हुई है, उसी जड़ता के निवारणार्थ तथा उसमें योग्यता विकसित करने के निमित्त ही यह व्यवस्था लागू की गई थी। हाँ, यहाँ पर यदि व्यवस्था में कोई खामी नजर आये तो उस पर प्रकाश डाला जा सकता था। जन्म से तो सवर्ण और असवर्ण का शिशु मनुष्य ही होता है, कोई गधा और घोड़ा नहीं–

तिष्ठन्तु तावदश्वास्तेषां प्रवल्गनैः किम्?
लोकोऽधुनेह पश्येल्लघुधावनं खराणाम्!![2]

अन्यत्र अपनी कविता–माधुरी तथा सृजन को उद्देश्य बताते हुए अपनी रचना 'कविता' में मिश्र जी लिखते हैं कि जो शोक–मोह तथा अवमानना की पीड़ा से संतप्त है उनको सान्त्वना देने के लिए तथा पृथ्वीलोक जड़ता संकुचित मानसिकता के निवारणार्थ में कविता लिखता हूँ–

---

1. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनि–रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्, पृ. 58–60 तथा अभिराज गीता, राष्ट्रध्वनि (विपन्नराष्ट्रम्), पृ. 90
2. श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः–हरते मनोऽभिराजः, पृ.116

"शोकमोहाऽवमान–कारासु

सान्त्वनायै समुद्गता कविता।।

मर्त्यलोकस्य जाड्यभावानाम्

वारणायै समुद्गता कविता।।"[1]

समाज में आज शोषित एवं दलित वर्ग जितना उठने की कोशिश करता है, उसे नानाविध तरीकों से, हथकण्डों से उतना ही दबा दिया जाता है। इसी भाव को द्योतित करती हुई रचना 'दूर्वाभाग्यम्' की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उल्लेखनीय हैं–

यावदेवासौ विकसितकेसरा

शुकोदरनीला

कोमलकोमला

काञ्चिद् वृद्धिं तनुते

तावदेवैते

सझम्पमाक्रम्य

तां निर्दयं भक्षयन्ति

सुषमां तस्याः खलीकुर्वन्ति

तां समूलमुन्मूलयन्ति।।[2]

'उपालम्भो रोहसेनस्य', 'वसन्तसेना', 'पत्रं श्रीबाणभट्टस्य' आदि मुक्त–छन्द में रचे गये कविवर मिश्र जी के गीत शत–शत युगों से हृदय–गुहा में अवरुद्ध उच्छ्वासों को मानों उन्मुक्त कर रहे हैं। निर्धन व गरीब तबके का प्रतिनिधिभूत रोहसेन भारतभूमि रूपी रदनिका को उपालम्भ देता हुआ कह रहा है कि अठारह सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी मेरी दशा में, मेरे वर्ग की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है। तूने मुझे जो स्वप्न दिखाया कि एक दिन मैं स्वर्णमयशकटिका रूपी सम्मानपूर्ण जीवन–स्थिति पाऊँगा, इसी उम्मीद और आशा में पुनः पुनः मरकर भी जीवित हो रहा हूँ। पर अब मुझे लग रहा है कि मैं ठगा गया हूँ तथा मुझसे झूँठ पर झूँठ बोला गया है। इसी आक्रोश को अभिव्यक्त करती कवि की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत है–

---

1. मधुपर्णी, प्रथमखण्डः गलज्जलिकाः, 'कविता', पृ. 35
2. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः मुक्तच्छन्दांसि–दूर्वाभाग्यम्, पृ. 91

रदनिके!

महाऽनृतवादिनी त्वमसि

इतः प्राक्

अष्टादशशतानि वर्षाणि व्यतीतानि

यदा त्वम्मां वञ्चितवती

कथमिति चेत्?

शृणु, संस्मारयामि त्वाम्

सुवर्णशकटिकाक्रीडनकातरं

प्रतिवेशिशिशुसमृद्धिस्पर्धिनं

नवनीतधियं

विकलं शिशु मां

प्रलोभयन्ती सान्त्ववचनैः

उपच्छन्दयन्ती च मृच्छकटिकेन

त्वमेवोक्तवती

'तात! पितू ऋद्धया

पुनस्सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।।[1]

'पत्रं श्रीबाणभट्टस्य' गीत के माध्यम से समाज के एक जागरूक एवं सजग प्रहरी स्वरूप बाणभट्ट के माध्यम से कविवर मिश्र जी राजा हर्षवर्धन रूपी समकालीन प्रशासक व नीति–निर्धारकों को सम्बोधित करते हुए उसे स्मरण दिला रहे हैं कि समाज का जो वर्ग–किसान, मजदूर, श्रमिक, शिल्पकार आदि जो राष्ट्र की अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ हिस्सा है तथा समाजोपयोगी समस्त वस्तुओं एवं मूलभूत संसाधनों का उत्पादक है, आज वही उपेक्षा का शिकार हो रहा है। उसके जीवन–स्तर को उन्नत करने के लिए जमीनी स्तर पर कोई कार्य नहीं हो रहा है और समाज के मात्र उपभोक्ता वर्ग रूपी गौतम जैसे लोगों के लिए जमीनें आदि आवश्यक संसाधन मुहैया करवाये जा रहे हैं। हे राजन्! जरा स्मरण तो कर कि जिस अन्न को हम खा रहे हैं व जिन कपड़ों को हम पहन रहे हैं आखिर इनके उत्पादक कौन हैं? ये सब

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः 'उपालम्भो रोहसेनस्य', पृ. 98

वस्तुएँ हम तक कैसे पहुँच रहीं हैं? तब आपको अनुभूत होगा कि वस्तुतः जिस वर्ग के लिए मुझे कुछ करना था, उस ओर तो में देख ही नहीं रहा–

पृच्छति बाणभट्टोऽयं
प्रजाप्रतिनिधिः
कस्यान्नं त्वमेतान् भोजयसि?
कस्य वस्त्राणि त्वमेतान् परिधापयसि?
एतत्सर्वं न तवाऽपि हर्ष!
सर्वमेतल्लोकस्य!![1]

अन्त में भारतीय संस्कृति की गुरुता तथा महान् जीवनमूल्यों की याद दिलाते हुए कविवर मिश्र जी कह रहे हैं कि हमें अपनी संस्कृति को अपने आचरण और व्यवहार से प्रदर्शित करना चाहिए। यहाँ प्राणी–मात्र के कल्याण, विश्व बन्धुत्व, दीनोद्धरणोचितस्य की बात कही गई है। तदनुरूप ही हमें व्यवहार करना चाहिए जिससे समाज का 'सत्यं–शिवं–सुन्दरम्' स्वरूप फिर से देखने को मिले–

निर्धनदलितविवशकल्याणी
शरणागतवत्सला पुराणी
राष्ट्री सङ्गमनी व वसूनां सर्वस्मिन् दयते।।

नोऽत्याचारो नैव शातनम्
दैन्यं रणभुवि न च पलायनम्
शक्तिमयी सत्यपि धरणीयं नयं समर्थयते।।[2]

इस प्रकार कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत नवगीत रचनाओं में कहीं मुखर रूप में, कहीं सांकेतिक रूप, तो कहीं अन्य आशय के निमित्त लिखी गई पंक्तियों में दलित चेतना को अभिव्यक्ति मिली है तथा 'सबका साथ सबका विकास, सबका सम्मान' की भावना से ओत–प्रोत नजर आते हैं। दलित वर्ग की स्थिति व आक्रोश को इनके गीतों में जीवन्त प्रस्तुति मिली है। तभी तो आचार्य राजशेखर ने कवियों की बुद्धि को वह दर्पण माना है, जिसमें विश्व प्रतिबिम्बित होता है–**'मतिदर्पणे हि कवीनां विश्वं प्रतिफलति।'**[3]

---

1. मधुपर्णी, भारतीयसंस्कृतिगीतम्–'भारतसंस्कृतिकथा विजयते', पृ. 100
2. वही, पृ. 100
3. काव्यमीमांसा, अध्याय 12

(छ) नारी–चेतना

किसी भी समाज की प्रगति का मानदण्ड नारी की स्थिति से आँका जा सकता है। यह मान्यता सहसा चौंकाने वाली लग सकती है किन्तु किंचित् गंभीरता से विचार करेंगे तो पाएँगे कि उन्नत समाज की प्राथमिक बुनियाद स्वतन्त्र, शिक्षित, आत्मनिर्भर और संस्कारित औरत है, क्योंकि उस पर प्रत्येक नयी पीढ़ी को सँवारने का दायित्व होता है। वह देश के भविष्यत नागरिक, बच्चे को शिक्षा, व्यक्तित्व व संस्कार देती है।

इसी कारण बिना नारी के काव्य–योजना की परिकल्पना असम्भव है। भले ही वह सौन्दर्य का अध्याय हो अथवा प्रेम की परिणिति। नारी पात्र के बिना सब कुछ अपूर्ण है। नारी के अनेक रूप हमें काव्य लेखन में दृष्टिगोचर होते हैं। कहीं नारी विरहिणी के रूप में अश्रु प्लावन करती है तो कहीं संयोग में 'रति' बन जाती है। कहीं क्रोध में दुर्गा तो प्रेम में मीरा का रूप धारण कर लेती है। यदि वह विवश है तो स्वतन्त्र भी है। यदि कहीं निरूपाय है तो कहीं शक्तिपुञ्ज भी। इस प्रकार कभी–कभी वह अपने पारम्परिक रूप का परित्याग करने को भी उद्यत हो जाती है और कभी अपनी वेदना को हृदय में छिपाकर मुस्कराती है। इस प्रकार अपने बहुआयामी चरित्र और व्यक्तित्व से सम्पूर्ण काव्य जगत पर नारी ने सदैव से दस्तक दी है।[1]

'वागर्थाविवसम्पृक्तौ'[2] कहकर कालिदास तथा **'गिरा अर्थ जल बीचि सम'**[3] द्वारा तुलसीदास जी यही कहना चाहते हैं कि पुरुष तथा नारी की वैवर्तिक भूमिकाएँ देश, काल, समाज, संस्कृति, परिस्थिति सापेक्ष भिन्न हो सकती है किन्तु उन्हें सिद्धान्ततः अद्वैतभाव प्राकृतिक रूप से प्राप्त है। इस अद्वैतमूलकता का आधार है हमारी याज्ञिक संस्कृति तथा वैदिक वाङ्मय में नारी की सामाजिक छवि। नारी चेतना की दृष्टि से प्रायः तीन आयामों पर विचार करना अपेक्षित प्रतीत होता है–

1. नारी की वैदिक काल से लेकर आज तक की जीवनयात्रा का सर्वेक्षण करना।
2. वर्तमान समय में नारी–जीवन के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा लोकतान्त्रिक आदि विविध पक्षों की समीक्षा करना।

---

1. आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा–डॉ. मंजुलता शर्मा, पृ. 175
2. रघुवंशम्–कालिदास 1/1
3. रामचरितमानस–बालकाण्ड–तुलसीदास

3. आकाश की अनन्त ऊँचाई को छूने की कामना में बढ़ते हुए उसके कदमों में प्रेरणा की शक्ति भरना।

भारतीय संस्कृति स्त्री एवं पुरुष को समान महत्ता देती आई है कि कालचक्र के प्रभाववश स्त्री की स्थिति पतित होती चली गई। इस पतन के पीछे विविध कारक और परिस्थितियाँ रही। धीरे–धीरे नारी की कोमलता को उसकी कमजोरी मानते हुए उसे मानवोचित पद से पतित कर, उसकी क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को क्षीण कर मानव सभ्यता के आधेभाग को जीर्ण–शीर्ण एवं खोखला कर दिया गया। इस प्रकार पूरी दुनियाँ को अपने भीतर आकार प्रदान करने वाली, उसको परवरिश एवं संस्कार देने वाली स्त्री को भावहीन एवं पाषाण–शिला बनाने का प्रयास किया गया। यह प्रयास एक सामाजिक विकृति का रूप धारण कर गर्भ से लेकर कब्र तक स्त्री के साथ अन्याय का आधार बना। इस सामाजिक संरचनागत दोष के कारण कन्याभ्रूण हत्या, लिंग–भेद, बालिका–अशिक्षा, बाल–विवाह, यौन–उत्पीड़न एवं दुराचार, बहु–विवाह, वन्ध्यत्व की अवधारण, वैधव्य जीवन की भयावहता, वेश्यावृत्ति, सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा, दहेज–प्रथा तथा स्त्री के भोग्या स्वरूप की अवधारणा जैसे विकार उत्पन्न हुए।

समकालीन समाज सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मर्यादाओं को सुरक्षित रखते हुए स्त्री के अस्तित्व के लिए तथा उसकी स्थिति में सुधार लाने हेतु निरन्तर प्रयासरत है। स्वाधीन भारत में स्त्री–पुरुष को समान संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, परन्तु अवसर, स्थान, सुविधा एवं अधिकार प्राप्ति की दृष्टि से वह समाज में अभी भी कमजोर स्थिति में है।

'तच्च साहित्ये प्रतिफलति'[1] सूत्र के अनुसार कवि प्रतिभा भित्तिभूत है। उसमें दर्पण की भाँति समग्र संसार प्रतिबिम्बित होता है। तदनुसार समाज में विद्यमान स्त्री–पुरुष विषयक विचलन भी कवि की दृष्टि से बचा नहीं रह सकता। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री–विमर्श अथवा नारी–चेतना की बात करना कवि का लोकधर्म है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के प्रमुख कवि, प्रखर चिन्तक एवं क्रान्तिकारी लेखक डॉ. हर्षदेव माधव जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' में नारी–चेतना या नारीवाद का निरूपण करते हुए लिखते हैं कि नारी चेतना और नारी संवेदना नारीवाद है।

"नारीचेतना नारीसंवेदना च नारीवादः।।"[2]

---

1. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 1.1.1.6
2. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, 2.7

इसी सूत्र की वृत्ति में वे नारीवाद पर विस्तृत दृष्टि डालते हुए लिखते हैं– "करुणोपेक्षाजातो नारीवादो (Feminism) मन्यते यत् पुरुषशासिताभिर्भाषाभिर्नारीणां शोषणं जातम्। नारीवादः पुरुषप्रभुत्वयुक्तां संस्कृतिं निन्दति। आर्तवानुभूति–गर्भाधान–प्रसवपीडानामनुभवं नार्य एव कुर्वन्ति। तासां भावावेगाः सर्वथैव पुरुषेभ्यो भिन्नास्सन्ति। धर्मेष्वपि महिलाविरुद्धानि तत्त्वानि त्याज्यानि। साहित्ये नारीसंवेदनायुक्ताः कृतयो रच्यन्तेऽधुना नारीं प्रति दृष्टिरेव परिवर्तनीया। नारीपीडां प्रति करुणा 'नारीसंवेदना' कथ्यते, किन्तु यदा नारी स्वयं स्वभावान् लिखति, तदा सा 'नारीचेतना' भवति। नारीमीमांसा (Gynocriticism) तत्र संयुक्ता। 'डयेल स्पेण्डर', 'वर्जिनिया वुल्फ', 'सिमो द बुवा', 'केत मिले' इत्यादि लेखकवृन्दं नारीवादस्य समर्थकमस्ति। संस्कृतकाव्यपरम्परायां नारीसंवेदना प्राचीनसाहित्येऽपि वर्तते, किन्तु आधुनिकरचनासु नारीः प्रति विशेषा श्रद्धा, तासां पीडां प्रति करुणा दरीदृश्यते।................समाजे परिवारे च पितृप्रधानमूल्यानामस्वीकारः नारीणां सर्वक्षेत्रेषु पुरुषतुल्याधिकारस्य स्वीकृतिः, स्त्रिषु स्वात्मगौरवस्य जागरणं, तत्प्रतिक्रियमाणात्याचारापमानशोषणादीनां प्रतिरोध इति नारीवादस्य प्रमुखानि लक्षणानि।"[1]

अर्थात् करुणा–उपेक्षा से जन्मा नारीवाद मानता है कि पुरुष शासित भाषाओं से नारियों का शोषण हुआ है। नारीवाद पुरुष प्रभुत्व वाली संस्कृति की निन्दा करता है। ऋतुधर्म, गर्भाधान, प्रसवपीड़ाओं का अनुभव महिलाएँ ही करती हैं। उनके भावावेग पुरुषों से सर्वथा ही भिन्न हैं। धर्मों में भी महिला–विरुद्ध तत्त्व त्याज्य हैं। साहित्य में नारी संवेदनायुक्त कृतियाँ रची जा रही हैं। नारी के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव प्रयोजन है। नारी–पीड़ा के प्रति करुणा 'नारी संवेदना' कही जाती है, किन्तु जब नारी स्वयं अपनी भावनाओं को रचती है, तब वह 'नारीचेतना' होती है। नारी मीमांसा वहाँ जुड़ी हुई है। 'ड्येल स्पेण्डर', 'वर्जिनिया वुल्फ', 'सिमो द बुवा', 'केत मिले' इत्यादि लेखक समुदाय नारीवाद का समर्थक है। संस्कृत काव्य परम्परा में नारी संवेदना प्राचीन साहित्य में भी है, किन्तु आधुनिक रचनाओं में महिलाओं के प्रति विशेष श्रद्धा व उनकी पीड़ा के प्रति करुणा दिखाई देती है।....समाज और परिवार में पितृप्रधान मूल्यों का अस्वीकार, सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान महिलाओं के अधिकारों की स्वीकृति, स्त्रियों में आत्मगौरव का जागरण, उनके प्रति किये जाने वाले अत्याचार, अपमान, शोषण आदि का प्रतिरोध–ये नारीवाद के प्रमुख लक्षण है।

---

1. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, 104–116

कविवराभिराज राजेन्द्र मिश्र जी की सकल काव्य–साधना कहीं न कहीं नारीवाद से प्रभावित दिखलाई पड़ती है। यद्यपि प्रो. मिश्र परम्परागत मूल्यों के प्रबल पक्षधर हैं अतः वे नारी–चेतना सम्बन्धी विचारों को परम्परा विच्छिन्न नहीं मानते हैं फिर भी उनके काव्यों में विशेषतः नवगीत काव्य में नारी–विषयक चिन्तन और भी मुखर होकर सामने आया है। वे प्राचीन और अर्वाचीन दोनों गंगा–जमुनी संस्कृति के पक्षधर हैं। उन्हें लगता है कि नारी मुक्ति आन्दोलन भावनात्मक दृष्टि से तो एक अच्छा प्रयास है परन्तु उसका क्रियात्मक रूप विकृत हो रहा है–

महिला मुक्त्यान्दोलनैस्त्वया
गृहबद्धाः नार्यो विमोचिताः।
पतयः पचन्ति किल महानसे
पत्न्यश्च समाजोद्धाररताः।।
धात्रीपालयति शिशुं भवने
पितृपरिचयरहितं नमोनमः।।[1]

अर्थात् हे कलिकाल महात्मन्! महिला मुक्ति आन्दोलन के द्वारा तूने घरों में कैद नारीयाँ उन्मुक्त कर दी। पति लोग रसोईघरों में खाना पका रहे हैं और पत्नियाँ समाजोद्धार में संलग्न हैं। घर पर बाईयां बच्चों को पाल रही हैं, वे शिशु अपने माता–पिता को ठीक से जान भी नहीं पाते संस्कार तो बहुत दूर की बात है। तात्पर्य यह है कि भारतीय नारी को इन छद्म आन्दोलनों के द्वारा उनके सनातन एवं प्राकृतिक जीवन–मूल्यों से विछिन्न किया जा रहा है।

अभिराज मिश्र जी शकुन्तला के रुदन को आज भी अनुभव कर रहे हैं जिसे दुष्यन्त के कटु व्यंग्य वाणों को सहन करते हुए लज्जित होना पड़ा था। ऐसी न जाने कितनी पतिव्रता शकुन्तलाएँ आज बिना किसी अपराध के भी समाज से बहिष्कृत की जा रही हैं–

विस्मृतवान् दयितो दुष्यन्तः प्रीतिर्विसंष्ठुला
रोदिति शकुन्तला।।
आत्मानं गूहते कुटीरे न मुखं दर्शयते

---

1. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः गीतम्–नमोनमः/6, पृ. 56

रहसि निलीना जाने किं किं मनसा चिन्तयते
कृशतामेत्यनुदिनं यथाऽसितपक्षे चन्द्रकला।
रोदिति शकुन्तला।।[1]

इसी प्रकार बसन्तसेना जो वेश्यावृत्ति के लिये प्रसिद्ध है परन्तु उसके हृदय में भी एक नारी है जिसे धन नहीं चाहिए अपितु निर्धन चारुदत्त का प्रेम चाहिए परन्तु वहाँ भी दुष्ट शकार उसके मार्ग में बाधक है। अतः अभिराज जी का कहना यही है कि नारी अबला ही है जिसे न तो हृदय का अभीष्ट प्राप्त हो पाता है और न ही उसके विद्रोह को स्थान मिलता है। भले ही युग बदलते रहे हों परन्तु परिपाटी आज भी वही है–

इदमेव विडम्बनं रमणीजीवनस्य
कोऽप्यनभीष्टस्तां कामयते
सा च कमप्यभीष्टमपरम्।
अस्मिन्नेव
अभीष्टाऽनभीष्टसङ्करे
वराकी नारी दुर्व्यवतिष्ठते
रामं रघुनन्दनमियेष वैदेही
ताञ्च रतिलम्पटो रावणः
द्वारकाधीशमियेष रुक्मिणी
ताञ्च निर्गुणशिशुपालः।
हन्त, सनातनीयं परिपाटी
दुर्नियतेः पुरन्ध्रीणाम्।।[2]

आज समस्त न्यूज चैनल, समाचार–पत्र गली–मोहल्लों, सड़कों, संस्थानों, कार्यालयों व सार्वजनिक स्थानों पर निर्भया–दामिनी जैसी युवतियों के लम्पटों द्वारा कदर्थित होने की घटनाओं के समाचारों से अटे–पड़े रहते हैं। शकारवत् लम्पट, मनचले व प्रभुता सम्पन्न लोग उन्हें व्यङ्ग्यबाणों से विद्ध करते रहते हैं तथा हीन नजर से घूरते रहते हैं–

1. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः, 'रोदिति शकुन्तला', पृ. 64
2. वही, तृतीयखण्डः मुक्तच्छन्दांसि–वसन्तसेना, पृ. 106

शकारसेवको मां ब्रूते
पश्य वसन्तसेने
लतां गाहते काकोऽपि
नद्यां स्नाति सारमेयोऽपि
नौकायां तिष्ठति ब्रह्मक्षत्रेतरोऽपि
वसन्तसेने
लतेव त्वमसि
नदीव त्वमसि
नौकेव त्वमसि
सर्वभोग्याऽसि त्वं भद्रे!
वेश्यासि, भज सर्वं
स्वीकुरु राजश्यालं शकारम्!![1]

परन्तु एक शिक्षित स्त्री अपने अधिकारों के लिए किस प्रकार लड़ सकती है तथा कुदृष्टियुक्त लम्पटों के कपोलों पर वह किस प्रकार वाग्चपेटिका मारती हुई बड़ी ही तार्किकता व निर्भीकता के साथ अपना पक्ष रखती है इसका जीवन्त चित्रण हमें स्वाभिमानी व शिक्षिता वसन्तसेना द्वारा शकार के विट को दिये प्रत्युत्तर में दिखलाई देता है–

क्व चायं राजश्यालश्शकारः
निर्गुणो लम्पटः
क्षुद्रो दुर्मदः
वशीकृतशासनतन्त्रः
मूषिकीकृतनरपतिः
दुर्दान्त उद्धतः
यो न परिचिनोति नारीगौरवं
न जानाति प्रणयं
नाद्रियतेऽसौ जाल्मः
उभयनिष्ठतां भोगाऽकांक्षायाः

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः मुक्तच्छन्दांसि–वसन्तसेना, पृ. 107

तत्कृते भक्ष्यभूतैवास्मि
तत्कृतेशरीरमात्रमहमस्मि
प्रतिसन्दिष्टम्मया
चेट! भण राजश्यालं यद्

..

ह्रदये चापि गृह्यते नारी
केवलं ह्रदये।।[1]

'दूर्वाभाग्यम्' गीत का मन्तव्य कुछ भी रहा हो किन्तु इस गीत–रचना की पंक्तियों में हमें वर्तमान नारी–जीवन की झलक अवश्य मिलती है। आज समाज में बालिका, युवतियाँ तथा महिलाएँ सुरक्षित नहीं है। समाज के दुष्ट, लम्पट व दुराचारी जनों से तो एक पल सावधानीपूर्वक रहकर बचा जा सकता है किन्तु जो अपने चेहरों पर अपनापन होने का मुखौटा लगाकर घूम रहे हैं उन निकट सम्बन्धियों से बालिकाओं को सुरक्षित रखना बड़ा ही दुष्कर कार्य है क्योंकि परिवारिक सम्बन्धों को तार–तार करने वाली ऐसी अनेक घटनाएँ आये–दिन देखने या सुनने में आती है। ऐसी कोमल–नववयस्का बालिका रूपी दूर्वा के लोभी बहुरूपिये सर्वत्र व्याप्त है। तो क्या विधाता ने इनके जीवन में सौभाग्य नहीं लिखकर केवल वह खण्डितशोभा तथा संशयपूर्ण जीवन ही लिखा है–

यावदेवासौ विकसितकेसरा
शुकोदरनीला
कोमलकोमला
काञ्चिद् वृद्धिं तनुते
तावदेवैते
सझम्पमाक्रम्य
तां निर्दयं भक्षयन्ति
सुषमां तस्याः खली–कुर्वन्ति
तां समूलमुन्मूलयन्ति।।
तत्किं विधात्रा
दूर्वाया भाग्यलिपौ

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः मुक्तच्छन्दांसि–वसन्तसेना, पृ. 108–110

सौभाग्यस्य पराकाष्ठा न लिखिता?
किं दूर्वावनी
कदाप्यलूनशिखा नावलोकयिष्यते?
किमेते शाकप्रिया वनपार्थिवाः
प्रत्यहं
तां खण्डितशोभां
संशयितजीविताञ्चैव
विधास्यन्ति?[1]

लगभग इसी भाव को द्योतित करने वाली किन्तु अन्यनिमित्त से कही गयी पंक्तियाँ भी यहाँ उद्धरणीय हैं—

ये लम्पटास्त एते शिविकां वहन्ति मार्गे
प्रभुरेव हन्त! रक्षेत् पातिव्रतं वधूनाम्।।[2]

अर्थात् जब धूर्त और दुश्चरित्र लम्पट लोग ही डोली उठाने वाले हों तो उस सद्यविवाहित युवती के पातिव्रत व चरित्र की रक्षा का तो प्रभु ही मालिक है।

समाज ने नारियों को हमेशा हांसिये पर रखा है। जिस समाज के कंधों पर नारी—जीवन को समुचित मान—सम्मान व आदर देने व दिलवाने का दायित्व था, उसी समाज ने उसे दुत्कारा, पीड़ित किया, शोषण किया, यहाँ तक की उसे भिक्षुकी बना दिया। किन्तु वही नारी आज जाग्रत हो गयी है, उठ खड़ी हुई है और समाज को सम्बोधित करती हुई कह रही है कि हे कृतघ्न! हे पापी! अब हमें आत्मबोध हो चुका है। हम अपनी शक्तियों को पहचान चुकी हैं। अब हमें किसी सहारे की आवश्यकता नहीं अब हम स्वयं अपने बल पर आगे बढ़ेंगी, तथा अपने हक के लिए लड़ेगी। इसी भाव को प्रकट करती कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

शैशवे न लालिता न यौवने समादृताः
हन्त रे समाज! यत्त्वयैव भिक्षुकीकृताः
साम्प्रतं न विद्यसे कृतघ्न! का नु ते दशा
साम्प्रतं वयं समुत्थिता विरुढसाहसाः!![3]

---

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः, 'दूर्वाभाग्यम्', पृ. 91
2. श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः—'हरते मनोऽभिराजः', पृ. 116
3. वाग्वधूटी, किं जलेन तर्पणम्?

जिस शक्तिस्वरूपा भारतीय नारी ने कभी अपने आत्म–सम्मान की रक्षा की खातिर तलवार लेकर तथा रणचण्डी का रूपधारण करके दुश्मनों को मार भगाया था, आज वही स्त्री–शक्ति अपने स्वयं के लोगों से अत्यधिक रुष्ट नजर आ रही है। कवि मिश्र जी की निम्न पंक्तियाँ भारतीय नारी की वर्तमान स्थिति को बखूबी बयां करती है–

या कृपाणी गृहीता क्वचिद्रक्षणे
हन्ति सैवात्मबन्धून् निकामं रुषा।[1]

जो नारी अपने शैशव में घर को किलकारियों व खुशियों से भर देती है, कौमार्य में घर को सँभालती है, यौवन में अपनों की यादों को दिन में सँजोये अनजान परिवार को आबाद करती है तथा वार्द्धक्य भी जिसका सन्तान की सुख–सुविधाओं व पारिवारिक चिन्ताओं में व्यतीत होता है। इस प्रकार से जिसका सम्पूर्ण जीवन त्याग और प्रेम की आधारशिला पर स्थित रहता है, उसी के साथ हम भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हैं। पालन–पोषण, पठन–पाठन, खान–पान, वेश–भूषा, रहन–सहन आदि विभिन्न आधारों पर बालिका के साथ भेदभाव किया जाता है। घर में जिसके साथ कभी समान व्यवहार नहीं किया वह कैसे आत्मगौरव का अनुभव कर सकती है।

इस प्रकार कविवर मिश्र जी की गीत रचनाओं में भारतीय नारी शक्ति को छद्म नारी मुक्ति आन्दोलनों के नाम पर उनकी स्थिति में सुधार लाने की बजाय उसको समाज की मुख्यधारा से काटने का दर्द है वहीं दूसरी तरफ समाज में व्याप्त शकारतन्त्र के प्रति आज की सुशिक्षित नारी वसन्तसेना का आक्रोश भी बखूबी प्रकट हुआ है।

(ज) राष्ट्रीय–चेतना

संस्कृत भाषा की आधुनिक नवगीत विधा राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व को लेखन से अभिव्यक्ति दे रही है। नवगीत भारतीय चिन्तन–दर्शन की आधुनिक रचना–धारा है। इसमें वायवी राष्ट्र–बोध और ख़याली मानववाद का आलाप नहीं है। राष्ट्र के प्रति गहरी आस्था और उसके विकास को मात्र आदर्शवादिता के आधार पर प्राथमिकता नहीं दी गई अपितु नवगीतकार सच्ची राष्ट्रीयता को अन्ताराष्ट्रवाद का प्रथम सोपान मानता है। इस कविता में राष्ट्र का एक मूर्त स्वरूप है और उस स्वरूप के लिए वह श्रद्धावनत और आस्थावान है। नवगीत में व्यक्त भारतीयता को समझने के लिए नवगीत की भारतीयता पर दृष्टि डालना आवश्यक हो जाता है।

1. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनि–'निर्झरी हन्त कूलङ्कषा', पृ.61 तथा अभिराजगीता, पृ.92

'गीताञ्जलि' की भूमिका में डब्ल्यू.वी. एट्स ने लिखा है– "ये गीत उच्चतम संस्कृति की रचना हैं, फिर भी वे भारत की जमीन में घास और पेड़ की तरह उगे प्रतीत होते हैं। भारत में यह काव्य परम्परा शताब्दियों से वर्तमान रही है जिसमें कविता और धर्म दोनों एक ही हैं। जिसमें शिक्षित और अपढ़ दोनों के बीच से उपमानों और भावनाओं को लेकर पुनः सामान्य मानव–समुदाय तक उन्हें पहुँचाया जाता रहा है और इस तरह विद्वानों और महान् व्यक्तियों की बातें जनता तक पहुँचती रही हैं।"[1]

नवगीत में भारतीय स्वरूप की अभिव्यक्ति, जातीय–चेतना व जन–संवेदना के प्रकटन में हुई है। वेद में कहा गया है– **'राष्ट्राणि वै विशः'**[2] अर्थात् जनता ही राष्ट्र है। इसलिए राष्ट्रीय जन के आचार–विचार, परम्परा, इतिहास, धर्म, दर्शन और संस्कृति के स्वरूप का बोध, संवर्द्धन और तदनुरूप दिशा–निरूपण ही नवगीत में भारतीयता की अभिव्यक्ति है। आज का कवि देश के भौगोलिक परिवेश का खाका खींचकर एक ओर तो उसके बाह्य स्वरूप को फलक पर उतार रहा है दूसरी ओर उसकी आत्मा में अन्तर्भूत उसके प्रति त्याग एवं बलिदान के ओजस्वी तत्त्वों पर भी केन्द्रीभूत हैं।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विदुषी, लेखिका एवं प्रसिद्ध समालोचिका डॉ. मंजुलता शर्मा इस सम्बन्ध में अपना मन्तव्य स्पष्ट करती हुई लिखती हैं– "वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना का अभिप्रायः केवल राष्ट्र का इतिहास, भूगोल, सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक चेतना का ही गुणगान करना नहीं है अपितु इसमें एक ऐसी साधना निहित है जिसके द्वारा कवि अपनी राष्ट्रभूमि पर खड़े होकर सम्पूर्ण विश्व को निहार सके। इसके साथ ही उन संस्कृतियों को भी आत्मसात करके भारतीय बना दे जो दूर छिटकी हुई खड़ी हैं। इसके लिए कवि का सहृदयी एवं विश्वद्रष्टा होना आवश्यक है। रेवा प्रसाद द्विवेदी का 'शकटारः' खण्डकाव्य राष्ट्रीय चेतना का अनुपम उदाहरण है। इसमें नेल्सन मंडेला के द्वारा भोगे गये कारागार के कष्टों को शकटार के ऊपर आरोपित करके उस विश्व प्रसिद्ध घटना को वर्णित कर दिया। अभिराज राजेन्द्र मिश्र के व्यक्तित्व और कर्तृत्व दोनों में ही उनकी बेबाक छवि का निदर्शन है। वे स्पष्टवादी होने के कारण कहीं–कहीं बहुत कड़वी बात भी कह जाते हैं। उन्हें भारतीय चेतना एवं राष्ट्रीयता के नाम पर

1. डब्ल्यू.वी.एट्स : गीतांजलि (भूमिका), पृ. 9–10 (अंग्रेजी अनुवाद)
2. ऐतरेय ब्राह्मण, 8/26

व्यक्तिस्तुतिपरक रचनाएँ स्वीकार नहीं। अतः चाटुकारिता का लबादा ओढ़े हुए ऐसे तथाकथित राष्ट्रकवियों की रचनाओं से वे संतुष्ट नहीं है। उनके काव्य की आत्मा तो खेतिहर मजदूरों की कुटियों में विश्राम पाती है और यही भारत की राष्ट्रीय चेतना है–

प्राणतन्त्री स्फुटत्काकली कौतुकैः

पामराणां कुटीरे स्थितं मन्मनः।।"[1] (शालभञ्जिका–72/3)

राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रीय चेतना की साहित्यिक अभिव्यक्ति परक अर्वाचीन संस्कृत रचनाओं में कमलेश दत्त त्रिपाठी की 'धन्या ममेयं धरा', आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी कृत सन्धानम् में लिखे गये 'ध्रुवगीत', श्रीनिवासरथ की कविता 'प्रणम्याः कालगीलवीराः', डॉ. बनमाली बिश्वाल की कविता 'कारगलि संघर्ष', पद्मशास्त्री कृत 'स्वराज्यम्', रवीन्द्र कुमार पण्डा कृत 'शतदलम्', भास्कराचार्य कृत काव्य आदि प्रमुख हैं। अर्वाचीन कवियों में डॉ. रमाकान्त शुक्ल राष्ट्रवादी धारा के बहुत प्रशंसनीय कवि हैं। उनके द्वारा विरचित 'भाति मे भारतम्' अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है। इसमें उन्होंने राष्ट्र के प्रति सकारात्मक दृष्टि के संकेत दिये हैं। इसके अतिरिक्त डॉ. नलिनी शुक्ला, डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डे 'मणि', डॉ. पुष्पा दीक्षित, डॉ. दीपक घोष, डॉ. हर्षदेव माधव आदि अनेकों कवियों ने अपनी कविताओं में कहीं प्रत्यक्ष एवं कहीं अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्रगौरव का गान किया है। इस प्रकार बींसवीं शती में लिखी जाने वाली संस्कृत कविता देश और समस्त विश्व में सामाजिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक परिस्थितियों के साक्ष्य प्रस्तुत कर रही है।

वैदिककाल से लेकर वर्तमान काल तक की संस्कृत गीतपरम्परा में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र के गीतों का स्थान नवनवस्पन्दनापेक्षी तथा उत्कृष्टतम है। 'वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता इन अद्यावधि प्रकाशित कविवर मिश्र जी की संस्कृत नवगीत रचनाओं के गीतों में राष्ट्र–प्रेम, राष्ट्र–भक्ति, भाषा एवं संस्कृति प्रेम, परस्पर समन्वय की भावना आदि को उद्दीप्त किया है। उनका तो स्वप्न भी यही है कि सौ बार भी जन्म मिले तो इसी भारतीय वसुन्धरा पर मिले जिसकी मिट्टी में लोट–पोट होकर जीवन सार्थक हो जाये–

भवेदिह मर्त्यलोके जन्म मम भूयोऽपि शतवारम्

परं स्याद् भारते।।

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 128–129

विराजन्तामनन्ताः शालयो नतमञ्जरीपुञ्जाः

सुशोभन्तां वनान्ता दुष्प्रवेशलसन्निचुलकुञ्जाः

भवेदिह मृत्तिकायां विलुठनं भूयोऽपि शतवारम्

परं स्याद् भारते।।[1]

कविवर मिश्र जी को स्वयं के 'भारतीय' होने का गर्व है क्योंकि भारतीय संस्कृति में ही मानव–जीवनोपयोगी समस्त उन्नत जीवन–मूल्य समाहित हैं। भारत देश सनातन काल से ही विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, सर्वधर्म–समभाव, नैतिकता, त्याग तथा अध्यात्म का पक्षधर रहा है। आज भी स्व के साथ–साथ समग्र विश्व के विकास की बात यदि कोई राष्ट्र करता है तो वह है–भारत राष्ट्र। कविवर की यही भावना इस प्रकार व्यक्त होती है–

विश्वकल्याणे मतिः विश्वनिर्माणे रतिः
भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम्!!
लोकतन्त्रस्थापने सर्वोदये नित्यम्
विश्वशान्तौ विश्वबन्धुत्वे च यत्सत्यम्
देश एषोऽग्रेसर :
विश्वमङ्गलशेखर :
भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम्!![2]

कवि के गीतों में भारत राष्ट्र की बहुरंगी संस्कृति तथा एकता व अखण्डता के प्रति अटूट निष्ठा व्यक्त की गई है। तथा हम सबको राष्ट्र की महिमा का बखान करते हुए आत्मगौरव का अभिमान कराया है तथा प्रत्येक हृदय में मातृभूमि के प्रति भक्ति भाव, श्रद्धाभाव एवं समर्पण की भावना का विस्तार किया है–

गङ्गा पुनाति भालं रेवा कटिप्रदेशम्

वन्दे सदा स्वदेशम्

---

1. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः गीतयः– 'भवेदिह मर्त्यलोके जन्म', पृ. 43
2. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः, 'भारतीयोऽहम्', पृ 45–46

एतादृशं स्वदेशम्!!
गायन्ति यस्य देवाश्शुभगीतकानि नित्यम्
सर्वे भवन्तु सुखिनो यस्यतदेव कृत्यम्
अभयप्रदोपदेशाः शमयन्ति पापलेशम्!!
अद्यापि यस्य नीतिर्विस्मापयत्यनल्पम्
उद्घोष्य विश्वशान्तिं भावञ्च मित्रकल्पम्
वन्दे ध्वजं त्रिवर्णं वन्देऽगृहीतकेशम्
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशं स्वदेशम्!![1]

ऐसे उच्चतम आदर्शों, सिद्धान्तों तथा जीवन–मूल्यों से परिपूर्ण भारतभूमि की सन्तति को आज जाति–धर्म–मत–पंथ–क्षेत्र आदि के लिए एक–दूसरे से ईर्ष्या–द्वेष करते हुए एवं आपसी कलह करते हुए देखकर कवि का ह्रदय विदर्ण हो उठा है। वे कहते हैं कि मुझे आज भारत देश रक्तरञ्जित सा दिखलाई पड़ रहा है–

द्वैषदैन्यधर्षितं शोकतापतर्जितम्
हन्त रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्!!
जातिपंक्तिभावनां नानको न मन्यते
ग्रन्थसाहिबेऽर्जुनः सर्वसौख्यमश्नुते
सिक्खसम्प्रदायिभिर्मङ्गलं न वारितम्!
हन्त रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्!![2]

कविवर राजेन्द्र मिश्र जी के काव्य में राष्ट्रवाद अपने विकसित रूप में दिखाई देता है। राष्ट्र की दुर्गति देखकर वे चिन्तित हैं और कहते हैं कि क्या यही स्वतन्त्रता है?

शोकतापजर्जरा द्रोहभारभङ्गुरा
अद्य दृश्यते न किं भारती वसुन्धरा
दुर्गति हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता?
मामके हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता?[3]

---

1. वाग्वधूटी, वन्दे सदा स्वदेशम्, पृ. 12
2. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः– 'रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्', प्र. 58–59 तथा अभिराजगीता, पृ. 90
3. वही, वही, 'कीदृशी स्वतन्त्रता?' पृ. 55 तथा अभिराजगीता, पृ. 85

परन्तु एक श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त कवि प्रो. मिश्र जी का यह दृढ़ विश्वास है कि उसका भारत फिर से विश्वगुरु बनेगा। इसीलिए कवि समस्त भारतवासियों को आत्मबोध कराते हुए कहते हैं कि भारत के प्राचीन गौरव को स्मरण करो तथा कालचक्र की गति से जो विकृतियाँ भारतीय समाज में आयी हैं, उन्हें उखाड़ फैंको। परस्पर समरसता का वातावरण विकसित करो। क्षेत्र–वर्ग–भाषा–जाति आदि समस्त प्रकार के मतभेदों को दूर करो–

एत सौम्यबान्धवा बन्धुता विधीयताम्
क्षेत्रवर्णभावना सत्वरं निवार्यताम्
प्राञ्जलं पुनर्भवेद् येन भव्यभारतम्!
विश्वपूजितं भवेन्मामकीनभारतम्!![1]

कविवर अभिराज जी प्रत्येक भारतवासी को उसके गौरवमय अतीत को स्मरण दिलाते हुए कह रहे हैं कि हम भारतवासियों ने न तो कभी अन्याय सहा है और न ही कभी अनीति या गलत का साथ दिया है। एक सच्चा राष्ट्रभक्त हमेशा राष्ट्रहित की ही बात करता है। हम सदा–सदा से सत्य के पक्षधर रहे हैं तथा जब भी राष्ट्रीय प्रभुता पर कोई आँच आती है तो हम एक जुट होकर उसका सामना करते हैं–

न दुर्नयं सहामहे न दुर्नयो विचीयते
स्वराष्ट्रगौरवोचितं हि केवलं विधीयते
वयं प्रयाणगत्वराः प्रतिक्षणं प्रसृत्वराः
सुरैरपि प्रभाविता जयत्वियं वसुन्धरा!!
वयं हि लोकतान्त्रिका ऋतैकपक्षपातिनः
सुहृत्तमाः परन्तु वैरिणां कृतेऽतितापिनः
न भेददर्शिनो वयं न चापि वृत्तमत्सराः
त्रिलोकतो महीयसी जयत्वियं वसुन्धरा!![2]

परन्तु कविवर का अन्तर्मन अनास्था एवं क्षोभ से भर उठता है जब वे कुछ सिरफिरों को अलगाववाद तथा सामाजिक अस्थिरता फैलाते हुए देखते हैं। कहीं खालिस्तान की माँग तो कहीं गोरखालैण्ड की। कहीं हिन्दू–मुस्लिम दंगे तो कहीं घोर अशान्ति का वातावरण। देशहित में कोई सोच ही नहीं रहा है। समकालीन राष्ट्रीय घटनाक्रम से आहत कविवर अपने उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

---

1. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः, 'रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्', प्र. 60 तथा अभिराजगीता, पृ. 90
2. वाग्वधूटी, जयत्वियं वसुन्धरा!!

वाञ्छति कोऽपि नवीनविधानम्

कोऽपि याचते खालिस्तानम्

रोदिति गङ्गा द्रवति नगेशः समुच्छति सिन्धुः,

को नु राष्ट्रबन्धुः??

एकमेव भारतं समेषाम्

एकमेव गौरवं समेषाम्

एकमेव गगनं सर्वेषां स्याद्रविरथवेन्दुः

को नु राष्ट्रबन्धुः??[1]

दिनों–दिन देश की बिगड़ती हालत को देखकर कवि हृदय निराशा से भर उठता है। वे कहते हैं जो भारत भूमि त्याग, तप व धर्म की भूमि कही जाती रही है, वह भूमि आज भोगी, विलासी व कदाचारी लोगों से अटी–पड़ी है। जिस राष्ट्र में राष्ट्रद्रोही व तस्कर प्रशासक बनकर बैठे हो, चरित्रहीन व लुटेरे मंत्री–पदों पर आरुढ़ हों, जिस राष्ट्र में अत्याचारियों की सत्ता हो तथा जहाँ योग्य, गुणवान व सच्चरित्र लोगों की उपेक्षा व दमन हो, भला वहाँ कौन जीना चाहेगा?

पावनी तीर्थभूमिर्विलासावनी

भोगसम्भोगपूर्तिप्रदा काञ्चनी

स्वर्णसारङ्गऽञ्चत्तृषे भारते!!

तस्करश्चीयते सांसदः साग्रहम्

नाश्नुते ज्ञानाविज्ञानसिन्धुर्गृहम्

सञ्चरद्रावणानां वशे भारते

जीवितुं शक्यते नेदृशे भारते!![2]

जब मानव निराशा के वातावरण से चहुँओर घिर जाता है तब हम भारतवासी अपने अन्तः गह्वर में झाँकते हैं और एक नई ऊर्जा और प्रेरणा का संचार अपने अन्दर पाते हैं। यही धर्म और अध्यात्म की शक्ति हम भारतीयों को दुनियां से अलग पहचान दिलाती है। कविवर मिश्र जी

---

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्री, अष्टचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 70
2. मृद्वीका, राष्ट्रश्री, द्विचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 60

भी आखिर में उसी अध्यात्म शक्ति के स्रोत स्वरूप उस पराशक्ति से देश की रक्षा की गुहार लगाते हैं। आज देश की सीमाएँ सुरक्षित नहीं हैं। पूर्वोत्तर से चीन नित नवीन समस्याएँ खड़ी कर रहा है तथा 1962 के युद्ध में हड़पी भारतीय भूमि के एक बड़े हिस्से पर आधिपत्य जमा कर बैठा है दूसरी तरफ पाक अपनी नापाक करतूतों से बाज नहीं आ रहा है। देश के अन्दर आन्तरिक विद्रोह के स्वर पंजाब आदि से उठ रहे हैं तथा आन्तरिक स्थिति भी अच्छी नहीं हैं। देशहित में कोई सोच ही नहीं रहा है। अतः हे भगवन् अब आप ही हैं जो भारतदेश को बचा सकते हैं–

भगवन् रक्ष मदीयं देशम्!
भूतलरत्नं त्रिभिस्सिन्धुभिः कृतरुचिकरपरिवेशम्!!
हिमधवले शैलेयशीर्षके कुरुतेऽनिशं प्रहारम्
असमीचीनं दुर्मदचीनं तनुते मृषा प्रचारम्
निर्मानं मानसं विलोकय लोकय हंसनिवेशम्!
भगवन् रक्ष मदीयं देशम्!!
अधमर्णो दुभावविशीर्णो लालाटिको वराकः
नो समीहते भारतसौख्यं द्वेषजर्जरः पाकः
स्वाधीनता भवेन्न खण्डिता चिन्तय कमपि विशेषम्!
भगवन् रक्ष मदीयं देशम्!![1]

लगभग यहीं भाव कवि के अन्य गीत 'रक्ष रक्ष भारतम्' में अभिव्यक्त हुआ है कि जो हमेशा विश्वशान्ति, सहिष्णुता व विश्वबन्धुत्व का उपासक रहा है वही देववन्दित भारत देश स्वयं के घर में सुबक रहा है, पीड़ित हो रहा है। जिसकी सीमाएँ असुरक्षित हों जिसका प्रहरी बनकर खड़ा हुआ नगाधिराज हिमालय स्वयं कम्पित हो रहा हो। सर्वत्र दीनता, विपन्नता, भिन्नता, अन्याय, क्रन्दन का ताण्डव हो रहा हो, वह आँगन कैसे सुखी रह सकता है। अतः दुःखी मन से यह भारत देश निज गौरव की प्राप्ति एवं सुरक्षा हेतु अपनी सन्तति को पुकार रहा है–

विश्वसंस्कृतेर्विधायकं विश्वबन्धुतासमर्थकम्
अद्य सीदति स्वके गृहे देववन्दितं नु भारतम्।।

1. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः – 'रक्ष मदीयं देशम्', पृ. 53–54 तथा अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्), भगवन! रक्ष मदीयं देशम् पृ. 66

प्रान्तभूमयो न रक्षिताः कम्पतेऽचलो हिमालयः
आह्वयत्यलं स्वपुत्रकान् रक्ष रक्ष रक्ष भारतम्।।
क्वाद्य तद् व्यतीतगौरवं क्वाद्य तच्चरित्रवैभवम्
गम्यतेऽद्य केन वर्त्मना येन नाशमेति भारतम्।।
भक्तसिंहचन्द्रशेखरौ सैन्यनायकस्सुभाषकः
यत्कृते जहुः स्वजीवनं क्वाद्य तद्विशालभारतम्।।
इन्दिरा हता मनस्विनी राजिवश्च भारतोदयः
नो तथापि शान्तिमश्नुते दुर्दशाभिशप्तभारतम्।।
भारताय जीवनं दधे भारताय मृत्युमपि वृणे
यावदन्तिमक्षणं मुखे नेत्रयोश्च भातु भारतम्।।[1]

देश की यह स्थिति हुई है उन भ्रष्ट, अविवेकी, मूढ व दुष्ट राजनेताओं एवं प्रशासकों की कुनीतियों तथा भ्रष्टाचरण के कारण। सम्पूर्ण भारतीय समाज व्याकुलता से भरा हुआ है। अयोग्य जन देश का संचालन कर रहे हैं तथा जनता बौराई सी उनका मुँह ताक रही है—

बण्ड—भण्ड—मूढधियां कृते सिद्धिसारम्
अपावृतं जनतन्त्रे मुक्तिमयं द्वारम्
मन्त्रिपदं कल्पपादपायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्।।

गृहे—गृहे क्रन्दनमथ दृशि—दृशि जलधारा
राज्यं विदहन्ति पञ्चनदमप्यङ्गाराः
आतङ्कस्तत्र रावणायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्।।

समाजाद्वरं नूनं समजोऽप्रतिगामी
क्रोधमोहकामादिषु परं स्वाभिमानी
अभिराजो हतप्रभो जायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्
राष्ट्रमिदं हन्त मन्दुरायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्।।[2]

---

1. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः गीतयः—रक्ष रक्ष भारतम्, पृ. 47—48 तथा अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्) रक्ष रक्ष भारतम्, पृ. 80—81
2. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः, 'सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्', पृ. 51—52

आज देश के रक्षक ही भक्षक बन बैठे हैं। सिद्धान्तों और आदर्शों का झुना–झुना बजाया जा रहा है तथ बहुरूपियों की तरह नानारूपों में स्वार्थी लोग घूम रहे हैं। सम्पूर्ण दुष्ट, दुराचारी, भ्रष्टाचारी, लम्पट व देशद्रोही लोगों के लिए राजनीति आश्रयस्थली बन गयी है। स्वार्थ की खातिर वे देश और समाज तो क्या अपने–आपको बेच डालते हैं। ऐसे घन्नी लोगों के रहते किस देश का भला हो सकता है–

सङ्गच्छामः सम्पश्यामः सन्तिष्ठामः क्षणे–क्षणे
संसदि किन्तु हते निजपक्षे, यूयं यूयं वयं वयम्।।
राष्ट्रमेकमस्माकं बन्धो! वयं भारतीया सर्वे
परं स्वजनपदपक्षरक्षणे, यूयं यूयं वयं वयम्।।[1]

आज भारतीय समाज स्वार्थान्ध होने के साथ–साथ बहरा भी हो गया है। इसी कारण कवि मिश्र जी अपनी हताशा व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि मेरे बार–बार चिल्लाने पर भी कोई मेरी बात तक सुनना नहीं चाहता। देश की दीन–हीन दशा के विषय में सोचने के लिए समय नहीं है इस कारण समाज का ढाँचा बिखरता जा रहा है। भारतीय सन्तति अपने मूल्यों व आत्मबोध को विस्मृत करती जा रही है–

ऊर्ध्वबाहुको विरौम्यहं, कोऽपि नो शृणोति वाचिकम्
भाविसाध्वसाद् विरौम्यहं, कोऽपि नो शृणोति वाचिकम्।।
जीर्णकाष्ठभङ्गुरा तरी नाविकोऽपि मद्यघूर्णितः
वल्गते प्रभञ्जनोऽम्बरे सूचयन्नकाण्डताण्डवम्।।[2]

अतः समय रहते यदि हम नहीं सँभले तो एक दिन भारतदेश स्मृतिशेष रह जायेगा क्योंकि यह राष्ट्र नानाविध मार्गों से अधःपतन की ओर अग्रसर है। हे भारतीय सन्तति! अब भी समय है, अपने–आपको पहचानो। मेरे वचनों को सुनो। नहीं तो एक दिन अपने–आपको अपने 'भारती' नाम की सार्थकता ढूँढते पाओगे–

राष्ट्रमेतद् विभाजितं प्रसह्य जानपदैः
क्व मार्गयानि विलीनं स्वभारतं बन्धो।।

---

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्) यूयं यूयं वयं वयम्, पृ.96
2. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् 'कोऽपि नो शृणोति वाचिकम्', पृ. 94

क्लीबभोग्या यतो हि भारती धरा जाता
ततो हि नित्यविपन्नं स्वभारतं बन्धो!![1]

परन्तु जिसका सम्पूर्ण काव्य ही व्यथाजन्यसरिता हो तो वह निराशा के गह्वर में दुबक कर कैसे बैठ सकता है? वह स्वयं तो सदा आशान्वित रहता ही है साथ ही अपने राष्ट्रवासियों व सुधी पाठकों को भी कभी निराश नहीं होने देता। कविवर मिश्र जी भी हमें विश्वास दिलाते हैं कि भारतदेश एवं भारतीय संस्कृति फिर से अपने निजगौरव को प्राप्त करेंगे–

विन्दते स्वाधीनतापञ्चाशतं
भारतीय संस्कृतिः पुनरेधताम्!
राष्ट्रमेतत् प्राक्तनं निजगौरवं
सार्जवं भूयोऽपि सम्प्रति विन्दताम्!![2]

इस प्रकार कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी निश्चय ही एक जागरूक, दूरद्रष्टा तथा समाज के कुशल चितेरे संस्कृत कवि हैं। आपके गीतों में राष्ट्रीय भावना बड़े ही बेबाकीपन के साथ प्रकट हुई है। आपने भारतदेश की समकालीन समस्याओं से न केवल परिचित करवाया अपितु उनके भारतीय संस्कृतिमूलक समाधान भी प्रस्तुत किये हैं। आपके लेखन में प्रतिपद नूतनता एवं ताजगी है। समकालीन राष्ट्रीय एवं अन्ताराष्ट्रीय गतिविधियाँ उनके गीतों में जीवन्त बन उठती हैं। यही कारण है कि गुजरात के श्रेष्ठ कवि एवं समीक्षक डॉ. हर्षदेव माधव जी संस्कृत कविता के वर्तमान युग को 'अभिराजगयुग' नाम देते हैं।[3]

राष्ट्रीय–चेतना परक इस बिन्दु का समापन कविवर मिश्र प्रणीत इस भरतवाक्यमूलक पद्य से करना चाहूँगा–

नित्योत्थापितविश्वशान्तियतनैर्माङ्गल्यमूलैर्नवैः
नित्योद्घोषितराष्ट्ररक्षणपरैर्भव्यैर्विधानोच्चयैः।
चञ्चत्प्राणमयं हृषीकनिचयैर्युक्तं वपुर्धारयद्
मन्ये क्षेमकरे पथि प्रतिदिनं राष्ट्रं पुरो गच्छति।।[4]

---

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम्, 'क्व मार्गयानि?', पृ.97
2. अभिराजगीता, भारतीयसंस्कृतिगीतम्–'भारतीया संस्कृतिः पुनरेधताम्', पृ.98
3. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व, पृ. 187
4. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः, पृ. 48

(झ) भाषागत–चेतना (संस्कृत भाषामूलक चेतना)

समस्त जीवसृष्टि में मानव तथा अन्य जीवों के मध्य एक प्रमुख मूलभूत अन्तर भाषा का है आयु के प्रथम वर्ष से मृत्यु पर्यन्त मनुष्य भाषा के सहारे ही अपने विविध विचारों और भावों की अभिव्यक्ति करता है। यहाँ प्रसङ्गवश यह भी विचारणीय है कि 'भाषा' क वास्तविक स्वरूप क्या है? प्रस्तुत प्रश्न का समाधान 'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति में ही ढूँढा जा सकता है। **'भाष्यते इति भाषा'**[1] यही भाषा का निर्वचन है। भाषाणावयवों की सहायता से जो मुख से निःसृत होती है, उस **निरुक्ता वाणी**[2] को ही भाषा कहते हैं। आज के ध्वनिविद् भी भाषा के ध्वनिमयरूप को ही स्वीकार करते है। **'भाषा' शब्द भाष्+अङ्+टाप्**[3] से मिलकर बना है। भाष धातु बोलने अर्थ में प्रयुक्त होती है अतः भाषा शब्द वक्तृता, बात, बोली, जबान, संस्कृत भाषा आदि अर्थों का द्योतक है। **सम् उपसर्ग पूर्व 'कृ' धातु से क्त प्रत्यय जुड़कर निष्पन्न 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है– शुद्ध, परिमार्जित भाषा।**[4] **'सम्यक् कृतमिति संस्कृतम्'**[5] इस व्युत्पत्ति के द्वारा इस भाषा का नाम ही इसके महत्त्व को स्पष्ट कर देता है। संस्कृत भाषा भी सर्वथा दोषरहित, पूर्णरूपेन परिष्कृत एवं सर्वश्रेष्ठ भाषा है। इस कारण यह भाषा देवभाषा, सुरभारती, गीर्वाणवाणी, अमरभारती आदि नामों से जानी जाती है तथा वैयाकरणिक दृष्टि से 'संस्कृत' शब्द में संयुक्त 'क्त' प्रत्यय भी यह द्योतित करता है कि इस भाषा और इससे संवलित परम्पराओं के संस्कार की प्रक्रिया पहले कभी घटित हो चुकी है। इस अर्थ में संस्कृत भाषा और इससे संवलित परम्पराएँ अतीत का हिस्सा है। यह अतीत हमें एक दर्पण भी देता है, जिसमें हम अपने आपको पहचान सकें। "संस्कृत और उसकी परम्पराओं के द्वारा रचा गया यह दर्पण एक ऐसा विराट् दर्पण है, जो व्यक्ति, समाज और विश्व को उसकी अपनी पहचान कराता रहा है और अभी करा सकता है।"[6]

संस्कृत भाषा न केवल भारतीय भाषाओं अपितु विश्व की सभी भाषाओं में सर्वाधिक प्राचीन भाषा है। समस्त भारतीय भाषाओं की जननी होने के कारण संस्कृत भाषा में ही इनके जीवन

---

1. निरुक्तम्
2. निश्शेषेण उक्ता निरुक्ता। –डॉ. विक्रमजीत, वर्णोच्चारण शिक्षाशास्त्र, पृ.55
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.711
4. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी–रचनानुवादकौमुदी, पृ.17
5. डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल–संस्कृत व्याकरण, पृ. 323
6. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी–संस्कृत का वैश्विक परिदृश्य, सं. प्रो. श्रीकृष्ण शर्मा–संस्कृत, संस्कृति और प्रशासन, पृ. 17

सूत्र निहित है। इसीलिए डॉ. के.एम. मुंशी जी ने सत्य ही लिखा है– " Without sanskrit, India will be nothing but a bundle of linguistic groups."[1] न केवल प्राचीनता अपितु इसकी अद्‌भुत सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यपरक साहित्य समृद्धि, वैज्ञानिकता, धर्म–दर्शन–अध्यात्म–कला आदि विविध ज्ञान–विज्ञान से परिपूर्णता तथा प्रयोग व व्यवहार में सरलता आदि गुण इसके माहात्म्य एवं वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करते हैं।

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति व उसके मूल्यों की वाहिका उस देश की भाषा होती है। यदि उस राष्ट्र के लोगों को उनकी भाषा पृथक् कर दिया जाये तो उस देश की संस्कृति व उस राष्ट्र का स्वतः अधःपतन हो जाता है। यही कुत्सित प्रयास विदेशी आक्रान्ताओं–मुगलों, अंग्रेजों आदि ने किया। यहाँ की उन्नत सांस्कृतिक धरोहर के प्राणभूत साहित्य एवं पुस्तकालयों की होली जलायी गयीं। अंग्रेजों ने अपने आधिपत्य में मैकाले की पद्धति अनुसार राजकीय कार्यों में अंग्रेजी को आगे बढ़ाया तथा संस्कृत सहित अन्य भारतीय भाषाओं को उपेक्षित किया गया। औद्योगिककीरण के प्रभाव स्वरूप अर्थ (नौकरी) देने वाली भाषाओं के प्रति भारतीय युवक उन्मुख हुए। फलस्वरूप भारतीय संस्कृति की प्राणमूलक संस्कृत भाषा की तस्वीर कुछ धुँधला गई। यहाँ तक की उस पर मृत भाषा होने के आरोप और कोई नहीं अपने लोग ही लगाने लगे। यही देश व वेदना से आहत हुए हमारे संस्कृत मनीषी एवं विद्वज्जन। उन्होंने समय व काल की नब्ज को पहचाना और जुट गये संस्कृत भाषा को पुनः निजगौरव दिलवाने में। इसके लिए उन्होंने विविध मंचों व लेखनी का सहारा लिया। और अनवरत जुटे रहे अपनी साहित्य–साधना में। लोगों को संस्कृत की ऊँचाईयों से रूबरू कराया तथा अपनी जड़ों, जो संस्कृत में गहराईयों तक निहित है, के प्रति सचेत किया। ऐसे ही प्रखर चिन्तक, विद्वान्, कवि व लेखक हैं– कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र। मिश्र जी ने अपने अध्ययन काल में जो संस्कृताराधना का वीड़ा उठाया, वह अद्यावधि अनवरत जारी है।

कविवर मिश्र जी ने साहित्य की न केवल परम्परागत विधाओं–महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतकाव्य, स्तोत्रकाव्य, नाटक, नाटिका, एकांकी प्रहसन आदि को अपनी सृजनधर्मिता से समृद्ध किया अपितु अभिनव विधाओं–संस्कृत गलज्जलिका, संस्कृत लोकगीत, वैदेशिक छन्द, यात्रा–वृत्तान्त, राष्ट्रभक्ति परक साहित्य, नवगीत, रेडियो रूपक, लघु–कथा, टुप् कथा आदि

---

1. डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल, संस्कृत व्याकरण, पृ. 323

विधाओं में भी प्रचुर साहित्य लिखा तथा संस्कृत भाषा की सार्वकालिकता, समन्वयशीलता, महानता एवं वैशिष्ट्य से पूरी दुनिया को परिचित करवाया। वैसे तो उनके समस्त साहित्य में संस्कृत भाषागत यह चेतना परिलक्षित होती है किन्तु उनका संस्कृत नवगीत साहित्य तो मानो इसी ध्येय से लिखा गया हो। संस्कृत भाषा मूलक यह सजगता उनके नवगीतों में बड़ी ही मुखरता और बेबाक अन्दाज के साथ अभिव्यक्त हुई है।

संस्कृत भाषा पर मृतभाषा होने के आक्षेप के विषय में कविवर अभिराज जी अपने लेख 'अर्वाचीनसंस्कृतवाङ्मयम्' में लिखते हैं कि– **"यथा भोजनशयनगमनादिव्यापारमहिम्नैव मानवस्सचेतनः संलक्ष्यते तथैव सतताभिनववाङ्मयसर्जनयैव भाषाऽपि जीवन्ती गतिमती चाङ्गीक्रियते। लैटिनभाषा नामशेषा जाता। कस्मात्? अभिनवसर्जनाऽभावात्। चिरं यावन्नाम शेषतामुपगता हिब्रूभाषाऽपि संस्थापिते सति इसरायलराष्ट्रेऽभिनवसर्जनामहिम्नैव पुनर्जीविता तत्रत्यैः जनैः। अतएव देववाणीमपि नित्यं परिस्फुरन्तीं जीवन्तीञ्च साधयितुं प्रत्यग्रवाङ्मयप्रणयनं न केवलमावश्यकं प्रत्युतानिवार्यमपि। ब्रिटिशशासनकालेऽपि भारतवर्षस्वमनङ्गीकुर्वद्भिः कैश्चन ईर्ष्याकषायितचेतोभिः मूर्खैः अनयैव भ्रान्त्या देववाणी मृतभाषेति घुष्टम्। परन्तु प्रश्नोऽयं प्रस्टव्यः तान् मूढान्–किं देववाण्यां कस्मिन्नपि युगे, कस्मिन्नपि शतके, कस्मिन्नपि वर्षे मासे पक्षे सप्ताहे दिने प्रहरे होरायां क्षणे वा वाङ्मयप्रणयनं निरुद्धम्? यदि पुनः संस्कृते नित्यसर्जना प्रवृत्ता तर्हि कथं भाषेयं मृता? वस्तुतो न खलु देववाणी भूता, एवं चिन्तयमानास्ते हीनसत्त्वाः क्षुद्रसमीक्षका एव मृताः। मया तु स्वोपज्ञगीतिकायामद्यापि विशदीक्रियते[1]"** यत्–

इयमार्षतपोनिधिसञ्चयिनी
विपदां शमनी वसुधोज्जयिनी
इयमञ्चितसंस्कृतिकीर्तिकथा
पुनरद्य भुवं मदयिष्यति वा!!
अमृतादधिकं परिपोषकरी
सुकृतादधिकं भवदोषहरी।
पदबन्धरसामृतचारुचयैश्–
चितिनीरसतां रसयिष्यति वा!!

---

1. सं. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा, पृ. 3

न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा!![1]
पुष्पिते फलान्विते तरौ शुष्यति क्व मूलमूर्जितम्
घोषयन्ति तत्कथं खला भारतेऽद्य संस्कृतं मृतम्।।[2]

किन्तु स्थिति में उतार–चढ़ाव अवश्य आये हैं। सत्ता परिवर्तन के साथ–साथ संस्कृत व संस्कृत अध्येताओं की दशा परिवर्तनशील अवश्य रही है। कविवर मिश्र श्री लिखते हैं कि संस्कृत भाषा के विकासार्थ जो कार्य होने चाहिए थे, वे नहीं हुये। इस कारण संस्कृत भाषा–भाषियों की दशा ठीक नहीं है–

अवाप्तौ न सौख्यं समाप्तौ न सौख्यम्!
जनानामिदानीं क्वचिन्नास्ति सौख्यम्!!
गृहे चत्वरे ग्रामके वा पुरे वा!
जडव्याकुले संस्कृतानां न सौख्यम्!![3]

संस्कृत भाषा की उपेक्षा पर कवि ने गहरा आक्रोश व्यक्त किया है। कितने दुर्भाग्य की बात है कि देववाणी आज असहाय होकर याचना कर रही है। जिस भाषा ने एक समृद्ध, पुष्कल साहित्य से भारतीयों की गोद भर दी तथा उन्हें उन्नति के शिखर पर आरुढ किया, अनेकों वैज्ञानिक चमत्कारों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की और भटकते हुए विचलित मानव को शान्ति का पाठ पढ़ाया। आज वही संस्कृत भाषा दुःखी मन से अश्रु बहाती हुयी दर–दर भटक रही है–

वेदशास्त्रेतिहासत्रिवेणी नवा
ज्ञानविज्ञानशैलेन्द्रसानूद्भवा।
निर्जरैर्नन्दिता कोविदैर्वन्दिता
क्लिश्यते साऽद्य नग्नाटिनां नाटके।।
देववाणी व्यथोच्छूननेत्राऽधुना
हिण्डते हन्त! कारुण्यशृङ्गाटके!![4]

---

1. श्रुतिम्भरा, संस्कृतध्वनिः–न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा, पृ. 40–41 तथा अभिराजगीता, सुरभारतीगीतम्–न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा, पृ. 48
2. अभिराजगीता, राष्ट्रध्वनिः (विपन्नराष्ट्रम्)–कोऽपि नो शृणोति वाचिकम्, पृ. 94
3. वही, आत्मध्वनिः–क्वचिन्नास्ति सौख्यम्, पृ. 110–111
4. श्रुतिम्भरा, संस्कृतध्वनिः–कारुण्यशृङ्गाटके, पृ. 42

आज संस्कृत भाषा जिसके कारण भारत विश्वगुरु के रूप में पूजित रहा है, अपने अस्तित्व के प्रति आखिर सशंकित क्यों है? यह प्रश्न लगभग समस्त कवियों के मानस–पटल पर कौंधा अवश्य है। इसलिये अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी भारतीयों से यह प्रश्न पूछने को विवश हैं–

क्वास्ति पाण्डितीविकासो देवभाषया विना?
क्वास्ति संस्कृतिप्रकाशो देवभाषया विना?
वेदशास्त्र–काव्यनाट्य–लोकवृत्तमण्डितः
क्वास्ति भावनाविकासो देवभाषया विना?[1]

भारतीय संस्कृति और संस्कृत एक–दूसरे में इस प्रकार रची–बसी है कि एक के बिना दूसरी की कल्पना करना व्यर्थ है। सनातन जीवन मूल्यों को अपने अन्दर समेटे हुयी भारतीय संस्कृति तथा संस्कृति व ज्ञान–विज्ञानमूलक सकल साहित्य संस्कृत में ही उपनिबद्ध है। जैसे–जैसे हम संस्कृत भाषा से विमुख होते जा रहे हैं, वैसे–वैसे हम अपनी संस्कृति, जीवन–मूल्यों, संस्कारों, ज्ञान–विज्ञान, अध्यात्म, धर्म और दर्शन से भी दूरी बनाते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप हमारी स्थिति उस जौहरी की भांति हो गयी है जो संस्कृत रूपी मणि तथा उसमें उपनिबद्ध ज्ञान–विज्ञान रूपी हीरे–जवाहरातों को छोड़कर रंग–बिरंगे–चमकीले पाषाणों को अपने गले लगाकर घूम रहा है। जैसे–जैसे हम संस्कृत से पृथक् होते जा रहे हैं, वैसे–वैसे समाज में अद्यः पतन देखने को मिल रहा है। समाज में अनेक विकृतियाँ आ गयीं है। कदाचार, संयमहीनता, चरित्रहीनता, चोरी, डकैती, भ्रष्टाचार, दहेजप्रथा, हिंसा आदि दुर्गणों का सर्वत्र ताण्डव सा दिखाई दे रहा है। भाई–भाई को मार रहा है, सन्तान अपने माँ–बाप का सम्मान नहीं कर रही है, रिश्ते तार–तार हो रहे हैं, ऐसी–ऐसी समस्याएँ व कुसंस्कृतियाँ विकसित हो रही हैं जिनको हम शब्दों से बयां करने में हिचकिचाते हैं और इस विकृत स्वरूप को व आचरणों को हम अवाक् व आश्चर्यवत् देख रहे हैं। परस्पर चर्चा भी करते हैं कि अब तो कलियुग आ गया है, हम क्या करें, नई पीढ़ी में संस्कार नाम की चीज नहीं है इत्यादि इत्यादि।

यदि इस स्थिति पर हम जरा ठहरकर व शान्ति से विचार करें तो हम पायेगें कि जिन बच्चों को हमने हमेशा नौकरी के लिए दौड़ाया है, पैसा कमाने के लिए उकसाया है और वैसी

1. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः गीतयः–देवभाषया विना, पृ. 76

ही शिक्षा दिलवायी है, तो फिर जिस चीज को उसे सिखाया ही नहीं गया, उससे संस्कारयुक्त आचरण की हम अपेक्षा भी कैसे कर सकते हैं? इसी समस्या की मूल जड़ को पहचाना हमारे ऋषिकल्प व समाजहित में दिन–रात लेखनरत कवियों ने, लेखकों ने तथा युगदृष्टाओं ने। कविवर अभिराज जी कहते हैं कि हम अपने ज्ञान–विज्ञान से परान्मुख होते जा रहे हैं। हमें पुनः अपनी जड़ों की ओर लौटना होगा, तभी जाकर भारत फिर से शिखरारूढ़ होगा। न केवल भारत अपितु भारतीय संस्कृतिपरक दृष्टिकोण से सम्पूर्ण विश्व में शान्ति और सहिष्णुता का वातावरण विकसित किया जा सकता है और यह चिन्तन हमें प्राप्त होता है संस्कृत भाषा के अध्ययन–अध्यापन से। हम चाहे इस बात को नहीं माने किन्तु विदेशी धरती पर इस सत्य को मानना शुरु कर दिया है। वे लोग हमारे प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों पर शोध को बढ़ावा दे रहे हैं तथा उस शोध–प्राप्त ज्ञान को अपने नामों से पेटेन्ट (अनुबन्धित) करवाने में संलग्न हैं। अतः संस्कृत भाषा का पुनः प्रचार–प्रसार हो। प्रत्येक भारतीय निजगौरव को पहचाने–

संस्कृतमयं भवतु मम राष्ट्रम्।
नवगौरवं दिशतु मम राष्ट्रम्।।
पुनरुद्भवेत् त्रयीसन्देशः
उपनिषदां सौराज्यनिवेशः
द्युतिवैभवं धरतु मम राष्ट्रम्।
नवगौरवं दिशतु मम राष्ट्रम्।।
विना संस्कृतं कुत्र संस्कृतिः
विना संस्कृत कुत्र निष्कृतिः
तत्त्वमिदं कलयतु मम राष्ट्रम्।
नवगौरवं दिशतु मम राष्ट्रम्।।
ये संस्कृतविरोधिनो जाताः
तेषां भवतु परेशस्त्राता
तान् मर्षयतु सन्ततं राष्ट्रम्।
नवगौरवं दिशतु मम राष्ट्रम्।।[1]

1. श्रुतिम्भरा, संस्कृतध्वनिः–संस्कृतमयं भवतु मम राष्ट्रम्, पृ. 35–37 तथा अभिराजगीता, सुरभारतीगीतम्, पृ. 45

वर्तमान समाज की समस्त समस्याओं के समाधान संस्कृत भाषा में विद्यमान है। यह व्यक्ति को व्यक्ति से, व्यक्ति को समाज से समाज को राष्ट्र से तथा राष्ट्र को सकल विश्व से जोड़ने की क्षमता रखती है। तथा उसका व्यवहारिक पक्ष क्या है? इस पर दृष्टि डालते हुये मिश्र जी लिखते हैं।

ग्रामे–ग्रामे गेहे–गेहे शं तनोतु संस्कृतम्
कर्णे–कर्णे कण्ठे–कण्ठे कं तनोतु संस्कृतम्!!
एकसूत्रतां विधाय
विश्वबन्धुतां निधाय
प्रीतिभा–रतन्नु भारतं करोतु संस्कृतम्!!
वेदसंस्कृतिं प्रसार्य
लोकनिष्कृतिं निवार्य
व्यासवाल्मीकिकालिदासमेतु संस्कृतम्!![1]

संस्कृत भाषा अपने गुणों, ज्ञान–विज्ञान, धर्म–दर्शन, विश्वबन्धुत्व, लोककल्याणपरायणता इत्यादि के कारण सर्वश्रेष्ठ भाषा है। इसके माहात्म्य को प्रतिपादित करता कवि का यह गीत यहाँ उद्धरणीय है–

जयति विबुधवाणी (ओम्) जयति विबुधवाणी
नवरसरुचिरपदाढ्या जनजनकल्याणी।।
वेदपुराणशिवागमषड्दर्शनमहिता
गद्यपद्यकाव्योभयविविधभेदसहिता।।
क्रौञ्चवधाच्छ्लोकत्वं याता कवेर्व्यथा
विश्वदुरितहन्त्री सा रामायण कथा।।
पाश्चात्योऽपि विपश्चितच्छ्रीविल्सननामा
यत्कवितामधु पीत्वा जातोऽश्वत्थामा।।

1. मृद्वीका, प्रकीर्णम्–शं तनोतु संस्कृतम् (ऊनपञ्चाशत्तमी गीतिः), पृ. 73 तथा अभिराजगीता, सुरभारतीगीतम्, पृ.34

सुरवाणीनीराजनगीतमिदं महितम्
जनरूचिपोषकरं स्यादभिराजैर्भणितम्।।[1]

अतः कविवर अभिराज जी चाहते हैं कि संस्कृत भाषा, भारतीय संस्कृति तथा स्वयं भारतवासियों को स्वयं निजगौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा को उचित स्थान मिलना अपरिहार्य हो जाता है और वर्तमान परिदृश्य में बिना राजनीतिक सम्बल के यह सम्भव नहीं है। इसे समय की आवश्यकता कहो या हमारी मजबूरी कि संस्कृत को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना जरुरी है। साथ ही इसके प्रचार–प्रसार की भी महती आवश्यकता है–

राष्ट्रभारती भवतु संस्कृतम्।
लोकभारती भवतु संस्कृतम्।।
सर्वासां वाचां जनयित्री
भारतीयभावनासवित्री
निखिलभारतं पठतु संस्कृतम्।
राष्ट्रभारती भवतु संस्कृतम्।।
राष्ट्रियपशुः केसरी घुष्टः
गृहे–गृहे तत् किमसौ दृष्टः
महिमानं घोषयतु संस्कृतम्।
राष्ट्रभारती भवतु संस्कृतम्।।
भवतु संस्कृतं राष्ट्रियभाषा
नूनमुदेष्यति सहगमनाशा
नवराष्ट्रं विदधातु संस्कृतम्।
राष्ट्रभारती भवतु संस्कृतम्।।[2]

प्रायः देखने में आता है कि भाव विशेष के लिए अभिव्यक्ति की शताधिक मुद्राओं व भाविक संरचनाओं का जितना वैविध्य लोक भाषा में मिलता है उतना परिनिष्ठित भाषा में नहीं। परिनिष्ठित भाषा कालान्तर में रूढ़ या फिर एक परिपाटी लगने लगती है किन्तु भाषा के देशी रंग में जीवंतता और स्फूर्तिदायक ऊर्जा बराबर वर्तमान रहती है। बोलियों की शब्दावली लोकगंध

1. मधुपर्णी, पृ. 74–75 तथा अभिराजगीता, पृ. 52, जयति विबुधवाणी
2. श्रुतिम्भरा, संस्कृतध्वनिः–राष्ट्रभारती भवतु संस्कृतम्, पृ. 38–39 तथा अभिराजगीता, सुरभारतीगीतम्, पृ.45

की ऊष्मा से युक्त होने के कारण आकर्षक नवता लिये होती है। इस सम्बन्ध में रैल्फ फॉक्स का यह कथन सहज प्रामाणिक एवं विश्वसनीय लगता है– "अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा जखीरा हर जाति की लोक–भाषा में मौजूद है। न ही इस भाषा को आज तक किसी ने मरते सुना है, यों उसमें संशोधन बराबर होता रहा है।"[1]

नवगीत ने अभिव्यक्ति के लिए जिस शब्द–माध्यम को अपनाया वह भाषा–विन्यास का एक नया लोक है। उसमें तत्सम शब्दों की उपेक्षा और तद्भव से परहेज नहीं किन्तु इस शब्दावली के ज्यों–त्यों सहज स्वीकार की अपेक्षा देशी रंग में ढालकर या उसे लोक संस्कार देकर अपनाने की प्रवृत्ति नवगीत में विद्यमान है। वास्तव में इस विधा में भाषा को देशीपन देने का सार्थक प्रयत्न किया गया है। साथ ही लोकरागों की पुनर्सृष्टि भी देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि– "पण्डितों की बँधी प्रणाली पर चलने वाली काव्य–धारा के साथ–साथ सामान्य अनपढ़ जनता के बीच में एक स्वच्छन्द और प्राकृतिक भावधारा भी गीतों के रूप में चलती रहती है– जब–जब शिष्टों का काव्य पण्डितों द्वारा बँधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा तब–तब उसे सजीव और चेतन प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छन्द बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन तत्त्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।"[2]

अतः नवगीत की इस प्राकृतिक भावधारा की महानीयता को पहचानकर तथा संस्कृत को लोकभाषा का स्वरूप दिलवाने के उद्देश्य से हमारे अर्वाचीन संस्कृत रचनाकारों ने न केवल भारत के विभिन्न क्षेत्रों व ग्रामीण अञ्चलों में प्रचलित लोकगीत विधाओं व रागों में अपितु वैदेशिक छन्दों में भी अपनी रचनाएँ लिखी हैं। कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी उनमें से अन्यतम हैं। अतः साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाली शोध–पत्रिका 'संस्कृतप्रतिभा' में प्रकाशित स्वात्मनिवेदन स्वरूप अपने लेख 'प्रत्यग्रं लोकगीतप्रकरणम्' में मिश्र जी स्वयं लिखते हैं– **"वस्तुतः लोकं संस्कृतमनस्कं विधातुमेव मया लोकगीतं समाश्रितम्। यदि लोकप्रचलित–लयैर्गीयमानानि गीतानि शिष्टसंस्कृतसमाजे साहित्ये चापि प्रतिष्ठितानि स्युस्तर्हि समेषां विश्वासो दृढ़तामुपयास्यति।**

1. रैल्फ फॉक्स : उपन्यास और लोकजीवन : (अनु. नरोत्तम नागर), पृ. 135
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 600–601

इति धियैव मया 1970 मितख्रिस्ताब्दे प्रकाशिते–स्वोपज्ञकाव्यसङ्कलने (वाग्वधूटीति) इदम्प्रथमतया चैत्रक–(चैता चैत्ती वा) कजरी सूतगृहगीत–(सोहर) गलज्जलिकेति (गजल) चतुर्णां लोकगीतानामुदाहरणानि, तत्तन्मूलसंज्ञानां व्याख्यासहितं प्रस्तुतानि। यद्यपि गलज्जलिका नास्ति किञ्चिल्लोकगीतम्। सा तु सर्वथा स्वतन्त्रा, पारसीकगजलानुहारिणी गीतिः।"[1]

इसी क्रम में मिश्र जी आगे लिखते हैं कि– "कदाचित् (मम शैशवे) संगीतं जीवन्नासीत् समाजः। इदानीम्पुनर्निगीतं जीवति। यथोक्तं मया–

जीवनस्य न तत्कृत्यं न च कश्चिदुपक्रमः।
आरभेत न यो गीतैः सर्वमङ्गलकारकैः।।

कण्डिनीपेषिणीगीतं बाल्यकाले मया श्रुतम्।
गीयमानं ममाम्बाभिर्हन्त ते दिवसा गताः।।"[2]

इस प्रकार कविवर मिश्र जी अर्वाचीन संस्कृत के सशक्त हस्ताक्षर हैं। संस्कृत के माहात्म्य को उनसे बहतर कौन बयां कर सकता है। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन सुरभारती की सेवा में समर्पित कर दिया है–

श्रान्तोऽहं भवकटुवञ्चनया
त्वमसि जननि! मम यानम्!!
जीवय पोषय हासय वर्धय
प्रेरय काव्यललामम्!![3]

हाँ इतना अवश्य है कि गीतकार ने स्वयं को अपने साहित्य के जिस रासरंग का कवि कहा है उसका परिक्षेत्र सौन्दर्य एवं प्रेम के नायिका–सापेक्ष लोक से ही प्रारम्भ होता है तथा उसी में उसका समापन भी होता है। गीतकार मिश्र जी तो आधुनिक संस्कृत कविता को ही एक नायिका के रूप में परिकल्पित करते हैं तथा स्वयं को उस नायिका का अभिधासमान 'लावण्य' कहा है। इस प्रकार 'संस्कृत वाग्वधूटी' का चित्रण करते हुए मिश्र जी लिखते हैं–

---

1. संस्कृतप्रतिभा, अङ्क : (जुलाई–सितम्बर, 2016), उन्मेषः 60, पृ. 60
2. वही, पृ. 61
3. अभिराजगीता, वागीश्वरीगीतम्–महामाये! को नु भणतु महिमानम्, पृ.16

प्रागल्भ्यं काश्यपोऽस्याः प्रणतिपरिमितो बच्चुलालोऽपि मानः
कारुण्यं श्रीनिवासस्स्मितचटुलकला भास्करो वल्लभोऽङ्कः।
रोषः कान्तो रमाया निभृतरसकथा दीक्षितव्यूढपुष्पा
लावण्यञ्चाभिराजो जयति नवनवा संस्कृता वाग्वधूटी।।[1]

(ञ) पर्यावरण–चेतना

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।
शृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयञ्जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्।।
भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत्।
व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया।।[2]

अर्थात् जिस प्रकार काव्य कवि की अभिरूचि के अनुकूल रस को धारण करता है, उसी प्रकार तदभिमत लोकचित्रण, तदभिमत जीवन–दर्शन, तदभिमत लोकसंवेदना–यहाँ तक कि उसकी अभिरूचि के ही अनुकूल काव्य का विषय बनने वाले सम्पूर्ण संविधानक को धारण करता है। ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन के इस मतानुसार काव्यवस्तु अथवा समूची काव्यकृति सर्वात्मना कवि की इच्छा के अनुरूप ही तदभिमत रसाङ्गता को धारण करती है। कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र के अनुसार 'तदभिमतरसाङ्गतां' शब्द यहाँ उपलक्षण मात्र है।[3]

इस मतानुसार रचनाकार पूर्णतः निर्बन्ध व स्वच्छन्द होता है। "पर्यावरण संरक्षण हेतु सजग रहना मानव मात्र का सर्वोच्च दायित्व है। पर्यावरण चेतना से तात्पर्य है कि मनुष्य यह समझे एवं स्वीकार करे कि प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ संगति रखने में सुख एवं समृद्धि है एवं प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ विसंगति में वेदना एवं विभीषिका अन्तर्निहित है। पर्यावरण चेतना का रचनात्मक स्वरूप यह है कि मनुष्य पारिस्थितिकीय संतुलन को सुरक्षित रखे।"[4]

---

1. श्रुतिम्भरा, संस्कृतध्वनि, पृ. 30
2. दृग्–भारती, अंक–6, जुलाई–दिसम्बर, 2001 ई., पृ. 2 तथा ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत।
3. दृग्–भारती, अंक–6, जुलाई–दिसम्बर, 2001 ई., पृ. 2
4. डॉ. नन्दिता सिंघवी–वेदों में पर्यावरण चेतना, पृ. 01

पर्यावरण पद परि तथा आङ् उपसर्गपूर्वक वरणार्थक वृङ् एवं वृञ् धातुओं से ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। परि का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है ढकना अथवा आच्छादन करना। इस प्रकार पर्यावरण एक आवरण है जो जीव–जगत् को चारों ओर से आवृत्त किये रहता है– परितः आवृणोति जीव जगदिति पर्यावरणम्। इसी प्रकार 'चिती' संज्ञाने धातु से निष्पन्न चेतना शब्द का अर्थ ज्ञान है।[1] इस प्रकार पर्यावरण के प्रति जागरुकता या चेतना ही पर्यावरण चेतना है।

प्रकृति मनुष्य की चिर सहचरी रही है। मनुष्य प्रकृति के सानिध्य से ही विकास के विविध सोपानों को पार कर सका है। मानव–जीवन में प्रकृति की अपरिहार्यता व उपयोगिता से हमारे प्राचीन मंत्रद्रष्टा ऋषि परिचित थे, यही कारण है कि वेदों में प्रकृति के हर रूप की उपासना की गई है। तब से लेकर आज तक हमारे संस्कृत कवियों, लेखकों, चिन्तकों व विचारकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से पर्यावरण के प्रति अपनी तीव्र अभिव्यक्ति की है। हमारे इन कवियों की रचनाओं में नानारूपों में प्रकृति व पर्यावरण को अभिव्यक्ति मिली है। साहित्य की प्रत्येक विधा में प्रकृति व पर्यावरण प्रमुख घटक रहे हैं। नवगीत साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है क्योंकि प्रकृति नवगीत कविता का एक विशिष्ट उपादान है। लोक जीवन की प्रकृति से गहरी संशक्ति है क्योंकि प्रकृति का वैविध्य ही लोकजीवन में प्रेरणा, साहचर्य और सौन्दर्य की सृष्टि करता है। नवगीत इसी लोक संवेदना का काव्य है अतः उसने प्रकृति के उपादानों और उसकी आवश्यकताओं को गहराई के साथ आत्मसात किया है। नवगीत में स्थानीय रंगों, प्राकृतिक दृश्यों, पेड़–पौधे, नदी–नाले, पर्वत, जंगल, झरना, द्वीप आदि का उल्लेख अपनी एक अलग विशिष्टता के साथ उपलब्ध होता है। जहाँ वह पारम्परिक रमणीय रूपों में नहीं अपितु अपनी अलग सौन्दर्य सत्ता रखते हुए मानवीय अनुराग त्रासद सन्दर्भों और बिम्बों के रूप में उपस्थित हुई है। नवगीत में प्रकृति निरपेक्ष सत्ता नहीं है बल्कि वह मानव–जीवन का अभिन्न अंग या सामाजिक हिस्सा बनकर प्रस्तुत है।

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीत–रचनाओं में प्रकृति व पर्यावरणमूलक चेतना की अभिव्यक्ति सहज रूप में हुई है। 'मधुपर्णी' इस नवगीत संकलना का तो प्रारम्भ ही 'धूमतां यामो वयम्' तथा समापन 'वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य' इस रचना के साथ होता है। इन दोनों रचनाओं में ही लोककल्याणार्थ जीवन–समर्पण की भावना व्यक्त हुई है। रचना को

1. डॉ. नन्दिता सिंघवी–वेदों में पर्यावरण चेतना, पृ. 02 व 03

इस प्रथम गलज्जलिका में सृष्टि—यज्ञाग्नि में जीवन हवि का अर्पण कर स्वयं को धूम्र बनाने और सृष्टि चक्रानुसार धुएँ से मेघ और मेघ से जलरूप वर्षा कर पुनः सृष्टि की सर्जना में अपना योगदान देने की भावना कविवर मिश्र जी ने व्यक्त की है। साथ ही यह भी संकेत किया है कि 'पर्यावरण संरक्षण' मानव जीवन का प्रथमोद्देश्य है। इस ग़ज़ल गीति के माध्यम से कविवर कहते हैं कि हमें लोककल्याण तथा सृष्टि—प्रक्रिया को मन में धारण करके अपने कर्म करने चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे तो प्राकृतिक संतुलन बना रहेगा तथा मानव—जीवन भी सुखी व समृद्ध रहेगा। हम प्रकृति का जितना दोहन करें, उतना ही उसके पुनर्भरण का कार्य भी करें। हमारी जीवनदृष्टि सदैव विश्वकल्याण में लगी रहे, यही चिन्तन कवि की इस रचना में हमें दृष्टिगोचर होता है—

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्
धूमतो धनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।
चिन्वता सुमनो धिया मां नोचितं भवता कृतम्
परिमलैर्वासन्तिकैः श्वसितानि कलयामो वयम्।।
संचिनोतु सुखं स्वकीयं, बन्धुनिवहार्थं भवान्
वन्यतृणकल्पाभिराजं साधु निवयामो वयम्।।[1]

'वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य' गीत में कवि ने हमें सन्देश दिया है कि प्रकृति का कोई भी अंश व्यर्थ नहीं है। जरुरत है हमें विवेकपूर्ण सदुपयोग करने की। एक शुष्क वृक्ष जिस प्रकार फर्नीचर, ईंधन, जलावन तथा अन्त्येष्टि इत्यादि नानारूपों में मानव—जीवन के लिए उपयोगी होता है। किन्तु इसकी भी सीमा है। यदि स्वार्थवश यह दोहन शोषण में बदलता है तब प्रकृति का सृष्टि चक्र बाधित हो जाता है और प्रत्येक जीव को इसका खामियाजा चुकता करना पड़ता है मानो शुष्कवृक्ष के रूप में स्वयं प्रकृति हमें यह समझा रही हो—

ममाऽप्यन्तस्समागतः
शुष्कतामुपेत्य मृतोऽहमद्य।।
परं भो नाऽयं मृत्युर्निरर्थकः

1. मधुपर्णी, गलज्जलिकाः प्रथमखण्डः—धूमतां यामो वयम्, पृ.13

निधनमपि सार्थकीकृत्य यास्याम्यहम्
ममदृढकाष्ठैः संघटयत पर्यङ्कान्
मम शाखावचयैः पचत पक्वान्नानि
तेनैवाहं पुनर्जीविष्यामि।।[1]

आज मानव की सोच इतनी संकीर्ण तथा छोटी हो गयी है कि वह 'स्व' के अलावा कुछ सोच ही नहीं पाता। सृष्टि की सारी सामग्रियों को मानों वह अपनी बाहों में समेट लेना चाहता हो। इस कारण उसने नदी–नालों व पोखरों के किनारों एवं तटों पर कब्जा कर लिया गया है। उन पर ऊँची–ऊँची अट्टालिकाएँ खड़ी कर दी गयी हैं–

नदी श्यानपुलिना तन्वङ्गी सञ्जाता
जानुदहनसलिला सिकताचयसंघाता
उपेक्षिता नौर्न जलं गाहते
कस्मै खलु हविषा विधेम?[2]

आज नदी–नालों में गन्दी नालियों का पानी, मानव–मल तथा औद्योगिक संयन्त्रों से निकले घातक अवशिष्ट पदार्थों का विसर्जन किया जा रहा है। आज गङ्गा नदी जैसी पवित्र–नीरा, पापमोचिनी नदी तक प्रदूषण की भेंट चढ़ चुकी है तो फिर आम नदियों की स्थिति का तो सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। आज नदियों का जल पीने योग्य तो दूर नहाने योग्य भी नहीं रह गया है। केन्द्र व राज्य सरकारों ने अनेक परियोजनाएँ इनके शुद्धिकरण हेतु चला रखी हैं। जो गङ्गा नदी अभी तक इंसानों के पाप साफ कर रही थी आज वही गङ्गा इंसानों के द्वारा शुद्ध की जा रही है। इसी विकराल स्थिति का चित्रण व्यंग्यात्मक रूप में कवि मिश्र जी अपनी पंक्तियों में इस प्रकार करते हैं–

क्षणस्थायिता दृश्यते सङ्गमानाम्
धराशायिता लक्ष्यते जङ्गमानाम्।।
किमद्यापि पापक्षयो गाङ्गनीरैः
स्वयं पापिभिः शोधनं यज्जलानाम्।।[3]

---

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः मुक्ताच्छन्दांसि–'वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य' पृ. 139–140
2. वही, कस्मै खलु हविषा विधेम, पृ. 53
3. मधुपर्णी, स्फुटं मर्म किं नोऽभिराजस्वराणाम्, पृ. 22

यहाँ आज के स्वार्थी मानवों के लिए 'पापिभिः' शब्द का प्रयोग कवि ने साभिप्राय किया है क्योंकि जब इंसान अपनी सीमाओं को लांघकर भोक्ता की जगह भक्षक बन जाता है तब वह इंसान नहीं हैवान कहलाता है।

इस समय मानव जीवन अर्थप्रधान हो गया है इस कारण नैतिक मूल्य, प्राकृतिक धरोधर के प्रति सजगता, पर्यावरण चेतना इत्यादि सब गौण हो गये हैं। किन्तु मानव प्रकृति प्रदत्त सुख–सुविधाओं तथा मूल्यों को छोड़कर स्वयं के विनाश को ही आमन्त्रित कर रहा है–

सीमिता वयं भौतिकोन्नता–
वध्यात्मदृष्टिरधुना शीर्णा।
प्राप्तोऽप्राप्तो वा अनर्थमेव
जनयत्यर्थो, न रतिजीर्णा।।
क्व नु याति भारती–परम्परा
चिन्तय मुदितात्मन् नमोनमः।।[1]

'कैरविणी सन्ध्या' गीत में प्रयुक्त 'वाततरङ्गितवापीजलमिव' 'त्वमसि मदम्बरमणिपुनरुदये पुनर्नवा प्राची', 'स्थिरतामेति यथा तटिनी', 'समवाप्य महासिन्धुम्' इत्यादि प्राकृतिक उपमामूलक शब्दों व बिम्ब–प्रतीकों से युक्त वाक्यों के प्रयोग के द्वारा कवि परोक्ष रूप से हमें इन प्राकृतिक सम्पदाओं के संरक्षण व संवर्धन हेतु प्रेरित कर रहे हैं।

ममाऽभिशप्तजीवने त्वमागता तथा।
भागीरथाऽनुयाचिता सुरापगा यथा।।
अवाप तीर्थतामहो स्वयं तटं तटम्।
पराङ्मुखीकृताऽपराधसंचरद्भटम्।।[2]

कविवर भारतभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण कर हमें इसके संरक्षण के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं–

गङ्गा पुनाति भालं रेवा कटिप्रदेशम्
वन्दे सदा स्वदेशम्

1. मधुपर्णी, नमो नमः, पृ. 57
2. मधुपर्णी, त्वमागता तथा पृ. 61

एतादृशं स्वदेशम्!!
अचलो नु देवताऽऽत्मा वसुधाऽपि रत्नगर्भा
कुलिशायते यदस्थि प्रचुरं वनी सुदर्भा
केचिन्नमन्ति गिरिजं केचिच्च शालुवेशम्
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशं स्वदेशम्!![1]

हमारी संस्कृति, लोकगीत तथा लोकजीवन एक दिन किताब के पन्नों तक सीमित हो जायेंगे। प्रकृति के बिना इनकी कल्पना करना भी बेमानी है। अतः पेड़–पौधों, उद्यानों, सरोवरों, पर्वतों, खेतों–खलिहानों को उनके स्वाभाविक रूपों में सहेजना होगा। तभी हम अपनी आगामी पीढ़ी को इस प्राकृतिक ह्लादमय जीवन का उपहार दे पायेंगे। क्या प्रकृति के बिना इन लोकगीतों की हम कल्पना कर सकते हैं?

रौति कोकिला मदालसा रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे!!
क्षणं पल्लवे निलीय
मञ्जरीरसं निपीय
स्तौति सम्मुखं वसन्तकं रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे!!
नन्दनन्दनं विहाय
कीर्तिनन्दिनी सुखाय
वेत्ति नेषदप्यनामयं रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे!![2]

रिम्झिम् वर्षति सजलजलधरो
नृत्यति केकी कानने
गर्जति धावति नदति च कूर्दति
तारापथे पयोदो बाले!

1. वाग्वधूटी, वन्दे सदा स्वदेशम्!! तथा अभिराजगीता, पृ. 54
2. वही, कजरी (रौति कोकिला!!)

अयि भोः शिशुरिव नटति जलधरो
नृत्यति केकी कानने!![1]

हम तथा हमारे प्रशासक सभा–सम्मेलनों में तथा विचार गोष्ठियों में पर्यावरण संरक्षण के बड़े–बड़े नारे लगाते हैं, संकल्प लेते हैं, दिलवाते हैं, पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर बड़ा सा बजट भी जारी किया जाता है, वृक्षारोपण के नाम पर फोटो खिंचवाये जाते हैं, आंकड़े तैयार किये जाते हैं परन्तु क्रियात्मक रूप में कुछ नहीं, नगण्य मात्र। आखिर ऐसा क्यों? हम अपने युग–प्रवर्तक ऋषियों के उस संदेश– 'मनस्येकं वचस्येक कर्मण्येकं महात्मनाम्' को भूल गये हैं। हम प्रकृति–विकृति में से अपनी प्राथमिकता तय नहीं कर पा रहे हैं–

मनसि वचसि करणे यदि न भवेदमृतम्
क्षपयति सुरतटिनी नहि नहि नहि दुरितम्!!
प्रकृतिविकृतियुगले महनीयं प्रथमम्
नो जगतामिष्टं भवति यतो विकृतम्!![2]

हमारे धर्म–दर्शन के प्रेरणास्रोत तीर्थस्थल जो पहले प्राकृतिक, मनोरम तथा तपोस्थली नजर आते थे, जहाँ कदम रखते ही मन वहाँ के वातावरणीय शुद्धता के कारण सात्विक भावों से भर जाता था। व्यक्ति की जीवनदृष्टि बदल जाती थी, आज वे सब तीर्थस्थल दुर्दशा के शिकार हो चुके हैं। वे सब स्थान भोग और विलास के अड्डे बन चुके हैं। सुख–सुविधाओं व ऐशो–आराम की चाह ने इनका स्वरूप विकृत कर दिया है। इससे समाज का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक तथा मनोमय सर्वविध वातावरण कलुषित व असन्तुलित हो चुका है। इसी का सङ्केत करती हुयी कवि की निम्न पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

जीवितुं न शक्यते नेदृशे भारते!!
पावनी तीर्थभूमिर्विलासावनी
भोगसम्भोगपूर्तिप्रदा काञ्चनी
स्वर्णसारङ्गकेऽञ्चतृषे भारते!![3]

---

1. मृद्वीका, ऋतुश्रीः, द्विचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 60
2. वही, जिजीविषा, पंचत्रिंशत्तमी गीतिः, पृ.50
3. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, द्विचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ.60

पूतजाह्नवीजलं कैर्हलाहलीकृतम्!
हन्त रक्तरञ्जितं दृश्यतेऽद्य भारतम्!![1]
गाङ्गे जले केन विषबिन्दुः
सम्मेलितो हन्ति निजबन्धुः।।[2]

कविवर मिश्र जी भारतीय नवयुवकों, किशोरों व बालकों को गीत के माध्यम से प्रकृति संरक्षण की प्रेरणा दे रहे हैं। मिश्र जी कहते हैं कि बन्धु! हम जीवन में ऐसे काम करें जिससे हम गर्व से कह पायें कि हम कौन हैं? आओ हम सब मिलकर धरती को पुनः हरी–भरी व शस्य–श्यामला बनाएँ–

काममद्य बालाः सुकुमारा अल्पबाला निरुपायाः
काले समागते बन्धो! के वयमित्याख्यास्यामः।।
धरागर्भगतबीजसन्निभा वयमङ्कुरिता नूनम्
शनैः शनैः प्रकृतेरवलम्बैस्तीव्रतरं विकसामः।
क्षुपीभूय श्वस्तने प्रभाते, परः श्वस्तने वृक्षाः
घनच्छायशीतलाः न केषां सुखदायिनो भवामः।।
पुष्पैः फलैर्विहङ्गान् पथिकान् किन्न तोषयिष्यामः?
काले समागते बन्धो! के वयमित्याख्यास्यामः।।
हरितिम्ना संच्छाद्य धरित्रीं वयमलङ्करिष्यामः।
काले समागते बन्धो! के वयमित्याख्यास्यामः।।[3]

इस प्रकार कविवर मिश्र जी वर्तमान समय में हो रहे पर्यावरण–क्षरण पर गहरी चिन्ता व क्षोभ व्यक्त किया है। कहीं अपने स्वाभाविक बेबाक अन्दाज में तो कहीं संकेत मात्र तथा अनेकत्र प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन के द्वारा प्रकृति संरक्षण की भावना को अभिव्यक्ति दी है। अन्त में पुनः स्मरण दिलाकर तथा भारत के नैसर्गिक सौन्दर्य का मनमोहक चित्र खींचते हुए मिश्र जी के पर्यावरण–चिन्तन को यहीं विराम देते हैं–

---

1. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः, रक्तरंजितं दृश्यतेऽद्य भारतम्, पृ. 58 तथा अभिराजगीता, पृ.82
2. श्रुतिम्भरा, प्रवासध्वनिः, क्वासि गुरो गोविन्द?, पृ. 74
3. अभिराजगीता, शिशुभावनागीतम् के वयमित्याख्यास्यामः!!, पृ. 166

रक्तस्नातैः पलाशैर्गिरिशिखरपतद्वारिचञ्चत्प्रपातै–

र्युद्धोन्मत्तैरिवाभ्रैर्जलधरसमये संस्फुरच्चन्द्रिकाभिः।

शस्यक्षेत्रैः समृद्धैः शिक्षिनटनलसन्निम्नगोपान्तदेशैः

रूपैश्चित्रैर्विचित्रैर्मदयति हृदयं भारतीयो निसर्गः।।[1]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी आधुनिक संस्कृत काव्यजगत् के शिखरारूढ कवि है, सचमुच में आधुनिक काव्य जगत् के 'राजेन्द्र' है।[2] आपने परम्परा के साथ आधुनिक युगबोध को भी बेबाक अभिव्यक्ति प्रदान की है। आपने अपनी लेखनी से विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। राष्ट्रीय, देश–प्रेम, समकालीन विद्रूपताएँ, सांस्कृतिक अधोपतन, मूल्यों का ह्रास, राजनीति का विकृत चेहरा, भौतिकता की चकाचौंध, पर्यावरण, नारी–जीवन तथा लोकजीवन आदि सभी विषयों पर दृष्टि डाली गयी है तथा इनका जीवन्त चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। साथ ही संस्कृत के जीवित भाषा होने के अकाट्य प्रमाण भी आपने सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किये हैं। अन्त में अर्वाचीन संस्कृत के प्रखर समीक्षक डॉ. जनार्दन पाण्डेय 'मणि' के शब्दों में इस लोकचेतनामूलक इस अध्याय को उपान्त की ओर ले जाना चाहूँगा "वास्तव में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रवहमान समग्र संस्कृत गीतपरम्परा में अभिराज डॉ. राजेन्द्र मिश्र के गीतों का स्थान उत्तरोत्तर अभिनवस्पन्दनापेक्षी है। संस्कृत गीतों को जितने अधिक छन्दो–वैविध्य, रागवैविध्य एवं संवेदनवैविध्यों में उन्होंने ढाला है, उतना किसी अन्य संस्कृत गीतकार ने आज तक नहीं। नाटक, कथा, खण्डकाव्य, महाकाव्य आदि समस्त काव्यविधाओं में रचनाएँ प्रस्तुत करते हुए संस्कृतगीत को इतनी ऊँचाई पर ले जाने का उनका प्रयास संस्कृत–जगत् को उनकी अमूल्य देन है, इसमें सन्देह का रंचमात्र भी अवकाश नहीं है।"[3]

♦ ♦ ♦ ♦

1. श्रुतिम्भरा, निसर्गध्वनिः, पृ. 80
2. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ.110
3. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 18–119

चतुर्थ अध्याय

मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों की आलंकारिकी समीक्षा

प्रागल्भ्यं काश्यपोऽस्याः प्रणतिपरिमितो बच्चुलालोऽपिमानः
कारुण्यं श्रीनिवासस्स्मितचटुलकला भास्करो बल्लभोऽङ्क :।
रोषः कान्तो रमाया निभृतरसकथा दीक्षितव्यूढपुष्पा
लावण्यञ्चाभिराजो जयति जवनवा संस्कृता वाग्वधूटी।।

चतुर्थ अध्याय

मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत कृतियों की आलंकारिकी–समीक्षा

जीवन के यथार्थ का साक्षात्कार करने में समर्थ तथा अपने दिव्यज्ञान से परिष्कृत कवि उस यथार्थ अनुभूति को अपनी सहज काव्य–प्रतिभा से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस अर्थ में एक क्रान्तदर्शी कवि वस्तुतः संसार का सच्चा पथ–प्रदर्शक, शिक्षक एवं समीक्षक होता है। वह समाज का सूक्ष्म अध्येता होता है। अतः यह अपेक्षित हो जाता है कि जन्मजात सहज प्रतिभा के साथ–साथ उसे विविध विषयों में पारंगत, संवेदनशील, शास्त्रवेत्ता, काव्यसौष्ठव एवं सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से समन्वित होना चाहिए। क्योंकि वह अपनी सृजनधर्मिता से सामान्य जनमानस एवं साहित्य–समाज दोनों का परिष्कार करता है। एक कवि के कर्तृत्व के भावसौन्दर्य से जनहृदय आह्लादित होकर अलौकिक आनन्द की अनुभूति करता है, वहीं उसका शिल्प–सौन्दर्य साहित्य एवं भाषा को परिष्कार एवं विस्तार प्रदान करते हुए उसका उपकार करता है तथा उसे युगानुकूलता प्रदान करता है।

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अर्वाचीन युग के सशक्त हस्ताक्षर हैं। समकालीन संस्कृत–साहित्य में उनका अवदान अपनी विपुलता, विविधता, नवोन्मेष, सौन्दर्यदृष्टि तथा भावदृष्टि के कारण महनीय है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी इस सम्बन्ध में अपने एक लेख में लिखते हैं कि– "यह सत्य है कि संस्कृत–रचना के वर्तमान परिदृश्य में आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, रामकरण शर्मा, जगन्नाथ पाठक आदि वरिष्ठ व समर्थ कवि सक्रिय हैं, पर इनमें अभिराज राजेन्द्र मिश्र के काव्य की बानगी महाकवि ग़ालिब के शब्दों में परिचेय है–

हैं और भी इस दुनियाँ में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि गालिब का है अंदाज़–ए–बयाँ और।"[1]

---

1. दृक्, दृग् भारती, इलाहबाद, अंक–04 (जुलाई–दिसम्बर 2000 ई.), अभिराज राजेन्द्र मिश्र का 'अंदाज–ए–बयाँ और', पृ.–05 तथा त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ.133

(क) समीक्षा अथवा समालोचना से तात्पर्य

अभिराज जी के कर्तृत्व के भाव पक्ष एवं कला–पक्ष दोनों ही दृष्टियों से समीक्षा करना सुधी समाज के लिए निश्चित ही उपादेय होगा। आलोचना शब्द आङ् उपसर्ग पूर्वक लोच् (लुच्) देखना धातु से ल्युट् अथवा युच्+टाप्[1] प्रत्यय से निष्पन्न होता है। इस प्रकार आलोचना शब्द दर्शन करना, विचार करना, सर्वेक्षण करना, समीक्षा करना, विचार–विमर्श करना इत्यादि अर्थों का द्योतक है तथा समीक्षा शब्द सम् उपसर्गपूर्वक ईक्ष् धातु से अङ्+टाप् प्रत्यय से जुड़कर निष्पन्न होता है जो अनुसंधान, खोज, विचार, भली–भांति निरीक्षण, समालोचना इत्यादि अर्थों का द्योतक है। समीक्षा और समालोचना शब्दों का भी यही अर्थ है। अंग्रेजी के Criticism शब्द के समानार्थी रूप में 'आलोचना' का व्यवहार होता है। संस्कृत में प्रचलित 'टीका–व्याख्या' और 'काव्य–सिद्धान्तनिरूपण' के लिए भी आलोचना शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है किन्तु हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का स्पष्ट मत है कि– "आधुनिक अलोचना, संस्कृत के काव्य–सिद्धान्तनिरूपण से स्वतन्त्र चीज़ है। आलोचना का कार्य है किसी साहित्यिक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप, गुण और अर्थ की व्यवस्था का निर्धारण करना।"[2]

डॉ. श्यामसुन्दरदास ने 'आलोचना' को परिभाषित करते हुए लिखा है– "यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानें तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा।"[3] अर्थात् आलोचना का कर्त्तव्य साहित्यिक कृति की विश्लेषणपरक व्याख्या है।

काव्य की समस्त विधाओं में समानगति रखने वाले त्रिवेणी कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के संस्कृत–निबद्ध नवगीत साहित्य का समीक्षण यहाँ शिल्प–सौन्दर्य के सन्दर्भ में ही किया जाना है। ध्यातव्य है कि मिश्र जी का समस्त काव्य अर्वाचीन साहित्य की श्रेणी में आता है। अतः प्राक्तन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के साथ–साथ अर्वाचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों को आधार मानते हुए कविवर विरचित संस्कृत नवगीत रचनाओं की समीक्षा करने का प्रयास किया जा रहा है।

---

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.–164
2. https://hi.m.wikipedia.org/
3. वही

(ख) रस–निष्पत्ति

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।[1]

इस प्रकार कवि–सृष्टि रूप संस्कृत कविता को 'नवरस–रुचिरा' कहा गया है अर्थात् नौ रसों से मनोहारिणी काव्य–सृष्टि की रचना करने वाली कवि की भारती सर्वोत्कर्षशालिनी है। काव्य का प्रमुख तत्त्व रस माना गया है। काव्य पठन, श्रवण एवं दर्शन से जो अलौकिक आनन्दानुभूति होती है, वही काव्य में 'रस' कहलाता है क्योंकि आनन्दानुभूति रसास्वादमूलक है। रस से जिस भाव की अनुभूति होती है वह रस का स्थायीभाव होता है। काव्य के तत्त्वों–रस, छन्द, अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि इत्यादि में रस प्रधानभूत तत्त्व है। वस्तुत संस्कृत वाङ्मय में रसानुभूति से प्राप्त आनन्द को लौकिक न मानकर अलौकि माना है तथा इसे ब्रह्मानन्द सहोदर बतलाया है। आचार्य मम्मट प्रकारान्तर से काव्यप्रयोजन स्वरूप 'सद्यपरनिवृत्तये'[2] कहकर काव्य का अन्तिम लक्ष्य रसानुभूति अथवा आनन्दानुभूति ही स्वीकार करते हैं तथा आचार्य विश्वनाथ अपने साहित्यदर्पण में उसको रूपायित करते हुए ही 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'[3] ऐसा काव्यलक्षण करते हैं। रस जिसमें आत्मभूत तत्त्व के रूप में रहता है, ऐसा वाक्य काव्य कहलाता है। रस को सार रूप में धारण करने वाला वाक्य ही काव्य है क्योंकि इसके बिना उसका काव्यत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

अर्वाचीन संस्कृत के शिखरारुढ कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी भी अपने आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में रस की अपरिहार्यता व प्रधानता को स्वीकार करते हुए लिखते हैं–

अङ्गीभूतो रसः काव्ये गुणानां समुपाश्रयाः।
अङ्गानि चापि शब्दार्थावलङ्कारा यदाश्रिताः।।[4]

---

1. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश / 1.1
2. वही, काव्यप्रकाश / 1.2
3. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ. 17
4. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेषः / गुणप्रकरणम् / 81, पृ. 26

काव्यं चेन्निरलङ्कारं रसमात्रेण जीवति।

सालङ्कारमपि प्रायो नीरसं म्रियते खलु।।[1]

तो फिर रस क्या है? विश्वनाथ जी कहते हैं कि– **'रस्यते इति रसः'**[2] अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाता है वही रस है अर्थात् काव्य में गुणों का आश्रय–स्वरूप रस ही अंगीभूत (मुख्य) होता है। उसके अंग होते हैं– शब्द एवं अर्थ, यदाश्रित (उत्कर्षाधायक) होते हैं अलंकार। काव्य यदि अलंकारविहीन भी है तो रसमात्र की उपस्थिति से जीवित रहता है परन्तु सालंकार होने पर भी, रस के अभाव में, प्रायः नष्ट ही हो जाता है।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में रस को भिन्न–भिन्न स्वरूपों में परिभाषित किया है। इस सम्बन्ध में रस सिद्धान्त के मूल प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि लिखते हैं– **"रस इति कः पदार्थः? उच्यते आस्वाद्यमानात्। कथमास्वाद्यते रसः? यथा हि नानाव्यञ्जनसंस्कृतमन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनय–व्यञ्जितान् वागङ्गसत्वोपेतान् स्थायिभावान् आस्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षका हर्षादींश्चाधि–गच्छन्ति।"**[3]

इसी क्रम में वे और भी लिखते हैं कि– "रस के बिना कोई भी अर्थ प्रवृत्त नहीं होता है। विभाव; अनुभाव, व्यभिचारिभाव के संयोग से ही रस की निष्पत्ति होती है– **नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते इति।**[4] **तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।"**[5]

इसी क्रम में अपने मन्तव्य को और भी स्पष्ट करते हुए अभिराज जी पुनः काव्य में रस–तत्त्व की स्थिति का निरूपण इस प्रकार करते हैं कि– "जैसे लोक में जीवात्मा से भी श्रेष्ठ होता है मोक्ष, उस आत्मा का लक्ष्यभूत होने के कारण, उसी प्रकार काव्य में काव्यात्मभूत व्यङ्ग्यार्थ से श्रेष्ठ होता है रस क्योंकि वह व्यङ्ग्यार्थ का लक्ष्य होता है। प्रतीयमानार्थ के लक्ष्य के रूप में वह 'रसध्वनि' के रूप में प्रतिष्ठित है, ऐसा आनन्दवर्धन

---

1. वही, वही/अलंकारप्रकरणम्/92, पृ.100
2. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ.–17
3. आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, अध्याय 06
4. वही, वही, अध्याय 06
5. वही, वही, अध्याय 06

का मन्तव्य है– **"वस्तुतः यथा लोके जीवात्मनोऽपि परतरो भवति मोक्षस्तल्लक्ष्यभूतत्वात् तथैव काव्येऽपि रसः काव्यात्मभूताद् व्यङ्ग्यार्थात् परतरोऽथ च व्यङ्ग्यार्थलक्ष्यभूतः। व्यङ्ग्यार्थलक्ष्यभूत एवाऽसौ रसध्वनिरिति ध्वनिकारः। किन्तु नाऽसौ रसः कथमपि काव्यात्मा काव्यार्थत्वविरहितत्वात्। काव्यात्मा तु काव्यस्य कश्चिदर्थ एव भवितुं शक्नोति। सोऽर्थः सहृदयश्लाघ्यो व्यङ्ग्यार्थ एव न तावद्रसः।"**[1]

उपनिषद् ग्रन्थों में भी रस को लेकर गहनता से विचार किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् एवं तैत्तिरीयोपनिषद् में उल्लिखित यह अवधारणा भी रस को ही आनन्दानुभूति का स्रोत एवं आत्मास्वरूप प्रतिपादित करती है–

तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्य किंचन वेद नान्तरमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्। अत्र पिताऽपिता भवति.....तीर्णो हि तदा सर्वान् हृदयस्य भवति।[2]

"रसो वै सः। रसो ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।"[3]

आचार्य विश्वनाथ रसों की संख्या के विषय में लिखते हैं–

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः।।[4]

शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत तथा शान्त के भेद से कुल नौ रस काव्य में पाये जाते हैं।

इस प्रकार रस अन्तःकरण की वह शक्ति है, जिसके कारण इन्द्रियाँ अपना कार्य करती हैं, मन कल्पना करता है, स्वप्न की स्मृति रहती है। रस आनन्द रूप है और यही आनन्द अन्य सभी अनुभवों का अतिक्रमण भी है। सब कुछ नष्ट हो जाये, व्यर्थ हो जाये पर जो भाव रूप तथा वस्तु रूप में बचा रहे, वही रस है। रस के रूप में जिसकी निष्पत्ति

---

1. अभिराजयशोभूषणम्, आत्मतत्त्वोन्मेषः / रसात्मत्वप्रकरणम् / पृ. 150
2. बृहदारण्यकोपनिषद्
3. तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मानन्दवल्ली / 7
4. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 3 / 182

होती है, वह भाव ही है। जब रस बन जाता है, तो भाव नहीं रहता, केवल रस रहता है। उसकी भावता अपना रूपान्तर कर लेती है। रस अपूर्व की उत्पत्ति है। रस का यह अपूर्व रूप अप्रमेय और अनिर्वचनीय है। इस रस की अनुभूति, रसनिष्पत्ति अथवा साधारणीकरण ही काव्य का मूल लक्ष्य है।

कविवर अभिराज जी अपने एक लेख में ध्वनिकार आनन्दवर्धन को उद्‌धृत करते हुए लिखते हैं कि– "काव्यवस्तु अथवा समूची काव्यकृति सर्वात्मना कवि की इच्छा के अनुरूप ही तदभिमत रसाङ्गता को धारण करती है अर्थात् काव्य, कवि की अभिरूचि के अनुकूल रस को धारण करता है। जैसाकि ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं–

तस्मान्नास्त्येव तद्‌वस्तु यत्सर्वात्मना रसतात्पर्यवसतः कवेस्तदिच्छया तदभिमतरसाङ्गतां न धत्ते। तथोपनिबध्यमानं वा न चारुत्वातिशयं पुष्णाति। सर्वमेतच्च महाकवीनां काव्येषु दृश्यते। (ध्वन्यालोक–3.43 पर कारिकावृत्ति)"[1]

आधुनिक काव्य में रस की स्थिति पर विचार व्यक्त करते हुए अभिराज जी कहते हैं कि– "आज की संस्कृत कविता में विश्वजनीय नवरस विद्यमान है। कविता का क्षेत्र विस्तृत हो गया है, विषयों का विस्तार हो गया है। संस्कृत भाषा का काव्य साहित्य राजवंशों तथा स्त्री–पुरुष के दैहिक प्रेम–प्रसङ्गों के वर्णन की परिधि से निकल कर सम्पूर्ण परिवेश पर अपनी पकड़ बनाये हुए है। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि काव्य में कौन सा रस है। प्रश्न यह है कि काव्य रसानुभूति कराने में समर्थ है कि नहीं। काव्य की रसानुभूति में सहजता होनी चाहिये। काव्य में अर्थगत सम्भावना अनन्त होती है यह सहृदय की क्षमता पर निर्भर करता है क्योंकि व्यञ्जना तो उत्तरोत्तर चमत्कृत होती जाती है।"[2]

कविवर अभिराज जी सहज प्रतिभा सम्पन्न कवि है। इनकी काव्य रचनाओं में मौलिकता का वैशिष्ट्य समाहित है। कु. निवेदिता कर्पे द्वारा एक साक्षात्कार के दौरान पूछ गये प्रश्न 'आपके काव्य–जीवन पर किनका प्रभाव है?' के प्रत्युत्तर में कविवर कहते हैं– "अपने काव्य–जीवन में मैं स्वतः प्रभावी रहा हूँ। किसी से प्रभावित होकर मैंने कुछ नहीं

---

1. दृक्, दृग्–भारती, इलाहाबाद, अंक–06 (जुलाई–दिसम्बर, 2001), पृ.–02
2. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्यः दशा एवं दिशा, पृ. 234

लिखा। नवगीत, एकांकी, कथा एवं महाकाव्य–सभी क्षेत्रों में मैंने नई परम्परा, नये प्रस्थान तथा सर्वथा मौलिक स्थापना का प्रारम्भ किया है।"[1]

कविवर की नवगीत रचनाओं में विषयानुसार सभी रसों की उपस्थिति है परन्तु करुण एवं वात्सल्य इन दोनों रसों को वे सर्वोपरि मानते हैं तथा वे कहते हैं कि इन्हीं दोनों रसों में सम्पूर्ण सांसारिकता अनुस्यूत है और इन्हीं से लोकमंगल की सिद्धि भी सम्भव है।[2]

कविवर–प्रणीत नवगीत रचनाओं में विषयवस्तु के अनुरूप सभी रसों की उपस्थिति है। परन्तु नवगीत वस्तुतः मानव के ह्रदय में नियमित अखण्ड करुणा का काव्य है जिसमें एक ओर कटु अनुभवजन्य क्षुब्धता है, तो दूसरी ओर लोक–पीढ़ा से विगलित कवि ह्रदय से विगलित अविरल करुणा की स्नेह–सिक्त तरलता, जो अभितप्त मानवता का अभिसिंचन करती है। नवगीतकार मिश्र जी के ह्रदय में लोक की पीड़ा के लिये जो तमतमाहट है, आक्रोश है, करुणा है वह समग्र विश्व की वेदना का परिणाम है किन्तु उसमें जो निराशा है, टूटन है और घुटन है वह उसकी अपनी है उसके व्यक्ति रूप में परिस्थितियों से कुचले जाने का परिणाम है। इसके अलावा कविवर कृत नवगीत रचनाओं में आशा, उल्लास और आस्था के स्वर भी पर्याप्त रूप से मुखरित हुआ है साथ ही विप्रलम्भ प्रधान दुःख की अभिव्यञ्जना को भी पर्याप्त अवकाश मिला है। अतः मिश्र जी रचनाओं में सार्वजनीन रस विद्यमान ही है। नवगीतियों की सरलता, सरसता, मधुरता तथा रसपेशलता सह्रदयजनों को अनायास की आकृष्ट कर लेती है। कवि के अन्दर निगूहित शृंगारी मन जब प्रफुल्लित होता है तो वह बड़ी ही निश्छलता के साथ यौवनासक्त होकर प्रेयसी का निसंकोच आह्वान करने से नहीं चूकता है–

मानिनि! गणय न खलु मम दोषं
परितोषय मृदुमारम्!
न कुरु विलम्बं यौवनमिच्छति
तव वदनामृतसारम्!!

---

1. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 52
2. वही, प्रश्न सं. 42, पृ. 52

हृदयमनारतमेति विशरणं श्रितकलरवमतिमात्रम्
दिशि–दिशि वचसि–वचसि ननु पश्यति
वयसि–वयसि तव गात्रम्
हंसगृहिणी! शकलय बिसतन्तून्
प्रशमय निखिलविकारम्
भवदनुलीनं स्खलितखलीनं
चिन्तय विरहितदारम्!![1]

कविवर मिश्र जी की वाग्देवी की समर्चना में विलिखित गीतियाँ शान्त रस से सरोवार है। कवि ने माँ शारदे से सुन्दर कवित्व कौशल की याचना की है न कि सुखोपभोगों की।

विधिवदनाम्बुजहंसि सरस्वति! देहि कवनमभिरामम्!
मधु रसनायां हृदि शुभभावं चिरमाधेहि ललामम्!!
व्यासाम्बुधिजृम्भणविधुलेखे! दीपय जीवनगेहम्!
राधामाधवचरणकमलयुगमधुना सज्जय देहम्!!
इन्दिन्दिरमाणवकसन्निभो ननु निरपेक्षं सहजम्!
भ्रमन् रौमि सततं भवाटवीमध्येऽहं प्रतिकुसुमम्!![2]

कवि ने अपने जीवन में प्राप्त संघर्षों, मुसीबतों, परिवार व भाई–बन्धुओं से प्राप्त उलाहनाओं, मित्रों के द्वारा किये गये विश्वासघातों तथा जीवन–व्यथाओं का बड़ी ही रोचक शैली में वर्णन किया है। गीतरचना की पंक्तियों को पढ़कर सुधीजन द्रवीभूत हो जाते हैं तथा करुण रस की धारा फूट पड़ती है–

वैशद्यमाप्तुं ज्वलदनलपिण्डैर्मया संक्रीडितम्
सोढं, चिरं सोढं, धृतं संघर्षनिवहैर्जीवितम्।।
सुप्तंभुजङ्गेष्वनुदिनं, कण्ठे कृतं हालाहलम्
त्रिपुरारिगेहिन्यै मया सततं श्मसानमुपासितम्।।
प्राप्ते विलासि वसन्तकेऽपि गता क्वचिन्न करीरता

1. वाग्वधूटी, वितथमिदं जननं प्रतिभातम्–10, पृ. 14
2. मृद्वीका, नमस्या, द्वितीया गीतिः, पृ. 4

गोविन्दराधातुष्टये श्वसितम्मया खलु शिक्षितम्।।[1]

अन्यन्त्र भी............

लोकानुरागमूलं लोकाभिशापशूलम्
शीर्षे निधाय सर्वं जीवामि भूतलेऽहम्!!
भवनाङ्गणे कदाचित् दृष्टा पयोदमाला
प्रपलायिताऽप्यवृष्टिः जीवामि भूतलेऽहम्!!
निर्मापितं न जाने केनेदमूर्ध्वहर्म्यम्
मम खण्डितावशेषे जीवामि भूतलेऽहम्!![2]

माता का स्नेही स्पर्श शिशु को सुलाते वक्त जब लोरी का रूप लेता है तब माँ अपने बच्चे को नाना स्वरूपों में चित्रित करती है। वह कभी अपने शिशु में राजकुमार की कल्पना करती है, तो कभी परीयों के साथ उड़नखटोले पर बैठाकर बादलों की सैर करवाती है। माता का यह शब्दरूप दुलार बालक को रसाप्लावित कर देता है। कवि विरचित लोरी—गीति में मानों स्वयं कवि का बालमन खिलखिलाकर हँस रस रहा है। वात्सल्य—रस से सुशोभित कवि की ये पंक्तियाँ यहाँ उद्धरणीय हैं—

अणित—मणितनाम्न्यौ मयका खलु
द्वे वराटिके प्राप्ते
ते च पुनर्मङ्गललाभार्थं
गङ्गाधरायां प्रवाहिते
गङ्गा मह्यं ददौ बालुकां

..

मया निर्मितं स्वादु पायसं
दुर्ललितं दारकं शमपितुं
किन्तु पायसं जातं शीतं
विमनायितस्ततो मे कृष्णः!![3]

---

1. मधुपर्णी, प्रथमखण्ड, सोढं, चिरं सोढम्—2, पृ. 14
2. मृद्वीका, जिजीविषा, त्रयोविंशतितमी गीतिः, पृ. 35
3. अभिराजगीता, शिशुभावनागीतम्—78, पृ. 136

कविवर मिश्र जी द्वारा विरचित नवगीतों में उनके भक्तिभाव से उत्पन्न भक्ति रस की अजस्र धारा वह रही है। कवि ने अपने आराध्य के समक्ष पूर्ण समर्पण व श्रद्धा की भावना व्यक्त की है। इस भवसागर में मैं क्यों आया हूँ? कब आया हूँ? किसलिए आया हूँ? इन सब के विषय में मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो स्वयं उस मुरलीधर के चरणों में समर्पित करना चाहता हूँ जिसकी मुरली की धुनों से प्रेरित होकर यह सृष्टिचक्र गतिमान् है—

भवसागरं न जाने भवतारणं न जाने
त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!!
तरणी न वर्तते मे, धरणी न वर्तते मे
शरणं न विद्यते मे मरणं न विद्यते मे
आत्मानमेव सर्वं भवतोऽपरं न जाने
त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!!
वचनीयता गता मे दृष्ट्वा तवाधिकरणम्
ननु दीनता मृता मे दृष्ट्वा तवैकशरणम्
जननं स्थितिं प्रयाणं त्वामन्तरा न जाने
त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!!
न तथा बिभेमि लोकाद् यदि वा पतामि पङ्के
इदमेव चयनम्मे प्रभवान्यहं त्वदङ्के
पितरं सखायममिष्टं स्वजनोत्तमं नु जाने
त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!![1]

समाज में व्याप्त मूल्यों के अधःपतन, धूर्तता व लम्पटता का साम्राज्य, भोगवाद की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, स्त्री—अवमानना, साम्प्रदायिकता, आतङ्कवाद इत्यादि को भोगते हुए तथा समाज को गलत दिशा की ओर उन्मुख देखकर कवि हृदय रो पड़ता है, चीख उठता है तथा क्रोधावेग में आकर कह उठता है कि ऐसे देश में जीवन यापन करना सम्भव नहीं है।

1. वाग्वधूटी, त्वामेकमेव जाने—22, पृ. 33

देश के अन्दर और बाहर भिन्न–भिन्न भागों में आग लगी हुई है। देश का राजनैतिक नेतृत्व उस आग की लपटों को बुझाने की बजाय अपने भड़काऊ भाषणों रूपी धृतहवि डालकर उसे धधका रहे हैं। कविवर कहते हैं कि कौन राष्ट्र–हितैषी और कौन शत्रु समझ से परे है। कवि की यही क्षुब्धता और आक्रोश रौद्रभाव व विस्मय से समन्वित होकर रचना का रूप लेकर उनकी गीतियों में समाहित है। कुछ उदाहरण स्वरूप पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं–

जीवितुं शक्यते नेदृशे भारते!!
नास्ति विद्याकलावैदुषी वन्दना
सर्वतो दृश्यते सम्मता वञ्चना
हन्त! चञ्चद्विषाणे शशे भारते!!
यत्र पीयूषवृक्षे विषं जायते
गूढमोहान्धकारस्त्विषं त्रायते
विप्रतीपायतौ संकृशे भारते!![1]

अन्यत्र भी............

वाञ्छति कोऽपि नवीनविधानम्
कोऽपि याचते खालिस्तानम्
रोदिति गङ्गा द्रवति नरेशः समुच्छलति सिन्धुः
को नु राष्ट्रबन्धुः?
सृजति लोकमङ्गलं पवित्रम्
हालाहलं निपीय विचित्रम्
भवति स एव समर्चनपात्रं सदाशिवशम्भुः
को नु राष्ट्रबन्धुः?[2]

कविवर मिश्र जी द्वारा विरचित ग़ज़लगीति 'प्रथिता सुर्वणता मे' में जो आत्मगौरव, आत्मप्रतिष्ठा, आत्मवेदना तथ आत्मपीड़ा की समन्वित अभिव्यक्ति की है, वह सचमुच में अद्भुत एवं अपूर्व है। विपत्ति की आग में जलकर कवि की सुवर्णता और भी निखर कर

1. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, द्विचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 60
2. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्), को नु राष्ट्रबन्धु?–52 पृ. 88

सामने आयी है। भले ही उन्होंने धनपति कुबेर के घर में जन्म नहीं लिया हो परन्तु उस संतप्त हृदय के विघलन से समुद्भूत आँसू रूपी मोतियों से उनकी दरित्रता समाप्त हो गयी। कवि के अद्भुत कौशल की परिचायक यह सर्जना तथा बिम्ब–प्रतीक समायोजना सुधीजन को निश्चित ही विस्मय में डाल देती है। वह पढ़ते–पढ़ते, सुनते–सुनते एकाएक ठहर सा जाता है–

दग्ध्वा विपत्तिदहने प्रथिता सुवर्णता मे
दत्त्वाऽखिलं जनेभ्यो लुप्ताऽधमर्णता मे!!
कामं कुबेरगेहे प्राप्तं मया न जननम्
नयनाम्बुमुक्तयैव ध्वस्ता दरिद्रता मे!!
न समं न पर्णजालं न हरीतिमा वसन्ते
राधामुकुन्दकृपया धन्या करीरता मे!!
सुप्तं भुजङ्गनिवहे पतिञ्च कालकूटम्
नितरां श्मसानवासैर्महितैव शम्भुता मे!![1]

इस प्रकार कविवर प्रणीत नवगीत रचनाओं में नानारसों के आस्वादन से परिपूर्ण अजस्र रसधारासंप्लावित है। एक ज्ञान–पिपासु व संतप्त हृदय जिस रसता की उम्मीद लिये उस रसधारा में डुबकी लगाता है, आलोड़न करता है, उसे वह रसास्वादन अवश्य होता है। कविवर मिश्र जी जहाँ एक तरफ अपनी प्रेयसी को खुला आमन्त्रण देते है, तो दूसरी तरफ अपने आराध्य के समक्ष पूर्ण समर्पण भाव से भक्तिरस में डूबे दिखते हैं। कहीं दुर्दिनों की पीड़ा व वेदना को अभिव्यक्ति देते हैं तो कहीं देश में व्याप्त अशान्त वातावरण को देखकर क्षोभ प्रकट करते है। कहीं कवि का बालमन माँ के आँचल में छुपकर लोरी का रसास्वाद करता है तो कहीं यौवनमद में प्रिया के आलिङ्गनबद्ध होकर झूमती हुई चाल चलता है। कविवर मिश्र की रचनाओं की सरलता, सहजता, सुबोधता तथा रसमाधुर्य को देखकर निःसन्देह कहा जा सकता है कि वे रससिद्धकवि हैं।

---

1. श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनि, प्रथिता सुवर्णता मे, पृ. 107

(ग) छन्द–योजना

किसी भी काव्य रचना का प्रमुख आधार 'छन्द' होता है। छन्दोबद्ध होकर ही काव्य पाठकों के समक्ष उपस्थित होता है। जिस प्रकार हमारे ऋषियों ने पुरुष सूक्त में विराट् पुरुष के अंगों के माध्यम से सृष्टि की परिकल्पना की है।[1] उसी प्रकार षड् वेदांगों के माध्यम से सांसारिक सभी अध्येय ज्ञान, विज्ञान, धर्म, शास्त्र इत्यादि विषयों को वेद से सम्बद्ध माना गया है–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।[2]

तदनुसार छन्द वेद–पुरुष के चरण हैं अर्थात् छन्द के सहारे चलकर वेद रूपी काव्य–पुरुष पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी सन्तति का उपकार कर सके। छन्द शब्द आच्छादनार्थक छद् धातु से असुन् प्रत्यय[3] करने पर निष्पन्न होता है–**छन्दांसि छादनात्।**[4] **छन्दांसि छन्दयतीति वा।**[5] **ते छन्दोभिरात्मानं छादयित्वोपायँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।**[6] **यदस्मा अच्छदर्यस्तस्माच्छन्दांसि।**[7] **देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशँस्ते छन्दोभिरच्छादयन्, यदेभिरच्छादयैस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।**[8] **इन प्राचीन वाङ्मय में कहे गये निर्वचनों के अनुसार छन्दः नाम छादन (आच्छादन–ढकना) के कारण बताया है। इनके अलावा छन्दति छन्दः (छन्दस्)। छन्दयति आह्लादयते छन्दः अच।**[9] **चन्दति ह्लादं करोति दीप्यते वा श्रव्यतया इति छन्दः।**[10] इत्यादि नानाविध रूप में आचार्यों द्वारा छन्द शब्द की अनेकशः व्युत्पत्ति और निरुक्ति बतलायी है। इनके अनुसार वेद एवं छन्द में अंगांगीभाव रूप नित्य

---

1. ऋग्वेद, 10/90/22–ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृतः। उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।
2. पाणिनीय शिक्षा, खण्ड–8/41–42
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 381
4. यास्क, निरूक्तम्/7.12
5. सामवेदीय दैवत ब्राह्मण/1.3
6. तैत्तिरीय संहिता। 5.6.6.1
7. शतपथ ब्राह्मण/8.5.2.1
8. छान्दोग्योपनिषद्/1.4.2
9. क्षीरस्वामी द्वारा अमरकोश की व्याख्या में छन्दस् और छन्द पद की व्युत्पत्ति 2.7 22 तथा 3.2.20
10. जयदेव कृत छन्दःसूत्र का विवृतिकार हर्षट/2.1

सम्बन्ध है तथा छन्द का विशिष्ट ध्वनि, लय, ताल से घनिष्ठ तादात्म्य होता है। इस प्रकार प्रत्येक शब्द में छन्द नैसर्गिक रूप से रहता है। इसी वैशिष्ट के कारण छन्द की अनिवार्यता का प्रतिपादन करते हुए नाट्यशास्त्रकार भरत लिखते हैं–

छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दः शब्दवर्जितम्।
तस्मात्तूभयसंयुक्ते नाट्यस्योद्योतके स्मृते।।[1]

छन्दों की प्रधानता के कारण ही कालान्तर में वेद का नाम ही छन्द पड़ गया। आचार्य पाणिनि ने 'भाषा' शब्द से लौकिक संस्कृत भाषा का तथा 'छन्द' शब्द से वेद का निर्देश किया है। आचार्य पिंगल के 'पिंगल छन्दःसूत्र' में लौकिक एवं वैदिक इन द्विविध छन्दों का विवरण प्राप्त होता है।

काव्य में छन्द की व्याप्ति के सम्बन्ध में अपने विचार रखते हुए आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्' में लिखते हैं– **छन्दस्तु सर्वत्राऽनुस्यूतं समेषां मानसे पिनद्धं किमपि तत्त्वम्। काव्येऽपि गद्ये वा पद्ये वाऽस्य व्याप्तिः, प्रतिशब्दं छन्दसो वर्तमानत्वात्। तद्यथोक्तं मुनिना भरतेन– 'छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छन्दः शब्दवर्जितम्'। अत एव समस्तं काव्यं छन्द इत्युच्यते, 'काव्यं छन्द' इति यजुर्वेदोक्ते (15.4)। अस्य च छन्दसो द्वैविध्यम् आभ्यन्तरबाह्यभेदात्। यदस्याऽऽभ्यन्तरं रूपं तत्तु समग्रां सृष्टिमभिव्याप्नोति। विद्यमाने तस्मिन् प्रबन्धेषु आन्तरिकी सङ्गतिः सम्भवति, तेन तेषु महावाक्यं निष्पद्यते। बाह्यं तु रूपं पिङ्गलादिशास्त्रेण निर्धार्यते।**[2] **अविद्यमानेऽपि तस्मिन् क्वचिद् भवति छन्दसो निष्पत्तिः।** अर्थात् कभी–कभी उसके अविद्यमान होने पर भी छन्द की निष्पत्ति होती है। जैसा वे अपने काव्य में लिखते हैं कि– "छन्दोबन्ध के टूट जाने पर तथा साथ ही लय और यति के भंग हो जाने पर जो कुछ भी लिखा वह सब कुछ छन्द बन गया–

त्रुटिते छन्दोबन्धे लययतिभङ्गे समं सञ्जाते।
किमपि किमपि यद् रचितं तदपि तदपि समजनिच्छन्दः।।"[3]

1. आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, 14/40
2. अभिनवकाव्यलंकारसूत्रम्, पृ. 31–32
3. वही, पृ. 32

त्रिपाठी जी के अनुसार यहाँ छन्द निबद्धता और स्वच्छन्दता दोनों को द्योतित करता है। छन्द की तरह छन्दस् शब्द का भी अभिलाष और स्वैराचार अर्थ में भी प्रयोग होता है।

काव्य में छन्द की प्रधानता को प्रतिपादित करते हुए कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में लिखते हैं कि– "आगमों में यह उचित ही कहा गया है कि छन्द वेद (पुरुष) के चरण युगल हैं (क्योंकि) छन्दों के ही सहारे काव्य की कथायात्रा विकसित होती है–

छन्दः पादौ तु वेदस्येत्युचितं प्राहुरागमाः।
छन्दसैव हि काव्यस्य कथायात्रा प्रवर्तते।।"[1]

वैदिक काल से प्रवाहमान इस छन्दस्सरिता में युगानुकूल अनेक मोड़ आते रहे हैं। छन्दों के स्वरूप में इस बदलाव के लिए साहित्य के क्षेत्र में आये विभिन्न परिवर्तन तथा नूतन विधाओं का आविर्भाव काफी हद तक जिम्मेदार है। ऐसी ही एक नवोदित विधा है– 'नवगीत'। नवगीत छन्द पर आधारित रचना सृष्टि है। शिल्प के स्तर पर अपनी समकालीन विधाओं–नयी कविता आदि से वैभिन्न का आधार भी इसकी छान्दिकता है। नवगीत विधा में प्रयुक्त छन्द का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। प्रायः प्रत्येक रचनाकार का निज सृजित छन्द तो है ही, एक ही रचनाकार ने अनेक तरह के छन्दों का भी सृजन किया है। इस कारण इस विधा में प्रयुक्त छन्दों में आश्चर्यजनक वैविध्य परिलक्षित होता है। यहाँ छन्दों का परम्परागत और शास्त्रीय स्वरूप तो देखने को मिलता ही है, साथ ही रचनाकार का मौलिक रचाव भी उपलब्ध होता है। इसके अलावा यहाँ कहना यथोचित होगा कि गीत के इस अभिनव स्वरूप में पारम्परिक छन्दों का मोहजाल टूटा है। छन्दोमुक्तता की ओर उन्मुखता अधिक दिखाई दे रही है।

इस सम्बन्ध में डॉ. मंजुलता शर्मा लिखती है कि– "अर्वाचीन संस्कृत काव्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है–इसमें छन्दोविधान में किये गये नवप्रयोग भी उल्लेखनीय हैं। भले ही वह देशी छन्दों की बात हो अथवा विदेशी छन्दों की, कवि ने छन्द शास्त्र की

---

1. अभिराजयशोभूषणम्। प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः।92

परम्परा से चार कदम आगे बढ़कर स्वयं को लोकधर्मी सिद्ध करने का प्रयास किया है। अतः इस नवप्रयोग में जो भारत की ज़मीन से जुड़े छान्दस नवप्रयोग है उन्हें लोकधर्मी छन्द कहा गया है।"[1]

आचार्य हर्षदेव माधव जी लोकधर्मिता का निरूपण करते हुए लिखते हैं कि– **"ग्रामीण जन–जीवन के भावों की अभिव्यक्ति लोकधर्मिता या आञ्चलिकता है– ग्रामीणजनजीवन–भावाभिव्यक्तिर्लोकधर्मिता आञ्चलिकता वा।"[2]**

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अपने अभिनव काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में गीतभेद का निरूपण करते हुए लिखते हैं कि– "'कर्ण–कुहरों' के लिये जो गीत अमृततुल्य होता है वह धातु एवं मातु से समन्वित होकर नादात्मक एवं अक्षरात्मक इन दो रूपों में विभक्त है। धातुज गीत उसे कहते हैं, जो वेणु तथा वीणा आदि यंत्र–समूह से प्रस्फुटित होता है। मातुज गीत़ के मुखज अर्थात् मुँह से कढने वाला भी कहते हैं जो कि गायन के रूप में विद्यमान है। यही गीत जब शास्त्र–सम्मत रागों (भैरवी, केदार, धनाश्री आदि) के माध्यम से गाया जाता है तो उस प्रकार के गीतों का काव्य रागकाव्य कहा जाता है और जो गीत स्वतन्त्र रीति से सम्प्राप्त कण्ठध्वनि के अनुसार सुखपूर्वक तथा जनपद, कुल, जाति की परम्परा के अनुसार गाया जाता है वह संगीतशास्त्रीय नियमों से विनिर्मुक्त, किसी भी प्रकार के बन्धन से परे, तत्क्षण रस एवं आनन्द से सरोबार कर देने वाला गीत लोकगीत कहा जाता है–

तच्च सद्योरसानन्ददायकं गतबन्धनम्।
शास्त्रनियमनिर्मुक्तं लोकगीतं समुच्व्ते।।"[3]

लोकधर्मी छन्दों को प्रयोग करने का उद्देश्य परम्परागत छन्दशास्त्र का उल्लंघन करना अथवा उसकी अवहेलना कभी नहीं रहा अपितु संस्कृत को जन–जन से जोड़ना है। जब संस्कृत के छन्दों में तत्कालीन समाज और संस्कृति की महक सुवासित होती है तो वह व्यक्तियों को खुद से जोड़ लेती है। वहाँ के आञ्चलिक छन्द लय के कारण

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 236
2. आचार्य हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्। 2.16
3. अभिराजयशोभूषणम्। प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः। 13–17, पृ. 253–254

अपरिचित भाषा को भी आत्मसात् करने की क्षमता रखते हैं। इसी भाव को व्यक्त करते हुए 'संस्कृतप्रतिभा' में प्रकाशित अपने एक लेख में कविवर मिश्र जी लिखते हैं– **"वस्तुतः लोकं संस्कृतमनस्कं विधातुमेव मया लोकगीतं समाश्रितम्। यदि लोकप्रचलित–लयैर्गीयमानानि गीतानि शिष्टसंस्कृतसमाजे साहित्ये चापि प्रतिष्ठितानि स्युस्तर्हि समेषां विश्वासो दृढतामुपयास्यति।"**[1]

डॉ. जनार्दनप्रसाद पाण्डेय 'मणि' अपने एक लेख में कहते नहीं थकते कि– "कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी संस्कृत गीत परम्प्रा के स्वातन्त्र्योत्तर काल के 'कालजयी गीतकार' हैं। आपने संस्कृत गीतों को इतने नये–नये रूप, नये–नये आस्वाद एवं नये–नये छन्दः परिधान दिये कि गीतपरम्परा में किसी और गीतकार से उनकी समता ही निरर्गल प्रतीत होने लगी। डॉ. मिश्र ने संस्कृत गीतों को हिन्दी एवं समकालीन लोकभाषाओं के समानान्तर उन्हीं छन्दों, लोकधुनों एवं प्रतिष्ठित गीतप्रकारों से ढालते हुए उन्हें संस्कृत नाम दिया। आपने लोकभाषायी गीत चैता को 'चैत्रकम्', कहरवा को 'स्कन्धहारीयम्' सोहर को 'सूतगृहम्' तथा कजरी को 'कं प्रियाऽऽगमनसुखजंरयति या सा कजरी' इस रूप से शुद्ध संस्कृत शब्द सिद्ध करते हुए इन्हें संस्कृत में उपनिबद्ध कर संस्कृत गीत होने का पवित्र गौरव प्रदान किया।"[2]

वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता इन पाँच नवगीत–संग्रहों की विभिन्न रचनाओं में मिश्र जी परम्परागत छन्दों के अलावा लोकभाषायी गीत चैता, सोहर, कहरवा, रसिया, लोरी, लावनी, ठुमरी, कजरी, बाउल, नकटा, फाग, पचरा, वटुक इत्यादि को मूलभाव व लय के साथ संस्कृत में ढाला है। साथ ही कुछ वैदेशिक विधाओं में जैसे कव्वाली, ग़जल आदि में भी बड़ी प्रखरता के साथ अपनी प्रतिभा को उद्भासित किया है। आपकी लेखनी का सहारा पाकर ये विधाएँ पूर्णतः संस्कृत की ही लगने लगी हैं। आपकी रचनाओं में उपर्युक्त समस्त लोकगीत व वैदेशिक विधाओं व छन्दों के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं जिनकी भाषायी सहजता, गीतसंज्ञानुरूप ही भावार्थ विधान तथा लयात्मक गणनुरूप नाद–सौन्दर्य सुधीजनों को मंत्रमुग्ध सा कर देता है तथा बरबस ही

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र–स्वात्मनिवेदनम् 'प्रत्यगं लोकगीत–प्रकरणम्', संस्कृतप्रतिभा, अंक–जुलाई–सितम्बर, 2016, उन्मेष–60, पृ. 60
2. त्रिवेणीकवि अभिराजराजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 114

आकृष्ट कर लेता है। इस सम्बन्ध में डॉ. मञ्जुलता शर्मा लिखती है कि– "अभिराज जी अपनी रचना के बीज उसी क्षेत्र की भूमि में ही बोते हैं अतः भावरूपी फल में वही रंग और गन्ध दिखाई देते हैं। यह उनकी सारस्वत साधना का फल है कि आज संस्कृत में हम लोकगीतों की माधुरी का आस्वादन कर सकते हैं।"[1]

लोकगीतों की लोकधर्मिता पर विचार रखते हुये कविवर लिखते हैं कि– "लोकगीत (प्रायः) नूतनऋचाओं की अगवानी, पर्व (तीज–त्योहार) घरेलू मंगल एवं उत्सव अथवा धर्म–संस्कृति एवं रीति–रिवाज के उपलक्ष्य में गाये जाते हैं–

ऋतूनामागमं पर्व गृहमङ्गलमुत्सवम्।
धर्मसंस्कृतिरीतिं वा लोकगीतं समञ्चति।।"[2]

ठेठ मिर्जापुरी कजरी को संस्कृत में उतारने का उपक्रम कविवर अभिराज जी की अलौकिक कारयित्री प्रतिभा की ही देन है।

लोकगीत कजरी को परिभाषित करते हुए कविवर लिखते हैं–

"कोसलेषु च काशीसु गीयते हि घनागमे।
गीतिका कजरीनाम्नी नैकरागसमाश्रिता।।
वियोगिन्या हि गीतेऽस्मिन् प्रोषितं नायकं प्रति।
उपालम्भाः प्रदीयते विस्मृतिक्षोभकारकाः।।"[3]

कं पतिसाहचर्यजनितं सुखं जरयतीति भावबोधिनी गीतिः कजरीति मया व्याख्यातं स्वोपज्ञायां वाग्वधूट्याम्। घनागम एव गीयत इत्युपलक्षणम्। नैकरागसमाश्रितेति।[4]

अर्थात् जिस प्रकार ब्रजप्रदेश में 'रसिया', बुन्देलखण्ड में 'लांगुरिया' गीत सोद्देश्य गाये जाते हैं उसी प्रकार पूर्वोत्तर प्रदेश के जनपदों में वर्षा के समय कजरी गाई जाती है। इसमें प्रकृति चित्रण के साथ–साथ विरही कामनियों द्वारा निर्दयी प्रियतम को उलाहने दिये जाते हैं। 'कम्' अर्थात् पति–साहचर्यजनित (रति) सुख को नष्ट करने वाली, वियोगभाव

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 248
2. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः / 22, पृ. 258
3. वही / 23–24, पृ. 258
4. वाग्वधूटी, पृ. 63

का बोध कराने वाली गीति कजरी है और यह अनेक रागों (लयों) पर समाश्रित रहती है। उदाहरण स्वरूप कविवर कृत जो 'कजरी' विभिन्न मंचों पर सर्वाधिक सराही जाती रही है, वह 'रौति कोकिला' शीर्षकाधारित रचना में मद में अलसाई, तमाल की शाखाओं में छिपी बैठी, आम के पेड़ पर कूक करती हुई तथा कभी आम्रपल्लवों में छिपकर मञ्जरियों का रसपान करती कोयल चहुँओर फैले वसन्त का अभिनन्दन करती हुई सी चित्रित की गई है–

रौति कोकिला मदालसा रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे
क्षणं पल्लवे निलीय
मञ्जीरसं निपीय
स्तौति सम्मुखं वसन्तकं रसालतरौ
गोपिता तमालतरौ रे!![1]

इसके अलावा विभिन्न रागाश्रित कजरी के अनेक उदाहरण कवि की रचनाओं विशेषतः वाग्वधूटी व मृद्वीका में भरे पड़े हैं।

उत्तरप्रदेश के ग्रामीण अञ्चल में चैत्रमास में पति के विरह में प्रिया अपनी चिन्ता को लक्ष्य करके जो गीत गाती है उसे 'चैत्रा' या 'चैत्रक' कहते हैं। इसको परिभाषित करते हुए मिश्र जी लिखते हैं–

"चैत्रकं गीयते चैत्रे हर्षसम्मोदनिर्भरम्।
नवाऽन्नागमसम्भारसम्पदिङ्गितवैभवम्।।
चैत्रकेऽपि क्वचिद् बाला कापि प्रोषितवल्लभा।
व्यनक्ति स्वीयमातङ्कं स्मरजं मार्मिकैः पदैः।।"[2]

चैत्र मास की कुमुदिनी की चन्द्रमा के साथ अभिसारता, मलयाचल से बहते पवन के झोंके जो नर्मदा तटवती वंजुल–कुञ्जों से पावन होकर आ रहे हैं, कमलिनियों की मादकता इत्यादि प्रोषितपतिका की विरह वेदना को उद्दीप्त कर देते हैं। ऐसी ही एक विरहिणी अपनी विरह वेदना को व्यक्त करती हुई चैता गाती है–

---

1. वाग्वधूटी, पृ. 63
2. अभिराजयशोभूषणम्/प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः/28–29, पृ. 267

विधुमभिसरति कुमुदिनी रे मातः किमु करवाणि?
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातः किमु करवाणि?
पवनो वहति मलयगिरिसूतः
रेवातटगतवञ्जुलपूतः
वितरति सुममधु नलिनी रे मातः किमु करवाणि ?
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातः किमु करवाणी?
रौति रसालतरौ कलकण्ठी
श्रुति कुहराय भवति ननु शुण्ठी
न खलु भवामि कुशलिनी रे मातः किमु करवाणि?
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मात किमु करवाणि?[1]

फाल्गुनिक (फाग) के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कविवर मिश्र जी कहते हैं कि "होलिकोत्सव के उपलक्ष्य में, फागुन के महीने में, घर–घर में चौताल आदि भेदों वाला फाग (फगुआ) गाया जाता है। इसीलिये कुङ्कुम और अबीर मलने से आनन्द एवं मंगल बढ़ाने वाले तथा हर्षसम्भार से ओत–प्रोत इस गीत को 'होलीगीत' भी कहते हैं। इस गीत के माध्यम से असह्य शीत की कँपकपी से मुक्त हुआ समाज, ठंठक से मुक्ति देने वाले तथा वसन्त ऋतु से श्रीमण्डित फाल्गुन का अभिनन्दन करता है–

गीयते फाल्गुने मासे फाल्गुनिकं गृहे–गृहे।
चतुस्तालादिभिर्भेदैर्होलिकोत्सवसङ्गतम्।।"[2]

चतुस्ताल के माध्यम से होली का चित्रण करते हुये अभिराज जी अपनी रचना इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–

करकमले लसति पिचकारी
विहरति मुरारिः!!
नहि रक्षति परिचयं न शीलम्

1. वाग्वधूटी, पृ. 61–62
2. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः/25–27, पृ 264–265

पश्यति न वयो गिरिधारी

विहरति मुरारिः!!

नयनसमक्षं मिलति य एव

रञ्जयति तमेव विहारी

विहरति मुरारिः!![1]

'सोहर' गीत की ऐसी विधा है जो पुत्रजन्म, विवाह आदि मंगलमय अवसरों पर महिलाओं द्वारा साभिनिवेश गाई जाती है। अभिराज जी ने इसे परिभाषित करते हुये कहा है—

पुत्रजन्मविवाहादिमङ्गलावसरे पुनः।

गीयते ननु नारीभिर्गीतं सूतगृह्यभिधम्।।[2]

अपनी रचना वाग्वधूटी में इसकी जीवन्त प्रस्तुति करते हुए कविवर लिखते हैं—

दुरितानि विधुतानि कुरुते शुभानि साधु विदधाति रे!
गङ्गे! तव नीरगाहनं वितनुते विवुधलोकमनुयाति रे!!

कमलारमणचारुचरणाब्जजनिते त्रिपथगे! त्वया।
गङ्गे! विहितं न कस्य पापहरणं मनुजदेवदनुजस्य रे!!

धवलाम्बुलसितानि पुलिनानि सिकताविकसितानि रे।
गङ्गे! बकहंससारसविलसितानि नयनानि जडयन्ति रे!!

तव नीरमुकुरे विलसितं निशीथिनीशमवलोक्य रे।
गङ्गे! प्रतिभाति मानसाम्बुनिवहे तरति हंसशिशुको यथा!![3]

वरयात्रा के समय डोली (शिविका) को जो सेवक उठाकर चलते हैं वे अपने श्रम के परिहार के लिये जिस गीत को समवेत स्वर में गाते हैं उसे अभिराज ने शब्दार्थानुकूल 'स्कन्धहारीयम्' नाम दिया है। इस गीत विधा से सेवकों का अपना आनन्द एवं श्रम का विस्मरण तो होता ही है। इसके अतिरिक्त नववधू भी अपने मायके का बिछोह भूलकर आनन्दित होती है। साथ ही मार्ग कब बीत जाता है पता नहीं चलता। यह गीत

---

1. मृद्वीका, ऋतुश्रीः, अष्टादशतमी गीतिः, पृ. 27
2. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः/30, पृ 267
3. वाग्वधूटी, पृ. 73

उत्तरप्रदेश के ग्रामीण जनपदों में भी इसी भाँति गाया जाता है। लोकभाषा में इसे 'कँहरवा' भी कहते है–

वहन्तश्शिविकां गुर्वीमेवमेव हि वाहकाः।
गायन्ति स्कन्धहारीयं समवेतस्वरोच्चयैः।।
अध्वश्रमापनोदीदं गीयमानं क्रमेण च।
स्कन्धहारीयमाख्यातं वधूट्याश्चापि मोददम्।।[1]

अपनी नवगीत संकलना वाग्वधूटी में मिश्र जी ने स्कन्धहारीयम् की प्रस्तुति इस प्रकार की है–

नभसि विभाति चमत्कृतचन्दो भाति चन्द्रमसि छाया।
सरसि विभाति सरागकमलिनी कमलिन्यामलिजाया!!
भाति भवने वधूटी षोडशी सदङ्गना
भाति गगने मुदी सतारका निरञ्जना!!
देहे भाति मनो दुर्ललितं प्रीतिर्मनसि विभाता
प्रीतौ निष्ठा भाति पुराणी सैव पिता सा माता
भाति विजने वसन्तकलकण्ठीवन्दना!![2]

लोकाञ्चलों में विवाह के अवसर पर जब बारात वधू के घर पहुँच जाती है तब रात्रि के समय अथवा बारात भोजन करने बैठती थी तब बारातियों के मनोविनोदानार्थ वधु पक्ष की महिलाएँ नृत्य करती हुई जो लोकगीत गाती हैं उसे नक्तक (नकटा) कहते हैं। इस गीत विधा में नाना प्रकार के मनोहारी रागों, लयों, अभिप्रायों के अलावा ललित भावभंगिमाओं से युक्त नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। यह गीत रात्रिवेला में गाया जाने कारण ही संभवतः नक्तक (नकटा) कहा जाने लगा–

कन्यागृहं गतेष्वेव पुरुषेषु गृहस्त्रियः।
नृत्यन्त्यो निशि गायन्ति लोकगीतं हि नक्तम्।।

---

1. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष / 35–36, पृ. 271
2. वाग्वधूटी, पृ. 28

रागैर्लयैश्च शब्दार्थैर्विविधैर्हि मनोहरैः।
सनृत्यं गीयते स्त्रीभिर्नक्तकं ललितक्रमम्।।[1]

तुम्हारी मुख–मदिरा का रसपान मैंने दिन–प्रतिदिन किया। तुम्हारी बातों का रस मैंने दिन–प्रतिदिन पिया कुछ ऐसी मनोहारी–अभिव्यक्तियों से परिपूर्ण कवि की यह रचना नक्तक का अद्‌भुत उदाहरण है–

त्वदीयवदनं मया दिने–दिने पीतम्!!
वदनमिदं मृगलाञ्छनकल्पम्
स्नेहसुधामुद्‌गिरति विजल्पम्
त्वदीयवचनं मया दिने–दिने पीतम्!!
वचनमिदं हृतनिखिलविषादम्
भवभयहरणं शमितविवादम्
त्वदीयनयनं मया दिने–दिने पीतम्!![2]

कविवर मिश्र जी ने भिन्न–भिन्न ऋतुओं में गाये जाने वाले विभिन्न लोकगीतों का प्रणयन किया है। लेकिन इन सबको पूर्वाञ्चलीय लोकगीतविधा 'कजरी' के ही भिन्न–भिन्न रागों पर समाश्रित मानकर कजरी के ही प्रकार माना है किन्तु ब्रज क्षेत्र में इन गीतों को ऋतुवार भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे श्रावण–मास में गायी जाने वाली पञ्चमरागाश्रिता 'कजरी' को उत्तरी भारत में 'श्रावण–गीत' के नाम से जाना जाता है। कविवर मिश्रकृत रचना यहाँ उद्धरणीय है–

सखि रे! समागच्छति श्रावणमास उदारोऽयम्
संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!!
चित्तं चोरयते ननु चन्द्रः
मेघो भीषयते किल मन्द्रः
सखि रे! स्फुरति दामिनी गगने कृताभिसारेयम्
संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!!

1. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष/35–36, पृ. 271
2. मृद्वीका, रूपश्रीः, षष्ठी गीतिः, पृ. 11

भवने नैव मम प्राणेशः
श्वासः प्राणेष्वपि नो शेषः
सखि रे! भाति शर्वरी गूढसपत्नीसारेयम्
संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!![1]

जब शिशु को मन्द–मन्द स्वर व मधुर–रागों से संयुक्त गीत गाकर माता थपथपाते हुए सुलाने का प्रयास करती है, तो वह गीत–रचना लयेरिका (लोरी) कहलाती है– **"लयेन रागमाधुर्येण शिशुं निद्रातुमीरयति स्वापयतीति मातृगीता काऽपि गीतिर्लयेरिका। लोरीति हिन्द्याम्।"[2]** उदाहरण–स्वरूप कवि द्वारा विरचित लयेरिका–गीति निम्न प्रकार है–

अणित–मणितनाम्न्यौ मयका खलु
द्वे वराटिके प्राप्ते
ते च पुनर्मङ्गललाभार्थं
गङ्गाधरायां प्रवाहिते
गङ्गा मह्यं ददौ बालुकां
सा च मया भर्जकाय दत्ता
लाजा मह्यं ददौ भर्जको
लाजास्ताश्च मया समर्पिता
घासोत्पाटकाय.......................
जीवतुतरां प्रियो मे वत्सः
वर्षायुष्यं शतप्रमाणकम्
विलसतु मे लयेरिकागानम्!![3]

लयेरिका रचना–विधा को निरूपित करते हुए डॉ. मञ्जुलता शर्मा कहती हैं– "शिशु के सिर पर माता का स्नेही स्पर्श जब शब्दों का आकार लेता है तब वह लोरी बन जाता है। यह गीत प्रत्येक भाषा, प्रत्येक समाज में अपने–अपने शब्दों के गीतबन्धों द्वारा गाया

---

1. अभिराजगीता, प्रकृतिविलासगीतम्, सखि रे! समागच्छति श्रावणमास उदारोऽयम्–71, पृ. 123
2. अभिराजगीता, शिशुभावनागीतम्, पृ. 136
3. मधुपर्णी, पृ. 132 तथा अभिराजगीता, 136

जाता है। लोरी के गायन में बालसुलभ चेष्टाएँ, क्रीडाएँ, चाँद–तारे, परी, दूध–बताशे और न जाने क्या–क्या समाहित हो जाते हैं। माता के स्नेहित रस बिन्दु बालक को रससिक्त कर देते हैं। कहीं इसे 'लयेरिका' और कहीं 'लोरीगीतम्' कहा जाता है।"[1]

हमारी भारतीय संस्कृति में यह परम्परा रही है जब भी कोई अतिथि, मेहमान किसी कार्यक्रम में पधारे, तो 'अतिथि देवो भव' की भावना से युक्त होकर स्वागीत प्रस्तुत किया जाता है। स्वागत गीत के बोलों में पधारे हुए अतिथि के चरित्र, पद, प्रतिष्ठा इत्यादि का विनम्रता के साथ वर्णन किया जाता है। कविवर मिश्र जी ने अपनी गीत–संकलना 'अभिराजगीता' में 'स्वागतगीतम्' शीर्षक से अनेक स्वागत गीत लिखे हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

स्वागतं श्रीमतां व्याहरामो वयम्!
अर्चनं वन्दनं कल्पयामो वयम्।।
धन्यधन्या वयं मद् भावनागतः
प्राप्तमेघं यथा सन्तपन् पर्वतः
तं महावृष्टिमेघं नमामो वयम्!
अर्चनं वन्दनं कल्पयामो वयम्।।
भात्यरण्यं यथा कोकिलोत्कूजनैः
स्थानमेतत्तथा श्रीमतां पूजनैः
पूज्यपादातिथिं भावयामो वयम्!
अर्चनं वन्दनं कल्पयामो वयम्।।[2]

हिन्दी भाषा के सुप्रसिद्ध छन्द 'घनाक्षरी' को अभिराज जी ने संस्कृत में अत्यन्त भव्यता के साथ उतारा है और अपनी गीति का विषय बनाया है। इस छन्द की गति–यति का पूर्णतः ध्यान में रखकर ही पदबन्धों की रचना की गई है। घनाक्षरी एक सम वार्णिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में इकत्तीस वर्ण होते है। 16 व 15 वर्णों पर यति होती है। इसमें वर्णों के क्रम का कोई बंधन नहीं होता है। कवि प्रणीत घनाक्षरी–गीति इस प्रकार है–

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 250
2. अभिराजगीता, स्वागतगीतम्, 'स्वागतं श्रीमताम्'–5, पृ. 8

हृदये समुपैति पदं वर्धते शरीरे यत्
नयनाभ्यां नितरां चकाऽस्ति चारुचरणम्
अधरे बिम्बप्रतिमे स्मितकैस्तनुते सुषमां
पदयोर्विदधाति मन्दं मन्दं गजगमनम्।[1]

घनाक्षरी की ही भाँति हिन्दी भाषा के 'दोहा' छन्द को दोधकम् नाम से पूरी दक्षता के साथ संस्कृत–सुषमा प्रदान की है। यह अर्धसम मात्रिक छन्द है। इसके पहले व तीसरे चरणों में 13–13 तथा दूसरे और चौथे चरणों में 11–11 मात्राएँ होती है। तथा इसमें दूसरे एवं चौथे चरणों का तुक मिलता है–

प्रथम तीसरे पद सदा तेरह मात्रा योग।
पद दूजे चौथे रखें, ग्यारह मात्रा लोग।।[2]

उदाहरण के रूप में कवि की यह रचना 'दोधकम्' यहाँ प्रस्तुत है–

नदति पयोदो निर्भरं वर्षति शीतलवारि।
नन्दति वसुधाकामिनी रूपमहो सुखकारी।।
वारिधरो निकषा धरां समुपयति यन्नाम।
प्रेम तदेव नु कथ्यते रागमयं शुभधाम।।[3]

संस्कृत की नवछन्द विधाओं पर ब्रजभाषा का बहुत अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। संस्कृत–कवियों ने ब्रजभाषा के छन्दों को तदनुरूप मधुरता व शैली के साथ संस्कृत में ढाला है। कविवर मिश्र जी ने भी हिन्दी के 'सवैया' छन्द को 'सपादिका' नाम देकर अपनी रचनाएँ लिखी हैं। 'सवैया' एक सम वार्णिक छन्द है। प्रत्येक चरण में 22 अक्षरों से लेकर 26 अक्षरों तक के छन्दों को 'सवैया' कहा जाता है। इसके चारों चरणों में तुक मिलता है। मत्तगपंद, दुर्मिल, सुमुखी, किरीट, वीर (आल्हा) आदि इसके अनेक रूप है। दुर्मिल सवैया जिसमें आठ सगण तथा कुल 24 वर्ण होते हैं, में निबद्ध कविवर मिश्र की रचना इस प्रकार है–

---

1. मृद्वीका, पंचाशत्तमी गीतिः, घनाक्षरी, पृ. 76
2. डॉ. अरविन्द कुमार, सम्पूर्ण हिन्दी व्याकरण और रचना, पृ. 556
3. मृद्वीका, पंचाशत्तमी गीतिः, दोधकम्, पृ. 75

मधुगन्धवशीकृतपानकलम्पटभृङ्गनिकायसमाकलिता

पुरुहूतदिगागतगन्धवहेरितपल्लवसञ्चयसञ्चलिता।

ददृशे यदरालरसालवणी प्रतिशाखमनारतमञ्जरिता

बुबुधे सहसैव तदा धरणी मधुमासकथा पुनरापतिता।।[1]

हिन्दी के छन्दों के अलावा वैदेशिक छन्दों जैसे उर्दू व फारसी की गायन शैली कव्वाली एवं ग़ज़ल तथा सानेट, हाइकू, तान्का, सीजो आदि पश्चिमी छन्दों को युगधर्मी अर्वाचीन संस्कृत रचनाकारों ने अपनी रचना प्रस्तुति का माध्यम बनाया। नव–प्रयोग की सार्थकता को अपनी विशिष्ट सर्जनात्मक प्रतिभा से सिद्ध करने वाले अभिराज जी ने 'मृद्वीका' में 'काव्याली' नाम देते हुए 'कव्वाली' को संस्कृतभाषा में मूल कलेवर के साथ ससम्मान उतारा है। जो कवि की प्रयोगधर्मिता को सिद्ध करता है–

प्रीतिरास्वद्यते प्राणैः

गीतिरास्वद्यते कर्णैः

शक्तिरास्वद्यते देहैः

भक्तिरास्वद्यते स्नेहैः

घनान्धकारे बलिदीपिकेव बलाहके चञ्चलचञ्चलेव।

मधौ प्रफुल्ला नवमालिकेव प्रतीयते प्रीतिरियं पुराणी!![2]

संस्कृत–गजल–परम्परा को आगे बढ़ाते हुए तथा उर्दू व फारसी की इस विधा को सर्वप्रथम संस्कृत नाम 'गलज्जलिका' देकर कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने आधुनिक संस्कृत गीतिसाहित्य को संस्कृत गलज्जलिकाओं से समृद्ध किया है। मिश्र जी ने अपने अभिनवकाव्यशास्त्र 'अभिराजयशोभूषणम्' के प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष में 'गलज्जलिका' का बहुत ही सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन किया है। मानवीय संवेदना वं मनोभावों के विभिन्न स्वरूपों–शठता, धूर्तता, दुर्भावना, छल, माया, प्रवञ्चना, अनुकम्पा, अतिशय आसक्ति, ममत्व, शपथादि का आश्रय इत्यादि की व्यञ्जनात्मक अभिव्यक्ति 'गलज्जलिका' के संविधान तथा

---

1. अभिराजगीता, प्रकृतिविलासगीतम्, संपादिका मधुमासस्य–65, पृ. 112
2. मृद्वीका, पंचाशत्तमी गीतिः, काव्याली (कव्वाली), पृ. 74

रीति–नीति, नियमों को खोल–खोल कर उदाहरण सहित मिश्र जी ने विवेचित किया है। 'गलन्ति जलानि अश्रूणि यस्यां सा गलज्जलिका' ऐसी व्युत्पत्तिपरक विवेचना करते हुए गजलगीति के स्वरूप को मिश्र जी इस प्रकार निरूपित करते हैं–

एवमेवेतरे भावा मानवीयाः परात्पराः।
मर्मस्पृशोऽतिसूक्ष्माश्च चेतनान्दोलनक्षमाः।।
भङ्गीभणितिमाश्रित्य मान्यमान्यैः कवीश्वरैः।
परिकल्प्य प्रकाश्यन्ते नूनं गजलगीतके।।
श्रावं श्रावञ्च गीतार्थं नयने वारि वर्षतः।
ध्रुवं हर्षविषादाभ्यां सचेता यदि पाठकः।।
तत एव मया गीतिराख्यातेयं गलज्जला।
गलन्नेत्रजलत्वाद्वा सा गलज्जलिका पुनः।।[1]

"कविवर अभिराज जी ने गज़ल विधा को एक नये भावबोध के साथ संस्कृत में उतारा है जिसमें संस्कृत भाषा की निष्ठा भी विद्यमान है और उर्दू–फारसी की परम्परा भी"[2] ऐसा मानना है संस्कृत विदुषी डॉ. मंजुलता शर्मा का।

अभिराज ने संस्कृत काव्य–क्षेत्र में अपनी बहुरंगी गज़लगीतियों के विविध–रंग बिखेरे हैं। मत्तवारणी की भूमिका में कविवर स्वयं स्वीकार करते हैं कि– "मैंने गज़लों को उनके पुश्तैनी बाड़े (हुश्न, इश्क) से बाहर निकालने का यत्न किया है और उन्हें एक बड़ा कैनवास प्रदान किया है जिसके व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, लोक तथा विश्व–सभी समरस हैं।"[3]

वास्तव में कविवर मिश्र जी की गज़लगीतियों में कथ्य की व्यापकता है, विषयवस्तु की विविधता है, समकालीनता है, युगधर्मिता है, लोकदृष्टि है तथा नूतन बिम्बों एवं प्रतीकों की सहजग्राह्यता है। कवि की गज़लगीतियों में सम्पूर्ण भारतीय आध्यात्म, धर्म और दर्शन, संसार की नश्वरता तथा लोक की विषय स्थिति का यथार्थ चित्रण है–

---

1. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष। 64–67
2. डॉ. मंजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परम्परा, पृ. 240
3. मत्तवारणी, भूमिका–भाग, पृ.5

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूतां यामो वयम्
धूमतो धनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।
शून्यमेव विरौतु मां लोको, न दैन्यमुपैम्यहम्
योजिता अङ्केन शनकैर्लक्षतां यामो वयम्।।[1]

विगत कुछ दशकों से संस्कृत काव्यक्षेत्र में छन्दोमुक्त रचनाओं का प्रवाह देखने को मिलता है। लेकिन कवि की छन्दोमुक्त रचनाओं पर दृष्टि डालने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि हम यह जाने कि आखिर 'छन्दोमुक्त' रचना है क्या?

नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरत जी का मानना है कि– "कोई भी शब्द छन्दोहीन नहीं होता और न ही छन्द शब्द–वर्जित होता है। इसलिये शब्द एवं छन्द दोनों ही समवेत रूप से नाट्य के उद्योतक माने गये हैं–

छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति नच्छन्दः शब्दवर्जितम्।
तस्मात्तूभयसंयुक्ते नाट्यस्योद्योतके स्मृते।।"[2]

कविवर अभिराज जी छन्दोमुक्तरचना को परिभाषित करते हुये लिखते हैं कि "गद्य एवं पद्य दोनों के रसायन (रसवत्ता) से भरपूर काव्य छन्दोमुक्तकाव्य कहलाता है। यह गद्य एवं पद्य दोनों के जीवातु को धारण करने वाला होता है तथा पद्यात्मक लय के (Poctic Rhythm) द्वारा गद्य–विधा में लिखा जाता है–

गद्यपद्योभयात्मेदं छन्दोमुक्तं हि वाङ्मयम्।
पद्यात्मकलयेनैव यद्धि गद्येन लिख्यते।।"[3]

कविवर–विरचित छन्दोमुक्त रचनाओं में विषय वैविध्य के साथ–साथ कथ्य की गम्भीरता तथा प्रौढ़ता विद्यमान है। राजनीति के विकृत स्वरूप पर कटाक्ष करती हुई उनकी यह छन्दोमुक्त रचना निदर्शन स्वरूप प्रस्तुत है–

---

1. मधुपर्णी, धूमतां यामो वयम्–1, पृ.13
2. आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, 14/40
3. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष/100

काण्डात्काण्डं प्ररोहन्ती
राजनीतिदूर्वा
पश्य
हवालाकाण्डमधिरूढ़ा
तत्संस्पर्शाच्च विषाक्ता सञ्जाता
सम्प्रति
दूर्वाभोजिनो
राजनेतृकृष्णसाराः
विषमूर्च्छिताः
प्राणव्यथां सहमानाः
स्वनियतिं प्रतीक्षन्ते.................. ।[1]

शोध–ग्रन्थ के कलेवराधिक्य से बचने के लिए कविवर विरचित समस्त परम्परागत व नवीन छन्दों, लोकगीतों, वैदेशिक छन्दोविधाओं तथा नूतनानुप्रयोगों के लक्षणोदाहरण–सहित विवेचन करना यहाँ समुचित प्रतीत नहीं होता है। अतः निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के युगपुरुष हैं। साहित्य की प्रत्येक विधा एवं शिल्पविधान में वे अद्भुत हैं। पारम्परिक छन्द हो अथवा मुक्तच्छन्द दोनों में उनकी समानगति है। अपनी गीतियों व काव्यरचना हेतु छन्दोविधान के निरूपण में उन्हें कोई आयास नहीं करना पड़ता है। रचनाओं के स्वाध्याय, श्रवण एवं मनन से ऐसा लगता है जैसे उनकी कवित्व–प्रतिभा से प्रस्फुटित ललित पदावली कहीं गीत, कहीं गज़ल, कहीं कजरी, कहरवा, चैत्रक, कव्वाली, सोहर इत्यादि रूप से छान्दस नव प्रयोगों को जन्म देती रहती है। परम्परागत छन्दों की मनोहारिणी छटा के साथ मुक्तच्छन्दों की बौछारें सुधी पाठक को अलौकिकता का अहसास प्रदान करती हैं। उनकी गीतियों के छन्दोविधान में कहीं भी कृत्रिमता परिलक्षित नहीं होती है। उनकी मुक्तच्छन्द रचनाओं में भी कवि के व्यक्तित्व के विविध पक्ष स्वतः समाते चले गये हैं। कवि का कवित्व छुपा नहीं रह सकता है। अतः उनकी छन्दोमुक्त रचनाओं में भी गीतात्मक लय समाविष्ट हो जाती है। वस्तुतः कविवर अभिराज जी परम्परागत छन्दों के सर्जक पहले हैं और मुक्तच्छन्द के रचनाकार बाद में। अतः उनकी ये कविताएँ छन्दोविधान से तो मुक्त हैं परन्तु लय, संगीत तथा शास्त्रीय वैशिष्ट्य से विनिर्मुक्त नहीं हैं।

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्ड, दूर्वा–54, पृ.–90

(घ) अलंकार–योजना

काव्यगत भावों की स्पष्ट एवं सफल अभिव्यक्ति के लिए तथा काव्यगत सौन्दर्य की कसौटी स्वरूप अलङ्कारों की महती आवश्यकता होती है। साथ ही काव्य में प्रभवोत्पादकता के लिए भी अलङ्कार महत्त्वपूर्ण हैं। अलङ्कार कवि–प्रतिभा को गतिशीलता प्रदान करते हैं। 'अलम्' पूर्वक 'कृ' धातु के प्रयोग से 'अलङ्क्रियते अनेन अथवा अलङ्करोति' व्युत्पत्ति करने के कारण या भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय करने पर अलङ्कार पद निष्पन्न होता है।[1] जिसका तात्पर्य है कि जिस पदार्थ या तत्त्व के द्वारा कोई वस्तु सुशोभित की जाए और उसके सौन्दर्य में वृद्धि हो, वह 'अलङ्कार' कहलाता है। जिस प्रकार भौतिक शरीर को कुण्डलादि अलंकार अलङ्कृत करते हैं उसी प्रकार शब्द–अर्थ रूप शरीर वाले काव्य को उपमा आदि अलङ्कार अलङ्कृत करते हैं। काव्यगत अलङ्कारों का प्रयोग ऋग्वैदिक काल से लगातार होता आया है परन्तु अलङ्कार शब्द का काव्यशास्त्रीय प्रयोग सबसे पहले यास्क ने 'निरुक्त' में किया है। यास्क ने अलङ्कृत शब्दों को पर्यायवाची मानकर उपमा पद की निरूक्ति दी है।[2]

अलंकारों का सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचन हमें आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। आचार्य भरत ने उपमा, रूपक, दीपक और यमक इन चार अलङ्कारों का विवेचन किया था–

उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा।
अलङ्कारास्तु विज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रयाः।।[3]

आचार्य भरत के पश्चात् अलङ्कारों का उत्तरोत्तर विकास होता गया तथा आचार्य भरत के द्वारा निर्दिष्ट चार अलङ्कार अप्पय दीक्षित के समय तक 125 हो गए। आचार्य भामह ने सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से अलंकार के स्वरूप का विवेचन किया और इसे काव्य के आत्मतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने वक्रोक्ति युक्त शब्दोक्ति को अलङ्कार माना

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ.107 तथा पाणिनि, अष्टाध्यायी, 3.3.18
2. यास्क, निरुक्त, अथात उपमाः यदतत् तत् सदृशमिति गार्ग्यः 1,3.3.14
3. आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, 17/43

है— **"वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलङ्कृति।"** [1] कालान्तर में काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों को अलङ्कारशास्त्रीय ग्रन्थ कहने के पीछे अलङ्कार की प्रधानता ही थी परन्तु परवर्ती काल में ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार किये जाने के कारण अलङ्कारों को अलङ्करण स्वरूप माना जाने लगा। इसीलिए आचार्य दण्डी लिखते हैं—

"काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते।"[2]

आचार्य वामन अपने 'काव्यालङ्कारसूत्र' में सौन्दर्य मात्र को अलङ्कार कहते हैं। इसी सन्दर्भ में वे लिखते हैं **"काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्, सौन्दर्यमलङ्कारः।"**[3] अर्थात् अलङ्कार के कारण ही काव्य ग्राह्य एवं उपादेय है और वह अलङ्कार सौन्दर्य है।

आचार्य मम्मट समन्वयवादी आचार्य के नाम से जाने जाते हैं। उन्होंने अलङ्कार को काव्य का अनिवार्य अंग न मानकर उसे रस और ध्वनि का सहायक स्वीकार किया है तथा इन्हें काव्य के अंगीभूत शब्द और अर्थ के शोभाकारक धर्म माना—

"उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।"[4]

मम्मट ने काव्य को सालंकार माना फिर भी 'अनलंकृती पुनः क्वापि' [5] कहकर उसकी अनिवार्यता का निषेध किया है।

चौदहवीं शताब्दी के आचार्य विश्वनाथ के अनुसार शब्द और अर्थ के जो शोभातिशायी अर्थात् सौन्दर्य की विभूति बढ़ाने वाले अस्थिर धर्म हैं, वे ही अलङ्कार हैं—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायीनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गादिवत्।।[6]

---

1. आचार्य भामह, काव्यालंकार, 1.36
2. आचार्य दण्डी, काव्यादर्श, 2/1
3. आचार्य वामन, काव्यालंकारसूत्र, 1/1/1—2
4. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, 8/67
5. वही, वही, 1/1
6. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 10/1

आचार्य राजशेखर ने तो अलंकार को 'वेद का सातवाँ अंग मानकर इसे वेदार्थ उपकारक'[1] घोषित किया है क्योंकि इसके बिना वेदार्थ की अवगति संभव नहीं है। इस प्रकार सारांशतः साहित्य में कवि वाणी का वह सौंदर्य–साधन जो काव्य में लावण्य की सृष्टि कर उसे अनुभूतिपरक बनाता हो, अलंकार कहलाता है। भारतीय काव्य शास्त्र में रमणीयता की दृष्टि से अलंकार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। चाहे गद्य हो या पद्य दोनों विधाओं में अलंकारों का प्रयोग नितांत स्वाभाविक और प्रचुर मात्रा में होता आया है। परन्तु शिल्प के स्तर पर आज का कवि अलङ्कारों के मोहपाश से मुक्त हो चुका है। वह उनके पारम्परिक प्रयोग के स्थान पर कुछ नवीन करने में विश्वास रखता है। अतः संस्कृत कविता को सजाने–संवारने का उपक्रम वह नहीं करता है। प्रसिद्ध विचारक दयानन्द भार्गव जी वर्तमान रचनाधर्मिता के विषय में कहते हैं–

"कवि (संस्कृत) भाषा के श्रृंगार के उपकरण, कोश, व्याकरण अन्य साहित्य से बटोर सकता है, व्यवहार, जीवन और समाज से नहीं। परिणामतः वह भाषा को जड़ आभूषणों से सजा सकता है जीवित अलंकरणों से नहीं। परिणामतः वह भाषा को जड़ आभूषणों से सजा सकता है जीवित अलंकरणों से नहीं। संस्कृत कामिनी के निवास के लिये पत्थर के प्रासाद उपलब्ध हैं किन्तु मिट्टी की सौंधी सुगन्ध उसे दुर्लभ है।"[2]

संस्कृत कविता की अर्वाचीनता या आधुनिकता कवि की अभिव्यक्ति से सिद्ध होती है। सामाजिक विषय को अपनी कविताओं में उतारने पर कवि की स्वतः स्फूर्ति और आवेग अलंकार और रस की अपेक्षा नहीं रखता अपितु दृश्यमान पदार्थों और घटनाओं के विवरण पर दृष्टि रखता है। इस सम्बन्ध में संस्कृत की विदुषी व समीक्षका डॉ. मञ्जुलता शर्मा लिखती हैं कि– "अलंकारों के प्रयोग में परिवर्तन की जो बयार बही है उससे संस्कृत साहित्य की नई पौध विकसित हो रही है। अलंकार का प्रयाग तो आधुनिक कवि अपने काव्य में कर रहा है परन्तु कुछ परिवर्तनों को स्वीकार करके वह अपनी नव्य दृष्टि, नये प्रतिमानों को आईने में कैद कर रहा है।"[3]

---

1. आचार्य राजशेखर, काव्यमीमांसा– उपकारकत्वादलंकारः सप्तममंगमिति यायावरीयः। ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थनवगतिः।
2. दृक्, दृग्–भारती, इलाहाबाद, अंक–1, पृ.–08
3. डॉ. मञ्जुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 303–304

आधुनिक संस्कृत के लब्ध प्रतिष्ठित कवि व समालोचक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अलङ्कार को न ही व्यञ्जनावादी आचार्यों के समान काव्य का शोभाधायक तत्त्वमात्र मानते हैं और न ही आचार्य वामन की तरह 'सौन्दर्यमलङ्कारः' जैसी प्रशस्ति लिखकर अलंकार को अनितर साधारण प्रतिष्ठा देते हैं। अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र' में अपने काव्य लक्षण 'लोकानुकीर्तनं काव्यम्' [1] में उद्धृत 'अनुकीर्तन' शब्द से उन्हें दो तत्त्व अभीष्ट हैं– शब्दार्थ का सहभाव और रचना प्रक्रिया। लोक का अनुकीर्तन शब्द और अर्थ के माध्यम से मानते हुए उन्होंने अनुकीर्तन की–अनून्मीलन, अनुदर्शन, अनुभव और अनुव्याहरण, ये चार अवस्थायें मानी हैं तथा कहा है कि इस चतुर्विध अनुकीर्तन से काव्य में पूर्णता आती है और यह पूर्णता ही अलङ्कार है। अतः उन्होंने अलङ्कार को ही काव्य माना है– 'अनुकीर्तनं चतुविधम्'।[2] तेनास्य पूर्णता।[3] पूर्णता चालङ्कारः।[4] तेन अलङ्कार एव काव्यम्।[5]

अलङ्कार के जिस विराट् सौन्दर्य का साक्षात्कार अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रकार ने किया है, वह पारम्परिक होते हुए भी नवीन दृष्टि और अभिनवचिन्तन से संवलित है। उन्होंने अलङ्कार को ही काव्यजीवन माना है– **"अलङ्कारः काव्यजीवनम्।[6] आधिभौतिकाधि–दैविकाध्यात्मिकविश्वत्रयसमुन्मीलनपुरस्सरं भूषणवारणपर्याप्त्याधायकत्वमलङ्कारत्वम्।"[7]**

आचार्य त्रिपाठी जी ने अलङ्कारों को दो भेदों में विभक्त किया है– आभ्यन्तर तथा बाह्य। अलङ्कारा द्विविधाः–आभ्यन्तरा बाह्याश्च।[8] प्रेमा, आह्लाद, विषादन, विभीषिका, व्यंग्य, कौतुक, जिजीविषा, अहङ्कार, स्मृति, साक्ष्य और उदात्त ये ग्यारह आभ्यन्तर तथा

---

1. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, 1.1.1
2. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, 1.1.7
3. वही, वही, 1.1.8
4. वही, वही, 1.1.9
5. वही, वही, 1.1.10
6. वही, वही, 2.1.1
7. वही, वही, 2.1.2
8. वही, वही, 2.4.1

सङ्घटनाश्रिताः, विरोधमूलकाः, औपम्यमूलकाः वृत्तिमूलकाः भेद से कुल 18 बाह्य अलङ्कार माने हैं। जिनकी उपस्थिति में ही काव्य जन्म लेता है और जिनके अभाव में वह प्रसूत नहीं हो पाता–उन्हीं को त्रिपाठी जी आभ्यन्तर अलङ्कार मानते हैं। ये अप्रकटीभूत ही क्यों न हों, परन्तु विद्यमान अवश्य रहते हैं। यदि काव्य में नहीं तो कम से कम कवि के मानस में तो रहते ही हैं– **'परन्तु सर्वत्र काव्यरचनाया कवेर्मानसे अन्तस्तिमिता भवन्ति।'**[1] इस प्रकार काव्य में अलंकार की अपरिहार्यता के साथ ही वे रस, गुण, रीति, वृत्ति, ध्वनि और उसके समस्त प्रभेदों को अलंकार में ही अन्तर्भूत मानते हैं– **"तेनाऽलङ्कारेणैव पूर्णताऽऽधीयते काव्ये। तस्मिश्चान्तर्भवन्ति समग्राः काव्यकोटयः।**

रसश्चापि गुणाश्चापि रीतयो वृत्तयस्तथा।
सर्वे ध्वनिप्रभेदाश्च ये प्राचीनैरुदाहृताः।।
सन्धिसन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्गलक्षणानि तथैव च।
अलङ्कारस्य परिधौ सर्वे चान्तर्भवन्ति ते।।"[2]

समकालीन संस्कृत कविता के लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार आचार्य हर्षदेव माधव जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्र 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' में कहते हैं कि– "सख्य, साहचर्य, साम्य, सादृश्य, तादाम्य, सहोपस्थिति, योग, तुल्यता आदि मैत्री के गुण है और उनसे सम्बन्ध अलंकार मैत्री मूलक हैं– **"तत्सम्बद्धा अलङ्कारा मैत्रीमूलाः।"**[3] इसके आगे वे पुनः कहते हैं कि– **"प्रायः सभी अलंकारों में मुदिता होती है। आह्लाद अनुभव में चमत्कृति मुदिता है– चमत्कृतिराह्लादानुभवे मुदिता।"**[4] उनके मतानुसार बहुत से अलंकारों से चमत्कारिक उपेक्षा उपेक्षा सौन्दर्य रचती है। यह उपेक्षा काव्याह्लाद देती है, अतः चित्त–उद्वेग करने वाली नहीं है। साथ ही अभिनवकाव्यालंकारसूत्रकार त्रिपाठी जी द्वारा निर्दिष्ट आभ्यन्तर अलंकार मैत्री, करुण, मुदिता, उपेक्षा मूलक हैं– **'आभ्यन्तरा अलङ्कारा मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षामूलाः'।**[5]

---

1. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, V
2. वही, पृ. 117
3. आचार्य हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, (अलंकारतत्त्वप्रवालम्), 6/1–2
4. वही, वही, 6/3
5. वही, वही, 6/6

आधुनिक संस्कृत साहित्य के युगप्रवर्तक आचार्य कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं तथा स्थूल शब्द और अर्थ के धर्म मानते हुए वे अलंकार, रीति, वक्रोक्ति अथवा औचित्य को काव्य के आत्मभूत तत्त्व नहीं मानते हैं–

नालङ्कारो न वा रीतिर्वक्रोक्तिरथवौचिती।

नूनं शब्दार्थधर्मत्वात्काव्यात्मत्वं समञ्चति।।[1]

यो हि प्रतीयमानार्थः काव्यात्मत्वेन घोषितः।

आनन्देन ध्वनिनामा व्यङ्ग्यार्थोऽपरसंज्ञितः।।[2]

अलङ्काररसौ तस्माद् ध्वनेर्भिन्नौ न तिष्ठतः।

औचित्यञ्च रसाद्भिन्नं नैव सिध्यति किञ्चन।।[3]

कविवर अभिराज जी दण्डी व मम्मट की भाँति अलंकारों को काव्य के शोभाधायक तत्त्व ही मानते हैं। काव्य में रस की प्रधानता बताते हुए अलंकारों को रस का उपकारक ही माना है।

शब्दार्थसंश्रिता ये वै काव्यशोभां प्रतन्वते।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।

काव्यं चेन्निरलङ्कारं रसमात्रेण जीवति।

सालङ्कारमपि प्रायो नीरसं म्रियते खलु।।

यद्यप्यनित्यधर्मा हि प्रोक्ताः काव्यस्य सूरभिः।

अलङ्कारा रसं सन्तं तथाप्याशूपकुर्वते।।[4]

यहाँ पर अलंकारों का विवेचन कविवर द्वारा परम्परागत रीति से ही किया है किन्तु पहले की अपेक्षा कविवर द्वारा प्रदत्त अलंकारों के लक्षणों की भाषा अतिसरल है तथा उनके अभिप्राय भी सुस्पष्ट है। कविवर का सर्वाधिक प्रिय अलंकार 'अप्रस्तुतप्रशंसा

---

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, आत्मतत्त्वोन्मेषः/33
2. वही, वही, वही/51
3. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, आत्मतत्त्वोन्मेषः/52
4. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, वपुस्तत्त्वोन्मेषः/91–93

अलंकार है'[1], जैसा कि वे अपने साक्षात्कार के दौरान स्वीकार करते हैं। अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार का लक्षण करते हुए वे लिखते हैं–

अप्रस्तुतप्रशंसा सा प्रस्तुतं यत्र गम्यते।
अप्रस्तुतात्पुनर्वाच्यात् हेतुभिः पञ्चधा मता।।[2]

अर्थात् जहाँ अप्रस्तुत वाच्य से प्रस्तुत (पक्ष) की व्यञ्जनया अवगति होती है उसे अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार कहते हैं। अपने विविध हेतुओं के कारण यह पाँच प्रकार की होती है।

जिस काव्य में अलंकार और अलंकार्य में पूर्ण सामञ्जस्य बैठ जाये वहाँ काव्य की रमणीयता स्वतः उच्छलित होती दिखती है। कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने अपनी काव्य रचनाओं में इसी कोटि के अलंकारों के प्रयोग किये हैं। उनकी नवगीत रचनाओं में यह आलंकारिक वर्णन सहज एवं स्वाभाविक रूप से उपस्थिति पाकर उनके गीतों की शोभा एवं प्रभावोत्पादकता बढ़ाने का कार्य कर रहा है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा इत्यादि अलंकारों ने उनके गीतों की भाषा को तो समृद्ध किया ही है, भावों को भी सम्बल प्रदान किया है। कवि ने कहीं भी हठात् अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है। कहीं भी कृत्रिमता नजर नहीं आती है। शब्दालंकार हो अथवा अर्थालंकार दोनों के ही स्वाभाविक एवं मनोहर प्रयोग उनकी गीत–रचनाओं में देखने को मिलते हैं। कविवर कृत गीत रचनाओं की गेय प्रकृति, मधुरता, रसपेशलता तथा ललित पदरचना के सामञ्जस्य तथा कवि के छुपे अद्भुत गीतकार के कारण रचनाओं की छटा देखते ही बनती है। रचनाओं में काव्यशास्त्रीय तत्त्व मानो स्वतः समाहित होते चले गये हों। वाग्वधूटी की प्रथम रचना पर ही दृष्टि डालें तो अनुप्रास की अद्भुत छटा देखने को मिलती है–

मधुरं विचिन्तयामो मधुरं हि मानसे स्यात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्।।

1. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्रः व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 53
2. अभिराजयशोभूषणम्, वपुतत्त्वोन्मेषः/127

केचिद् वदन्ति नीतिम्
केचिद् वदन्ति भीतिम्
प्रतिपलमहो समेषामायुष्यमेव भूयात्।।
स्वजनेषु काऽपि रागी
विजनेषु काऽपि रागी
निखिले भवे परं हि तस्यैव दर्शनं स्यात्।।[1]

यहाँ शब्दों की समानता रचनापंक्तियों को अत्यधिक आकर्षक तथा रमणीयतापूर्ण बना रही है। जैसाकि कविवर मिश्र अपने लक्षण–ग्रन्थ अभिराजयशोभूषणम् में लिखते हैं–

शब्द साम्यमनुप्रासो विषमेष्वपि स्वरेषु यत्।
छेकादिभेदभिन्नोऽसौ बहुरूपो निगद्यते।।[2]

कविवर अभिराज जी एक सुकवि के कवित्व को समस्त लोकों को आह्लादित करने वाला तथा लोक का प्रेरणाभूत मानते हैं। इसको नाना उपमाओं से विभूषित करते हुए मालोपमा की सुन्दर प्रस्तुति निम्न प्रकार है–

सुधेव देवं रमेव रामम्
शचीव वज्रिणमुमेव शम्भुम्
पुनाति सुकवे! विलोललोकं
ह्यदीरितं प्रेरणाप्रणीतम्
तवाभिरामं कवित्वगीतम्!![3]

कविवर द्वारा प्रस्तुत मालोपमा का लक्षण इस प्रकार है–

एकस्यैवोपमेयस्योपमानं बहु दृश्यते।
यत्र मालोपमा सैव प्रोक्ता मालानुकारिणी।।[4]

---

1. वाग्वधूटी, मांल्यमेव भूयात्–1
2. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेषः, अलंकार प्रकरण 100, पृ. 103
3. वाग्वधूटी, तवाभिराम कवित्वगीतम्–3
4. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेष, अलंकारप्रकरण/107, पृ. 110

जब किसी समान अथवा असमान अनुभव द्वारा किसी वस्तु का स्मरण हो आता है, वही स्मरण अलंकार कहलाता है—

सदृशोऽसदृशाद्वापि जायतेऽनुभवादिह।

वस्तुनो या स्मृतिस्तद्वै स्मरणं विनिगद्यते।।[1]

कवि की नवगीति 'तव स्मरणम्' इसी अलंकार में उपनिबद्ध है। कवि समानधर्मी व्यवहार से स्मृतिवन में भ्रमण करते हुए दिखाई देते हैं। रचना—पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं—

यदा पर्येति भृङ्गो जलजकलिकाम्

मनोऽधीरं विधत्ते तव स्मरणम्।।

यदाऽऽकाशे प्लवन्ते सजलजलदाः।

मनो भ्रान्तं विधत्ते तव स्मरणम्।।

यदा प्राच्यां प्रदोषे विधुर्दयते

मनो मुग्धं विधत्ते तव स्मरणम्।।

यदा पुंस्कोकिलो रौति माकन्दके

मनो व्यग्रं विधत्ते तव स्मरणम्।।[2]

अर्थ के विद्यमान रहने पर पृथक् अर्थ वाली स्वर व्यञ्जन संहति की, समान क्रम से आवृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है—

समक्रमेणैवावृत्तिः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।

सत्यर्थे पृथगर्थाया यमकं तन्निगद्यते।।[3]

कवि मिश्र जी द्वारा प्रणीत रचना 'श्रीमन्तमेव भजामहे' की इन पंक्तियों में सार्थक तथा पृथकगर्थ वालों नीर—नीर तथा तनु—तनु शब्द युग्मों की क्रमशः आवृत्ति होने के कारण यमक अलङ्कार प्रादुर्भूत होता है—

---

1. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेष, अलंकारप्रकरण / 110, पृ. 112
2. मधुपर्णी, प्रथमखण्ड, तव स्मरणम्—16, पृ.29
3. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेष, अलंकारप्रकरण / 102, पृ. 105

नवनीरनीरदनीलतनुतनुजनितशाद्वलवैभवम्

निश्शेषदुष्कृतसुकृतगणकृतमसृणमङ्गलकैतवम्।।[1]

कविवर कृत नवगीतियों में गुम्फित सटीक एवं सार्थक उपमाएँ उनकी सूक्ष्म एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा की ही द्योतक है। कवि की उपमाओं में उनका गहन चिन्तन, अनुभव तथा स्वाध्याय जनित ज्ञान की पराकाष्ठता परिलक्षित होती है। उनकी उपमाओं में तार्किकता, मार्मिकता, सटीकता तथा स्वाभाविकता है। उनकी उपमाओं में मानवीय भावनाओं, संवेदनाओं तथा कल्पनाओं का संसार समाहित है। एक विरहिणी के लिए घनरजनी (बदली) सर्पिणी की भाँति डरावनी तथा प्राणहरण करने वाली ही होती है–

व्यालीव दशति घनरजनी
दयितो नन्दनन्दनो न सदने!!
भ्रमति पयोदो वैरी भ्रामयति चपलाम्
यथा तथा श्वसिति विरहिणी
दपितो नन्दनन्दनो न सदने!![2]

एक प्रतिभासम्पन्न कवि की सुमधुररचना सहृदयचित्त को प्रफुल्लित कर अलौकिक आनन्द प्रदान करती है। कवि की रसमाधुरी से आप्लावित पंक्तियाँ चित्र का विकास करती हैं। लोक की संवेदनाओं को जीवन्त करती हैं। वह कभी अमरधुनि की भाँति कलि को रोमांचित करवाती है, तो कभी रमणी की तरह रति सुख का अहसास कराती है तथा कभी–कभी वह मानव–मन की द्रवीभूत करुणा का साकार रूप ले लेती है। इस प्रकार कवि का उपमा वैचित्र्य सचमुच उनको अभिनव कालिदास की उपाधि से विभूषित कर देता है–

मदयति नहि कं सुमधुररचना!
नवरुचिरपदा मधुमयवचना!!
क्वचिदमरधुनीव धुनोति कलिम्
विलसति रमणीव तनोति रतिम्

---

1. वाग्वधूटी, श्रीमन्तमेव भजामहे–5
2. मृद्वीका, ऋतुश्रीः, चतुर्दशतमी गीतिः, पृ. 22

भुवि मूर्तिमतीव कलितकरुणा!
मदयति नहि कं सुमधुररचना!![1]

कविवर मिश्र जी उपमा का लक्षण देते हुए लिखते हैं कि जहाँ एक ही वाक्य में दो वस्तुओं का वैधर्म्य–रहित साम्य वाच्य हो रहा हो, वहाँ उपमा अलंकार होता है। सामान्य धर्म, वाचक शब्द, उपमेय तथा उपमान–इन चारों अंगों से युक्त उपमा पूर्णोपमा कही जाती है–

वैधर्म्यरहितं साम्यं यत्र वाच्यं क्वचिद् द्वयोः।
वाक्यैक्ये सोपमा पूर्णा चतुरङ्गसमन्विता।।[2]

कवि की अधिकांश नवगीत रचनाएँ नवगीत की प्रकृति के अनुरूप व्यञ्जनात्मक या अन्योक्ति प्रधान शैली से युक्त है। समकालीन समाज की विषम परिस्थितियों के चित्रण में कथ्य का यह तरीका बहुत ही प्रभावी तथा रोचक होता है। जहाँ अप्रस्तुत वाच्य से प्रस्तुत (पक्ष) की व्यञ्जनया अवगति होती है उसे अप्रस्तुतप्रशंसा कहते हैं। यह अप्रस्तुत–प्रशंसा अपने हेतुओं–कारण, कार्य, सामान्य, विशेष तथा सारूप्य के कारण पाँच प्रकार की होती है। पाँचवी सारूप्यनिबन्धना, अप्रस्तुतप्रशंसा ही अन्योक्ति है–

अप्रस्तुतप्रशंसा सा प्रस्तुतं यत्र गम्यते।
अप्रस्तुतात्पुनर्वाच्यात् हेतुभिः पञ्चधा मता।।[3]

कवि की 'अतः परं कि भविता' रचना अन्योक्ति अथवा अप्रस्तुत प्रशंसामूलक रचना है। समाज में व्याप्त विषमताओं, महिलाओं के साथ होने वाले दुराचारों, व्यक्ति की कर्त्तव्य–विमुखता, लम्पटता, बनावटीपन इत्यादि को अपनी रचना–पंक्तियों का विषय बनाकर अन्योक्ति के माध्यम से इस विकृत–स्वरूप पर तीखा व्यंग्य किया है। कथ्य की शैली के कारण कवि का मन्तव्य सहृदय–पाठकों के अन्तःस्थल को भेदता नजर आता है–

अतं परं किं भविता भूतले विचित्रम्
आत्मानं वायसोऽपि मन्यते पवित्रम्।।

---

1. श्रुतिम्भरा, संस्कृतध्वनि, सुमधुररचना, पृ. 31
2. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेष, अलंकारप्रकरण/05, पृ. 108
3. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेष, अलंकारप्रकरण/105, पृ. 108

वेशयोषितां वृन्दे शीलगता चर्चा
मलिम्लुचानां गेहे शाम्भवी समर्चा।।
नित्यलम्पटाः शिविकारक्षणे नियुक्ताः
न्यायाधीशास्त एव ये प्रागभियुक्ताः।।
कदलीसङ्गति हन्त वाञ्छति बर्बूरः
चुचुम्बितानि नीलनभः खर्वः खर्जूरः।।
अतः परं किं भविता भूतले विचित्रम्
शिक्षन्ते हंसा यदि बकेभ्यश्चरित्रम्।।[1]

जब अभिधोक्त वाच्यार्थ ज्ञान के लिए विशेषणों का साभिप्राय उल्लेख किया जाता है, तब वहाँ परिकर अलंकार होता है– **"उक्तैः परिकरः प्रोक्तस्साभिप्रायैर्विशेषणैः।"**[2]

कविवर अभिराज जी कलियुग के अचम्भित करने वाले प्रभावों का निरूपण करने हेतु अपनी रचना 'नमोनमः' में लिखते हैं– महात्मन् कलिकाल! नमस्कार है तुम्हें! सैंकड़ों आश्चर्यों से ओत–प्रोत! नमस्कार हैं तुम्हे! संस्कृति–रूपी पुष्करिणी (कमल–सरोवर) को ध्वस्त करने वाले हे मदमत्त गजराज! नमस्कार है तुम्हें!

कलिकाल महात्मन् नमोनमः
आश्चर्यशतात्मन् नमोनमः।
हे संस्कृतिपुष्करणीध्वंसक
मद–मेदुर–वारण! नमोनमः।।[3]

यहाँ कलिकाल के लिए प्रयुक्त साभिप्राय विशेषणों महात्मन्, आश्चर्यशतात्मन्, संस्कृतिपुष्करणीध्वंसक, मद–मेदुर–वारण के प्रयोग वाच्यार्थ को और भी स्पष्ट करते हैं, अतः परिकर अलंकार का स्वरूप बनता है।

प्रकृति वर्णन, ऋतुओं के चित्रण तथा तीज–त्योहारों के चित्रण परक गीतियों में स्वभावोक्ति अलंकार की छटा देखने को मिलती है। इस स्वभाविक वर्णन में उपमा आदि

1. मधुपर्णी, प्रथमखण्ड, अतः परं किं भविता–14, पृ. 26
2. अभिराजयशोभूषणम्, वपुस्तत्त्वोन्मेष, अलंकारप्रकरण/129, पृ. 130
3. मधुपर्णी, द्वितीयखण्ड, कलिकाल महात्मन्! नमो नमः–33, पृ. 55

अन्य अलंकारों का पुट कथ्य की उत्कृष्टता–आधायक तत्त्व बनते हैं। कवि की एक रचना 'रविभास्वर प्रभातम्' को द्रष्टान्त रूप में रख सकते हैं। प्रातःकाल होने पर सूरज की पहली किरण के साथ प्रकृति में क्या–क्या हलचल होती है। चर–अचर, जड़–चेतन, जीव–अजीव तथा मनुष्य जीवन किस प्रकार क्रियाशील होता है, इन सबका स्वभाविक वर्णन कवि ने सुमधुर व रोचक शैली में किया है–

लोचनमुन्मीलय समागतं रविभास्करं प्रभातम्।
अपयातं धनतमोवितानं दिङ्मण्डलमवदातम्।।
सितरेखाङ्कित इवाऽऽलक्ष्यते बकपङ्क्त्याऽम्बरभालः।
धवलवसनपट्टिकावृतो ननु बृहदुत्सवस्तमालः।।
विकसितमल्लीकुसुमरसामृतरसिकाऽटति मधुपाली।
अधिवाटिकमिह रौति सगुञ्जं माद्यति नवशेफाली।।
नृत्यति पारावतोऽनुरक्तश्चटका तनुं धुनीते।
निशाविरहितं प्रेक्ष्य सुतं गौर्हम्भारवं प्रसूते।।[1]

सुमधुरता, सरलता, सहजता एवं सरसता कविवर मिश्र जी की नवगीत रचनाओं का वैशिष्ट्य है। रचनाओं में प्रयुक्त ललित एवं कोमकान्तपदावली तथा वर्णन का माधुर्य उनको हृदयावर्जकता प्रदान करता है। इसी कारण कवि की रचना–पंक्तियों में अनुप्रास–अलंकार बहुतायत से देखने को मिलता है। कवि की कवितामाधुरी के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करने वाली अनुप्रास की छटा जहाँ श्रुतिमाधुर्य उत्पन्न करती है वहीं वर्ण्य–विषय की प्रभावकता को बढ़ाने वाली होती है। शब्दालंकार हों अथवा अर्थालंकार सभी समान रूप से उनकी गीतियों में उपनिबद्ध हैं। सभी अलंकारों का विवरण देना विषयाधिक्य हो जायेगा। अतः उपर्युक्त विवरण निदर्शन मात्र है। नवगीत रचनाओं में यद्यपि विषय–प्रस्तुति की स्वाभाविकता पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। नवगीतकार जानबूझ कर काव्य–शास्त्रीय तत्त्वों का गुम्फन करने से बचता है क्योंकि इससे कविता की स्वभाविक चाल खत्म हो जाती हैं, लेकिन जिस नवगीतकार के अन्दर मिश्र जी की भाँति एक साहित्यकार, कवि, लेखक समीक्षक, कथाकार, नाटककार आदि का बहुविध व्यक्तित्व

---

1. अभिराजगीता गीता, प्रकृतिविलागीतम्, रविभास्वरं प्रभातम्–60 पृ. 102

समाहित होता है वहाँ नवगीतों की शोभा अद्भुत बन जाती है। उनकी रचनाओं में अन्य काव्यशास्त्रीय तत्त्व स्वतः समाहित होते चले जाते हैं। इसी कारण कवि को अभिराज की उपाधि प्राप्त है। अपने वाग्वैभव के कारण अभिराजता को प्राप्त अभिराज जी की भाषा सरल, सरस, मधुर, अन्त्यानुप्रास–संविलित, कहीं शिष्ट कहीं श्लिष्टता रहित, कहीं अन्योक्तिपरक, कहीं यमकसंयमित तथा कहीं उपमा–उत्प्रेक्षायुता है। कवि के वर्ण्य–विषयों के चित्रण में शास्त्रीय उपमानों के बहुविध प्रयोग सुशोभित हैं।

(ङ) रीति–संघटना

साहित्य की अभिनव विधा नवगीत की भाषा सृष्टि अलग है। इसका भाषायी लोक परिधान इसे न सिर्फ समकालीन काव्य प्रवृत्तियों से अलग करता है बल्कि सम्प्रेषणीयता में भी अपनेपन के एहसास से गुजरता है। यह स्वाभाविक है कि कथ्य जितना सहज, स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त शब्दावली से युक्त हो और कहने का ढंग जितना देशीय संस्कारों से युक्त होगा उतना ही सजीव प्रभावकारी व मर्मस्पर्शी होगा।

अपनी बात को प्रस्तुत करने के इस ढंग को ही काव्यशास्त्रीय भाषा में 'रीति' संज्ञा से अभिहित किया गया। 'रीति' शब्द रीङ्गतौ धातु से क्तिन् प्रत्यय[1] के योग से बना है, जो हिलना–डुलना, बहना, गति, क्रम, धारा, नदी, रेखा, सीमा, प्रणाली, ढंग, तरीका, मार्ग, शैली, विधा, प्रक्रिया, रिवाज, प्रथा, प्रचलन, वाक्य विन्यास इत्यादि अर्थों का द्योतक है। साहित्य क्षेत्र में 'रीति' कविता का वह मार्ग या रास्ता है, जिससे वह गति करती है या गुजरती है। काव्य रीति से अभिप्राय मोटे तौर पर रचना की शैली से है। यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्र में यह एक व्यापक अर्थ धारण करने वाला शब्द है।

संस्कृत के परम्परागत तथा अर्वाचीन काव्यकारों ने 'रीति' को अपने ढंग से निरूपित किया गया है। आचार्य हर्षदेव माधव जी कहते हैं कि 'प्रत्येक कवि की जो विशिष्ट पदरचना होती है, वह रीति है–

'प्रतिकविविशिष्टा पदरचना रीतिः।'[2]

---

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 823
2. आचार्य हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्/1.21 पृ. 67

आगे इसको और भी स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं– **"विशिष्टपदरचना रीतिः। विशिष्टा न रीतेः, कवेरभिव्यक्तेरेव वैशिष्ट्यम्। प्रतिकवि विशिष्टा या पदरचना सैव रीतिः।" यथोक्तं काव्यादर्शकारेण– 'अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम्।' कविषु, भाषाषु विभिन्ना रीतयोनन्तभेदाः। रीतिः प्रतिकवि तस्य काव्याभ्यासेन, रुच्यरूचिभ्यां वर्णनविषयैः, रसैः, काव्यवाचकैः सह सम्बद्धाऽस्ति। एकस्मिन् एव कवौ रीतिवैविध्यं लक्ष्यते।.................... वस्तुतः रीतिः कविप्रकृतेर्बाह्याऽभिव्यक्तिः। अतस्तस्यां कवेरन्तर्व्यक्तित्वस्यापि लाक्षणिकता वर्तते।**[1] अर्थात् विशिष्ट पदरचना रीति है। विशिष्टता रीति की नहीं होती है। वैशिष्ट्य कवि की अभिव्यक्ति का होता है। प्रतिकवि विशिष्ट जो पद रचना होती है, वही रीति है। जैसा काव्यादर्शकार दण्डी कहते हैं– 'परस्पर सूक्ष्म भेद वाला वाणियों का मार्ग अनेक (अनन्त होता) है।' रीति प्रतिकवि उसके काव्याभ्यास, रूचि–अरुचि, वर्णन–विषयों, रसों एवं उसके पाठकों के साथ जुड़ी होती है। एक ही कवि में रीति वैविध्य लक्षित होता है।......... वस्तुतः रीति कविप्रकृति की बाह्य अभिव्यक्ति है। अतः उसमें कवि के आन्तरिक व्यक्तित्व के लक्षण रहते हैं। जो स्वभाव से बहिर्मुख होते हैं, वे काव्य के बहिरंग सौन्दर्योपासक जयदेव आदि रीति में ही ध्यान केन्द्रित करते हैं। उनकी रचनाओं में ध्वनि का अभाव और अभिधा का प्राधान्य रहता है।[2]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी रीति का निरूपण करते हुए लिखते हैं– **"अलम्भावमाधातुं कविना सम्पाद्यमाना प्रक्रिया कवि–व्यापारः।"**[3] **स चतुर्धा वृत्ति–रीति–मार्ग–रस–भेदात्।**[4] **नियत वर्णगतो व्यापारो वृत्तिः।**[5] **'पदविशेषगतो व्यापारो रीतिः।'**[6] **अर्थविषयको व्यापारो मार्गः।**[7] **आस्वादविषयको व्यापारो रसः।**[8] अर्थात् अलम्भाव (पूर्णता) का आधान करने के लिये कवि के द्वारा सम्पाद्यमान प्रक्रिया कविव्यापार है। वृत्ति, रीति, मार्ग और रस के भेद से वह चार प्रकार का है। नियत वर्णगत व्यापार वृत्ति है। **पदविशेषगत व्यापार रीति है।** अर्थ विषयक व्यापार मार्ग है। आस्वादविषयक व्यापार रस है।

---

1. आचार्य हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, पृ. 68–69
2. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्/2.2.1, पृ. 120
3. वही, वही/2.2.1, पृ.120
4. वही, वही/2.2.2, पृ. 120
5. वही, वही/2.2.3, पृ. 120
6. वही, वही/2.2.4, पृ. 120
7. वही, वही/2.2.5, पृ. 120
8. वही, वही/2.2.6, पृ. 120

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अपने अभिनव काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में रीति की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि– **'का नाम रीतिः? रीङ् गतौ धातोः क्तिन्प्रत्यये कृते निष्पद्यते रीतिशब्दः। रीतिर्गतिर्मार्गो वा। अभिव्यक्तिमार्ग इत्यर्थः। यथाहदण्डी–अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम् काव्यादर्शः 1.40। स एव पुनराहान्यत्रतद्भेदास्तु न शक्यन्ते वक्तुं प्रतिकवि स्थिताः।–काव्यादर्शः 1/101**

प्रवृत्तिरीतिमार्गवृत्तिशब्दाः प्रायेण पर्यायभूताः सङ्कीर्णार्थाश्च। परन्तु प्रत्नोऽयं रीतिशब्द ऋग्वेदेऽपि समवाप्यते–महावरीतिः शवसा सरत् पृथक् (2/27/24) वाते वात्युर्या नद्येव रीतिः (2/39/5) तामस्य रीतिं परशोरिव (5/48/4)।[1] अर्थात् रीति है क्या? रीङ् गतौ धातु से (स्त्रीलिङ्ग में) क्तिन् प्रत्यय करने पर रीति शब्द निष्पन्न होता है। रीति का अर्थ है गति अथवा मार्ग। इसका आशय है–काव्याभिव्यक्ति का मार्ग? जैसा कि आचार्य दण्डी ने कहा अभिव्यक्ति के अनेक मार्ग हैं जिनमें परस्पर सूक्ष्म भिन्नतायें हैं। उन्हीं आचर्य दण्डी ने दूसरे स्थान पर पुनः कहा–एक–एक कवि में विद्यमान (अभिव्यक्ति के) उन भेदों को नहीं बताया जा सकता है।

प्रवृत्ति, रीति, मार्ग और वृत्ति शब्द प्रायः पर्यायभूत हैं तथा उनके (सुस्पष्ट) अभिप्राय भी साफ नहीं है। परन्तु अति प्राचीन यह रीति शब्द ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है।

'रीतिरात्मा काव्यस्य'[2] कहकर वामन ने सर्वप्रथम काव्य में रीति को प्रमुख स्थान प्रदान करते हुए उसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया था। उन्होंने रीति का गुणों के साथ नित्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा था– **'विशिष्टा पदसंघटना रीतिः'।**[3] **विशेषो गुणात्मा।**[4] अर्थात् पदों की विशिष्ट रचना ही रीति है और विशेष का अर्थ अर्थ है रचना में माधुर्यादि गुणों का समावेश और यह विशेषता ही 'रीति' है। इस प्रकार इस सिद्धान्त में 'गुण' और 'रीति' का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है इसलिए रीति सम्प्रदाय को 'गुणसम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है। ये गुण नित्य धर्म है, जो काव्य की

---

1. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, पृ. 93
2. आचार्य वामन, काव्यालंकारसूत्रम्/1–2–6
3. वही, वही/1–2–7
4. वही, वही/1–2–8

शोभा बढ़ाते हैं– **'काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः'।**[1] इसके अतिरिक्त अलङ्कार केवल उस शोभा के अभिवर्द्धक होते हैं– **'तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः'।**[2]

आनन्दवर्धन ने रीति को रूप–रस–सौन्दर्य आदि का साधन माना है– **'व्यनक्ति सा रसादीन्'।**[3] मम्मट आदि उत्तरवर्ती आचार्यों ने 'रीति' की उपयोगिता तो स्वीकार की है किन्तु उसे काव्य का आत्मा स्वीकार नहीं किया गया है। उनके मत में काव्य में रीतियों की स्थिति वैसी ही है जैसे शरीर में आँख, नाक, कान आदि अवयवों की **'रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत्'।**[4]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार पदों का मेल अथवा संघटना ही रीति है। यह एक प्रकार का अवयवसंस्थान है। रीति रसादि की उपकारक होती है– **रीतेः संघटनाविशेषत्वात्। संघटनायाश्चावयवसंस्थानरूपत्वात्।**[5]

'पदसंघटना रीतिरङ्गसंस्थाविशेषवत्।

उपकर्त्री रसादीनां..............................।'[6]

कविवर अभिराज जी 'रीति' की उद्भावना के सम्बन्ध में लिखते हैं कि– **"यायावरीयो राजशेखरस्तु सुवर्णनाभं रीत्युद्भावकं मन्यते रीतिनिर्णयं सुवर्णनाभ इति। शारदातनयोऽपि पञ्चाधिकशतमिता रीतिर्जानाति प्राचाम्।............अनेनैतदुक्तं भवति यद् वचनविन्यासमात्र पर्यवसिता रीतिः प्रवृत्तेरेकांशभूता।"**[7] अर्थात् यायावरीय आचार्य राजशेखर तो सुवर्णनाभ को रीति का उद्भावक मानते हैं–रीति का निर्णय सुवर्णनाभ ने किया ऐसा कहकर। आचार्य शारदानय भी प्राचीन आचार्यों की 105 रीतियों की जानकारी रखते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है, कि विशिष्ट पद रचना रूपी रीति, काव्य शरीर में आत्मा की तरह साररूप में विद्यमान रहती है। रीति के स्वरूप की भाँति रीति–भेद के

---

1. आचार्य वामन, काव्यालंकारसूत्रम्/3–2–9
2. वही, वही/3–1–2
3. आचार्य आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक/3.5
4. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, पृ. 16
5. वही, वही/9.1
6. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, पृ. 16
7. अभिराजयशोभूषणम्, पृ. 93

विषय में भी काव्यशास्त्रीयों में मतवैभिन्न है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार रीति चार प्रकार की होती है– 'सा पुनः स्याच्चतुर्विधा। वैदर्भी चाथ गौड़ी च पाञ्चाली लाटिका तथा।'[1]

आचार्य वामन ने वैदर्भी, गौडीया और पांचाली इन तीन रीतियों का उल्लेख किया है और कहा है कि वैदर्भी रीति में सभी दस गुण होते हैं जबकि प्रयोग में विशेषतः माधुर्य और सौकुमार्य गुण आते हैं।[2]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी रीतियों व गुणों का अन्तर्भाव अलङ्कारों के अन्तर्गत करते हुए लिखते हैं कि प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित वैदर्भी, पाञ्चाली तथा गौड़ी प्रमुख रीति हैं परन्तु शारदातनय तो प्रमुख रूप से चार प्रकार, अवान्तर भेदों को सम्मिलित करते हुए 105 तथा देश, काल और व्यक्ति आदि के भेद से विभिन्न होने के कारण रीतियों का आनन्त्य स्वीकार करते हैं– **'तत्र प्राक्तनैराचार्यैः प्रतिपादिताः सन्ति वैदर्भी–पाञ्चाली– गौड़ीप्रमुखाः रीतयः। अन्ये तु लाटीयां चतुर्थोमपि तासु योजयन्ति। रीतिष्वन्तर्भवति गुणाः। तेऽप्यस्मन्मतेनाऽलङ्करिष्वन्तर्भवन्ति। अन्तर्भावं चैषामलङ्कारेषु यथावसरं प्रतिपादयिष्यामः।**

शारदातनयस्तु प्राधान्येन चातुर्विध्यम्, अवान्तरभेदसंवलि–तत्त्वेन पञ्चोत्तरशतं देल–काल–व्यक्त्यादिभेदैविर्भिन्नत्वाच्च आनन्त्यमेषां मन्वानः.........................।[3]

इसके अलावा कुछ नवीन रीतियों का उल्लेख करते हुए आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी लिखते हैं कि "विश्लेषण करके कथन करना व्यास रीति है। अनुकृति के आभास से विडम्बन रीति होती है। मनोवृत्ति का निरूपण करने से चेतना प्रवाह रीति होती है। पाठक को सम्बोधित करके लिखने से वार्तालाप रीति है– **विश्लिष्य कथनं व्यासरीतिः।"**[4]

---

1. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9/1
2. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, पृ. 121
3. वही, पृ. 121
4. वही, 2.2.7

अनुकृत्याभासेन विडम्बनरीतिः। [1] **मनोवृत्तिनिरूपणेन चेतनाप्रवाहरीतिः।** [2] **पाठकं प्रति सम्बोधनेन वार्तालापरीतिः।**[3]

नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरत प्रवृत्ति का परिचय देते हुए लिखते हैं–'जो पृथ्वी में विद्यमान नाना देशों की वेशभूषा, भाषा और वार्ता–पद्धति को रूपायित करती है, वही प्रवृत्ति है– **'पृथिव्यां नानादेशवेशभाषावार्ताः ख्यापयतीति प्रवृत्तिः।'** [4] रसार्णवसुधाकरकार, राजशेखर तथा सिंहभूपाल भी ऐसा ही मानते है।[5] दण्डी, भामह तथा कुन्तक रीति के ही अर्थ में 'मार्ग' शब्द का प्रयोग करते हैं। दण्डी, भामह और वामन रीति को देश–विशेष से सम्बद्ध ही मानते हैं। परन्तु कुन्तक एवं रुद्रट, रीतियों की देश–विशेष से सम्बद्धता का विरोध करते हैं।[6]

इस प्रकार काव्यशास्त्रकारों द्वारा परिगणित कुछ रीतियों को संक्षिप्त में रूपायित करना यहाँ प्रासङ्गिक होगा।

माधुर्य व्यञ्जक वर्णों से युक्त, दीर्घ समासों से रहित तथा छोटे समासों वाली ललित पदरचना का नाम वैदर्भी है।

माधुर्यव्यञ्जककैर्वर्णै रचना ललितात्मका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते।।[7]

यह रीति श्रृंगार आदि ललित एवं मधुर रसों के लिए अधिक अनुकूल होती है। विदर्भ देश के कवियों द्वारा अधिक प्रयोग में आने के कारण इसका नाम वैदर्भी है–**विदर्भादिषु दृष्टत्वात्तत्समाख्या।**[8] इसका दूसरा नाम ललिता भी है। वामन तथा मम्मट इसे 'उपनागरिका रीति' भी कहते हैं।

---

1. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् / 2.2.8
2. वही, वही / 2.2.9
3. वही, वही / 2.2.10
4. आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र, अध्याय 15
5. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, अभिराजयशोभूषणम्, पृ. 93–94
6. वही, वही, पृ. 93–94
7. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9 / 2–3
8. आचार्य वामन, काव्यालंकारसूत्रम् / 1.2.11

आचार्य रुद्रट के अनुसार समास रहित अथवा छोटे–छोटे समासों से युक्त, श्लेषादि दस गुणों से युक्त एवं 'च' वर्ग की अधिकता युक्त, अल्पप्राण अक्षरों से व्याप्त सुन्दर वृत्ति वैदर्भी कहलाती है।[1]

गौड़ी रीति ओजपूर्ण शैली से युक्त होती है। ओजपूर्ण वर्णों से सम्पन्न, दीर्घ समास वाली रीति गौड़ी होती है–ओजः प्रकाशकैर्वर्णैबन्धः आडम्बरः पुनः। समास बहुला गौड़ी।[2] आचार्य वामन गौड़ी रीति के स्वरूप का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि इसमें ओज और कान्ति गुणों का प्राधान्य तथा समास की बहुलता रहती है। मधुरता तथा सुकुमारता का इसमें अभाव रहता है।[3] रुद्रट ने इसको दीर्घ समास वाली रचना माना है। जो कि रौद्र, भयानक, वीर आदि उग्र रसों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त होती है।[4] इस रीति की रचना में उद्दीपक वर्णों का प्रयोग होता है, जिससे शौर्य भावना का आविर्भाव होता है। इसी गौड़ी रीति का दूसरा नाम 'परुषा' है। गौड़ (बंगाल) प्रदेश के कविजनों द्वारा इस रीति में रचना करने के कारण यह 'गौड़ी' नाम से जानी गई।

वैदर्भी एवं गौडी से शेष रहे वर्णों से जो रचना रची जाए तथा जिसमें पाँच–छः पदों से युक्त समास हो, उसे पाञ्चाली रीति कहते हैं– **'वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः। समस्त पञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिका मतः। द्वयोर्वैदर्भीगौड्योः।'**[5] यह मध्यममार्गी है। इसमें छोटे–छोटे समास अवश्य मिलते हैं। इस रीति से काव्य भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी बनता है। अनुस्वार का प्रयोग न होने से यह वैदर्भी की तुलना में अधिक माधुर्य युक्त होती है। इस प्रकार पांचाली रीति न तो वैदर्भी रीति की भांति समास रहित होती है और न ही गौड़ी की भांति समास–जटित होती है। वैदर्भी एवं पाञ्चाली इन दोनों रीतियों के मध्य की रीति लाटी कहा है–**'लाटी तु रीति वैंदर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता।'**[6]

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी की सम्पूर्ण काव्यसाधना शृङ्गार एवं करुणा, हर्ष एवं विषाद, विवेक एवं भावप्रवणता की अदृश्य संगमस्थली है। सत्य, शिव एवं सुन्दर से समन्वित लोकमंगल के आकांक्षी कविवर मिश्र जी यदि एक ओर रूप–सौन्दर्य तथा यौवन

---

1. आचार्य दण्डी, काव्यादर्श
2. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9/3–4
3. आचार्य वामन, काव्यालंकारसूत्रम्
4. रुद्रट
5. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9/4
6. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9/5

की मादकता के गीत गाता है तो दूसरी ओर जीवन की विसंगतियों, नियति के घात–प्रतिघातों तथा स्वजनों द्वारा समुपायनीकृत हृदयदाही छलनाओं की पीड़ा भी व्यक्त करता है।

कविवर स्वयं को कालिदास, श्रीहर्ष, जयदेव, विल्हण तथा पण्डितराज जगन्नाथ की परम्परा का ध्वजवाही मानते हैं जो उचित ही है, क्योंकि उनका सम्पूर्ण वाङ्मय वैदर्भी रीति के वैशिष्ट्य से ओत–प्रोत है–

"मूलं श्रीकविकालिदास कविता श्रीहर्षवाणी तनुः
पत्रं श्री जयदेवदेववचनं श्रीविल्हणोक्तं सुमम्।
श्रीमत्पण्डितराजकाव्यगरिमा यस्यैकपुण्यं फलम्
जीव्याद्धन्त! निसर्गजोऽयमभिराड् राजेन्द्रकाव्यद्रुमः।।"[1]

इसके अलावा 'मातृशतकम्' में भी इसी भाव को प्रकट करते हुए कविवर लिखते हैं–

"संसारेऽजनि कालिदाससुकविर्भूत्वा य आदौ ध्रुवं
श्रीहर्षस्य ततोऽभिधामुपययौ वैदर्भवाचस्पतेः।
पश्चाद्यो जयदेवविग्रहधरोऽभूद बिल्हणोऽनन्तरं
सोऽयं पण्डितराजदेहिनिलयो राजेन्द्रमिश्रोऽधुना।।"[2]

कविवर मिश्र जी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर शोधकार्य सम्पन्न कर चुकी कु. निवेदिता कर्पे द्वारा प्रेषित बृहत् प्रश्नावली तथा मिश्र जी द्वारा दिये गये उनके प्रत्युत्तर जो बाद में 'आत्मकथ्यः प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र' के रूप में प्रकाशित हो चुकी है कि प्रश्न संख्या–46 के प्रत्युत्तर में कविवर स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'वे अन्य कवियों से प्रभावित होने बावजूद कविकुलगुरु कालिदास से सर्वाधित प्रभावित हैं।[3] एक अन्य प्रश्न संख्या के प्रत्युत्तर में वे कहते हैं कि 'मुझे करुण एवं वात्सल्य रस, पाञ्चाली रीति (शब्दार्थयोः समो गुम्फः) तथा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार सर्वाधिक प्रिय है।'[4]

---

1. जानकीजीवनम् (सर्गान्त पद्य)
2. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, मातृशतकम्
3. सं. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 53
4. वही, पृ. 53

इस प्रकार उक्त परम्परा का प्रतिनिधि होने के बावजूद कविवर द्वारा अपने नवगीतों में संप्रेषणीय विषय की अपेक्षानुसार ही शैली अपनायी है। आचार्य बदलदेव उपाध्याय जी कहते हैं कि– "कवि किसी एक शैली का क्रीतदास नहीं होता। वह तो विषय के अनुसार अपनी शैली को परिवर्तित किया करता है।"[1]

अभिनव कालिदास उपाधि से विभूषित मिश्र जी की लेखन शैली उनकी नवगीत रचनाओं में निहित विषय, भाव एवं संदेश की संप्रेषणीयता को प्रभावशाली बनाने में सर्वथा औचित्यपूर्ण है। जिस प्रकार कालिदास की रचनाओं में प्रकृति वर्णन आदि के तथा शृङ्गारादि के प्रसङ्गों में लाघवयुक्त प्रासादिक पदों का प्रयोग कर अपने कथ्य को सार्थकता प्रदान की गई है, उसी प्रकार कविवर मिश्र जी ने भी अपने वर्णनों में अत्यन्त सरल, सहज, सुमधुर संश्लिष्ट एवं आलंकारिक भाषा शैली का प्रयोग किया है, वहीं रस प्रधान स्थलों पर श्लेषविहीन प्रसादगुणयुक्त पदों के द्वारा बड़ी ही मुखरता के साथ वर्णन किया है।

रीति संघटना के काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार कविवर मिश्र जी की नवगीत रचनाओं की शैली को पाञ्चाली शैली में रखा जा सकता है। वर्ण्यविषयानुरूप पदों का विन्यास ही पाञ्चाली शैली का प्राण है। उनके काव्य में सर्वत्र इसकी झलक परिलक्षित होती है। मिश्र जी का शब्द–सौष्ठव अचम्भित करने वाला है। प्रस्तौत्यानुरूप ही पदावली की उत्कटता एवं कमनीयता, भावानुरूप शब्दों का चयन, विषयानुरूप रसपेशलता तथा गुणों का सामञ्जस्य उनकी रचनाओं के कल्याणमयी स्वरूप को पूर्णता प्रदान करता है। काव्य के इसी स्वरूप की परिकल्पना कविवर कालिदास ने रघुवंशम् में की है–

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।"[2]

वस्तुतः अर्थ को परिपूर्ण करने वाले शब्द और शब्द को सशक्त करने वाला अर्थ, काव्य का चरमोत्कर्ष है। रीति संघटना एवं पदविन्यास में कविवर द्वारा केवल शाब्दिक आडम्बर को खड़ा करने का प्रयास नहीं किया है, अपितु काव्य के सहृदयहृदयाह्लादमयी

---

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 318
2. कालिदास, रघुवंशम्, 1/1

लक्ष्य को सार्थकता प्रदान करते हुए विषय एवं प्रसङ्ग को ही वरीयता प्रदान की है। आपने अधुनातन, युगानुकूल नवीन पदावली की सर्जना कर उसका प्रयोग किया है और उनके द्वारा विशिष्ट अर्थों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। अपनी प्रथम नवगीत संकलना वाग्वधूटी की प्रथम गीत रचना अत्यन्त माधुर्यपूर्ण शब्दावली व अल्प समास से युक्त है तथा कवि के द्वारा मानव मात्र को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हम सब आपसी वैमनस्य, कलह, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गणों को छोड़कर सौहार्द्धपूर्ण जीवन जीयें। सबके लिए अच्छा सोचें। इसी माङ्गल्यभाव से परिपूर्ण कविवर की यह रचना उनकी लेखन शैली की प्रबल परिचायक है–

मधुरं विचिन्तयामो मधुरं हि मानसे स्यात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!!
कलहादिकेन किं स्यात्
विरहादिकेन किं स्यात्
सङ्गममये हि लोके सायुज्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!!
मन एव बन्धहेतुः
मन एव मोक्षहेतुः
अतएव मानसेऽस्मिन् मासृण्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुयमेव भूयात्!![1]

कवि की जिस गीति को उनकी प्रिय रीति 'पाञ्चाली' का समुत्कृष्ट उदाहरण कह सकते हैं, वह 'श्रीमन्तमेव भजामहे' है। इस रचना में प्रयुक्त लघु–लघु समासों से युक्त पदबन्ध, सरल व सहज भाषा, रचना की माधुर्यता एवं भावप्रवणता सुधी पाठकों को मंत्रमुग्ध सा कर देती है–

श्रीमन्तमेव भजामहे प्रतिपलमनाथपुरन्दरम्
वरवेणुवादनसुन्दरं कलिजलधिमन्थनमन्दरम्!!

---

1. वाग्वधूटी, मांगल्यमेवभूयात्–1

नवनीरनीरदनीलतनुतनुजनितशाद्वलवैभवम्
निश्शेषदुष्कृतसुकृतगणकृतमसृणमङ्गलकैतवम्!!
मुचकुन्दहृदयङ्गमितछविसमरूपसद्गुणमन्दिरम्
श्रीमन्तमेव भजामहे प्रतिपलमनाथपुरन्दम्!!
अतिसुभगनयनविलासलास्यललामहृतकटुपापकम्
स्मितमधुरवदननिशीथिनीशमहर्निशं नु दुरापकम्!!
बलसान्द्रकपिनिकुरम्बनिर्जितकठिनदशमुखसङ्गम्
श्रीमन्तमेव भजामहे प्रतिपलमनाथपुरन्दरम्!![1]

कविवर मिश्र जी ने सायास रीति व पदरचना का गुम्फन नहीं किया अपितु विषय–प्रस्तुति करते समय काव्य–शास्त्रीय तत्त्व स्वयमेव उनकी रचना–पंक्तियों का हिस्सा बनते चले जाते हैं। सर्वत्र स्वभाविता परिलक्षित होती है। महाकवि कालिदास की परम्परा के ध्वजवाही होने के कारण अभिराज जी की गीतियों का पदों का लालित्य, माधुर्यपूर्ण समायोजन तथा सुबोधता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। कवि ने अपनी रचनामाधुरी के द्वारा वर्षाकालीन प्रकृति के स्वरूप को जीवन्त कर दिया। वैदर्भी रीति में गुम्फित इस रचना को पढ़ते या गुनगुनाते समय पाठक को ऐसा लगता है मानो यह रचना उसके जीवन एक हिस्सा हो–

रिम्झिम् वर्षति सजलजलधरो
नृत्यति केकी कानने!!
गर्जति धावति नदति च कूर्दति
तारापथे पयोदो बाले!
अयिभोः शिशुरिव नटति जलधरो
नृत्यति केकी कानने!!
मा कुरु मानिनि! यौवनगर्वम्
कान्तं रमय नितान्तं बाले!

1. वाग्वधूटी, श्रीमन्तमेव भजामहे–5

अयिभोः क्वैति पुनः सौभाग्यं

नृत्यति केकी कानने!![1]

कविवर विरचित अधिकांश गीतियाँ प्रायः वैदर्भी एवं पाञ्चाली शैली में ही गुम्फित हैं। विषय एवं कथ्यानुसार एक रचना में एक शैली भी हो सकती और कहीं–कहीं एक ही रचना की भिन्न–भिन्न पंक्तियों में एक से अधिक रीति का निबन्धन भी देखने को मिलता है। कवि ने अपने जीवन में भोगे कष्टों, दुःखों, व्यथाओं व जीवन–संघर्षों को ही प्रायः अपनी रचना–पंक्तियों का विषय बनाया है किन्तु अपनी जीवटता, अथक परिश्रम तथा स्वाध्याय के बल पर उन विपत्तियों को भी मिश्र जी ने ऊँचाईयों को छूने के लिए सोपान रूप में इस्तेमाल किया है। इसी विषय को प्रस्तुत करती उनकी रचना 'सोढं, चिरं सोढम्' की पंक्तियाँ अपनी सहजता, सरलता तथा सुबोधता के कारण कवि मिश्र जी के सरल व सहज व्यक्तित्व को साकार कर देती हैं–

वैशद्यमाप्तुं ज्वलदनलपिण्डैर्मया संक्रीडितम्

सोढ़ं, चिरं सोढं, धृतं संघर्षनिवहैर्जीवितम्।।

सुप्तं भुजङ्गेष्वनुदिनं, कण्ठे कृतं हालाहलम्

त्रिपुरारिगेहिन्यै मया सततं श्मसानमुपासितम्।।

प्राप्ते विलासिवसन्तकेऽपि गता क्वचिन्न करीरता

गोविन्दराधातुष्टये श्वसितम्मया खलु शिक्षितम्।।[2]

संस्कृत भाषा के साथ किये जा रहे उपेक्षित व्यवहार से आहत कवि–हृदय प्रत्येक भारतवासी को आत्मबोध कराते हुए अत्यन्त मार्मिक, सटीक तथा अल्पसमास युक्त पदरचना के माध्यम अपनी आत्मिक अभिव्यक्ति करते हैं–

वेदशास्त्रेतिहासत्रिवेणी नवा

ज्ञानविज्ञानशैलेन्द्रसानूद्भवा।

निर्जरैर्नन्दिता कोविदैर्वन्दिता

क्लिश्यते साऽद्य नग्नाटिनां नाटके।।

---

1. मृद्वीका, ऋतुश्रीः, विंशतितमी गीतिः, पृ. 29
2. मधुपर्णी, प्रथमखण्डः, सोढं, चिरं सोढम्–2, पृ. 14

देववाणी व्यथोच्छूननेत्राऽधुना
हिण्डते हन्त! कारुण्यशृङ्गाटके!![1]

इसी प्रकार अत्यन्त भावप्रवण शैली में लघु–लघु समासयुक्त पदरचनाओं के माध्यम से भारतदेश की समकालीन विषम परिस्थितियों का चित्रण करते हुए कविवर मिश्र जी लिखते हैं–

विश्वसंस्कृतेर्विधायकं विश्वबन्धुतासमर्थकम्
अद्य सीदति स्वके गृहे देववन्दितं नु भारतम्।।
प्रान्तभूमयो न रक्षिताः कम्पतेऽचलो हिमालयः
आह्वयत्यलं स्वपुत्रकान् रक्ष रक्ष रक्ष भारतम्।।
क्वाऽद्य तद् व्यतीतगौरवं क्वाऽद्य तच्चरित्रवैभवम्
गम्यतेऽद्य केन वर्त्मना येन नाशमेति भारतम्।।
इन्दिरा हता मनस्विनी राजिवश्च भारतोदयः
नो तथाऽपि शान्तिमश्नुते दुर्दशाभिशप्तभारतम्।।[2]

इस प्रकार संकलना से एक–दो रचनाएँ यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की गई हैं। यहाँ कविवर मिश्र की सरल, सुबोध, सरस, लघु–लघु समास युक्त, ललित पदरचना, विषय प्रस्तुति की सहजता व स्वाभाविकता, रसपेशलता तथा माधुर्यता देखने को मिलती है। भाषा व पदावली तो मानों उनके इशारों पर नाच रही हो। वर्ण्य–विषय तथा गीतियों के कथ्य की व्यञ्जकता तथा तदनुरूप पदावली व रचना शैली का प्रयोग कवि की भाषागत–दक्षता का प्रमाण है। कवि की अधिकांश गीतरचनाएँ वैदर्भी व पाञ्चाली रीति में निबद्ध है जिससे सहृदय जन बरबस ही आकृष्ट एवं सम्मोहित से हो जाते हैं।

उनकी गीतरचनाओं में गूढ से गूढतर विषय एवं दार्शनिक ज्ञान भी अत्यन्त सरल शैली में अन्योक्ति व व्यञ्जना के माध्यम से समकालीन युगचेतना के दर्शन कराते हैं, जो कवि के शास्त्रीय एवं पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व को निरूपित करते हैं। लोकगीत विधाओं,

---

1. श्रुतिम्भरा, संस्कृतध्वनिः, कारुण्यशृङ्गाटके, पृ. 42
2. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्), रक्ष रक्ष भारतम्–48, पृ. 80

प्रकृति वर्णन, संस्कृत माहात्म्य, भारतीय संस्कृति की महनीयता इत्यादि विषयों को अत्यन्त अनुकूल, रमणीय व कोमलकान्तपदावली के द्वारा अत्यन्त मनोहारीस्वरूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार कविवर मिश्र जी जिस तरह लोक–व्यवहार एवं देश–काल–परिस्थिति के सूक्ष्मद्रष्टा हैं, ठीक उसी भाँति उनको सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत करने का ढंग भी अद्भुत है। अतः कविवर मिश्र जी विलक्षण कवित्व–प्रतिभा के धनी हैं।

(च) भाषागत वैशिष्ट्य

एक साहित्यकार की सर्जना युगानुकूल परिवर्तनों, स्थितियों तथा प्रवृत्तियों की साक्षी होती है। विश्व की समस्त भाषाओं में संस्कृत भाषा की सुदीर्घ एवं समृद्ध परम्परा व विकास–यात्रा रही है। यह परम्परा एवं संस्कृत भाषा के साथ अन्य भाषाओं का समागम होना इसके आधुनिक और सामयिक होने की सूचक है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विदुषी एवं प्रबुद्ध समीक्षका डॉ. मञ्जुलता शर्मा का कथन है कि "अर्वाचीन कवि के लिये सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि उसकी भाषा और अभिव्यक्ति पुरा बोध से जुड़ी रहे। जब तक भाषा में परिवर्तन जुड़ा रहता है तब तक वह गतिशील रहती है। क्योंकि भाषा को भाव की पूर्णरूपेण अनुवर्तिनी होनी चाहिए। वह न तो इनती बोझिल हो कि पत्थर बनकर कविता के गले में लटक जाये और न ही इतनी सपाट हो कि रेशम का जाल बनकर उसके पाँव में उलझ जाए। यह तब ही सम्भव है जब आज के कवि की प्रवृत्ति जनभाषा और साहित्यिक भाषा के गठबन्धन पर उदार रूप से रहेगी।"[1]

देववाणी संस्कृत भाषा अपने शुद्ध स्वरूप के लिये विश्वभर में अपना वैशिष्ट्य लिये हुए हैं। प्रबुद्ध समीक्षकों व आलोचकों का मानना है कि भाषाई अशुद्धियाँ आम बात हैं परन्तु भाषा का मूल स्वरूप विकृत नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्ध में आचार्य राधावल्लभ जी लिखते हैं कि "परम्परा से विचलन जितना भाव बर्दाश्त कर सकता है उतना भाषा नहीं।"[2] डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि "पहले भाषा सामने आती है बाद में वक्तव्य। अप्रयोगों का यदि काव्यशास्त्र निषेध करता है तो उनका निषेध केवल पुरानेपन

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 200
2. सं. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा, पृ. 234

के कारण अमान्य कैसे। जो तत्त्व और नियम भाषा सामान्य के लिये अनिवार्य है उनसे खेल करना कविता तो नहीं कहा जा सकता है। ऋषियों, मनीषियों एवं संस्कृत साधकों ने इस भाषा में नियमों के अमृत तत्त्व समाहित कर दिये हैं। संस्कृत भाषा ने प्रत्येक युग में अभिव्यक्ति के अनुकूल शब्द निर्माण की अपनी चिरविलक्षण क्षमता को कायम रखा है वह आज भी अक्षत है।"[1]

अर्वाचीन संस्कृत लेखक भाषायी शुद्धता पर बखूबी पूरा ध्यान दे रहे हैं। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, जगन्नाथ पाठक, बच्चूलाल अवस्थी, श्रीनिवासरथ, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधा वल्लभ त्रिपाठी इत्यादि की रचनाओं में शैली, छन्द, भावबोध सर्वथा नवीन है परन्तु भाषा पूर्णतः शुद्ध है। तदनुरूप ही भाषायीशुद्धता की रक्षा करते हुए युग की माँग के अनुरूप अन्य भाषा के शब्दों का संस्कृतीकरण करने वाले डॉ. वनमाली बिश्वाल, डॉ. हर्षदेव माधव, डॉ. प्रवीण पण्ड्या जैसे कवियों की भूमिका भी कम नहीं है। डॉ. मञ्जुलता शर्मा का विचार है कि– "नयी पीढ़ी अब केवल राम–सीता चरित, पेड़–पौधे, तालाब–पर्वत, सरोवर आदि का वर्णन पढ़ना नहीं चाहती, उसे कुछ ऐसा चाहिये जो उसकी रुचि से जुड़ा हो। इन्टरनेट के युग में वह साहित्य में भी क्रान्ति की तलाश करती है।"[2]

संस्कृत गीत परम्परा भी अनेकों मोड़ों से गुजरने के बाद वर्तमान पड़ाव तक पहुँची है। इस यात्रा क्रम में उसके रूप व शिल्प में समयानुकूल पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। गीत की अर्वाचीन विधा नवगीत ने अपने नवत्व को प्राप्त करने के लिए जिन आयामों को आत्मसात किया, उसमें शिल्प की ही प्राथमिकता थी। शिल्प का भाषा से वैसा ही सीधा सम्बन्ध हुआ करता है जैसा किसी भी कलाकृति का। क्योंकि किसी भी काव्य की कलात्मकता रूप शिल्प की बुनावट उसके शब्द–अर्थ–तन्तु–संभाव्य पर आधारित होती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जिस प्रकार व्यक्ति की पहचान उसके संस्कार होते हैं उसी भाँति कवि अथवा काव्य के व्यक्तित्व को भी उसके भाषायी संस्कारों से जाना जा सकता है। डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के एक अद्भुत कालजयी गीतकार

1. सं. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य दशा एवं दिशा, पृ. 234
2. वही, वही, पृ. 235

हैं। उनके द्वारा विरचित संस्कृत नवगीत रचनाएँ अपनी सरल व सहज भाषा–शैली, शब्द सौष्ठव, बिम्ब–प्रतीक विधान, अपूर्व लोक–लय, छन्दोविधान, आँचलिक प्रयोग, नूतन अभिव्यक्ति, शब्द सौन्दर्य, अप्रस्तुत विधान इत्यादि वैशिष्ट्य के कारण विलक्षणता लिये हुए हैं तथा समकालीन विद्वानों के बीच यह एक महदाश्चर्य का विषय है। इनमें परम्परा की महक, लोक की सौंधी सुगन्ध, विषय की नवीनता, अभिव्यक्ति की व्यञ्जकता इत्यादि दर्शनीय हैं। कविवर विरचित संस्कृत नवगीतों के भाषागत वैशिष्ट्य पर दृष्टिपात करना ही यहाँ शोधार्थी का प्रमुख उद्देश्य है।

अर्वाचीन संस्कृत कवियों ने संस्कृत भाषा में अभिनव शब्दों का प्रयोग करके भाषा को समृद्ध किया है। इसमें सर्वाधिक योगदान देने का श्रेय कविवर मिश्र जी को जाता है। "डॉ. हिन्दकेसरी जी ने नये शब्दों के समावेश के विषय में निम्नलिखित हेतु बताये हैं– 1. तदर्थवादी शब्द का अभाव, 2. तदर्थवाचक शब्द का अज्ञान, 3. अधिक परिचय होने से अन्य भाषा के शब्दों का प्रयोग तथा 4. निरर्थक अथवा अन्य सार्थक शब्द के प्रति साधुत्व बुद्धि।"[1]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अपने एक लेख में लिखते हैं कि– "राजेन्द्र जी ने आधुनिक संस्कृत–साहित्य को असंख्य नये शब्द दिये हैं। छोले–भटूरे के लिये छविल्लभर्ता (चतुष्पथीयम्, पृ. 10), कालगर्ल के लिये कालगरला (वही, पृ.9), बेलवाटम के लिये वेलिवितानम्, मेंहदी के लिये महेन्द्री, सिविल लाईन्स के लिये श्रेष्ठिचत्वर (वही)। यह सत्य है कि नयापन की चमक के साथ राजेन्द्र जी के कुछ प्रयोग भाषा के व्यावहारिक रूप या वैयाकरणिक सत्य को चुनौति देते हैं। इस दृष्टि से कहीं–कहीं प्रयोग विचारणीय हैं–यथा शतधा द्रवति कुसंस्कृतितटिनी नितरां तटङ्कषा (मृद्वीका, 65) में कुसंस्कृति शब्द का प्रयोग। महामायावन्दना में अधरयुगलम् में अधर शब्द को सामान्य ओष्ठवाचक मानकर अर्थ–ग्रहण करना होगा।"[2]

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 200
2. दृक्, चतुर्थ अंक (जुलाई–दिसम्बर, 2000 ई.), पृ. 12–13 तथा त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 140

परन्तु यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि आज का संस्कृत कवि अपने काव्य का प्रणयन उसी भाषा में करना चाहता है जिससे कि उसे अधिकाधिक जनाधार मिल सके। काव्यों के क्रमिक अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आज के दौर में भाषायी समाज कठिनता से सरलता की ओर उन्मुख दिखाई दे रहा है। परिवर्तन के इस दौर में काव्य–प्रणयन के समस्त तत्त्वों में बदलाव नजर आ रहा है। ऐसा ही बदलाव देखने को मिलता है शाब्दिक प्रयोग के क्षेत्र में। रचनाकार कुछ शब्दों का प्रयोग तो मूल शब्द के साथ इति का प्रयोग करते हुये कर लेता है और कुछ शब्दों के लिये अभिप्रायानुसार नूतन शब्दों का सृजन किया है। इस प्रकार समकालीन समाज व लोक–जीवन का चित्रण करने के लिये नये शब्दों के झञ्झावात का सामना करना ही पड़ता है। तब वह नये शब्दों की खोज में आतुर हो नूतन सर्जना को जन्म देता है। हाँ, इस विषय में नये समाज, नये शब्द और नये सर्जक को जागरुक होकर आगे बढ़ना होगा। परन्तु भिन्न–भिन्न साहित्यकारों की अनुभूतियों की तारतम्यता में भिन्नता होने के कारण सभी कवि एक निश्चित शब्द तक नहीं पहुँच पाते हैं। इसका एक अन्य कारण क्षेत्रीयता के आधार पर प्रत्येक की अनुभूति और प्रस्तुति का भिन्न–भिन्न होना भी है। इस विषय में देवर्षि कलानाथ शास्त्री जी अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहते हैं– "ऐसी नयी अभिव्यक्तियों के लिये पुराने पण्डित प्रवरों की सामान्यतः यह भी प्रवृत्ति रही है कि अपनी प्रखर प्रतिभा से, पाणिनी के सूत्रों से धातु में प्रत्यय लगाकर अपना शब्द बना लेते थे। स्टेशन, चड्डी, बनिया, फार्म आदि के लिये यदि प्रत्येक पण्डित अपनी मति से अपना शब्द बनाने लगे तो कितना वैविध्य, कितनी अराजकता तथा कितनी अल्पबोधता आ जायेगी, यह स्वतः समझा जा सकता है।............ अतः उसके लिये संस्कृत में कोई एक शब्द एकरूपता की दृष्टि से स्वीकार कर लिया जाए तो उचित होगा।"[1]

अतः किसी भी नूतन शब्द को पूर्णतः सर्वमान्य बनाने वाला अर्वाचीन काव्यशास्त्र अपरिहार्य हो जाता है। इस क्षेत्र में अर्वाचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत 'अभिराजयशोभूषणम्', आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत 'अभिनवकाव्यालंकारसूत्र' तथा आचार्य हर्षदेव माधव तथा विरचित 'वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्' का

---

1. दृक्, अंक–21 (जनवरी–जून, 2009 ई.), पृ. 15

विशिष्ट स्थान है। इनमें 'काव्य–सृजन' के सिद्धान्तों को अर्वाचीन परिस्थितियों में पोषित एवं पल्लवित किया गया है। अर्वाचीन समय में कवियों ने अपनी सर्जनाओं में व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग बहुतायत के साथ किया है। समाज में नित्य प्रति व्यवहार में आने वाले भोजपुरी, ब्रज एवं अनेक क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को अभिराज जी ने सायास अथवा अनायास ग्रहण किया है। "उनकी यायावरी प्रवृत्ति के कारण उनकी कविता जन–जन की भावनाओं का प्रमाण है।"[1] उनकी काव्यरचनाओं एवं नवगीतों में इस प्रकार के प्रयोग अनेकत्र देखे जा सकते हैं–

शैशवे यत्र वाट्यां मुद्रा क्रीडितम्
डाकिनी तत्र शेते क्व यामो वयम्?[2]
कमलया न हसितं मृदुलया न हसितम्
अये भाग्यबाले! त्वयैवोपहसितम्!![3]

डॉ. मिश्र जी ने न केवल लोकप्रचलित शब्दों को अपनी सर्जना में स्थान दिया अपितु समकालीन लोकभाषाओं में प्रचलित लोक धुनों, छन्दों, लयों तथा प्रतिष्ठित गीतविधाओं को तद्भावानुरूप ही नूतन संस्कृत नाम देकर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। आपने लोकभाषायी गीत चैता को 'चैत्रकम्'[4], कहरवा को 'स्कन्धहारीयम्',[5] सोहर को 'सूतगृहम्'[6] तथा कजरी को 'कं प्रियाऽऽगमनसुखंजरयति या सा कजरी'[7] इस रूप से शुद्ध संस्कृत नाम दिये। इसी प्रकार फारसी ग़ज़ल विधा को भी 'गलज्जलिका'[8] ऐसा नाम देकर 'गलन्ति जलानि अश्रूणि यस्यां सा गलज्जलिका' इस रूप में गलज्जलिका शब्द को निष्पन्न किया।

---

1. डॉ. मंजुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 204
2. मधुपर्णी, क्व यामो वयम्, पृ. 39
3. डॉ. वाग्वधूटी, त्वयैवोपहसितम्–36
4. वही, किमु करवाणी, पृ. 07
5. वही, भाति!!, पृ. 28
6. वही, गंगे! तव नीरगाहनम्, पृ. 73
7. वही, रौति कोकिला, पृ. 63
8. वही, वाचिकं ददे कस्मै–48

अन्य भारतीय भाषाओं की विधाओं को अपनाने के सम्बन्ध में अभिराज जी दृक् में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखते हैं कि– "अर्वाचीन संस्कृत नव–लेख अन्यान्य भारतीय भाषाओं की वाङ्मय विधाओं को दृष्टि में रखकर गतिमान हो रहा है। अतः स्वाभाविक है कि उसे अतीत मात्र से बाँधकर नहीं रखा जा सकता है। उसे स्वच्छन्दता चाहिये सिद्धान्त में भी और व्यवहार में भी। पैरों में बेड़ी पहनकर दौड़ना दुष्कर तो होता ही है।"[1]

अभिराज जी की नवगीत रचनाओं में आंचलिक प्रयोग प्रचुरता के साथ देखने को मिलते हैं। आंचलिक गीत, लय, छन्द, शब्द यहाँ तक कि उनकी रचनाओं में आंचलिक अभिव्यक्ति भी दृष्टिगोचर होती है। इसलिए राष्ट्रकवि होकर भी अभिराज जी आंचलिक व लोकधर्मी कवि के रूप में विशिष्ट पहचान रखते हैं। उनके गीतों में आंचलिक मुहावरों, लोकोक्तियों एवं कहावतों का अनोखा संयोजन प्राप्त होता है साथ ही अनेक नये मुहावरें अभिराज जी ने स्वयं गढ़े हैं। संस्कृत के नये मुहावरों और कथनसन्धान करने में वे बेजोड़ हैं। वे लोकभाषा को कब परिनिष्ठित रूप में बदल देते हैं, पता भी नहीं चलता। कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है– **'नयनासेचनकं कलयन्तः'**[2] **'तिमिङ्गिलो निगिरति लघुमीनम्'**[3], **'आकाशगतं कुसुमम्'**[4], **'क्व घटो ननु रज्जुगुणे त्रुटिते'**[5] **'प्रतिमुण्डकं विभिन्नमतिर्गर्भिताऽऽग्रहैः'**[6], **'क्वचिदपिकपालिखलीकृतम् उपभुज्यतेऽथ विगर्ह्यते'**[7], **'तरणीयुगले संस्थाप्य पदौ, कामं न सलिलयात्रा'**[8], **उष्ट्राणां परिणये गर्दभा गायन्त्युत्सवगानम्**[9], **'स्कन्धोपरि भुशुण्डी निधाय ये गुलिकाप्रहारमैच्छन्'**[10], **'वृक्षे निशाविहारः सलिले च मत्स्यलाभः'**[11], **'वालुकातस्तैलमुद्धर्तुं'**[12] **'नाट्येऽवसिते शैलूषोऽपि त्यजति हैतुकं वेषम्'**[13] इत्यादि। इसके साथ ही अन्य काव्यरचनाओं में भी लोक–प्रचलित मुहावरे व कहावतें भी द्रष्टव्य है– **'खुदातोऽपि महत्तरो**

1. दृक्, अंक–09 (जनवरी–जून, 2003 ई.), पृ. 25
2. श्रुतिम्भरा, निसर्गध्वनिः–मिहिरावलिः, पृ. 25
3. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः–पंचचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 65
4. वही, जिजीविषा–एकविंशत्तमी गीतिः, पृ 46
5. वही, वही, षट्त्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 51
6. वही, वही, ऊनचत्वारिंशत्तमी गीतिः, पृ. 54
7. वाग्वधूटी, रूपाय तस्मै नमः–53
8. मधुपर्णी, प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते, पृ. 27
9. वही, कदा मयाऽभिलषितम्, पृ. 86
10. वही, पृ. 86
11. श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः, हरते मनोऽभिराजः, पृ. 117
12. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्)–भारतीयोऽहम्, पृ. 71
13. वही, गान्धीगीतम्, पृ. 175

नग्नः', **'चणकमेकं न भ्राष्ट्रं विदारयति', 'भित्तिरपि कर्णिनी भवति' (नाट्यसप्तपदम्), शाकलवणमपि सङ्घटितं न भवेत् (चतुष्पथीयम्, पृ. 41), 'गुरुरहं गुड एव संवृत्तः शिष्यश्च पौण्ड्रशर्करायितः' (नाट्यसप्तपदम्, पृ. 58), 'सर्वमपि गुडगोमयं विधाय' (चतुष्पथीयम्, पृ. 08), 'इतः कूपः, ततः परिखा', मार्जार्याः कण्ठे घण्टिकामाबन्धुम् (इक्षुगन्धा) इत्यादि।**[1]

उर्दू के प्रसिद्ध शायर गालिब के द्वारा मुल्क की बदहाली पर लिखे गये शेर को मिश्र जी ने अपने अनोखे अन्दाज से संस्कृत में ज्यों का त्यों उतार दिया है–

"बर्बाद गुलिस्तां करने को बस एक ही उल्लू काफी है
हर शाख पे उल्लू बैठा है, अंजामे गुलिस्तां क्या होगा।"

उद्याने यस्मिन् सान्द्रतरौ
प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते।
कल्याणं तस्य कथं भविता
सुषमा क्व वसन्तस्यागमने।।[2]

लोकजीवन से लिए गये मुहावरें व कहावतें, कथ्य को सजीव और सहज सम्प्रेषणीय बनाते हैं। नवगीतगार मिश्र जी के गीतों को लोकसन्दर्भ से प्रतीक, बिम्ब और उपकरणों की ताजगी मिलती है। इस सम्बन्ध में हिन्दी के साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन जी कहते हैं कि– "वस्तुतः भाषा निर्जीव यांत्रिक तौर से या सीधे तर्जुमा वाले शब्दों के द्वारा हमारे भावों को प्रकट करने में समर्थ नहीं होती.............भावों को ये वाक्य ज्यादा व्यक्त कर सकते हैं। जो अपने शब्दार्थों से दूर तक ध्वनित करते हों। यह सामर्थ्य भाषा में तभी आती है जब उसमें निर्जीव शब्दावलियों की जगह सजीव मुहावरे वाले वाक्य लाये जायें।"[3]

जायें।"[3]

काव्य–शिल्प की मौलिकता का आधार जिस प्रकार भाषा में सन्निहित है, उसी प्रकार भाषा की सार्थकता भी उपयुक्त बिम्ब–विधान और प्रतीकात्मकता की अपेक्षा रखती है। बिम्ब–विधान रचनाकार की सघनतर अनुभूति का आविष्कार है। यह प्रतीकों से आगे का काव्य–सर्जना का सोपान है। प्रतीक सामान्यतया स्थूल है तथा बिम्ब सघन और

---

1. त्रिवेणकवि, अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व, पृ. 139
2. मधुपर्णी, प्रतिशाखमुलूका वलगन्ते, पृ. 27/4
3. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा : नवगीत संवेदना और शिल्प, पृ. 50

सूक्ष्म। डॉ. जगदीश गुप्त के शब्दों में–"बिम्ब का मुख्य कार्य अनुभूत वस्तु का प्रस्तुतीकरण (Presentation) है और प्रतीक की सार्थकता किसी विचार या प्रत्यय के प्रतिनिधित्व (Representation) में मानी जाती है।"[1]

'रसेल' के अनुसार बिम्ब विधान के लिये वस्तुतः प्रतीक वैसा ही है जैसा शब्द। Image in fact, act as symbels just as words do.[2]

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विदुषी एवं सुप्रसिद्ध समीक्षिका डॉ. मंजुलता शर्मा लिखती हैं कि "बिम्ब विषयानुकूल होने चाहिए। यदि बिम्ब और विषय में संगति नहीं होगी तो वह उतने प्रभावी नहीं हो पायेंगे। जो बिम्ब केवल अलंकरण के लिये प्रयोग किये जाते हैं वह काव्य को निष्प्राण और नीरस बना देते हैं। वस्तुतः बिम्ब कवि के अन्तस्थल का वह काव्य पुष्प है जिसकी पंखुरियों में कल्पना के रंग हैं, प्रतिभा की ओस और अर्थ की सुगन्ध है। अंग्रेजी में कल्पना के लिये Image शब्द आया है, यही इमेज 'बिम्ब' की प्रतीति कराती है। साथ ही प्रतीक का सामान्य अर्थ चिन्ह, संकेत आदि के लिये होता है। परन्तु साहित्य में इसका प्रयोग विशिष्ट भाव को व्यञ्जित करने के लिए होता है। प्रतीक का एक अभिप्राय 'Symbol' से भी है।"[3]

प्रतीक को आचार्य रहस बिहारी द्विवेदी ने परिभाषित करते हुये लिखा है–

सम्बन्धात्साहचर्याद्विऽऽपाततो या समानता
प्रतीयते वा प्रत्येति भिन्नयोर्हि पदार्थयोः।
व्यनक्त्यप्रस्तुतं यत्र पदार्थः प्रस्ततो यदा
प्रस्तुतोऽयं च सङ्केतः प्रतीकः काव्यगो भवेत्।।[4]

अर्थात् सम्बन्ध, साहचर्य, समानता, आपतता इत्यादि के आधार पर प्रतीक तत्सम्बन्धी विचार, भाव, आकार, प्रकार और उस तथ्य की आत्मा पाठकों के मनोविकारों व भावनाओं को जाग्रत कर देती है। वस्तु, इस प्रकार अपने रूप, गुण, कार्य अथवा विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु, भाव, विचार, क्रिया–कलाप,

1. डॉ. इन्दीवर पाण्डेय : नवगीत में लोकचेतना, पृ. 121
2. वही, पृ. 120
3. डॉ. मंजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, पृ. 105–111
4. सागरिका 38, पृ. 05

देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करती है तब प्रतीक कहलाता है। जैसे–कमल से कोमल सौन्दर्य, कुमुदिनी से शुभ्रहास, चन्द्र से मृदुल आभा, समुद्र से विस्तार एवं गम्भीरता, आकाश से व्यापकता, सर्प से कुटिलता, अग्नि से तेज और चातक से निःस्वार्थ प्रेम व्यञ्जित होता है।

बिम्ब और प्रतीक के मध्य भेद का निरूपण करते हुए आचार्य हर्षदेव माधव जी लिखते हैं– **"कदाचिद् बिम्बेन प्रतीकस्य निर्माणं भवति, कदाचित् प्रतीकेन बिम्बस्य। प्रतीकं प्रस्तुतेन सूचयति। कविः प्रतीकमाध्यमेन अप्रस्तुतं प्रस्तुतीकरोति। प्रतीकमनेकार्थं भवति। बिम्बमिन्द्रियसंवेद्य भवेदेव, प्रतीकं नापि स्यात्। प्रतीकमर्थसमर्पकं भवति। अतः प्रतीके अर्थबोधोऽपेक्ष्यते।"**[1]

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र बिम्ब एवं प्रतीक विधान के उत्कृष्ट सर्जक है। आपकी नवगीत सर्जनाओं की बिम्ब–प्रतीक योजना पाठक को मंत्रमुग्ध सा कर देती है। उनकी दोषरहितता एवं चमत्कारपूर्णता महदाश्चर्य का विषय है। उनकी रचनाऐं उनकी मौलिक बिम्बोद्भावनाजन्य विशिष्टता की भी उद्बोधक हैं।

कविवर की रचनाओं में उनकी स्वयं की वेदना व व्यथा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। अपने जीवन में प्राप्त कष्टों, पीड़ाओं, अवमाननाओं, लोगों द्वारा प्राप्त संत्रांसों तथा कष्टपूर्ण जीवन के दिनों का यथार्थ चित्रण सटीक बिम्ब व प्रतीकों के साथ देखने को मिलता है–

न सुमं न पर्णजालं न हरीतिमा वसन्ते
राधामुकुन्दकृपया धन्या करीरता मे!!
सुप्तं भुजङ्गनिवहे पीतञ्च कालकूटम्
नितरां श्मसानवासैर्महितैव शम्भुता मे!!
गङ्गा क्वचित्कृपायां यमुना क्वचिच्च रागे
विविधाभिरापगाभिर्जनिता हिमाद्रिता मे!![2]

---

1. डॉ. हर्षदेव माधव : वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, पृ. 207
2. श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः–प्रथिता सुवर्णता में, पृ. 107

अपने जीवन की विघ्न बाधाओं का बिम्बात्मक चित्रण करती हुई ये पंक्तियाँ भी यहाँ द्रष्टव्य है–

निजाभ्यस्तमार्गे विरुढाश्मखण्डान्
अपाकर्तुमेव प्रयत्नानकार्षम्
तदप्यात्तवैरैः सुहृद्भिर्न सोढं
परिव्रजानम्मे सदाऽऽतङ्कितं रे!![1]

समाज में व्याप्त संस्कार हीनता, युवा पीढ़ी के भटकाव, दुष्ट लोगों व कदाचारियों का आतंक इत्यादि से व्यथित कवि मन समाज का अटवी के रूप में चित्राङ्कन करता हुआ लिखता है–

वायसानां कुले पालितेयं पिकी
ज्ञायते तत्कथं कण्ठगानं विना!!
धार्षेता ह्रिंसजीवैः समाजाटवी
शक्यते नैव गन्तुं कृपाणं विना!![2]

कविवर मिश्र जी आपाततः विरुद्ध प्रतीत होने वाले तत्त्वों का एक बृहत्तर परिधि में संघात सहज रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। 'शनैः शनैः' गीति इस प्रकार के संघात का उत्तम उदाहरण है–

प्रीतिक्षुपं विवर्धय बन्धो! शनैः शनैः।
सुहृदां मनोऽनुरञ्जय बन्धो! शनैः शनैः!![3]

अन्य कवियों की भाँति 'प्रीति' को 'वल्लरी' नहीं कहकर कविवर मिश्र ने 'क्षुप' की परिकल्पना की है जो न केवल नयी है अपितु अधिक सार्थक भी है। प्रायः बेल जितनी तेजी से बढ़ती है, उतनी तेजी से मुरझाती भी है। इसलिए बेल या लता के स्थान पर 'क्षुप' का बिम्ब और उसके साथ 'शनैः शनैः' के अव्यय का आम्रेडन इन काव्यपंक्तियों में कथ्य और उससे जुड़ी जीवन–दृष्टि के मर्म को धार और प्रभाव देता है। 'क्षुप' धीरे–धीरे ही बढ़ता है, पर उसकी वृद्धि स्थायी, हितकर व माङ्गलिक होती है। क्षुप शब्द 'क्षुप्+क' से

---

1. मृद्वीका, जिजीविषा–द्वाविंशतितमी गीतिः, पृ. 33
2. मृद्वीका, जिजीविषा–त्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 44–45
3. अभिराजगीता, मंगलगीतम्–शनैः शनैः, पृ. 4

निष्पन्न होता है जिसका अर्थ होता है– छोटी जड़ों के वृक्ष, झाड़, झाड़ी।[1] तुलसी का पौधा भी क्षुप की कोटि में ही आता है। 'प्रीति के क्षुप का यह लोक–कल्याणकर रूप अंतर्मन में इस गीति को रचते समय रहा होगा',[2] ऐसा मानना है आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी का।

इसी सम्बन्ध में निम्न पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य है–

परितोऽपि पामराणां तृणशालिका इमाः।
होलानलं समिन्धय बन्धो! शनैः शनैः।।[3]

यहाँ झुग्गी–झोंपड़ियों में जीवन–बसर कर रहे लोगों के जीवन तथा होलिका दहन से सावधानी रखना रूप बिम्बों व प्रतीकात्मक योजना के द्वारा कविवर मिश्र जी ने पाठकों को समझाया है कि नगरों व शहरों के बीच बसी हुई झुग्गियों में आग लगती नहीं, लगायी भी नहीं जाती अपितु लगवायी जाती है। 'पामर' शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी कहते हैं कि– "इन पंक्तियों में पामर शब्द के प्रयोग ने राजेन्द्र जी के कवि को उन ऊँचाईयों पर स्थापित कर दिया है, जो आज के कवियों के लिये सहजगम्य नहीं। यह ऊँचाई परम्परा की गहरी समझ और सतत काव्य–साधना से गम्य है। क्योंकि पामर–शब्द का मूल अर्थ संस्कृत–काव्य की परम्परा में 'पापी' कभी नहीं रहा। लोकधर्मी संस्कृत कविता की हजारों वर्षों तक फलती–फूलती रही काव्यधारा में पामर तो खेत में दिहाड़ी पर काम करने वाला अदना मजदूर है।"[4]

आज राजनीति का स्वरूप बहुत ही विकृत हो गया है। दुष्ट, अपराधी, कदाचारी, स्वार्थी, चरित्रहीन, विवेकशून्य तथा मूढ़ लोग धन–बल के द्वारा राजनेता बनकर देश के प्रशासक बन बैठे; तो भला इस देश का विकास कैसे सम्भव है? इसी वेदना को अभिव्यक्ति देती हुई कविवर मिश्र की निम्न पंक्तियाँ हैं–

अन्धा नेतारो दृष्टिवतां
मूर्खाश्च नियन्तारो विदुषाम्।
त्वत्प्रवर्तिते जनतन्त्रेऽस्मिन्

---

1. वामन शिवराम आप्टे–संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ. 314
2. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 136
3. अभिराजगीता, मंगलगीतम्–शनैः शनैः, पृ. 4
4. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 136–137

क्लीबास्त्रातारो महौजसाम्।।[1]

कविवर मिश्रजी ने प्रकृति को अपनी सहचरी बनाया है। प्रकृति के सापेक्ष्य–उपमानों का सम्प्रेषणीयता को गति देने के निमित्त प्रयोग देखने को मिलते हैं किन्तु मिश्र जी ने प्रकृति जगत से अनेक सार्थक प्रस्तुतों को ग्रहण करते हुए भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। आंलकारिक बिम्बों के अप्रस्तुत विधान की भाँति प्रकृति का मानवीकरण भी नवगीतकार का प्रमुख वैशिष्ट्य है।

यहाँ धूमतां यामो वयम्, दूर्वा, दूर्वाभाग्यम्, मृतघट्टोऽहम्, वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य इत्यादि रचनाएँ उद्धरणीय हैं। 'धूमतां यामो वयम्' इस ग़ज़लगीति में कविवर मिश्र जी ने भारतीय दर्शन की उस अवधारणा को गूँथ दिया है जो सृष्टि को एक वृत्त के रूप में देखती है। यह जीवनयात्रा हवि से धूम की और धूम से पुनः हवि की है; बिन्दु से सिन्धु की ओर, सिन्धु से बिन्दु की है–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्।
धूमतो धनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः।
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।[2]

कवि ने अपनी प्रातिभ कल्पना और व्युत्पत्ति–जन्य वैदुषी से अछूते बिम्बों और प्रतीकों की सृष्टि करते हुये; अमूर्त भावों को भी मूर्तिमान् कर दिया है, जो पूर्णतः अभिनव है। इसी तरह कविवर पारम्परिक उद्दीपनों की भूमि पर नूतन भावबोध की सृष्टि करते हुए दिखते हैं। व्यष्टि जगत् और समष्टि जगत् तथा अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का इन्द्रधनुषी चित्रण करते हुए कविवर लिखते हैं–

यदा पर्येति भृङ्गो जलजकलिकाम्
मनोऽधीरं विधत्ते तव स्मरणम्।।
यदा पुंस्कोकिलो रौति माकन्दके
मनो व्यग्रं विधत्ते तव स्मरणम्।।
काशते मेघपृष्ठे यदैन्द्रं धनुः

---

1. मधुपर्णी, नमो नमः, पृ. 55–56
2. मधुपर्णी, धूमतां यामो वयम्, पृ. 13

मनश्चित्रं विधत्ते तव स्मरणम्।।[1]

इस प्रकार कविवर अभिराज जी की काव्याभिव्यक्ति का अन्दाज बहुत ही अनोखा है। अर्वाचीन संस्कृत के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और समालोचक डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी शालभञ्जिका की भूमिका 'शालभञ्जिका : अनथक काव्ययात्रा का नया पड़ाव' में लिखते हैं कि– "अपनी समग्र काव्य–यात्रा में कवि विलक्षणता का सन्धान करता रहा है, इस कारण अभिराज की कविता में कभी क्षुद्रता या हीनता का बोध नहीं रहा, सदैव विलक्षणता और उदात्त के धरातल पर उनका कवि विचरण करता रहा है। यह उदात्तता विषयवस्तु में, भाषा में, पदावली में, उनकी कविता के पोर–पोर में समवेत है। संस्कृत में नये मुहावरों, कथनभंगियों का सन्धान अभिराज का अन्तर्निहित कवि करता रहा है।"[2]

(छ) प्रकृति–चित्रण

"जो बर्ताव हम प्रकृति के साथ करते हैं उसी से निर्धारित होता है कि हमारा व्यवहार मनुष्यों के प्रति कैसा होगा।"[3] कार्लमार्क्स का यह कथन तथा "प्रकृति 'मनुष्येतर सजीव सृष्टि' है और इसमें रमना सच्चे कवि की पहचान या लक्षण है क्योंकि 'स्वार्थभूमि से परे पहुँचे हुए सच्चे अनुभूति योगी या कवि' ही इसके सौन्दर्य से ऊभ–चूभ हो सकते हैं।"[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह वक्तव्य यह प्रमाणित करता है कि प्रकृति काव्य का आवश्यक उपकरण तो है ही, उससे सहज लगाव मानवीय संवेदना की शर्त भी है।

प्रकृति नाना रूपों में संस्कृत काव्यों में चित्रित हुई है– स्वतन्त्र दृश्य अर्थात् भौतिक जगत् के ईश्वर–प्रदत्त पदार्थ–पर्वत, वन, नदी, सागर, सरित्, ऋतुएँ, खेत–खलिहान, बादल इत्यादि बाह्य प्रकृति कहलाते हैं तथा मानवीय भावनाओं के आरोपण के रूप में अर्थात् मानव अन्तःकरण अन्तःप्रकृति कहलाता है। संस्कृत–काव्य–परम्परा में विशेषतः कालिदास के काव्य में भारतीय मनीषा का अनुसरण करते हुए प्रकृति का एक अन्य रूप भी दृष्टिगोचर होता है। जहाँ वे प्राकृतिक दृश्यों, मानव और प्रकृति के परस्पर सम्बन्धों के

1. वही, तव स्मरणम्, पृ. 29
2. शालभञ्जिका, भूमिका भाग, पृ. 6–7
3. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा, नवगीत संवेदना और शिल्प, पृ. 269
4. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा, पृ. 269 तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत रस मीमांसा का 'काव्य' शीर्षक निबन्ध

अतिरिक्त उसको परमसत्ता (परमेश्वर) के रूप में देखने लगते हैं। वस्तुतः भारतीय मनोवृत्ति में प्रकृति सनातन काल से ही चेतन और परम तत्त्व के रूप में समादरणीय रही है। प्रकृति और मानव दोनों का सम्बन्ध इतना गहरा है कि एक–दूसरे के बिना दोनों एकांगी और असहज हो जाते हैं। जिस प्रकार मानव जीवन से असम्बद्ध प्रकृति का कोई मूल्य नहीं है, वैसे ही प्रकृति से विच्छिन्न मानव जीवन की कोई सार्थकता नहीं है। एक पल यह तो संभव है कि प्रकृति मानव से निरपेक्ष होकर रह ले, किन्तु प्रकृति निरपेक्ष मानव–जीवन की कल्पना प्रायः असम्भव है। इस प्रकार प्रकृति मानव की चिर–सहचरी है।

भारतीय साहित्य में बाह्य प्रकृति का वर्णन, आलम्बन और उद्दीपन दो रूपों में मिलता है। प्रकृति मानवीय भावों पर सदैव अपना प्रभाव छोड़ती है। वह उसके मनोभावों को तीव्र तथा उद्दीप्त करती है। परन्तु जब वह स्वतन्त्र रूप से काव्य में स्वयं को प्रतिष्ठित करती है तब वह विशुद्ध आलम्बन रूप में स्थिति होती है। प्रकृति का प्रयोजन मानव जीवन को सरलीकृत करना है। इस प्रक्रिया में वह स्वयं विविध रूपों को धारण करके प्राणी के जीवन को सुसंस्कृत बनाती है, उसके सुप्त भावों को जाग्रत करती है एवं संचारी और स्थायी भावों से निःसृत रसों को उद्दीप्त करती है और यही है प्रकृति का मानवीकरण।

प्रायः साहित्य की प्रत्येक विधा में प्रकृति स्वयं को रूपायित करती हुई परिलक्षित होती है परन्तु गीतिकाव्य के अधुनातन स्वरूप नवगीत साहित्य में प्रकृति एक विशिष्ट उपादान रूप में प्रस्तुत होती है जो न सिर्फ मुखर होकर उपस्थित होती है, अपितु उसके प्रति नवगीतकारों का दृष्टिकोण भी साफ–साफ दिखाई देता है। नवगीत में मानव के साथ प्रकृति का अन्तर्योग जितने विविध रूप और जितनी आत्मीयता में सुलभ है, वह इस काव्य–धारा की प्रमुख विशेषता है। नवगीतकार ने मानव–जीवन तथा प्रकृति–जीवन के संग्रन्थन को काव्य का उपजीव्य ठहराया है। यहाँ प्रकृति व्यक्तिगत मानव–जीवन के साथ ही नहीं बल्कि राष्ट्र और समाज के वृहत्तर जीवन के साथ एकाकार है। इस कविता–धारा में प्रकृति के सर्वांग विस्तार को देखते हुए वेदों और उपनिषदों में समादृत प्रकृति–महिमा का स्मरण स्वाभाविक है। अन्तर सिर्फ इतना है कि वैदिक व पौराणिक ग्रन्थों में वह सर्वशक्तिमान् ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित है जबकि नवगीत साहित्य में वह अपने प्रकृत रूप में या फिर मानव के साथ अन्तरंग सम्बन्धों को लेकर अस्तित्वमान है।

संस्कृत नवगीतकारों की शृंखला में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत नवगीत रचनाओं का अद्वितीय व महनीय स्थान है। अभिराज जी बाह्य प्रकृति एवं अन्तः प्रकृति के चित्रण के अनुपम चितेरे हैं। उनकी संस्कृत–निबद्ध नवगीत रचनाओं में इस द्विविध प्रकृति का चित्रण अपूर्व एवं अनुपम वैशिष्ट्य लिए हुए है। यहाँ प्रकृति एवं तत्सम्बन्धी अनेकों उपादानों को जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। अर्वाचीन संस्कृत–साहित्य की प्रखर समीक्षक डॉ. मञ्जुलता शर्मा के शब्दों में– "अभिराज की अभिराजता केवल सामाजिक दुरवस्थाओं के चित्रण, विसङ्गतियों के निरूपण, व्यङ्ग्यशरसन्धान एवं स्वानुभूत दंशनों तथा प्रहारों के चित्रण में ही नहीं है अपितु सुरम्य परिधानवती पृथ्वी विविध प्राकृतिक परिदृश्यों से समन्वित हो उनकी रचनाओं में चित्रित हुई है। इसकी सबल परिचायिका हैं– 'सपादिका मधुमासस्य', 'वारिदाः', 'रविभास्वरं प्रभातम्', 'वत्सलागङ्गा' एवं 'चन्द्रिका' प्रभृति रचनाएँ।..........न केवल लता, उद्यान, वृक्ष, पुष्प, पल्लवादि से विलसित प्रकृति के अङ्कन में अपितु मानवीय प्रकृति के अनतश्चित्रण में भी इनकी 'अभिराजता' विराजती है। जैसे फागुन की मदमाती बयार में देवर–भाभी की ठिठोली, बूढ़ों के भी मन का बहकना, ढोलक–मञ्जीरे की थाप पर होली व चैती का गायन, कामदेव का शरसन्धान, चर–अचर समग्र प्रकृति का उसके वशीभूत होकर सुध–बुध खो बैठना।"[1]

वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता इन पाँचों संस्कृत नवगीत संग्रहों के नामकरण से ही कविवर मिश्रजी के प्रकृति–बोध व प्रकृति–प्रेम को आसानी से समझा जा सकता है। मृद्वीका (अंगूर की बेल) और मधुपर्णी (नील का पौधा) इन दोनों के नाम बाह्य प्रकृति के तथा अन्य तीनों संग्रहों के नाम अन्तः प्रकृति के द्योतक हैं। मिश्र जी भारत देश के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा प्राकृतिक–विविधता के इतने कायल हैं कि उनके अनेक गीतों में भारतमाता के इस प्राकृतिक एवं भौगोलिक स्वरूप का चित्रण किया गया है तथा वे भारतभूमि का वर्णन करते हुए नहीं थकते हैं। कविवर कहते हैं कि भारत की महनीयता से स्वयं प्रकृति भी अभिभूत है–

गङ्गा पुनाति भालं रेवा कटिप्रदेशम्

वन्दे सदा स्वदेशम्

---

1. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 161–162

एतादृशं स्वदेशम्!!
काशीप्रयागमथुरावृन्दाटवीविशालाः
द्वारावतीसुकाञ्चीविदिशादितीर्थमालाः
सम्भूषयन्ति कामं यस्य प्रशान्तवेषम्
वन्दे सदा स्वदेशम्
एतादृशं स्वदेशम्!![1]

विलसति शिरसि तुहिनगिरिरचना धृतकैलाशविलासा
महिमानं गायति विहगाली ह्वतचारणपरिभाषा
चरणकुवेलमनिशमुपयातो जलधिः कलयति मानम्
जयताद् भारतराष्ट्रम्!

भूः सुवर्णपुष्पा जलममृतं जीवनदो मधुवायुः
आह्लादैकपरम् ऋतुचक्रं प्रथितं यद्घृतमायुः
वृन्दारकसंहतिरपि नितरां गायति शुभगुणगानम्
जयताद् भारतराष्ट्रम्![2]

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के 'अभिनव कालिदास' कहे जाने वाले मिश्र जी ने जिस प्रकार मेघदूत में कालिदास ने जिस मेघ को आलम्ब बनाकर अपने प्रकृति प्रेम का परिचय दिया था उसी परम्परा में अपने बाली–प्रवास के दौरान अपनी जननी तथा जन्मभूमि की याद में मेघ को ही अपना सन्देशवाहक बनाया है। 'जलधर! नय सन्देशम्' गीत की पंक्तियों में हमें मेघदूत की पुनरावृत्ति सी नजर आती है। जलधर अर्थात् मेघ तो स्वयं प्रकृति का अद्भुत रूप है। अचेतन होते हुए भी वह चेतनवत् प्रतीत होता है। सम्पूर्ण गीत में वह न केवल दूत के रूप में चित्रित है, अपितु अपने सखा की भाँति कवि ने उसे प्रस्तुत किया है। इस मेघ को पुरस्सर करते हुए कविवर अभिराज जी ने भारत के उत्तरी क्षेत्र में स्थित तीर्थस्थलीयों, गङ्गा–यमुना के सङ्गमस्थल प्रयागराज, भारत के विभिन्न नगरों व कस्बों कर्णपुर, भोपाल, दिल्ली, लक्ष्मणपुर, उज्जयिनी, सागर इत्यादि के वर्णन से प्रकृति रूप छटा को बिखेरा है–

1. वाग्वधूटी, वन्दे सदा स्वदेशम्–9 तथा अभिराजगीता, पृ. 54
2. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्)–जयताद् भारतराष्ट्रम्, पृ. 60 तथा श्रुतिम्भरा, पृ. 51

जलधर! नय सन्देशम्!

मत्प्रियभारतदेशम्!!

प्रथमं गच्छोत्तरप्रदेशान् यत्र तीर्थपतिनगरी

गङ्गायमुनासङ्गमरुचिरा भुक्तिमुक्तिगतिलहरी

पश्य मदीयनिवेशम्!

जलधर! नय सन्देशम्!!

प्रतिजनपदं प्रतिपुरं बन्धो! राष्ट्रे सन्ति सखायः

सर्वत्राऽपि मदर्थसमुत्कण्ठितपरिजनसमुदायः

ब्रूहि शुभं परिवेशम्!

जलधर! नय सन्देशम्!![1]

इसी क्रम में अपनी ग़ज़ल गीति 'धूमतां यामो वयम्' में प्रकृति स्वरूप विभिन्न प्रतीकों–धूम्र, घन, हवि आदि के माध्यम से जीवन–सत्य तथा भारतीय अध्यात्म को समझाते हुए मिश्र जी लिखते हैं–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्

धूमतो घनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।

वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः

प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।[2]

प्रकृति के विनाश जैसे नदीयों का दूषित होना, तीर्थस्थलीयों के सुरम्य वातावरण का भोगभूमि के रूप में परिवर्तित हो जाना, पर्वतों, जंगल व जमीनों पर कंक्रीटों के ढेर स्वरूप बहुमंजिला इमारतों का अंधा–धुंध निर्माण इत्यादि घायल ऋतु–चक्र से कविवर मिश्र जी बहुत ही आहत नजर आते हैं। मिश्र जी के प्रकृति–बोध व संवेदना–पक्ष को शोधार्थी द्वारा शोध–ग्रन्थ के तीसरे अध्याय के बिन्दु 'पर्यावरण–चेतना' में बखूबी प्रकाशित कर दिया गया है, अतः इसकी झलक मात्र से यहाँ रूबरू करवाया जा रहा है–

पावनी तीर्थभूमिर्विलासावनी

---

1. श्रुतिम्भरा, प्रवासध्वनिः–जलधर! नय सन्देशम्!, पृ. 65–66 तथा अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्), पृ. 62
2. मधुपर्णी, प्रथमखण्डः गलज्जलिकाः–धूमतां यामो वयम्, पृ.13

भोगसम्भोगपूर्तिप्रदा काञ्चनी।।[1]

नदी श्यानपुलिना तन्वङ्गी सञ्जाता

जानुदध्नसलिला सिकताचयसंघाता।।[2]

जायते निर्झरी हन्त कूलङ्कषा।

एद्यते साम्प्रतं भारते दुर्दशा।।[3]

प्रतिशाखं चन्दनेषु वेष्टिता भुजङ्गाः

मानवैः पवित्रीक्रियते सम्प्रति गङ्गा।।[4]

कविवर मिश्र जी को अपनी जन्मभूमि से अत्यधिक प्रेम है। जिस प्रकार एक अबोध बालक बार–बार अपनी माँ के आँचल में लिपटकर अठखेलियाँ करता है, उसी भाँति कवि का बाल–मन भारतीय वसुन्धरा के आँचल में पुनः–पुनः लोट–पोट होने की आकांक्षा रखता है। कविवर कहते हैं कि भारत की प्राकृतिक–सम्पदा अद्वितीय व अनुपम है। यहाँ प्रकृति के विभिन्न रंग–बिखरे पड़े हैं। उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम, हर क्षेत्र की एक विशिष्ट पहचान है, भौगोलिक विभिन्नता है–

भवेदिह मर्त्यलोके जन्म मम भूयोऽपि शतवारम्
परं स्याद् भारते।।
विराजन्तामनन्ताः शालयो नतमञ्जरीपुञ्जाः
सुशोभन्तां वनान्ता दुष्प्रवेशलसन्निचुलकुञ्जा
भवेदिह मृत्तिकायां विलुठनं भूयोऽपि शतवारम्
परं स्याद् भारते।।[5]

'चन्द्रिका' नामक रचना में सम्पूर्ण पृथ्वी को अपनी धवल किरणों से शोभायमान करने वाली चाँदनी, माँ के वात्सल्य के समान आँचल में समेटती हुई सी प्रतीत होती है। तो कभी वही चाँदनी चन्द्रमा रूपी कलश से छलकी दुग्धराशि के समान पृथ्वी पर फैली

---

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्)–जीवितुं शक्यते नेदृशे भारते, पृ. 82
2. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः गीतयः–कस्मै खलु हविषा विधेम, पृ. 53
3. श्रुतिम्भरा, निर्झरी हन्त कूलंकषा, पृ. 61
4. मधुपर्णी, अतः परं किं भविता, पृ. 26
5. अभिराजगीता, भवेदिह मर्त्यलाकै जन्म, पृ. 75

हुई लगती है। कभी शीत से ठिठुरी धरती को रुई से बनी लोई के समान ढँकती हुई तो कभी शिव के अट्टहास की छवि को धारण करती हुई सी प्रतीत होती है–

मातृवात्सल्यकल्पाऽवदाताऽखिलां।
रोदसीमेव संगूहते चन्द्रिका।।
चन्द्रकुम्भच्युतक्षीरभारोच्चया।
प्राप्तसाम्या धरामूर्णुते चन्द्रिका।।
वीक्ष्य शीतार्दितां भूतधात्रीमहो।
तूलतल्पैरिव त्रायते चन्द्रिका।।
चित्रशैलूषिकेवाऽभ्रगङ्गाश्रियं।
शम्भुहासछविं नह्यते चन्द्रिका।।[1]

इसी प्रकार 'संपादिका मधुमासस्य' नामक अपनी रचना में कविवर मिश्र जी प्रतिशाख मञ्जरित रसालवनी, उन पर गुञ्जार करती मधुपावलि, सुखोच्छवसित चातकों की पिहु–पिहु ध्वनि, कदम्बमधूकपलाश व पलाशचय से विलसित पृथिवीरमणी, नृत्योत्सुक मयूरों का झुण्ड, प्रीतिराग से सरोबार मन इत्यादि मधुमास जनित विविध स्वरूपों का चित्रण निम्न प्रकार से करते हैं–

मधुगन्धवशीकृतपानकलम्पटभृङ्गनिकायसमाकलिता

पुरुहूतदिगागतगन्धवहेरितपल्लवसञ्चयसञ्चलिता।

ददृशे यदरालरसालवनी प्रतिशाखमनारतमञ्जरिता

बुबुधे सहसैव तदा धरणी मधुमासकथा पुनरापतिता।।[2]

प्रत्येक प्राणी के अन्दर ऊर्जा का संचरण करता हुआ, चारों ओर से अन्धकार को हटाता हुआ, विकसित कुसुमों की ओर मधुपाली को आह्वान करता हुआ, पक्षियों को प्रातःकालीन धुन पर सवार करता हुआ प्रातःकाल कवि की रचना 'रविभास्वरं प्रभातम्' में जीवन्त बन उठा है। रवि की भास्वरता किस प्रकार सृष्टि चक्र को गति प्रदान करती है, का चित्रण करते हुए कविवर लिखते हैं–

---

1. अभिराजगीता, प्रकृतिविलासगीतम्, चन्द्रिका, पृ. 106
2. अभिराजगीता, संपादिका मधुमासस्य, पृ. 112

लोचनमुन्मीलय समागतं रविभास्वरं प्रभातम्
अपयातं घनतमोवितानं दिङ्मण्डलमवदातम्।।
विकसितमल्लीककुसुमरसामृतरसिकाऽटतिमधुपाली।
अधिवाटिकमिह रौति सगुञ्जं माद्यति नवशेफाली।।
उदयति रवौ समेऽपि समुदिताः संसरन्ति संसाराः।
प्रवहन्त्यः परिलक्ष्यन्ते हृदि–हृदि बृहदुद्यमधाराः।।[1]

वर्षाकाल में प्रकृति किन–किन रूपों में हमारे समक्ष आती है तथा वर्षाकाल जनित मानवमन में क्या–क्या भाव आते हैं? इन सबका चित्र खींचते हुए कविवर मिश्र जी अपनी रचना 'रिमझिम वर्षति सजलजलधरो' में लिखते हैं कि वर्षा की आहट मात्र से कानन केकी–ध्वनि से गूँज उठता है, आकाश में बादल शिशु की भाँति अठखेलियाँ करता नजर आता है तथा विरहजन्य पीड़ा परिणिति को प्राप्त होती हुई दृष्टिगोचर होती है–

रिम्झिम् वर्षति सजलजलधरो
नृत्यति केकी कानने!!
गर्जति धावति नदति च कूर्दति
तारापथे पयोदो बाले!
अयि भोः! शिशुरिव नटति जलधरो
नृत्यति केकी कानने!![2]

श्रावणमास मनमोहक गीत के द्वारा युवतियों के मन में काम का संचरण किस प्रकार होता है और उस कामोत्कण्ठा के वशीभूत होकर वे प्रोषितपतिका किस प्रकार उलाहना देती हैं तथा अपनी पीड़ा को अपनी सखी–सहेलियों में गीत के माध्यम से किस प्रकार बाँटती है, इन सबका चित्रण मिश्र जी अपनी लोकगीति में इस प्रकार करते हैं–

सखि रे! समागच्छति श्रावणमास उदारोऽयम्

---

1. अभिराजगीता, रविभास्वरं प्रभातम्, पृ.102
2. अभिराजगीता, रिम्झिम् वर्षति सजलजलधरो, पृ. 122 तथा मृद्वीका, विंशतितमी गीतिः, पृ. 29

संवर्धयत्यङ्गं मानसे!!

भवने नैव मम प्राणेशः

श्वासः प्राणेष्वपि नो शेषः

सखि रे! भाति शर्वरी गूढसपत्नीसारेयम्

संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!!

अक्ष्णोरेवाऽऽस्थितं प्रभातम्

किञ्चिन्नो विद्यतेऽवदातम्

सखि रे! कान्तं विना भवति संसारोऽसारोऽयम्

संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!![1]

कवि मिश्र जी भारतीय जनमानस में रचे–बसे हमारे आदर्शों तथा प्रतीकों के कुशल चितेरे हैं। गङ्गा नदी के भूतल पर अवतरण तथा सोपानक्रमानुसार उसको प्राप्त नामों का वर्णन अपनी गीति 'गङ्गा विलसति!' में कविवर करते हैं–

गिरिशिखरादवतरति सवेगं क्षीरधवलजलधारा
पतति शिलायां पुनरुत्तिष्ठति फेननियचसम्भारा
गङ्गा विलसति भुवि शरणाय
नयनसुखमातनुते!!
भागीरथी सरति गोमुखतो बदरीतोऽलकनन्दा
मन्दाकिनी मिलति पथि मध्ये चञ्चलसलिलतरङ्गा
गङ्गा विलसति भुवि शरणाय
सरणिसुखमातनुते!![2]

अभिराजगीता में 'शिशुभावनागीतम्' शीर्षकान्तर्गत सङ्कलित शिशु गीतों में कविवर मिश्र जी बहुत ही सरल व सुबोध शैली में प्रकृति के नानारूपों जैसे कीट–पतंगों, पशु–पक्षी, बन्दर, बादल, चीटीं, तितली इत्यादि का परिचय करवाते हैं जिनसे शैशवकाल

---

1. अभिराजगीता, सखि रे समागच्छति श्रावणमास उदारोऽयम्, पृ. 123
2. अभिराजगीता, गंगा विलसति! पृ. 128 तथा श्रुतिम्भरा, पृ. 87–88

में ही बालमन की जिज्ञासा का शमन हो सके, साथ ही प्रकृति–प्रेम का बीजारोपण उन बालमनों में हो जावे।

श्रुतिम्भरा नामक नवगीत संकलना में 'प्रवासध्वनिः' शीर्षकान्तर्गत संकलित गीतियों में कविवर मिश्र जी ने भारतदेश की प्राकृतिक शोभा का अद्‌भुत वर्णन करते हुए प्रत्येक भारतवासी के मन में गौरव का अनुभव करवाया है। इन गीतों में भारतीय भौगोलिक विविधता से हमारा परिचय करवाया है। 'निसर्गध्वनिः' शीर्षकान्तर्गत सङ्कलित गीतियों में वर्षाकाल, ऋतुराज वसन्त, गङ्गा नदी, कावेरी–नदी, दीपकमाला इत्यादि का बड़ा ही मनोहारी एवं चित्तानुरञ्जक वर्णन मिलता है। चञ्चलशुभ्रजला, हिमतरला, जन्हनुसुता, विधुकरधवला कावेरी नदी के सौन्दर्य का वर्णन मिश्र जी इस प्रकार करते हैं–

संस्मारयति सुखं कावेरी!
चञ्चलशुभ्रजला हिमतरला
कविजनमहिता विधुकरधवला
तुलयति जह्नुसुता कावेरी।।
दक्षिणीदिशि विलसत्यभिरामा
त्रिशिरःपुरी ललामललामा
गिरिमपि मन्दिरयति कावेरी।।[1]

अपनी दक्षिण–यात्रा के समय जब कवि मन अरविन्द आश्रम के समीप सागर तट पर बैठकर सागर की ऊँची व तेज ध्वनिरत लहरों को देखता है तो वह आह्लादित हो उठता है। वह कहता है कि हे पुरुरूप सागर! यहाँ आकर मैंने तेरे सम्पूर्ण वैभव को देखा है। आप महान् हो फिर समुद्रफेन से व्याकुलता लिये हुए क्यों नजर आ रहे हो। इस स्वरूप में आपके अन्दर काल भैरव के दर्शन होते हैं। हे सरित्पते! मैं गङ्गाञ्चल (प्रयाग) वासी हूँ और आप भी गङ्गपति हैं इस नाते आप हमारे पितृस्वरूप हो–

पुरुरूप सागर! तावकं दृष्टम्मयाऽखिलवैभवम्!
जलभूपसागर! तावकं दृष्टम्मयाऽखिलवैभवम्!!

1. श्रुतिम्भरा, निसर्गध्वनिः–कावेरी, पृ. 89

उत्तुङ्गफेनजलाऽकुलः कस्मै वृथा कुप्यसि विभो!

अपि रुद्ररूप पयोनिधे! ननु लक्ष्यसे भुवि भैरवम्!!

गङ्गाञ्चले निवसाम्यहं गङ्गापतिस्त्वमपि ध्रुवम्!

तनुजस्तवेत्थमहं पितः कुरु मां कदर्थितकैतवम्!![1]

'मृद्वीका' नामक संकलना में 'ऋतुश्रीः' शीर्षक से सम्बन्धित नौ गीतियों में शीर्षकानुसर प्रकृति का अनुपम सौन्दर्य अन्तरंग एवं बाह्य, उभयरूप में नजर आता है। किन्तु इनमें से अधिकांश गीतियाँ अन्य संकलनाओं में भी सङ्कलित है। अनावृष्टि की स्थिति में मानो सारी सृष्टि दुःखी हो जाती है। वर्षा की आस लगाये बैठे कृषकों का मन दुःखी हो उठता है। बिना जल के भूगर्भ में दबे वनस्पति के बीज नष्ट हो जाते हैं। धरती तप्त हो उठती है, नदियाँ सूख जाती है। अतः हे पयोद! आप इन सबके सहायक हो। अतः अपने यश की रक्षा करते हुए इस संतप्तों को अपने जलकणों से अभिसिंचित कीजिए–

निनदधरो
वितरति पयो न पयोदः!!
किं कुर्वन्तु वराककृषाणाः
सुखयति मनो न पयोदः!!
आषाढेऽपि न वारिदमाला
सर्वत्रैव तृषा विकराला
विदहति धरणी विलपति तटिनी
रमयति दृशो न पयोदः!![2]

लोकजीवन या लोकपरिवेश की प्रकृति से गहरी संशक्ति है क्योंकि प्रकृति का वैविध्य ही लोकजीवन में प्रेरणा–साहचर्य और सौन्दर्य की सृष्टि करता है। नवगीत इसी लोक संवेदना का काव्य है। प्रकृति और संस्कृति, लोक परिवेश की ये दो दिशाएँ हैं। अतः लोक संस्कृति परक रचनाओं में प्रकृति सहज ही स्वयं को उपादान बना लेती है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने पूर्वाचञ्ल क्षेत्र में प्रचलित विभिन्न लोकगीत विधाओं–कहरवा,

---

1. श्रुतिम्भरा, पुरुरूप सागर!!, पृ. 91
2. मृद्वीका, ऋतुश्रीः, एकविंशतितमी गीतिः, पृ. 30

कजरी, चैता, सोहर आदि को शुद्ध संस्कृत शब्द सिद्ध करते हुए इन्हें संस्कृत में उपनिबद्ध कर संस्कृत गीत होने का श्रेय प्रदान किया। अतः इन लोकगीतिपरक संस्कृत रचनाओं में प्रकृति के अनुपम स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं। शादी के समय दुल्हन की डोली को उठाकर चलने वाले सेवक अपने श्रम–परिहार के निमित्त तथा नववधू के मनोविनोदार्थ जिस गीतिविधा को गाते थे, वह कहरवा (स्कन्धहारीयम्) कहलाता है, जिसकी कवि प्रणीत कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

नभसि विभाति चमत्कृतचन्द्रो भाति चन्द्रमसि छाया
सरसि विभाति सरागकमलिनी कमलिन्यामलिजाया
भाति भवने वधूटी षोडशी सदङ्गना
भाति गगने मुदी सतारका निरञ्जना।।
क्षणे क्षणे यन्नवतोपेतं प्रभवति तदेव रूपम्
क्षणे क्षणे यज्जड़तोपेतं भवति तदेव विरूपम्
भाति विजने वसन्तकलकण्ठीवन्दना
भाति भवने वधूटी षोडशी सदङ्गना।।[1]

उत्तरप्रदेश के ग्रामीण अञ्चल में चैत्रमास में पति के विरह में प्रिया अपनी चिन्ता को लक्ष्य करके जो गीत गाती है उसे 'चैता' अथवा चैत्रक कहते हैं। कवि प्रणीत चैत्रक की कुछ पंक्तियाँ भी यहाँ उद्धरणीय हैं–

विधुमभिसरति कुमुदिनी रे मातः किमु करवाणि!
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातः किमु करवाणि!!
पवनो वहति मलयगिरिसूतः
रेवातटगतवञ्जुलपूतः
वितरति सममधु नलिनी रे मातः किमु करवाणी!
प्रोषितपतिका विरहिणी रे मातः किमु करवाणि!!
रौति रसालतरौ कलकण्ठी

1. वाग्वधूटी, स्कन्धहारीयम् (भाति!!)

श्रुतिकुहराय भवति ननु शुण्ठी

न खलु भवामि कुशलिनी रे मातः किमु करवाणि!
प्रोषितपतिका विरहिणी रे आतः किमु करवाणि!![1]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीतों में प्रकृति अभिव्यक्ति का प्रमुख काव्य उपकरण बनकर प्रस्तुत हुई है। शुद्ध मानवीय अनुभूति या जीवन की समस्याओं पर विचार करते हुए भी कविवर प्रकृति–प्रतीकों में स्वयं को अभिव्यक्त पाते हैं। कवि ने प्रकृति के अन्तरंग और बहिरंग दोनों पक्षों का सटीक चित्रांकन किया है। प्रकृति का मानवीय रूप उनकी रचनाओं में अनेकत्र दृष्टिगोचर होता है। साथ ही प्रकृति–बोध भी मुखरता लिये हुए है तथा प्रकृति चित्रण को स्फुटता के साथ अभिव्यक्ति मिली है। निःसन्देह कविवर मिश्र जी प्रकृति के परम उपासक व आराधक हैं।

अतः कहा जा सकता है कि कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के युग प्रवर्तक, कालजयी गीतकार तथा अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। साहित्य की कोई सी भी विधा हो, कोई सा भी शिल्पगत रहस्य हो, उनके लिए कुछ भी श्रमसाध्य नहीं है। सरस्वती के वरदपुत्र कविवर मिश्र जी की लेखनी रूप बाँसुरी से निःसृत नानाविधामूलक रचनाएँ नानाविधविषयों की संवेदनाओं से सुसज्जित तथा शास्त्रीय एवं लोकधुनों से परिपूरित स्वर अनवरत रूप से चहुँओर रसमाधुरी से आप्लावित कर रहे हैं। उनकी रचनाओं में काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का समायोजन उन्हें सचमुच में अभिनव कालिदास सिद्ध करता है।

♦♦♦♦

1. वाग्वधूटी, चैत्रकम् (किमु करवाणि!!)

पंचम अध्याय

नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों में मिश्र जी का पाण्डित्य तथा नैसर्गिकी कवित्व प्रतिभा

नाऽहं करोमि कवितामिह शारदैव
साऽऽत्मानमञ्जयति मत्कवनच्छलेन।
गन्धं तनोति जलजं न निजप्रभावै–
र्विस्फूर्जितं सकलमेव तदर्कलक्ष्म्याः।।

पञ्चम अध्याय

नवगीतात्मक संस्कृत कृतियों में मिश्र जी का पाण्डित्य तथा नैसर्गिकी कवित्व–प्रतिभा

कविः करोति काव्यानि, स्वादु जानन्ति पण्डिताः।
सुन्दर्या अपि लावण्यं, पतिर्जानाति नो पिता।।

इस सुभाषितानुसार कवि की रचना अपने लिये नहीं होती है। वह सर्वदा दूसरों के लिये रचना करता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि किसी सुन्दरी के सौन्दर्य को उसका पति तो जानता है, परन्तु उसका पिता नहीं। यद्यपि वह उसका स्रष्टा है। साहित्यिक रस का आस्वादन करने वाला पण्डित शास्त्रज्ञ या समीक्षक और सहृदय के रूप में दो प्रकार का होता है। संक्षेप में कहें तो सहृदय सामाजिक ही काव्य के रस को जान सकता है।

'सहितस्य भावः साहित्यम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार कविकर्मरूप 'साहित्य' के अन्तर्गत वाङ्मय की समस्त विधाओं का अन्तर्भाव हो जाता है। दृश्य, श्रव्य अथवा चम्पूरूप पारम्परिक विधाएँ हों अथवा साहित्य की अभिनव विधाएँ सभी में अपनी सृजन क्षमता को अभिव्यक्त करने वाला विलक्षण व्यक्तित्व कवि कहलाता है।

'कवेः कर्म काव्यम्' अर्थात् कवि की कृति ही काव्य है। राजशेखर ने इसी को 'तस्य कर्म स्मृतं काव्यम्'[1] कहा है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उस अनादिनिधन परमेश्वर का काव्य है और वह इस सृष्टि का रचयिता कवि है। वेद कहता है– "पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"[2] अर्थात् उस परमेश्वर के इस जगद्रचना रूप काव्य को देखो, जो न तो कभी नष्ट होता है और न कभी जीर्ण होता है। "कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः"[3] के अनुसर वह परमेश्वर कवि है।

---

1. आचार्य राजशेखर, काव्यमीमांसा, प्रथम अधिकरण
2. अथर्ववेद, 10/8/32
3. ईशावास्योपनिषद्/8

आचार्य सायण के अनुसार 'कवि' शब्द 'कु शब्दे' धातु से बनता है। कौतीति कविः–कु+इ।[1] दशपादी उणादि वृत्ति में 'कु शब्दे या कुङ् अव्यक्ते शब्दे' धातु में इन्[2] प्रत्यय लगाकर कवि शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है–कौति, कवते, कूयते वा कविः काव्यकृत् विद्वान् शब्दकारः।

आचार्य यास्क कुङ् शब्दे कवते तथा कमु धातु से कवि शब्द की संरचना मानते हैं– "कविः क्रान्तदर्शनो भवति कवतेर्वा।"[3] निघण्टु में कवि शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए यास्क लिखते हैं– "मेधावी कविः क्रान्तदर्शनो भवति।"[4] कवि शब्द की सिद्धि 'कवृ वर्णने' धातु से होती है, जिसका अर्थ है– कवते सर्वं जानाति, सर्वं वर्णयति सर्वं सर्वतो गच्छति वा।[5] कवि सब कुछ जानता है, सब कुछ वर्णन करता है। कवि का ज्ञान उसकी प्रतिभा की तरह ही उसके कवित्व का कारण होता है। इसीलिए आचार्य मम्मट कवि की काव्य–सृष्टि को प्रजापति की सृष्टि की तुलना में श्रेष्ठ मानते हुए कहते हैं–

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।[6]

इसी बात को ध्वनिकार और भी खुलकर कहते हैं–

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।
श्रृङ्गारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्।।
भावान् चेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत्।
व्यवहारयति यथेष्टं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया।।[7]

---

1. 'अच इः' उणादि 3/134
2. इन 1/46 उणादि
3. निरुक्त, 12/13
4. वही, 11/13
5. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 259
6. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, 1/1
7. आनन्दवर्धनाचार्य, ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ. 422

इस विवरण से लोकोत्तरवर्णना–निपुण वाणीपुत्र कवि की निरङ्कुशता सर्वथा स्पष्ट हो जाती है। कहा भी गया है–

संसारविषवृक्षस्य द्वे एव मधुरे फले।
काव्यामृतरसास्वादः सङ्गमः सज्जनै सह।।[1]

काव्य रूपी अमृत का रसास्वादन और सत्सङ्गति की दुर्लभता को वर्णित करने के साथ ही अन्यत्र भी कवित्व की दुर्लभता को वर्णित किया है–

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।[2]

परन्तु इस कवितत्व की प्राप्ति कैसे होती है? इस प्रश्न के समाधान स्वरूप अनेक आचार्यों व विद्वानों के कथन यहाँ उल्लेखनीय हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य मम्मट कहते हैं कि– "कवि में रहने वाली उसकी स्वाभाविक प्रतिभा 'शक्ति' लोक, शास्त्र तथा काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न 'निपुणता' और काव्य को जानने वाले गुरु की शिक्षा के अनुसार 'अभ्यास' ये तीनों मिलकर समष्टि रूप से उस काव्य के उद्भव के कारण हैं–

"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्यद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।।"[3]

कवि में नैसर्गिकी कवित्व प्रतिभा होती है, शास्त्रों का ज्ञान होता है तथा वह उसका अभ्यास व निरन्तर परिष्कार कर काव्य का सृजन करता है। आचार्य वामन का भी यही मत है– **'लोक विद्या प्रकीर्णञ्च काव्याङ्गानि।'**[4]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी भी काव्य रचना के अनुकूल शब्दार्थ की उपस्थिति के परिणाम स्वरूप जागरिता प्रतिभा को काव्य का कारण मानते हैं–

जागरिता प्रतिभा तस्य कारणम्।[5]

---

1. महाभारत, सुभाषितम्
2. अग्निपुराण, 336 अध्याय तथा साहित्यदर्पण, 1/6
3. काव्यप्रकाश, 1/3
4. वामन, अग्निपुराण, 1.3.1
5. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, 1.3.1

काव्यघटनानुकूल शब्दार्थोपस्थितिर्जागरणम्। जागरणे च हेतवो भवन्ति–गुरुपदेशः, लोकशास्त्राद्यवेक्षणम्, काव्याभ्यासः, काव्यगोष्ठ्यः, सहृदयानां सङ्गतिः, प्रसङ्गविशेषो घटनाविशेषो वा।[1]

आचार्य हर्षदेव माधव जी भी यही मानते हैं–

स्पन्दशीला प्रतिभा तस्य कारणम्।[2]

काव्यलेखने स्पन्दशीला प्रतिभा कारणं वर्तते। सर्वेऽपि रम्याणि वीक्ष्य, मधुरांश्च शब्दान् निशम्य हृदयेषु किमपि किमपि भावानाम् अनुभवन्त्येव। किन्तु भगवत्याश्चिदंशेन प्राप्तया प्रतिभया सविशेषरूपेण कविः स्पन्दितो भवति। कविः स्वहृदये स्पन्दनानि अनुभूय शब्दैस्तानि काव्यबद्धानि करोति।[3]

काव्यों व शास्त्र का अध्ययन शब्द मैत्री ही है। शब्द व्यवहार ज्ञान से कवि का शब्द निशित बाण की तरह प्रभावी होता है–

"किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्ने न घूर्णयति यच्छिरः।।"[4]

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अपने आधुनिक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' के नान्दीवाक् में कवियों को 'अभिराज' शब्द की संज्ञा देते हैं तथा अपने इस ग्रन्थ को उन अभिराजों का यश रूपी भूषण कहा है– "अभितो धरित्र्यां स्वर्गलोके च राजन्ते ये यशः कायाः कवयस्सहृदयाश्च तेऽभिराजाः। तेषां यश एव भूषणं यस्य तन्नूतनं काव्यशास्त्रम् 'अभिराजयशोभूषणम्'।"[5]

कविवर अभिराज जी भी कवित्व को प्रतिभा प्रसूत मानते हुए उसके समक्ष समस्त वैभवों को उपेक्षणीय बतलाते हैं–

नृपत्वमपि किम्मूल्यं कवित्वे प्रातिभे सति।
किमर्थं कमलां पश्येद्यस्य सिद्धा सरस्वती।।[6]

---

1. अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र, तृतीय अध्याय, पृ. 51
2. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, 1.12
3. वही, प्रथम अध्याय, 1.12 की वृत्ति, पृ. 40
4. वही, वही, पृ. 41
5. अभिराजयशोभूषणम्, नान्दीवाक्, पृ. 8
6. वही, परिचयोन्मेषः, काव्यप्रशंसाप्रकरणम्–18, पृ. 15

अर्थात् प्रतिभा प्रसूत कवित्व के अक्षत रहते राजपद भी भला किस मूल्य का? जिसकी सरस्वती सिद्ध है वह कवि भला कमला (लक्ष्मी) की ओर क्यों देखे? 'प्रतिभा' शब्द प्रति+भा+क+टाप् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है जो दर्शन, दृष्टि, प्रकाश, प्रभा, बुद्धि, दीप्ति, समझ, मेघा, प्रखर बुद्धि, विशद कल्पना, प्रज्ञा, इत्यादि अर्थों का द्योतक है।[1]

अभिनवगुप्तपाद के नाट्यगुरु, काव्यकौतुक के लेखक, आचार्य भट्टतौत 'प्रतिभा' को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "नित्य नवीन उन्मेषों से ओतप्रोत प्रतिभा को ही प्रज्ञा कहा जाता है। उसी प्रतिभा के अनुप्राणन से कवि जीवन्त वर्णना में निपुण हो जाता है–

प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।
तदनुप्राणनाज्जीवद्वर्णनानिपुणः कविः।।"[2]

आचार्य राजशेखर ने कवित्व शक्ति के स्वामी को शास्त्रकवि (शास्त्र का निर्माता), काव्यकवि (जो शास्त्र में काव्य की सृष्टि करता है) और उभयकवि (काव्य में शास्त्र की योजना करने वाला) के भेद से तीन प्रकार का बतलाया है।[3]

संगीतमकरन्द में कवि में अभीष्ट गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है–

शुचिर्दक्षः शान्तः सुनृजनविनतः सुततरः।
कलावेदी विद्वानतिमृदुपरः काव्यचतुरः।।
रसज्ञो दैवज्ञः सरसहृदयः सत्कुलभवः।
शुभाकारच्छन्दो गुणगणविवेकी स च कविः।।[4]

परन्तु कवि के विलक्षण व्यक्तित्व का विश्लेषण उसके काव्य के विश्लेषण उपरान्त ही सम्भव है। कवि का काव्य ही उसके व्यक्तित्व विश्लेषण की, उसके कवित्व बीज–समीक्षण की, उसके शास्त्रीय एवं लौकिक ज्ञान की तथा काव्य सृजन में उसकी दक्षता–परीक्षण की कसौटी है। कवि के कर्तृत्व में ही उसका वास्तविक व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। उसके काव्य में उसकी सृजनधर्मिता, उसकी कवित्व शक्ति, उसका ज्ञान, उसका अभ्यास आदि परिलक्षित होते हैं।

---

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 631
2. अभिराजयशोभूषणम्, काव्यहेतुप्रकरणम्, पृ. 35
3. आचार्य राजशेखर, काव्यमीमांसा, प्रथम अधिकरण, पंचम अध्याय
4. नारद, संगीतमकरन्द–साहित्यदर्पण, भूमिका भाग, पृ. 21–22

उपर्युक्त गुणों से परिपूर्ण कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के युग प्रवर्तक एवं शिखरारूढ कवि हैं। भारतीय ज्ञान–विज्ञान की प्रायः सभी शाखाओं से कविवर ने अपना परिचय प्रकट किया है। इससे उनके बहुमुखी पाण्डित्य का आभास होता है। वे अपनी काव्य प्रतिभा से, ज्ञान की अस्मिता से, सतत् काव्यसरिता में आलोड़न से सुधीजनों के समक्ष स्वतः सिद्ध हैं। उनके द्वारा सृजित व सृजित किया जा रहा विशाल वाङ्मय इसका प्रमाण है। उनकी संस्कृत, हिन्दी तथा भोजपुरी भाषाओं में समान कवित्वशक्ति का अभिनन्दन करते हुए ही प्रतापगढ़ जनपद के सहृदय–समाज ने उन्हें 'त्रिवेणी कवि' की उपाधि से समादृत किया[1] तथा समकालीन कवियों ने उन्हें 'आधुनिक जगत के कालिदास'[2] की संज्ञा प्रदान की।

कविवर मिश्र जी की कवित्व प्रतिभा के विषय में उनके समकालीन साहित्यकार एवं प्रखर समीक्षक आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी 'दृक्' में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखते हैं– "न्यायदर्शन की भाषा में कहें तो अभिराज राजेन्द्र मिश्र की प्रतिभा उनके विपुल काव्य–विश्व का पंचविध–हेत्वाभास–विनिर्मुक्त अन्वयव्यतिरेकी समवायी पंचरूपोपपन्न कारण है। इस काव्यविश्वहेतु में पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृतत्त्व अबाधितविषयत्व तथा असत्प्रतिपक्षत्व ये पाँचों रूप समुल्लसित हैं। समस्त बाह्य जगत् इसमें पक्ष है, कवि का अन्तःकरण सपक्ष है, मिथ्यात्वेन निश्चीयमान विचारधाराएँ, उपादान विपक्ष हैं। कवि की प्रतिभा स्वतः स्फूर्त होने से प्रमाणान्तर की अपेक्षा नहीं रखती, अतः अबाधितविषयत्व भी उसका सिद्ध है तथा असद्विषय में प्रवृत्ति न होने से असत्प्रतिपक्षत्व उसमें उपपन्न है।

इसके साथ ही प्रतिज्ञा, हेतु, उपनय, दृष्टान्त और निगमन–पंचावयव वाक्य की इन पाँचों शैलियों का भी समग्र राजेन्द्र साहित्य समन्वित निदर्शन बनकर महावाक्यमान कहा जा सकता है। उनकी हर रचना की सुस्पष्ट प्रतिश्रुति और उसके पीछे निश्चित दृष्टि है इस दृष्टि के पीछे अपना तर्क भी है। यह तर्क सम्यक् आपादित है। विविध साधर्म्यमूलक अलंकारों के प्रयोग इस आपादन को दृष्टांत और निगमन तक ले जाता है।"[3]

---

1. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 4
2. वही, वही, पृ. 111
3. दृक्, चतुर्थ अंक (जुलाई–दिसम्बर 2000 ई.), पृ. 6

कविवर मिश्र जी ने अपनी समस्त रचनाधर्मिता को सारस्वत परिस्फुरण मात्र मानते हुए 'मदीया काव्ययात्रा' (श्रुतिम्भरां की भूमिका) में स्वयं स्वीकार किया है कि– "वह 'लेखन के लिए लेखन' नहीं करते। यदि आत्मस्फूर्ति नहीं तो प्रायः महीनों नहीं लिखते। परन्तु भगवती शारदा की प्रेरणा हुई तो वृहत् कलेवर काव्य भी वह मात्र दो–चार दिनों में लिख देते हैं।"[1] 'मत्तवारणी' की गज़लों की तिथियाँ कविवर मिश्र के इस मन्तव्य को प्रमाणित करती है। कवि की दृढ़ आस्था है कि उसे साधन बनाकर वस्तुतः भगवती सरस्वती ही स्वयं को अभिव्यक्त करती है–

नाऽहं करोमि कवितामिह शारदैव
साऽऽत्मानमञ्जयति मत्कवनच्छलेन।
गन्धं तनोति जलजं न निजप्रभावै–
र्विस्फूर्जितं सकलमेव तदर्कलक्ष्म्याः।।[2]

उनके द्वारा विरचित विशाल वाङ्मय–सर्जना के आलोड़न से उनका विलक्षण एवं अद्भुत सारस्वत अध्यवसाय स्वतः स्पष्ट हो जाता है। चूँकि कविवर प्रणीत संस्कृत नवगीत साहित्य ही यहाँ समीक्षणीय है। अतः उनकी नवगीत रचनाओं के सन्दर्भों में उनकी विविध शास्त्रमयी प्रज्ञा का अवलोकन करने का 'उडुपेन सागरसंस्तीर्णवत्' यह मुझ शोधार्थी का लघु प्रयासमात्र है। कवि के शास्त्रीय व्यक्तित्व रूपी 'न्योग्रोध' की विविध ज्ञानमयी शाखाओं का विवेचन इस प्रकार है–

(क) शास्त्रीय ज्ञान

'शासु अनुशिष्टौ' धातु से ष्ट्रन् के योग से 'शास्त्र' शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है– 'अनुशासन या उपदेश करना'। शास्ति च त्रायते च। शिष्यते अनेन'[3] इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो शिक्षा अनुशासन प्रदान कर हमारी रक्षा करती है, मार्गदर्शन करती है, कभी–कभी उँगली पकड़कर हमें चलाती है, उसे शास्त्र कहा गया है। व्यापक अर्थों में

---

1. श्रुतिम्भरा, भूमिका भाग, पृ. 19
2. त्रिवेणीकवि अभिराजराजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 10
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 972

किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ समूह से सम्बन्धित वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो, शास्त्र कहलाता है। शास्त्रेण विहितः इति शास्त्रीय (शास्त्र+छ) से निष्पन्न 'शास्त्रीय' शब्द का अर्थ होता है–शास्त्र सम्बन्धी, 'शास्त्र' का, शास्त्र में बतलाये हुए ढंग या प्रकार का, शास्त्रानुमोदित, शास्त्रीय ज्ञान।[1]

काव्य में शास्त्रसङ्गति का निरूपण करते हुये आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अपने 'अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र' में लिखते हैं कि– "काव्य में तीन प्रकार से शास्त्र की सङ्गति होती है– समवेता, आरोपिता और बलात् आनीता। अभिकाव्यालङ्कारसूत्रोक्त चतुर्विध काव्यप्रकारों में से उत्तमोत्तम और उत्तम काव्यों में सहज रूप में शास्त्रसङ्गति होती है तथा मध्यम और अवर काव्यों में शास्त्रों का उन्मीलन सहज या अकृत्रिम नहीं होता है–

त्रिविधा शास्त्रसंक्रान्तिः। समवेता आरोपिता बलादानीता च। साङ्कर्यः, संसृष्टिः ईषत्स्पृष्टत्वमभावश्चेति चतस्रोऽवस्थाः शास्त्रावस्थानस्य।

इह तावत् काव्यानि चतुर्विधानि प्रोक्तानि। तत्रोत्तमोत्तमे उत्तमे च भवति शास्त्रसङ्गतिरित्यवोचाम्। मध्यमेऽवरे चापि तानि तानि शास्त्राणि भवन्ति विनिष्टानि। किन्तु न तत्र शास्त्रोन्मीलनं सहजमकृत्रिमं वा।"[2]

इसी क्रम में त्रिपाठी जी आगे लिखते हैं कि– "काव्य और शास्त्र के मध्य उपकार्योपकारकभाव सम्बन्ध मानना चाहिए। फिर भी शंसन करने वाला या शासन करने वाला ही शास्त्र कहलाता है। जहाँ शासन या शंसन प्रधान हो वहीं शास्त्र संज्ञा उचित है। किन्तु काव्य तो स्वतः ही प्रामाणिक है। उसके लिये किसी अन्य दर्शन या शास्त्र के प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। इस दृष्टि से काव्य स्वयं में शास्त्र ही है। काव्य में किसी भी शास्त्र के समावेश की आवश्यकता नहीं है। फिर भी कुछ कवि अधीती या विद्वान् होते हैं। उनका अध्ययन या शास्त्रानुशीलन यथावसर काव्यरचना में प्रतिफलित होता है। इसी तरह कुछ विद्वान् समान रूप से शास्त्रीय एवं कवित्व दोनों व्यक्तित्वों के धनी होते हैं।"[3]

---

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 972
2. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी, अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, 6.1–2, पृ. 86
3. वही, पृ. 89–91

हिन्दी भाषा के प्रसिद्ध समालोचक व प्रतिभा सम्पन्न लेखक गुलाबराय का मत है कि– "बहुत से कवि और लेखक ज्ञात और अज्ञात रूप से शास्त्रीय नियमों से प्रभावित होते हैं और कुछ अपने व्यक्तित्व की भी देन होती है। शास्त्रीय प्रभावों को समझने के लिए शास्त्रीय ज्ञान आवश्यक होता है। शास्त्रीय नियम भी कलाकारों की प्रतिभा प्रसूत विशेषताओं के सामान्यीकरण होते हैं।"[1]

काव्य की अभिनव विधा नवगीत में यद्यपि पौराणिक, ऐतिहासिक और शास्त्रीय दृष्टि को अतीतगामी या अतीत के प्रति सम्मोहन कहा जाता है परन्तु एक नवगीतकार इस दृष्टि को काव्य का उपकारक तत्त्व मानता है। उनकी दृष्टि में अतीत के संदर्भ उघाड़ना या स्मृति में जाना अतीत के प्रति सम्मोहन न होकर उस परम्परा में स्वयं खोजना है जो हमारे अन्दर अस्तित्वमान है। जो न तो औचित्यहीन है और न मृतप्राय अपितु वह हमें नवीन स्वरूप में सृजित कर सकने की क्षमता रखती है।

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी समकालीन संस्कृत साहित्य के प्रतिभासम्पन्न कवि, लेखक, साहित्यकार तथा नवगीतकार हैं तथा अपने अद्‌भुत कमनीय काव्यकौशल एवं श्रवणीय रचनाविधाओं के कारण सहृदय समाज में वे अत्यधिक समादणीय हैं। सतत् रूप से वाग्देवी की समर्चना में उद्यमशील रहने वाले शास्त्राधीति से परिपूत मनोमस्तिष्क वाले कविवर मिश्र जी का व्यक्तित्व विविध गुणों का मणिकाञ्चन संयोग है। उनके व्यक्तित्व में अगाध शास्त्रीय ज्ञान और अद्‌भुत एवं अलौकिक कवित्व समाहित है। सतत अध्यवसायजनित एवं परम्परा से प्राप्त उनका विविध शास्त्रपरक ज्ञान उनकी नवगीत रचनाओं को और भी प्रभावी बनाता है। उनके शास्त्रीय ज्ञान का नवगीतियों में इस तरह प्रयोग हुआ है कि सुधी पाठक मंत्रमुग्ध से हो जाते हैं। वे सोचने को मजबूर हो जाते हैं कि शास्त्रपरक सिद्धान्तों, मूल्यों व तत्त्वों का इतनी सहजता के साथ, कथ्य पर बिना बोझिल बने प्रयोग कैसे संभव है? प्राक्तन सिद्धान्त नूतन विषय व कथ्य को नये ढंग से तथा नये रूप में बड़ी ही सहजता व सरलता के साथ व्यक्त करते परिलक्षित होते हैं जो सीधे–सीधे पाठक के हृदय गह्वर में प्रवेश कर अपनी अभिव्यक्ति की सार्थकता सिद्ध कर देता है। कहीं भी बनावटीपन या कृत्रिमता दिखलाई नहीं पड़ती। किसी रचना अथवा

---

1. गुलाबराय, अध्ययन और आस्वाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 42

पंक्ति में ऐसा नहीं लगता कि कवि में सायास विद्वत्ता का प्रदर्शन किया है। ऐसा लगता है जैसे सब कुछ एक धारा में प्रवाहित चला जा रहा है। इससे पूर्व चतुर्थ अध्याय में कवि के काव्यशास्त्रीय पक्ष पर विस्तृत रूप से विचार किया जा चुका है तथा कवि के दार्शनिक एवं व्याकरणिक ज्ञान पर आगामी बिन्दुओं में दृष्टिपात किया जायेगा। अतः कविवर कृत नवगीत रचनाओं में उपनिबद्ध प्राचीन वाङ्मयपरक तथा इतर शास्त्रों के ज्ञान का समावलोकन यहाँ प्रकृत विषय है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के प्रयोगधर्मी कवि, लेखक एवं प्रखर समीक्षक डॉ. हर्षदेव माधव जी अपने एक लेख में अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के शास्त्रीय व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करते हुये लिखते हैं– "प्रो. मिश्र के शास्त्रीय चिन्तन का फलक अत्यन्त विस्तृत है। उन्होंने अपने शास्त्रीय चिन्तन में सर्वत्र कुछ न कुछ नया अर्थात् मौलिक योगदान जोड़ा है। प्राच्य विद्या (Indology) की शायद ही कोई ऐसी शाखा हो जिसमें राजेन्द्र मिश्र जी की गति न हो। किसी भी विद्वान् के विषय में इस प्रकार का यथार्थ सत्य आश्चर्य उत्पन्न करता है। एक ओर वे पर्यावरण की पारलौकिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हैं तो दूसरी ओर कौटिलीय अर्थशास्त्र में सैन्यविज्ञान पर। वेद से सम्बन्ध आलेखों का नयापन यह है कि आचार्य मिश्र ने समूचे काव्यशास्त्र को वेदमंत्रों की कुक्षि से निर्गत मानते हुए, मंत्रों में ही रस, अलंकार, रीति, वृत्ति, शब्दशक्ति की सोदाहरण व्याख्या की है। इसी प्रकार गतितत्त्व–विमर्श, काव्यवाङ्मय में व्यङ्ग्यार्थविलास, वृहत्तरभारतीय रामकथा, कालिदासवाङ्मय में वीररसपरिपाक, काव्यशास्त्रीय चिन्तन में चैतन्य, संस्कृत कविता में जीवनदर्शन, संस्कृत कविता में भारतीय स्वातन्त्र्यसमर–चित्रण आदि शोधनिबन्ध प्रो. मिश्र की सर्वतन्त्रस्वतन्त्र शास्त्रीय प्रतिभा के परिचायक है। प्रो. मिश्र के गहन शास्त्रीय–चिन्तन का दर्शन उनके विविध ग्रन्थों की भूमिकाओं में होता है। मदीया काव्ययात्रा, मदीया नाट्ययात्रा एवं मदीया कथायात्रा शीर्षक संस्कृत आलेखों में प्रो. मिश्र ने अपनी रचनाप्रक्रिया की अत्यन्त सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक एवं हृदयावर्जक समीक्षा की है।"[1]

---

1. आचार्य हर्षदेव माधव द्वारा विलिखित लेख, त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 519–524

कविवर द्वारा विरचित गज़लगीति 'धूमतां यामो वयम्' की पंक्तियों में कवि का वैदिक, दार्शनिक, पारलौकिक तथा भौगोलिक ज्ञान कूट–कूट कर भरा हुआ है। जिस यज्ञाग्नि में डाली गई हवि धूम तथा पुनः मेघ बनकर पुनः जलरूप होकर फिर से हविष्यान्न को प्रादुर्भूत करने वाली होती है ठीक उसी प्रकार हम सब जन्म–मरण के चक्र में फँसकर इस भूमण्डल पर विचरण करते रहते है। यह हमारे वैदिक वाङ्मय व उपनिषदों का सार रूप ज्ञान है–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्
धूमतो धमतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।[1]

'अहं ब्रह्मास्मि' इस उपनिषद् वाक्य को साकार करती हुई रचना–पंक्तियों में कविवर स्वयं को दर्पण के समान स्वच्छ व निर्मल मन वाला व सत्य का समर्थक बताते हुए अपनी कविता की उच्चता का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं–

आन्तरज्योतिषैव प्रकाशे
दर्पणोऽहं मृषा नैव भाषे।।
सृष्टिसत्यस्य दृष्टान्तभूतः
सम्मतोऽहं चिदाभासपूतः।
ब्रह्मरूपोऽस्मि पिण्डावकाशे
दर्पणोऽहं मृषा नैव भाषे।।
नो तमोभिस्समं मत्प्रबन्धः
नाऽपि धृतराष्ट्रपक्षेऽनुबन्धः
तत्त्वभूतोऽस्म्यहं चिद्विलासे
दर्पणोऽहं मृषा नैव भाषे।।[2]

कवि ने अपनी नवगीत रचनाओं में बड़ी ही सरलता व सहजता के साथ व्यङ्ग्य एवं अन्योक्ति प्रधान शैली में इतिहास, पुराण, रामायण, महाभारत, कालिदास, भास तथा

1. मधुपर्णी, प्रथमखण्ड, धूमतां यामो वयम्–1, पृ. 13
2. वही, 'दर्पणोऽहं मृषा नैव भाषे'–4, पृ. 16

अनेक पूर्ववर्ती आचार्यों व कवियों की रचनाओं में उपनिबद्ध घटनाओं, वृत्तान्तों व पात्रों का समावेश किया है, जो उनके वृहत् शास्त्रीय व्यक्तित्व का परिचायक है–

रावणश्छलयते सीतां भूत्वा दण्डी
पार्थं पृष्ठे कृत्वा युध्यते शिखण्डी।।
अतः परं किं भविता भूतले विचित्रम्
शिक्षन्ते हंसा यदि बकेभ्यश्चरित्रम्।।
प्रतिशाखं चन्दनेषु वेष्टिता भुजङ्गाः
मानवैः पवित्रीक्रियते सम्प्रति गङ्गा।।[1]

अन्यत्र भी....................................

स कालिदास इदानीं स भारविर्माघः
यमाश्रिता श्रितहंसा विरञ्चिहर्म्यनगरी।।
स राघवोऽद्य मतङ्गाश्रमे पदं धत्ते
तृणाय मोक्षसुखं मन्यते ततश्शबरी।।[2]

कविवर मिश्र स्वयं के भारतीय होने पर बेहद गौरवान्वित हैं। भारत देश को गुरुता उसके जीवन दर्शन तथा वैचारिक उच्चता से प्राप्त हुई है। ऐसे ही उन्नत विचार जो हमारे शास्त्रों व ग्रन्थों में उपनिबद्ध हैं तथा प्रत्येक भारतीय के मन–वचन व कर्म में प्रतिफलित हो रहे हैं–

कर्म कुर्वन्नेह याचेऽहं शतायुष्यम्
सूनृतां वाचं दधे काङ्क्षे न पारुष्यम्
श्रेयसां मार्गं वृणे
श्रद्दधे च तृणे तृणे
भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम्।।
बालुकातस्तैलमुद्धर्तुं न किं जाने!

---

1. मधुपर्णी, प्रथम खण्ड, अतः परं किं भविता–14, पृ.–30
2. वही, सुन्दरी न दी–17, पृ. 30

क्रुद्धसिंहीमप्यहं दोग्धुं न किं जाने!
नन्वमृतपुत्रोऽस्म्यहम्
मृत्युभयमुक्तोऽस्म्यहम्
भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम्।।[1]

काव्य, नाट्य, कथा, प्रबन्ध, मुक्तक, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, महाकाव्य सब कुछ मानो एकत्र होकर कवि की गीतियों का यशोगान कर रहे हों। पाठक मंत्रमुग्ध सा होकर पढ़ते–पढ़ते सभी शास्त्रों में गोता लगाने लग जाता है। किन्तु इससे भी अधिक अचम्भित करने वाला तथ्य तो यह है कि प्रस्तुति का माध्यम व बिम्ब पुरातन होने के बावजूद नूतन कथ्य को बड़े ही सटीक ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। समकालीन समाज व विश्व में व्याप्त अशान्ति, भय, उपद्रव, भ्रष्टाचार, अन्याय–स्त्रीमानहनन इत्यादि विषम स्थितियों का चित्राङ्कन कविवर पुरातन बिम्ब व प्रतीकों के माध्यम से बड़ी ही रोचकता के साथ कर रहे हैं–

खद्यौतैः सम्भुक्ता गर्भवती रजनी
विभावसुं सूते प्रतिभाति देवजननी
वर्षवरो विक्रमिणं त्रायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्।।

भ्रष्टो विद्रवति गजः कुक्कुररवभीतः
हन्यते शुनश्शेपः पुत्रार्थं क्रीतः
कोऽपि नैव विश्वामित्रायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्।।[2]

नारी–जीवन के सन्त्रासों, पीड़ाओं व वेदनाओं का चित्राङ्कन करती कवि की रचना 'वसन्तसेना' में पौराणिक व ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से यह प्रतिपादिक किया है कि नारी–शोषण की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है। हमेशा उसे भोग्या समझा गया है। उसे जो सम्मान मिलना चाहिए था वह कभी भी नहीं मिला। चाहे वह प्राचीन नारी हो अथवा अर्वाचीन सदैव उसे साधनभूत इस्तेमाल किया गया है–

---
1. मधुपर्णी, गीतयः, भारतीयोऽहम्–28, पृ. 45
2. वही, संजातं निखिलं पर्याकुलम्–31, पृ. 51

अहमस्मि वसन्तसेना
रम्भोज्जयिनी–वेशवाटस्य
मेनका विश्वामित्राणां
घृताची प्रमतीनां
प्रम्लोचा चापि कण्डूनां
मम भ्रूभङ्गे विलसत्यकुण्ठः कन्दर्पः
बिम्बोके वर्षा
कुट्टमिते शरत्
किलकिञ्चिते निदाघः
सर्वर्तुमयी विलासवनिकाऽस्मि
वसन्तसेनाऽहमस्मि!
अभीष्टाऽनभीष्टसङ्करे
वराकी नारी दुर्व्यवतिष्ठते
रामें रघुनन्दनमियेष वैदेही
ताञ्च रतिलम्पटो रावणः
द्वारकाधीशमियेष रुक्मिणी
ताञ्च निर्गुणश्शिशुपालः।
हन्त, सनातनीयं परिपाटी
दुर्नियतेः पुरन्ध्रीणाम्।।[1]

जीवन में पौरुष व श्रम की महत्ता, सदाचरण की शिक्षा तथा परस्पर बन्धुत्व की भावना को प्रेरित करने वाले औपनिषदीय ज्ञान 'चरैवेति चरैवेति' को चरितार्थ करती कवि की निम्न पंक्तियाँ यहाँ उद्धरणीय हैं–

गौरवं तदेव येन दुर्गणोऽपि जीयते
मानवेन मानवाय बन्धुताऽनुभूयते!!

---

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्ड, वसन्तसेना–58, पृ. 106

यश्चरत्यनारतं स एव विन्दते फलम्
यश्च वीतपौरुषो न तस्य जीवनं कलम्
योऽनुयाति साहसं स एव साधु गीयते
यश्च कुब्जकैतवं स निन्दया विलीयते!![1]

कविवर विरचित लोकगीतविधा मूलक गीतियों, मृद्वीका में ऋतुश्रीः शीर्षकाश्रित रचनाओं तथा श्रुतिम्भरा में 'निसर्गध्वनिः' शीर्षक खण्ड में उपनिबद्ध रचनाओं में वर्णित भौगोलिक जानकारी, आर्ष–ज्ञान, विभिन्न ऋतुओं में होने वाले प्राकृतिक बदलावों तथा उन बदलावों के कारण प्राणियों की चित्तवृत्ति का विवेचन इत्यादि से कविवर मिश्र जी के ज्ञानवैविध्य का सहजानुमान लगाया जा सकता है। गंगा–अवतरण का वर्णन यहाँ स्थालीपुलकन्यायवत् अवलोकनीय है–

भागीरथी सरति गोमुखतो बदरीतोऽलकनन्दा
मन्दाकिनी मिलती पथि मध्ये चञ्चलसलिलतरङ्गा
गङ्गा विलसति भुवि शरणाय
धरणिसुखमातनुते!!
तीर्थपतौ भगिनीमालिङ्गति कृष्णमयीं रविकन्याम्
श्वेतनीलजलसङ्गमसुषमा दृष्टिं रमयति धन्याम्
गङ्गा विलसति भुवि शरणाय
मिलनसुखमातनुते!!
नारायणपदपङ्कजमाध्वी ब्रह्मकमण्डलुजाता
शोकमोहकल्मषतप्तानां स्नेहमयी सा माता
गङ्गा विलसति भुवि शरणाय
जननसुखमातनुते!![2]

---

1. वाग्वधूटी, गौरवं तदेव–8
2. श्रुतिम्भरा, निसर्गध्वनि, गंगा विलसति, पृ. 87–87

'मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः' श्रीमद्भगवद्गीता की इस शिक्षा को अपनी रचना का विषय बनाते हुए कविवर मिश्र जी मानव–मात्र को परस्पर वैरभाव त्यागकर जीवन में माधुर्यपूर्ण व्यवहार अपनाने की प्रेरणा देते हैं तथा कण–कण में, घट–घट में वह परमेश्वर विराजमान है, ऐसा संदेश देते हैं–

सङ्गममये हि लोके सायुज्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!!
मन एव बन्धहेतुः
मन एव मोक्षहेतुः
अत एव मानसेऽस्मिन् मासृण्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्
केचिद् वदन्ति नीतिम्
केचिद् वदन्ति भीतिम्
निखिले भवे परं हि तस्यैव दर्शनं स्यात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!![1]

कविवर मिश्र जी के शास्त्रीय ज्ञान के विविध गवाक्षों को उद्घाटित करती तथा देववाणी संस्कृत की महिमा का बखान करती 'जयति विबुधवाणी' नामक गीति की पंक्तियाँ ही यहाँ पर्याप्त हैं क्योंकि प्रत्येक रचना का समाहार करना यहाँ समुचित प्रतीत नहीं होता है–

जयति विबुधवाणी ओम् जयति विबुधवाणी
नवरसरुचिरपदाढ्या जनजनकल्याणी।।
वेदपुराणशिवागमषड्दर्शनमहिता
गद्यपद्यकाव्योभयविविधभेदसहिता।।
सङ्गच्छध्वमितीव प्रथितसांमनस्यम्
ऋग्वेदे रोदस्याः शतसहस्रदृश्यम्।।

---

1. अभिराजगीता, मंगलगीतम्, मांगल्यमेव भूयात्–2, पृ. 3

यदुपनिषत्सु ख्यातं जीवजगद्वृत्तम्
रज्जौ सर्वभ्रम इव मायाऽवृतचित्तम्।।
क्रौञ्चवधाच्छ्लोकत्वं याता कवेर्व्यथा
विश्वदुरतिहन्त्री सा रामायणी कथा।।
धर्मसंस्थापनहेतोर्यदभूद् गृहयुद्धम्
महाभारते विलसति तच्चरितं शुद्धम्।।
ऋषिमुनिभिः परमेश्वरकृपया यदवाप्तम्
तपोऽनुभवपरिपूतं तदिह समाख्यातम्।।[1]

निष्कर्षतः यहाँ कवि की रचना 'अहमस्मि कविः' की कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं जिनमें कविवर मिश्र जी लिखते हैं कि कविहृदय के लिए कोई शास्त्र अछूता नहीं है। वह क्रान्तदर्शी, शब्दब्रह्म का उपासक तथा साक्षात् माँ शारदा का वरदपुत्र है–

अहमस्मि कविः
शारदात्मजः
क्रान्तप्रतिभो नवरसरुचिरः
शब्दब्रह्मोपासनारतः
अभिरुचितसृष्टिवेधाश्चतुरः
स्वाधीनोपायोऽपराजितः
परिभूश्च स्वयम्भूः स्वयम्प्रभुः
कविरस्मि जगत्त्रयविलक्षणः।।[2]

(ख) दार्शनिक ज्ञान

प्रेक्षणार्थक दृश् धातु से भाव अथवा करण अथवा अधिकरण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करने से निष्पन्न 'दर्शन' शब्द देखना, जानना, दृष्टि, विवेक, निर्णय, धार्मिक ज्ञान, दर्शनशास्त्र इत्यादि अर्थों का द्योतक है[3] तथा 'दर्शन+ठञ्' से निष्पन्न 'दार्शनिक' शब्द

---

1. अभिराजगीजा, सुरभारतीगीतम्, जयति विबुधवाणी–32, पृ. 52
2. मधुपर्णी, तृतीयखण्ड, अहमस्मि कविः–64, पृ. 133
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ. 439

'दर्शनशास्त्रों से परिचित व्यक्ति' के लिये प्रयुक्त होता है।[1] सामान्यतः दर्शनशास्त्र वह ज्ञान है जो परम् सत्य और प्रकृति के सिद्धान्तों और उनके कारणों की विवेचना करता है। दर्शन यथार्थ की परख के लिये एक दृष्टिकोण है। दार्शनिक ज्ञान मूलतः जीवन की अर्थवत्ता की खोज का पर्याय है। वस्तुतः दर्शनशास्त्र स्वत्व अर्थात् प्रकृति तथा समाज और मानव चिन्तन या संज्ञान की प्रक्रिया के सामान्य नियमों का विज्ञान है। दर्शनशास्त्र सामाजिक चेतना के रूपों में से एक है। संसार के भिन्न–भिन्न व्यक्तियों ने समय–समय पर अपने–अपने अनुभवों एवं परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार के जीवन–दर्शन को अपनाया है। इसलिए प्रत्येक समाज की जीव–जगत्, आत्मा–परमात्मा, सुख–दुःख, जीवन–मृत्यु आदि के सम्बन्ध में एक विशिष्ट विचारधारा अथवा दृष्टि होती है। इन्हीं धारणाओं अथवा दृष्टिकोणों को उस समाज विशेष का दर्शन कहा जाता है। यह दर्शन उस परिवेशगत काव्य में भी परिलक्षित होता है क्योंकि काव्य और दर्शन के मध्यम गहरा सम्बन्ध है। काव्य में जो दर्शन प्रस्तुत होता है, वह शास्त्रीय पद्धति से पूर्णतः पृथक् होता है। दर्शन की कुछ स्थापनाएँ कवि अपनी मूल भावधारा में अनायास ग्रहण कर लेता है। वह कवि के आभ्यन्तर संवेदनात्मक ज्ञान का अंग बन जाता है। इसके अलावा यह भी होता है कि जीवन की समस्याओं का काव्यात्मक चित्रण करते हुए लेखक अनायास ही उनके निराकरण का मार्ग बता देता है। यह निराकरण का मार्ग ही उसका 'दर्शन' कहा जा सकता है। यह दर्शन विभिन्न प्रकार से काव्य में प्रकट होता है। कभी–कभी कवि अपनी प्रवृत्ति विशेष की औचित्यता की स्थापना के लिए दर्शन का सहारा लेता है, तो कभी कोई दर्शन विश्व–स्वप्न बनकर उसकी अनुभूति का अंग बनता है। इस प्रकार एक काव्यकृति में दर्शन एक विशेष बात की पूर्ति के लिए, दूसरा केवल औचित्य स्थापना के लिए तथा तीसरा किसी अन्य रूप में ही प्रकट होता है।

क्या नवरसरुचिरा, लोकोत्तर कविनिर्मिति (काव्य) में भी वही द्वादशशाखीय 'जीवनदर्शन' अभिव्यक्त होता है? क्या कवि अपनी रचनाओं में स्वकीय श्रद्धानुसार अथवा निरपेक्ष भाव से विविध दर्शनों को प्रस्तुत करता है? क्या काव्य में कवि का व्यक्तिगत जीवन–दर्शन भी किसी अंश तक अनुमित किया जा सकता है अथवा नहीं? क्या काव्य में अभिव्यक्त जीवन–दर्शन कवि के व्यक्तिगत जीवन–दर्शन से मेल खाता है? इन स्वप्रस्तुत समस्त जिज्ञासाओं को शान्त करते हुए कविवर मिश्र जी दृक् में प्रकाशित अपने एक लेख

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ. 444

'अर्वाचीन संस्कृत–कविता में जीवन–दर्शन' में लिखते हैं– "वस्तुतः कला एवं कलाकार के ही समान काव्य एवं काव्यकार (कवि) के बीच कोई तादात्म्य होना चाहिये।................ युगपरिवर्तन व कवित्व के नूतन मानदण्डों का उपस्थापन होने पर भी अन्तस्सलिता सरस्वती की नाईं कोई सार्वकालिकी चिरन्तन भारतीय परम्परा, अर्वाचीन संस्कृत–कविता के अन्तराल में भी स्वच्छन्दगति से बह रही है। वह शाश्वत कूटस्थ परम्परा ही जीवन–दर्शन के विविध पक्षों को पुष्ट कर रही है। उसमें न कोई अपमिश्रण है, न वैजात्य है अथवा न ही कोई संकीर्णता। वह परम्परा लोकधर्मी हो अथवा नाट्यधर्मी, सम्यक् रूप से भारतीय ही प्रतीत होती है। उस परम्परा को ही मैं आज की संस्कृत कविता का परम्परीण जीवन–दर्शन मानता हूँ।"[1]

अर्वाचीन काल के शिखरारूढ एवं युगप्रवर्तक कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी सर्वशास्त्र पारंगत विद्वान् हैं। साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन साहित्य की कोई भी शाखा हो सभी में उनकी समान गति है। ज्ञान के नाना रंगों के फूल उनकी रचनाओं में स्वागतातुर दिखाई पड़ते हैं। आस्तिक–नास्तिक, प्राचीन–अर्वाचीन आदि समस्त दार्शनिक सिद्धान्तों का सहज निरूपण कविवर की नवगीत रचनाओं में मिलता है। साथ ही समाज के नाना स्वरूपों व तत्त्वों, लोक–जीवन, समकालीन घटनाओं व समस्याओं के विषय में कवि की दृष्टि अर्थात् देखने का नजरिया भी यहाँ अवलोकनीय है। कवि की अनुभूति तथा घटनाओं व स्थितियों को देखने का नजरिया भी उनके दार्शनिक ज्ञान के परिक्षेत्र में ही आता है। अतः यहाँ दार्शनिक ज्ञान के प्रकोष्ठ में दर्शन–शास्त्रीय सिद्धान्तों के साथ–साथ कवि के जीवन दर्शन को भी विवेचित किया गया है।

'धूमतां यामो वयम्' नामक रचना के माध्यम से कविवर मिश्र जी हमें भारतीय दर्शन की उस अवधारणा को समझाया है जो सृष्टि को एक वृत्त के रूप में देखती है। यह जीवन–यात्रा हवि से धूम बनने की और धूम से पुनः हवि बनने की है; बिन्दु से सिन्धु बनने और सिन्धु से पुनः बिन्दु बनने की है। इस गज़लगीति के माध्यम से कवि ने ऋत चक्र की अवधारणा, पुनर्जन्म व कर्मवाद के सिद्धान्त को बहुत सरल भाषा में निरूपित कर दिया है। जिस प्रकार हवि धूम का रूप लेकर तथा मेघ रूप में पुनः वर्षा करके हविष्यान्न

---

1. दृक्, षष्ठ अंक (जुलाई–दिसम्बर, 2001 ई.), पृ. 01–04

का रूप ले लेती है ठीक उसी भाँति व्यक्ति अपने जीवन में नानाविध कर्म करता हुआ अन्ततः परमतत्त्व में विलीन हो जाता है तथा कर्मफलानुसार पुनः सृष्टि प्रक्रिया का भाग बन जाता है। इसी सिद्धान्त को प्रतिपादित ये पंक्तियाँ यहाँ उद्धरणीय हैं–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्।
धूमतो धनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तुलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।
सञ्चिनोतु सुखं स्वकीयं, बन्धुनिवहार्थं भवान्
वन्यतृणकल्पाभिराजं साधु निवपामो वयम्।।[1]

कविवर के प्रयोगों में भारतीय दर्शन की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। 'वृथा जल्पन्ति' शीर्षकाधारित रचना में परिलक्षित कवि की दार्शनिक प्रतिभा से सहृदय जन मन्त्र–मुग्ध हो जाते हैं–

वृथा जल्पन्ति पण्डितमानिनो जगतां नियन्तारः
अहं पुनरात्मन्थनयैव वचसांसङ्गतिं जाने।।
भवेद् वेदान्तिनां भ्रान्तिः क्वचिद्रज्जौ भुजङ्गानाम्
त्वदीये बाहुपाशे भ्रान्तिकोटिनिराकृतिं जाने।।
प्रमाकरणं प्रमाणं मन्वते यदि तार्किकप्रवराः
प्रिये! सर्वप्रमाणानां ध्रुवमाविष्कृतिं जाने।।[2]

कवि की ईश्वर में गहरी आस्था है तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास है जो उनकी निम्न पंक्तियों में दृष्टिगोचर होता है–

वैशद्यमाप्तु ज्वलदनलपिण्डैर्मया संक्रीडितम्
सोढं, चिरं सोढं, धृतं संघर्षनिवहैर्जीवितम्।।
मुञ्जो मयाऽपि विलोकितः कश्चित्पुनर्निजजीवने

---

1. मधुपर्णी, प्रथमखण्डः, धूमतां यामो वयम्, पृ. 13
2. वही, वृथा जल्पन्ति, पृ. 20

न मृतस्तथापि हरीच्छया धाराऽऽश्रितं सुखमञ्चितम्।।

सकृदुत्पतिष्यति, भूतलं प्रविहाय विहगोऽयं यदा
अवशिष्टपंक्तिसमुच्चयैर्भविताऽभिराजमधुस्मृतम्।।[1]

समाज में योग्य व्यक्तियों का अनादर और अयोग्य जनों का सम्मान किया जाता है। सामाजिक विसंगति से उत्पन्न व्यथा को दार्शनिक अभिव्यक्ति देते हुए कविवर लिखते हैं–

ये हि वैशेषिकास्ते कणादा युगे
ये जडास्ते कुबेराः क्व यामो वयम्?[2]

कवि का पुनर्जन्म, दैवत्व, भाग्यवाद, पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म, मरण, आत्मा–परमात्मा, आत्मा की अमरता, मोक्ष इत्यादि दार्शनिक सिद्धान्तों में गहरी आस्था है। यूँ कहें कि इन सिद्धान्तों को वे जीते हैं। अतः बड़ी सहजता के साथ अनायास ही ये उनकी रचना–पंक्तियों के अंग बन जाते हैं–

भवेदिह मर्त्यलोके जन्म मम भूयोऽपि भूयोऽपि शतवारम्
परं स्याद् भारते।
भवेदिह मृत्तिकायां विलुण्ठनं भूयोऽपि शतवारम्
परं स्याद् भारते।।[3]
यदुपनिषत्सु ख्यातं जीवजगद्वृत्तम्
रज्जौ सर्वभ्रम इव मायाऽवृतचित्तम्।।[4]
रज्जुभूतसंसृतौ फणिभ्रमे समुत्थिते
क्वास्ति संशयप्रणाशो देवभाषया विना?[5]

सनातन वैदिक धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म को अपनाने वाले राजा हर्षवर्धन के प्रति लिखी गयी रचना 'पत्रं श्रीबाणभट्टस्य' में भारतीय धर्म और दर्शन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'** को निरूपित करती हुई कविवर मिश्र जी की निम्न पंक्तियाँ यहाँ उद्धरणीय हैं–

---

1. मधुपर्णी, प्रथमखण्डः, सोढं, चिरं सोढम्, पृ. 4
2. वही, वही, क्व यामो वयम्, पृ. 31
3. मधुपर्णी, द्वितीय खण्डः, भवेदिह मर्त्यलोके जन्म, पृ. 43
4. वही, वही, जयति विबुधवाणी/4, पृ. 74
5. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः, देवभाषया विना/4, पृ. 76

राजन् हर्षदेव!
निर्वाणं न वर्तते दायित्वनिवृत्तौ
निर्वाणं वर्तते दायित्वसम्पादने
कर्ममयीमं सृष्टिः
देवा अपि नितरां कर्मरताः
सूर्यस्तपति प्रतिक्षणं
अग्निर्ज्वलत्यहोरात्रं
प्रवहति पवनस्सततं
सर्वात्मा त्रिगुणात्मा कर्ममयो हरिः
स्वयमेव
क्षणमप्यकर्मकृन्न तिष्ठति।।[1]

कवि की 'मृतघट्टोऽहम्' और 'आकाशोऽहम्' जैसे रचनाएँ भारतीय औपनिषदिक चिन्तन को साकार करती हुई दिखाई देती है। मनुष्य जीवन में कितनी ही गगनचुम्बी इमारतें, अट्टालिकाएँ, गाड़ी–घोड़े, मकान, दुकान, व्यवसाय इत्यादि सुख–सुविधाएँ जुटाये, कितनी भी पद–प्रतिष्ठा प्राप्त कर ले, कितने भी बड़े कुल–खान–दान का मालिक बने परन्तु अन्त समय में कोई भी उसके काम नहीं आता। उसकी सांसारिक यात्रा का अन्तिम साक्षी बनता है–यही मरघट, जो उसकी पञ्चभूतात्मक देह को पञ्चभूतों में विलीन कर महाकाल का सानिध्य प्रदान करता है–

मृतघट्टोऽहं, मृतघट्टोऽहं
जीवतां जनानां घृणास्पदं
प्रेतानां वंशीवाटोऽहम्
मृतघट्टोऽहम्।।
सङ्गं जह्यान्ननु जगदखिलं
प्रियजनाः समस्ता विमुखाः स्युः
स्वागतं भणति बाहू प्रसार्य

1. मधुपर्णी, तृतीयखण्डः, (मुक्तछन्दांसि), पत्रं श्रीबाणभट्टस्य/6, पृ. 116

यस्तदपि स एव सुभट्टोऽहम्
मृतघट्टोऽहम्।।
मादृशः किन्तु निःस्वार्थबन्धु–
रथ मादृश एव साम्यवादी
कुत्रापि न कश्चिन्मिलिष्यति
वादी भवतादवा प्रतिवादी।
लभ्यो यः प्रतिपदमनावृतोऽ
सौ कालगृहस्य कपट्टोऽहम्।
मृतघट्टोऽहम्।।[1]

हमारे वैदिक वाङ्मय में त्रिकालद्रष्टा ऋषियों व मन्त्रद्रष्टाओं ने जिस आकाश तत्त्व की कल्पना की है, वह अनन्त स्वरूप है तथा समस्त चराचर जगत को अपने में समेटे हुए है तथा घट–घटवासी होने के कारण हर घटना का साक्षी है। इसके अलावा इसमें निहित सत्य स्वरूप भास्वर भास्कर स्वयं कवि की आत्मा में नित्य देदीप्यमान होकर उसके हृदयारविन्द की ज्ञानरूपी पंखुड़ियों को विकसित कर रहा है–

आकाशोऽहम्
श्रृणुत श्रृणुत बन्धवो वाचिकम्
आकाशोऽहम्
अपरिमितोऽनन्तो निस्सीमः
दिक्परिवृतोऽहमालक्ष्ये यदि
परं न सत्यम्
....
नाऽहं परिवृत्तः
नाऽहमवसितः
नाऽपि समाप्तः
आकाशोऽहं निरवधिविपुलः

---
1. मधुपर्णी, तृतीयखण्ड, मृतघट्टोऽहम्, पृ. 92–97

कूटस्थश्चाद्यन्त–विरहितः

आकाशोऽहम्।।

मय्याकाशे

नित्यभास्वरो भाति भास्करो

द्रुतं विधुन्वन्

मोहतमिस्त्रां

ननु विभासयन्

ज्ञानिहृन्दि पाथोजनिभानि

ललितललाममयूखैः

स्वीयैः।।[1]

इस जगत की नियन्ता ईश्वर स्वरूप पराशक्ति है जो प्रत्येक जीव में आत्मस्वरूप होकर विद्यमान है। विभिन्न मतावलम्बी इसी परम तत्त्व को भिन्न–भिन्न स्वरूप व नामों से जानते हैं। कविवर मिश्र जी की उस जगत–नियन्ता में दृढ़ आस्था है। उस परमात्मा के समक्ष पूर्ण समर्पण की भावना व्यक्त करती कवि की रचना 'त्वामेकमेव जाने' की कुछ पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

भवसागरं न जाने भवतारणं न जाने

त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!!

तरणी न वर्तते मे धरणी न वर्तते मे

शरणं न विद्यते मे मरणं न विद्यते मे

आत्मानमेव सर्वं भवतोऽपरं न जाने

त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!!

कुत आगतोऽस्मि भूमौ कस्मात् कदा किमर्थम्

विकलेन्द्रिये शरीरे कियदस्त्यहो मदर्थम्

समधीत्य सर्वशास्त्रं न तदेव साधु जाने

त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!!

---

1. मधुपर्णी, आकाशोऽहम्, पृ. 137–138

ब्रह्माऽसि सृष्टिमूलं वैशेषिके विशेषः
न्याये त्वमीश्वरोऽसौ सांख्येऽप्यसङ्गवेषः
तदपि त्वदीयरूपं मुरलीधरं विजाने
त्वामेकमेव जाने त्वामेकमेव जाने!![1]

कविवर मिश्र जी सनातन वैदिक धर्म की परम्परा के वाहक हैं तथा तद्गत मूल्यों के अनुसार ही उनका जीवन–चरित है। आध्यात्मिक, धर्म और दर्शन उनके आचरण से, उनकी कृतियों से प्रतिबिम्बित होता है। अतः कवि का चिन्तन भी वेदान्त के सिद्धान्त को साकार करता दिखलाई पड़ता है–

क्व नु वसतिः? हरिभवने
क्व नु विरतिः? भुजगजने!!
क्व नु शरणम्? शम्भुमतौ
क्व नु मरणम्? तीर्थपतौ!!
क्व विकारः? वपुषि सखे
क्व विचारः? मनसि सखे!!
क्व नु शान्तिः? सदुपकृतौ
क्व नु कान्तिः? हृद्वधृतौ!!
क्व नमस्या? शमितरवे
क्व तपस्या? भ्रमितभवे!!
क्व नु शोध्यम्? नवलगृहे
क्व नु बोध्यम्? कटुकलहे!!
क्व नु कवनम्? शुभचरिते
क्व नु हवनम्? शिखिनि तते!![2]

समाज में फैली हुई विसंगतियों व विकृतियों का न्याय की भाषा में व्यङ्ग्यात्मक रूप में किये गये चित्रण से कवि की दार्शनिक दृष्टि सुस्पष्ट हो जाती है। 'यत्र–यत्र धूमः

---

1. वाग्वधूटी, त्वमेकमेव जाने–22
2. वही, क्व नु–38

तत्र–तत्राऽग्निः' इस न्याय के विपरीत समाज में सर्वत्र अग्नि के बिना भी धूम ही धूम परिलक्षित होता है। पदार्थ ज्ञान के लिए षड् सन्निकर्ष का होना आवश्यक है किन्तु संसद में एक भी नजर नहीं आता है। जिस बात को जनता प्रशासन तक पहुँचाने के लिए तर्क–वितर्क–परामर्श कर थक जाती है, उसकी भावना को राजनेता लोग सरलता से समझ लेते हैं–

प्राणसंहरणक्षणे समुपस्थिते
शास्त्रमेव बुभुक्षितैर्नहि भुज्यते!!
अग्न्यभावे कोऽन्वयो वद सम्भवेत्
धूम एव समन्ततः परिलक्ष्यते!!
सन्निकर्षो दर्शने षोढा मतः
एकधापि न किन्तु संसदि विद्यते!!
यो न मञ्चाक्रोशमवगन्तुं क्षमः
नेतृभिस्सरलं विधाय स शिक्ष्यते!![1]

कविवर मिश्र जी की भारतीय धर्म व दर्शन में अगाध श्रद्धा है। वे भारतीय दार्शनिक चिन्तन व वैश्विक दृष्टि के आगे नतमस्तक हैं। इससे अधिक प्रसन्नता कवि को इस बात की है कि भारतीय अध्यात्म व दार्शनिक चिन्तन केवल किताबी ज्ञान नहीं है अपितु प्रत्येक भारतीय के आचरण में प्रवाहित हो रहा है। इसी सोच के कारण भारतभूमि को विश्वगुरुत्व की पदवी प्राप्त हुई–

यस्य हृदयं धर्मनिलयं दर्शनं दृष्टिः
विश्वबन्धुत्वं निसर्गश्चिन्मयी सृष्टिः
सङ्गतं वन्दे।
भारतं वन्दे।।[2]

अन्यत्र भी............

2. मृद्वीका, राष्ट्रश्रीः, सप्तचत्वारिंशतमी गीतिः, पृ. 69
2. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः–भारतं वन्दे, पृ. 49

महीसीयं भारतभूमिर्यत्र वयं सञ्जाताः।
यत्र जना बिभ्यति दुरितेभ्यः
पापवञ्चनाछलनिवहेभ्यः
गृहे–गृहे पूज्यते परेशः कश्चिज्जगद्विधाता।
यत्र वयं सञ्जाताः।।
कोऽपि वर्तते शिवाऽनुरागी
कोऽपि वैष्णवो गणपतिरागी
शक्तिं ध्यायति कोऽपि पराम्बां तद्गुणनिचयोद्गाता।
यत्र वयं सञ्जाताः।।
यद्यपि निखिलं विपरिवर्तितम्
त्रेताद्वापरकृतयुगचरितम्
कलौ तथापि केचिदवशिष्टाः प्राक्तनगुणसंघाताः।
यत्र वयं सञ्जाताः।।[1]

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः', 'समत्वं योग उच्यते' इत्यादि वचनों की प्रतिपादक एवं वेदान्त की निष्ठ्यूत स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता की दार्शनिक दृष्टि एवं जीवन–दर्शन को प्रस्तुत करती कवि की गीतरचना 'माङ्गल्यमेव भूयात्' यहाँ समुल्लेखनीय है–

मधुरं विचिन्तयामो मधुरं हि मानसे स्यात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!!
सङ्गमये हि लोके सायुज्यमेव भूयात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!!
मन एव बन्धहेतुः
मन एव मोक्षहेतुः
निखिले भवे परं हि तस्यैव दर्शनं स्यात्
मधुरे तु जीवनेऽस्मिन् माधुर्यमेव भूयात्!![2]

1. श्रुतिम्भरा, राष्ट्रध्वनिः–महीसीयं भारतभूमिः, पृ. 69–70
2. अभिराजगीता, मंगलगीतम्, मांगल्यमेव भूयात्–1, पृ. 3

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी की भारतीय धर्म और दर्शन में गहरी आस्था व अगाध श्रद्धा है। उनके नवगीतों में निहित उनका दार्शनिक चिन्तन झर–झर कर सामने आ जाता है। इस सम्बन्ध में आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी लिखते हैं कि– "मिश्र जी की कविताओं व गीतियों में जीवनदर्शन, समाजदर्शन, व्यक्तिदर्शन, अंतर्दर्शन तथा बहिर्दर्शन की पंचपुटी प्रकट होती है।"[1]

(ग) व्यावहारिक–ज्ञान

"भासा नाम च प्रतिभा महती सर्वगर्भिणी।
स्वस्वभावशिवैकात्मदेशिकात्मकचिन्मयी।।
यस्यां हि भित्तिभूतायां मातृमेयात्मकं जगत्।
प्रतिबिम्बतया भाति नगरादिव दर्पणे।"[2]

अभिनवगुप्त के इस मतानुसार कविप्रतिभा भित्तिस्वरूप है, जिसमें दर्पण की तरह सकल संसार प्रतिबिम्बित होता है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी अपने अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्र में 'तच्च साहित्ये प्रतिफलति'[3] सूत्र की व्याख्या में इस मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि– "आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनों लोकों का सकल समुल्लास ही जीवन है और वह जीवन साहित्य में प्रतिफलित होता है अर्थात् साहित्य इन त्रिविध लोकों का दर्पण है तथा इस त्रिविध लोक का अनुकीर्तन ही काव्य है।"

आचार्य मम्मट भी अपने काव्य–प्रयोजन का निरूपण करते हुए लिखते हैं कि काव्य से व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा मिलती है साथ ही कहा है कि यह शिक्षा माधुर्यपूर्ण व आकर्षक शैली में 'कान्तासम्मितउपदेशवत्' होनी चाहिए। तब ही वह सुधी–पाठकों के हृदय–गह्वर में प्रवेश कर सकती है–

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतररक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।।"[4]

---

1. दृक्, चतुर्थ अंक (जुलाई–दिसम्बर, 2001), पृ. 9
2. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, पृ. 33 (अभिनवगुप्त, महार्थमंजुर्याम्, पृ. 105)
3. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, 1.1.1.6
4. काव्यप्रकाश, 1.2

इस प्रकार एक संवेदनशील सृजनकार बहुत ही करीब से समाज का अध्ययन करता है, तत्पश्चात् हृदय के अन्तःस्थल पर तोलकर अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। युगीन परिस्थितियाँ समाज को प्रभावित करने के साथ–साथ तत्कालीन साहित्य को भी प्रभावित किये बिना नहीं रहतीं। एक सजग साहित्यकार अपनी विभिन्न साहित्यिक विधाओं के द्वारा इन युगीन परिस्थितियों का समुचित मूल्यांकन करता है तथा उन्हें अपने में सन्निविष्ट करता चलता है। जब कभी वह अपनी अतिशय रूढ़िवादिता के पाश में फँसकर युग की दौड़ में पीछे रह जाता है तब एक प्रतिभा सम्पन्न कवि–रचनाकार युग जीवन की यथार्थ स्थिति को अपनाकर साहित्य को एक नूतन, जीवन्त स्वरूप प्रदान करता है। साहित्य की अभिनव विधा 'नवगीत' भी इसी यथार्थ–बोध से सम्पृक्त है तथा युगानुरूप अपने रचना वैविध्य से साहित्यानुरागियों को अचम्भित करते रहने वाले कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी भी ऐसी ही विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न कवि व साहित्यकार हैं।

कविवर प्रणीत नवगीत रचनाओं में जहाँ आधुनिक युगबोध–सम्पन्न समाज व मनुष्य की मानसिकता व परस्पर व्यवहार को अभिव्यक्त किया है, वहीं आधुनिक परिवेश में लोक–जीवन की यथार्थ स्थिति का आंकलन भी किया है जिनमें जर्जर आर्थिक स्थिति, परस्पर संघर्ष, आपसी भेदभाव, कुरीतियाँ, भ्रष्टाचार, लम्पटता, संवेदनहीनता, औद्योगिकीकरण और राजनीतिक विद्रूपताएँ समाविष्ट हैं। विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य की मनोस्थिति क्या होती है? वह एक–दूसरे के साथ किन आधारों पर किस तरह का व्यवहार करता है? उसकी मानसिकता के प्रभावक तत्त्व कौन–कौनसे हैं? इन समस्त प्रश्नों के समाधान अर्थात् समाज के विविध व्यवहारों का सूक्ष्म निरीक्षण कविवर अभिराज जी के काव्य में प्रतिबिम्बित होता है।

आज भौतिक सुख–सुविधाओं और विलासितापूर्ण जीवन शैली के कारण व्यक्ति का ईमान और नैतिक आस्था बदल चुकी है। हर व्यक्ति में आर्थिक व सामाजिक रूप से ऊँचा उठने की लालसा बलवती हो चुकी है। परिणामस्वरूप समाज में चहुँओर छद्मपूर्ण वातावरण का निर्माण हुआ है। व्यक्ति की कथनी व करनी में बहुत अधिक अन्तर चुका है। सर्वत्र अविश्वास का वातावरण अपरिग्रह, अस्तेय, नैतिकता, सदाचरण इत्यादि तत्त्व अब मूल्यहीन से हो गये हैं। माध्यम चाहे गलत हो अथवा सही अर्थोपार्जन और उसका संग्रह ही मूल उद्देश्य रह गया है। राजनीति के क्षेत्र में सर्वत्र दिखावापन है। आज हर क्षेत्र में

'अंधा बाटे रेबड़ी फिर–फिर अपनों को देय' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। कवि की 'यूयं यूयं वयं वयम्' नामक नवगीत रचना वर्तमान में समाज के इसी व्यवहार का जीवन्त चित्रण है–

विश्वमिदं नूनं गृहकल्पं जगत्कुटुम्बं जानीमः
तदपि समुत्थे स्वार्थारम्भे, यूयं यूयं वयं वयम्।।
सङ्गच्छाम सम्पश्यामः सन्तिष्ठामः क्षणे–क्षणे
संसदि किन्तु हते निजपक्षे, यूयं यूयं वयं वयम्।।
उपदिशन्ति नेतारो मञ्चे जातिधर्मयोः समभावम्
गृहमासाद्य परं मन्यन्ते यूयं यूयं वयं वयम्।।[1]

जीवन के इस आपा–धापी व अन्धी दौड़ में मनुष्य पगलाया सा यहाँ से वहाँ दौड़ रहा है। किसी के पास रुककर सीख लेने का समय नहीं है। व्यक्ति के सारे सम्बन्ध व रिश्ते–नाते व्यवसायिक हो चले हैं। कोई किसी की बात सुनना ही नहीं चाहता है। कवि की यही व्यथा उनकी रचना 'कोऽपि न श्रृणोति वाचिकम्' में इस प्रकार झलक उठती है–

उर्ध्वबाहुको विरौम्यहं, कोऽपि नो शृणोति वाचिकम्
भाविसाध्वसाद् विरौम्यहं, कोऽपि नो शृणोति वाचिकम्।।
कीदृशो दशाविपर्ययो यन्निरक्षरा विपश्चितः
काव्यकृत् कुविन्दकव्रजो मोदतेऽधिभोजवाटिकम्।।
दुर्मदेन हस्तिना हतो यत्पिपीलको मरुस्थले
तद् विलोक्य सैन्धवं जलं द्राग्बभूव हन्त तैलकम्।।[2]

अभिजात्य वर्ग ने समाज के सामान्य व्यक्ति या मेहनतकश आदमी की कमर तोड़ कर रख दी है। एक श्रमजीवी दिन–राज मेहनत करता है लेकिन उसको मेहनत का यथोचित प्रतिफल नहीं मिलता। परिणामस्वरूप सामान्य आदमी और भी कमजोर होता गया। गरीबी व अमीरी की खाई बढ़ती चली जा रही है। गरीब तबके का नानाविध तरीकों

---

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्)–यूयं यूयं वयं वयम्–56, पृ. 96
2. वही, कोऽपि नो शृणोति वाचिकम्–55, पृ. 94

से शोषण किया जा रहा है। कथित रूप से सवर्णों ने निम्न वर्ण की जातियों को सामाजिक रूप से दबाकर आर्थिक दृष्टि से जर्जर बनाया है। नीति–निर्धारण करते समय खेतिहर–मजदूर व श्रमजीवी वर्ग हमेशा उपेक्षित रहा है। समाज में छल–कपट व दुराचरण से युक्त जन सुखोपभोग में संलग्न हैं। इस कारण एक स्वाभिमानी व्यक्ति का ऐसे समाज में जीना दूभर हो गया। कभी कि यह अनुभूति रचना–पंक्तियाँ बनकर इस प्रकार प्रस्फुटित होती है–

तिमिङ्गिलो निगरति लघुमीनम्
धनदो जठरे क्षपयति दीनम्
मरुसिकतायां छलयति हरिणं कुटिला सलिलतृषा
म्रियते जिजीविषा!!

समुद्घोषिता हरिता क्रान्तिः
समजायत दयनीयाः भ्रान्तिः
भाण्डागारसमाहितमन्नं भवने मरणदशा
म्रियते जिजीविषा!!

आहिण्डनं सहति कौन्तेयः
राजसुखं भुङ्क्ते राधेयः
दुरश्शासनं शपति जनतेयं पाञ्चालीव कृशा
म्रियते जिजीविषा!!

राष्ट्रभूमिविक्रमसंलग्नाः
वाहनभोगसमृद्धिनिमग्नाः
संरक्षतां कृते मरणोर्ध्वं वीरचक्रकलशाः
म्रियते जिजीविषा!![1]

युगानुकूल परिस्थितियों के कारण समकालीन समाज का स्वरूप ही बदल गया है। मानव व्यवहार में सर्वत्र स्वार्थपरता नजर आती है। व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि

1. अभिराजगीता, म्रियते जिजीविषा–50, पृ. 84

दुर्गणों के वशीभूत होकर आचरण कर रहा है। जीवन में सदाचरण, नैतिकता, आध्यात्मिकता इत्यादि सद्‌गुणों का ह्रास तथा धूर्तता, लम्पटता, दुराचरण, शोषण, भ्रष्टाचार का नग्न–नृत्य देखने को मिल रहा है।

'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्' की उक्ति 'मनस्यन्यं वचस्यन्यं कर्मण्यन्यत्' के रूप में चरितार्थ होती दिखाई दे रही है–

वर्धते क्षणे क्षणे पदे पदे व्यथा
जीवनं कथा!
जीवनं वृथा!
मानसे किमप्यहोऽन्यदेव पौरुषे
कीदृशी प्रवञ्चनाऽस्ति मानवे कृशे?
याचना प्रतीयते स्नुतस्तनी पृथा
जीवनं कथा!
जीवनं वृथा!!
स्वार्थ गोपितैव भाति चारुमित्रता
रौरवान्तरैव दृश्यते पवित्रता
देववन्दनाऽपि लोभवृत्तिभिः श्लथा
जीवनं कथा!
जीवनं वृथा!!
चत्वरे चतुष्पथे जना निरन्तरम्
मन्दिरे न किन्तु कोऽपि राजते चिरम्
द्रोपदीव भावना दहन्मनोरथा
जीवनं कथा!
जीवनं वृथा!![1]

1. अभिराजगीता, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्)–जीवनं वृथा–47, पृ. 78

आज समाज में राष्ट्रियता की भावना क्षीण हुई है। परस्पर सहानुभूति, सौहार्दता, परहितकातरता, बन्धुता आदि के स्थान पर परस्पर द्वेष–भावना, संकुचितता, स्वार्थपरायणता इत्यादि का विस्तार हुआ है। जिसके कारण देश की सीमाएँ खतरे में है तथा विभिन्न प्रान्त पृथकता की माँग से धधक रहे हैं। मानव व्यवहार में आये इन बदलावों से त्रस्त कवि देश की रक्षार्थ ईश्वर से गुहार लगाने को मजबूर है–

भगवन्! रक्ष मदीयं देशम्!
भूतलरत्नं त्रिभिसिन्धुभिः कृतरुचिकरपरिवेशम्!!
हिमधवले शैलेय–शीर्षके कुरुतेऽनिशं प्रहारम्
असमीचीनं दुर्मदचीनं तनुते मृषा प्रचारम्
निर्मानं मानसं विलोक्य लोकय हंसनिवेशम्!
भगवन्! रक्ष मदीयं देशम्!!
पञ्चसरित्परिवृतमपि नितरां ज्वलति पञ्चनदराज्यम्
मन्दुरायते मन्दिरमपि हा शशशृङ्गं सौराज्यम्
हन्त! जिघांसति बन्धुरेव बन्धून् हत्वा दशमेशम्!
भगवन्! रक्ष मदीयं देशम्!!
अधमर्णो दुर्भावविशीर्णो लालाटिको वराकः
नो समीहते भारतसौख्यं द्वेषजर्जरः पाकः
परित्यज्य लज्जामेकां ननु वाञ्छति विजयमशेषम्!
भगवन्! रक्ष मदीयं देशम्!![1]

किसी वस्तु की कीमत उसके अभाव में ही ज्ञात हो पाती है। जब व्यक्ति के पास सभी सम्बन्धी, परिवार, समाज, माता–पिता, मित्र, ये सब रहते हैं तो वह उनकी उतनी परवाह नहीं कर पाता। लेकिन जब वह इन सब से कोसों दूर होता है तब इनकी याद उसे सताती है। यह मानवीय प्रकृति है। इसी मानवीय व्यवहार को स्वानुभूति के आधार पर अपने बालीद्वीपीय प्रवासवधि में प्रणीत इस रचना में कविवर मिश्र जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

---

1. अभिराजगीता, भगवन्! रक्ष मदीयं देशम्–4, पृ. 66

एकान्तो बाधते निकामं स्मृतिमञ्चति स्वदेशः।

प्रोषितमिह मामभिनवयक्षं सन्धारयतु परेशः।।

स्मारं स्मारं भारतदेशम्

हिमगिरिगङ्गाविन्ध्यनिवेशम्

सुजलं सुफलं मलयजभरितं याति संयमोऽशेषः।

सन्धारयतु परेशः।।[1]

अन्यत्र भी.......................

जलधर! नय सन्देशम्!

मत्प्रियभारतदेशम्!!

सान्त्वय जरातुरां जननीं मम स्नेहमयीमभिराजीम्

पुत्रप्रणयविमोहकातरामश्रुमयीं पलिताङ्गीम्

बन्धुसमूहशेषम्!

जलधर! नय सन्देशम्!![2]

जल्दी का काम शैतान का अर्थात् बिना सोचे–विचारे जल्दबाजी में उठाया गया कदम परेशानी का कारण बन सकता है। जैसाकि मानवीय स्वभाव ही है कि वह फल प्राप्ति हेतु उतावला बना रहता है। कविवर कहते हैं कि यह उतावलापन ही विपत्तियों का स्थान है। जैसाकि भारवि लिखते हैं– **'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।'** अतः व्यक्ति को सोपानक्रम से उन्नतिपथ पर आगे बढ़ना चाहिए। दूसरों को दबाकर–कुचलकर आगे बढ़ना मनुष्यता नहीं दानवता है–

प्रीतिक्षुपं विवर्धय बन्धो! शनैः शनैः

सुहृदां मनोऽनुरञ्जय बन्धो! शनैः शनैः।।

परितोऽपि पामराणां तृणशालिका इमाः

होलानलं समिन्धय बन्धो! शनैः शनैः।।

अभितो गभीरनद्यौ गिरिशृङ्खला पुरः

यात्रामिमां समापय बन्धो! शनैः शनैः।।

---

1. अभिराजगीता, स्मृतिमंचति स्वदेशः–39, पृ. 64

2. वही, जलधर! नय सन्देशम्–38, पृ. 62

अज्ञातहृत्सु वैरीभवति स्मरोत्सवः
हृदयं ततस्समर्पय बन्धो! शनैः शनैः।।[1]

कविर मिश्र जी ने विभिन्न ऋतुओं व त्योहारों का चित्रण करने वाली अनेक नवगीत रचनाएँ लिखी हैं जिनमें भिन्न–भिन्न ऋतुओं का, तीज–त्योहारों का मानव–मन पर कैसा प्रभाव होता है? उसकी मनोस्थिति के अनुरूप उसका व्यवहार कैसा होता है तथा उस प्रभावित मन की अभिव्यक्ति कैसी होती है? इन सबका सजीव–चित्रण देखने को मिलता है। कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है–

श्रावणमास में एक विरहणी के उद्गार–
सखि रे! समागच्छति श्रावणमास उदारोऽयम्
संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!!

चित्तं चोरयते ननु चन्द्रः
मेघो भीषयते किल मान्द्रः
सखि रे! स्फुरति दामिनी गगने कृताभिसारेयम्
संवर्धयत्यनङ्गं मानसे!!

भवने नैव मम प्राणेशः
श्वासः प्राणेष्वपि नो शेषः
सखि रे! भाति शर्वरी गूढसपत्नीसारेयम्
सवंर्धयत्यनङ्गं मानसे!![2]

फागुनी बयार के साथ विभिन्न रंगों में रंगा हर्ष, उल्लास और उमंग मानव–मन को आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। होली के रंग व पिचकारी की फुहारें आपसी द्वेष व वैमनस्य को धोते नजर आते हैं। रिश्तों में मधुरता का संचरण करती हुई होली का चित्रण कवि ने इस प्रकार किया है–

करकमले लसति पिचकारी
विहरति मुरारिः!!

---
1. अभिराजगीता, मंगलगीतम्–शनैः शनैः–3, पृ. 4
2. मृद्वीका, ऋतुश्री, एकोनविंशतितमी गीतिः, पृ. 28

नहि रक्षति परिचयं न शीलम्

पश्यति न वयो गिरिधारी

विहरति मुरारि!!

प्रतिपदमेव छविर्विासन्ती

प्रवहति पवनः सीत्कारी

विहरति मुरारिः!![1]

कविवर स्वानुभूति के आधार पर कहते हैं कि जब व्यक्ति की वेदना अतिशय रूप ले लेती है और असह्य हो जाती है तो वह अश्रुधारा बनकर प्रवाहित हो उठती है। उस समय सब कुछ भूलकर व्यक्ति अपनी व्यथा को केवल अपने इष्ट या आराध्य के समक्ष रखता हैं–

निताभ्यस्तमार्गे विरूढाश्मखण्डान्
अपाकर्तुमेव प्रयत्नानकार्षम्
तदप्यात्तवैरेः सुहृद्भिर्न सोढं
परिव्राजनम्मे सदाऽऽतङ्कितं रे!!
व्यथोच्छूननेत्रैः प्रसूयाश्रुधारां
मयाऽऽवेदिता शुम्भहन्त्र्यै स्वपीड़ा
परं सैव पीडा ललान्टन्तपाऽभूत्
व्यथोत्सारणं मेऽसकृद्वर्धितं रे!![2]

कौन सज्जन है? कौन दुर्जन है? जीवन में व्यवहार के बिना कुछ पता नहीं चलता है। आज समाज में धृष्ट लोगों का आतङ्क है। न जाने कब आपके साथ छलावा हो जावे। समाज की इसी स्थिति का चित्राङ्कन करती हुई कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

वायसानां कुले पालितेयं पिकी

ज्ञायते तत्कथं कण्ठगानं विना!!

धर्षिता हिंस्रजीवैः समाजाटवी

शक्यते नैव गन्तुं कृपाणं विना!![3]

---

1. मृद्वीका, ऋतुश्री, अष्टादशतमी गीतिः, पृ. 27
2. मृद्वीका, जिजीविषा, द्वाविंशतितमी गीतिः, पृ. 33
3. वही, वही, त्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 45

'शोकः श्लोकत्वमागतः' उक्ति को चरितार्थ करती हुई जीवनी है कविवर मिश्र जी की। इसी कारण अपनी गीत रचनाओं के माध्यम से कविवर कहते हैं कि जब दुःखातिरेक होता है तो वह अश्रुधारा के साथ गीत रूप में प्रवाहित हो उठता है–

हृदयेन किन्न सोढं गरलायितं त्वदीयम्
नयनेन किन्न सोढं शबलायितं त्वदीयम्!!
विकला निशा व्यतीता विकलं दिनं व्यतीतम्
अवलोकितं नु सर्वं विपदग्निना परीतम्
दूरीबभूव सौख्यं पीयूषजं मदीयम्
मनसैव किन्न सोढं गगनायितं त्वदीयम्!![1]

व्यक्ति को अपने जीवन में आने वाली विपदाओं का डटकर सामना करना चाहिए। निराश होकर पलायन करने की बजाय पुनः पुनः प्रयत्न करते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए। ये मुसीबत, परेशानियाँ व विपत्तियाँ ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारती है। व्यक्ति के पास चाहे कुछ न हो फिर भी लगातार उसे कर्मपथ पर आगे बढ़ते रहना चाहिए। स्वानुभवपरक रचना द्वारा यही बात कविवर हमें समझा रहे हैं–

दग्ध्वा विपत्तिदहने प्रथिता सुवर्णता मे
दत्वाऽखिलं जनेभ्यो लुप्ताऽधमर्णता मे!!
कामं कुबेरगेहे प्राप्तं मया न जननम्
नयनाम्बुमुक्तयैव ध्वस्ता दरिद्रता मे!!
सुप्तं भुजङ्गनिवहे पीतञ्च कालकूटम्
नितरां श्मसानवासैर्महितैव शम्भुता मे!![2]

युग–प्रभाव के कारण समाज का समग्र स्वरूप ही बदल गया है। परम्परागत जीवन–मूल्यों का स्थान नूतन–मूल्यों ने ले लिया है। सब कुछ बनावटी सा प्रतीत हो रहा है। कौन सच्चा है अथवा झूँठा, समझ से परे है। समकालीन समाज के इस व्यावहारिक स्वरूप का चित्रण कवि इस प्रकार करते हैं–

1. वाग्वधूटी, हृदयेन किन्न सोढम्?–21
2. श्रुतिम्भरा आत्मध्वनिः, प्रथिता सुवर्णता मे, पृ. 107

न जननी प्रणम्या न जनकः प्रणम्यः
युगं वर्तमानं प्रणम्यं प्रणम्यम्!!
विषम्मानसे वाचि पीयूषधारा
जनं नौमि मायाविनं धन्यधन्यम्!!
स्फुटा दीनभृत्यानने स्वामिवाणी
ततो वक्ति काकं सदा हंसरम्यम्!!
समालोक्य लोकं विचित्रस्वरूपम्
प्रवृत्तोऽभिराजः शरण्यं शरण्यम्!![1]

समाज के विकृत स्वरूप का चित्राङ्कन करते हुए कविवर लिखते हैं कि आज व्यक्ति के आचरण में निष्ठा का अभाव है तथा प्रदर्शन की प्रधानता है। जिनके पास समाज को दिशा देने की जिम्मेदारी है, ऐसे व्यक्तियों के स्थान पर धूर्त व लम्पट लोग बैठे हुए हैं। उनके आचरण व व्यवहार की विचित्रता अचम्भित करने वाली है। समाज न जाने किस ओर जा रहा है। योग्यता व अयोग्यता में कोई फर्क नहीं समझा जा रहा है–

गोष्ठ्यां सुराविरोधो गेहे यथेच्छपानम्
लोकद्वयं कराग्रे प्रतिभाति सोमपानम्!!
ये लम्पटास्त एते शिविकां वहन्ति मार्गे
प्रभुरेव हन्त! रक्षेत् पातिव्रतं वधूनाम्!!
तिष्ठन्तु तावदश्वास्तेषां प्रवल्गनैः किम्?
लोकोऽधुनेह पश्येल्लघुधावनं खराणाम्!![2]

अन्यत्र भी..................

उद्याने यस्मिन् सान्द्रतरौ
प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते।
कल्याणं तस्य कथं भविता
सुषमा क्व वसन्तस्यागमने।।[3]

---

1. श्रुतिम्भरा, आत्मध्वनिः, युगं वर्तमानं प्रणम्यम्, पृ. 109
2. वही, हरते मनोऽभिराजः, पृ. 116
3. मधुपर्णी, प्रथमखण्डः, प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते–15, पृ. 27

और भी.................

अतः परं किं भविता भूतले विचित्रम्

आत्मानं वायसोऽपि मन्यते पवित्रम्।।

वेशयोषितां वृन्दे शीलगता चर्चा

मलिम्लुचानां गेहे शाम्भवी समर्चा।।

नित्यलम्पटाः शिविकारक्षणे नियुक्ताः

न्यायाधीशास्त एव ये प्रागभियुक्ताः।

रावणश्छलयते सीतां भूत्वा दण्डी

पार्थं पृष्ठे कृत्वा युध्यते शिखण्डी।।

प्रतिशाखं चन्दनेषु वेष्टिता भुजङ्गाः

मानवैः पवित्रीक्रियते सम्प्रति गङ्गा।।[1]

आज समाज की परिवार व्यवस्था विघटित हो चुकी है। पति–पत्नी, पिता–पुत्र, भाई–बहिन सरीखे समस्त रिश्ते–नाते तार–तार हो चुके हैं। महिला शक्ति को स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृंखल बनाया जा रहा है। घरों पर शैशव धाय के सानिध्य में विलख रहा है। वह अपने माँ–बाप के परिचय के लिए मोहताज है। कलियुग के इस दुष्प्रभाव की ओर ध्यानाकर्षित करते हुये कविवर मिश्र जी लिखते हैं–

महिलामुक्त्यान्दोलनैस्त्वया

गृहबद्धा नार्यो विमोचिताः।

पतयः पचन्ति किल महानसे

पत्न्यश्च समाजोद्धाररताः।।

धात्री पालयति शिशुं भवने

पितृपरिचयरहितं नमोनमः।।[2]

1. मधुपर्णी, प्रथमखण्डः, अतः परं किं भविता–14, पृ. 26
2. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः, नमोनमः–33, पृ. 55

आज राजनीति का स्वरूप विकृत हो चुका है। राजनीति हवाला काण्ड से उपजी ऐसी विषैली दूर्वा है, जिसके भक्षण मात्र से राजनेता रूपी कृष्णसारमृग मूर्च्छित की भाँति विचरण कर रहे हैं। उन्हें देश–काल–परिस्थिति, समाज, प्रजा की कोई चिन्ता नहीं है–

काण्डात्काण्डं प्ररोहन्ती
राजनीतिदूर्वा
पश्य
हवालाकाण्डमधिरूढा
तत्संस्पर्शाच्च विषाक्ता सञ्जाता
सम्प्रति
दूर्वाभोजिनो
राजनेतृकृष्णसाराः
विषमूर्च्छिताः
प्राणव्यथां सहमानाः
स्वनियति प्रतीक्षन्ते।[1]

अपनी 'वसन्तसेना' नामक मुक्तकछन्द रचना के माध्यम से कविवर ने समाज में नारी–जीवन के संत्रासों और नारी–मन की भावना को प्रकट किया है। एक नारी अपने प्रेमी के प्रति क्या भावना रखती है? तथा अपने जीवन–साथी से वह क्या अपेक्षा रखती है? को प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं–

नरपशो! राजश्याल!!
रमणीं प्रति परिवर्तय दृष्टिं
समाद्रियस्व तां
यतस्सैव प्रसूते
त्वादृशं लम्पटं
शीलवन्तञ्चापि चारुदत्तसदृशम्
सर्वजनभोग्यां

---

1. मधुपर्णी, मुक्तच्छन्दांसि, दूर्वा–54, पृ. 90

चारुदत्तसदृशाः पुनः
तां कुर्वन्ति स्वगृहयशोवैजयन्तीम्।
रमणी पश्यति पुरुषपौरुषं
स्वपौरुषं सदर्थय!
रमणी कलयति पुरुषवाचिकं
स्ववाचिकं संस्कुरु
रमणी पश्यति पुरुषचरित्रं
स्वलम्पटतां नियंत्रय।।[1]

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि एक सजग एवं संवेदनशील रचनाकार के रूप में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी मानवीय व्यवहार के चित्राङ्कन में पूर्णतः सफल रहे हैं। मानव व्यवहार की बारीकियों से वे सुपरिचित हैं। उन्होंने इसका सूक्ष्म निरीक्षण एवं गहराई से अध्ययन व मनन किया है। मानवीय व्यवहार की विभिन्न अवस्थाओं एवं प्रतिक्रियाओं का कविवर मिश्र जी को गहन बोध है। मनुष्य का समस्त व्यवहार उसके मन के ऊहापोहों का ही परिणाम है। कविवर की यह अभिव्यक्ति न केवल सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है अपितु स्वानुभूतिपरक अधिक है, अतः प्रामाणिक है।

(घ) व्याकरणिक–ज्ञान

सम्पूर्ण जीवसृष्टि में मानव तथा अन्य जीवों के मध्य जो प्रमुख विभेदक तत्त्व है वह है– 'भाषा'। मनुष्य आजीवन भाषा के सहारे ही अपने विचारों व भावों की अभिव्यक्ति करता है क्योंकि अन्य माध्यमों के उपलब्ध रहने पर भी भाषा ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं सशक्त माध्यम है। मानव की इस भाषा की शुद्धता एवं अशुद्धता का विवेचन करने वाला शास्त्र 'व्याकरण' कहलाता है– **'व्याक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्'।**[2] इसका दूसरा नाम 'शब्दानुशासन' भी है क्योंकि किसी भी भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दों की साधुता व असाधुता का निर्णय इसके द्वारा किया जाता है। 'वि उपसर्गपूर्वक कृ धातु से ल्युट् प्रत्यय'[3] से 'व्याकरण' शब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतः व्याकरण वह नियामकशास्त्र है

1. मधुपर्णी, वसन्तसेना–58, पृ. 112–113
2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, पृ. 947
3. वही, वही, पृ. 947

जिसके द्वारा भाषा में प्रयुक्त शब्दों व वाक्यों की शुद्धता का निर्णय किया जाता है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि जी लिखते हैं कि व्याकरण शास्त्र शब्दों की साधुता के निर्णय हेतु ही प्रवृत्त हुआ है। शब्दों की शुद्धता का निर्णय करने वाला व्याकरण के अलावा कोई अन्य साधन नहीं है–

साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः।[1]

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।[2]

भाषा में व्याकरण की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए ही प्राचीन आचार्यों ने 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्' कहकर वेदांगों में परिगणित करते हुए इसे प्रधानता दी गई है। कहा भी गया है–

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।

स्वजनः श्वजनो माऽभूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्।।

व्याकरणज्ञान सम्पन्न व्यक्तित्व की सुसंस्कृतता तथा सभ्यता छिपी नहीं रह सकती है। उसकी एक विशिष्ट पहचान होती है। किष्किन्धाकाण्ड में स्वयं श्रीराम जी लक्ष्मण से हनुमान से हुई प्रथम भेंट के सम्बन्ध में हनुमान जी की विद्वता की प्रशंसा करते हुए जीवन में व्याकरण की महनीयता को स्पष्ट करते हैं–

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।

नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्।।

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।

बहुव्याहरतानेन न किञ्चिदपभाषितम्।।[3]

अर्थात् लक्ष्मण! जिस व्यकित ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद न पढ़े हों, वह ऐसी शुद्ध संस्कृत भाषा नहीं बोल सकता है। निश्चित रूप से इसने सम्पूर्ण व्याकरण को भी पढ़ा है क्योंकि लम्बे वार्तालाप के दौरान व्याकरण की दृष्टि से कुछ भी अशुद्धि नहीं की है।

---

1. भर्तृहरि, वाक्यदीप, 1.141
2. भर्तृहरि, वाक्यपदीय, 1.13
3. रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 3.28–29

विश्व की समस्त भाषाओं में संस्कृत भाषा का व्याकरण सर्वाधिक प्राचीनतम, सर्वाधिक सुव्यवस्थित एवं सर्वाधिक प्रामाणिक है। इसी कारण संस्कृत अपने नाम की सार्थकता को धारण करती है–संस्कृता परिष्कृता परिमार्जिता व्याकरणादि दोषरहिता परिशुद्धा वा भाषा संस्कृत भाषा। महर्षि पाणिनि द्वारा उपनिबद्धा व्याकरण ही है जिसके कारण संस्कृत को एक स्थिर स्वरूप प्राप्त हुआ है व जीवन्तता प्राप्त हुई है।

जिस प्रकार व्याकरण ज्ञान के द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण किया जाता है उसी भाँति एक कवि के व्याकरण–ज्ञान का प्रतिबिम्ब उसकी रचनाओं व काव्य में स्वतः दिखता है तथा उसकी गुणवत्ता व स्तर का निर्धारण करने वाला एक मानक भी बनता है। इसका उत्कृष्ट उदाहरण है कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत साहित्य। संस्कृत भाषा की अपार समृद्धि का परिचय अभिराजीय साहित्य से होता है। व्याकरण के ज्ञान से साहित्य में नयी रचनात्मकता का संधान उनकी रचनाओं में हमें देखने को मिलता है। कविवर मिश्र जी विलक्षण व्यक्तित्व के धनी है। साहित्य की कोई सी विधा हो, उनकी लेखनी सभी में समान गति से चलती है। सर्वविध शास्त्रों के वे मर्मज्ञ हैं। जीवन के प्रत्येक पक्ष की उनको गहनतम जानकारी है। साहित्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, दर्शनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, भूगोलशास्त्र, वास्तुशास्त्र, खगोलशास्त्र, चिकित्साशास्त्र इत्यादि कोई सा भी शास्त्र हो, उनकी रचनाओं में यह सर्वविध ज्ञान छलकता है। इसी कारण मिश्र जी आज के बहुसंख्य संस्कृत–रचनाकारों में अग्रणी तथा नवलेखकों व रचनाकारों के लिये पद–प्रदर्शक कहे जा सकते हैं। उनके ज्ञान की गहराई का सहज अनुमान हम एक साक्षात्कार के दौरान उनसे पूछे गये प्रश्न–क्या आप एक बार रचना की पूर्ति होने के बाद उस पर फिर विचार या संस्कार की आवश्यकता मानते हैं।? के प्रत्युत्तर से लगा सकते हैं। प्रत्युत्तर में मिश्र जी कहते हैं– "कतई नहीं। मेरे अन्तरंग मित्र, शिष्य तथा सहचर यह रहस्य जानते हैं कि सम्पूर्ण जीवन में मैंने कभी रफ नहीं लिखा।...........मैं चाहे संस्कृत में लिखूँ, हिन्दी अथवा अंग्रेजी में–एक ही बार लिखता हूँ। उसका पुनः संशोधन अथवा संस्कार नहीं करता। हाँ, रचना के क्षणों में यदि किसी शब्द अथवा क्रियारूप के विषय में शंका होती है तो रचना रोककर व्याकरण अथवा कोषग्रंथ का परामर्श अवश्य कर लेता हूँ। फिर भी 'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।"[1]

1. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 54–55

ऐसे वैदग्ध्यपूर्ण व्यक्तित्व के धनी मिश्र जी की नवगीत रचनाओं में उनके व्याकरणिक ज्ञान की टोह लेने का प्रयास सूरज को दीपक दिखाना जैसा ही होगा फिर भी शोधार्थी के धर्म का निर्वहन करता हुआ यशाशक्ति प्रयास अवश्य करुँगा। कविवर मिश्र जी सुरभारती के प्रबल समर्थक तथा समाराधक हैं। वे कहते हैं कि देवभाषा के विना जीवन की कल्पना भी सम्भव नहीं है। अन्य शास्त्रों व ज्ञान–प्रकारों का तो अस्तित्व ही नहीं रहेगा। संस्कृत भाषा की महनीयता तथा उसके व्याकरण की महिमा का गुणगान करते हुए कविवर लिखते हैं–

क्वास्ति पाण्डितीविकासो देवभाषया विना?
क्वास्ति संस्कृतिप्रकाशो देवभाषया विना?
भूरिसंख्यशब्दसञ्चयं सुखाय संहरन्
क्वास्ति सार्थकस्समासो देवभाषया विना?[1]

कविवर मिश्र जी के भाषा पर अधिकार को स्पष्ट करती हुई रचना 'वृथा जल्पन्ति' यहाँ द्रष्टव्य है। लोकव्यवहार हो, अध्यात्म हो, दर्शन हो, काव्यशास्त्र हो, साहित्य हो, सब कुछ बड़ी ही सहजता के साथ उनकी गीत–रचनाओं के अंग बन जाते हैं और यह सहजता, सरलता व बोधगम्यता अन्यत्र देखने को नहीं मिलती है।

वृथा जल्पन्ति पण्डितमानिनो जगतां नियन्तारः
अहं पुनरात्मन्थनयैव वचसां सङ्गतिं जाने।।
भवेद् वेदान्तिनां भ्रान्तिः क्वचिद्रज्जौ भुजङ्गानाम्
त्वदीये बाहुपाशे भ्रान्तिकोटिनिराकृतिं जाने।।
न मे व्यङ्ग्ये, न लक्ष्ये, नापि वाच्यार्थे मनागास्था
प्रिये! तव वल्गुविब्बोकैः पदानामन्वितिं जाने।।
अहं ते त्वञ्च मे सुन्दरि! न खलु सम्बन्धमात्रमिदम्
क्रियान्वयिकारके प्रथमां विभक्तिं दम्पतीं जाने।।
निपीतं खफछठथचटतवकपयशषसरहलिति बाल्ये
परं स्त्रीप्रत्ययैः शब्दानुशासननिष्कृतिं जाने।।[2]

---

1. मधुपर्णी, द्वितीयखण्डः, देवभाषया विना–45, पृ. 76
2. वही, प्रथमखण्डः गलज्जलिकाः, वृथा जल्पन्ति–8, पृ. 20

कविवर मिश्र जी की सम्पूर्ण सर्जना शृङ्गार एवं करुणा, हर्ष एवं विषाद, विवेक एवं भावप्रवणता की अद्‌भुत संगस्थली है। सत्य, शिव और सुन्दर की भावना से परिपूर्ण एवं लोकमंगल के आकांक्षी मिश्र जी एक तरफ रूप–सौन्दर्य एवं यौवन की मादकता के गीत गाते हैं वहीं दूसरी ओर जीवन की विसंगतियों, नियति के घात–प्रतिघातों तथा स्वजनों के द्वारा सोपाय हृदयदाही छलनाओं की पीडा भी व्यक्त करते हैं। कविवर मिश्र जी स्वयं को महाकवि कालिदास, श्रीहर्ष, जयदेव, विल्हण तथा पण्डितराज जगन्नाथ की परम्परा का वाहक मानते हैं जो कि ठीक ही है क्योंकि उनका सम्पूर्ण वाङ्मय वैदर्भ–मार्ग के वैशिष्ट्य से ओत–प्रोत है–

मूलं श्रीकविकालिदासकविता श्रीहर्षवणी तनुः
पत्रं श्रीजयदेवदेववचनं श्रीविल्हणोक्तं सुमम्।
श्रीमत्पण्डितराजकाव्यगरिमा यस्यैकपुण्यं फलम्
जीव्याद्धन्त! निसर्गजोऽयमभिराड्‌राजेन्द्रकाव्यद्रुमः।।[1]

कविवर मिश्र जी का 'करुण एवं वात्सल्य रस, माधुर्य गुण, पाञ्चाली रीति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार सर्वाधिक प्रिय है।[2] अतः तदनुसार ही काव्यतत्त्व उनकी नवगीत रचनाओं में गुम्फित हैं तथा उनके अनुसार ही वर्णों का प्रयोग, सन्धि, समास, प्रकृति–प्रत्यय इत्यादि का प्रयोग किया गया है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन के द्वारा कहा भी गया है–

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।[3]

अतः कवि की नवगीत रचनाओं में प्रयुक्त सन्धि, समास, प्रकृति–प्रत्यय, वर्ण–शब्द इत्यादि का विवेचन करना औचित्यहीन ही है क्योंकि जो दूसरों की रोशनी का कारण है ऐसे अभिराज भास्कर रूपी नक्षत्र के व्याकरण का आकलन करना हास्यास्पद ही है।

समकालीन संस्कृत साहित्य में कविवर अभिराज जी का अतुलनीय योगदान रहा है जो सतत जारी भी है। उन्होंने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ न कुछ ऐसा अवश्य छोड़ा है जो अन्य काव्यकारों के लिए अदृष्टपूर्व तथा अचम्भित करने वाला रहा है। उन्होंने

1. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व (जानकीजीवनम् महाकाव्य का सर्गान्तपद्य), पृ. 11
2. वही, प्रश्न सं. 44, पृ. 53
3. आनन्दवर्धनाचार्य, ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ. 422

स्वच्छंदतावादी भावबोध और नवीन भाषिक संरचनाओं की दृष्टि से संस्कृत काव्य–जगत् में अनुद्घाटित वातायन खोले हैं। मिश्र जी ने नवीन भावबोध क अनुरूप असंख्य नूतन संस्कृत शब्दों तथा विविध लोक–विधाओं का सृजन किया है। आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी जी 'दृक्' में प्रकाशित अपने एक लेख "अभिराज राजेन्द्र मिश्र का 'अन्दाज–ए–बयाँ' और" में मिश्र जी की प्रयोगधर्मिता का समालोचन करते हुए लिखते हैं– "राजेन्द्र जी ने आधुनिक संस्कृत–साहित्य को असंख्य नये शब्द दिये हैं। छोले–भटूरे के लिये छविल्भर्ता (चतुष्पथीयम्, पृ. 10), कालगर्ल के लिये कालगरला (वही, पृ. 9), बेलवाटम के लिये वेलिवितानम्, मेंहदी के लिए महेन्द्री, सिविल लाइन्स के लिये श्रेष्ठिचत्वर (वही)। यह सत्य है कि नयापन की चमक के साथ राजेन्द्र जी के कुछ प्रयोग भाषा के व्यावहारिक रूप या वैयाकरणिक सत्य को चुनौति देते हैं। इस दृष्टि से कहीं–कहीं प्रयोग विचारणीय हैं–यथा शतधा द्रवति कुसंस्कृतितटिनी नितरां तटङ्कषा (मृद्वीका–65) में कुसंस्कृति शब्द का प्रयोग। महामायावन्दना में अधायुगलम् में अधर शब्द को सामान्य ओष्ठवाचक मानकर अर्थग्रहण करना होगा।"[1]

मिश्र जी ने साहित्य की प्रत्येक विधा में अतुलनीय योगदान दिया है किन्तु उनकी लोकव्यापी कीर्ति का प्रमुख हेतु है उनका नवगीत–वाङ्मय। मिश्र जी की नवगीत रचनाओं का सबसे बड़ा वैशिष्ट्य है उनका श्रवण–माधुर्य। प्रकृति, प्रेम, राष्ट्र एवं मानवीय संवेदनाओं से जुड़े इन गीतों की कोमल–कान्त पदावली तथा सारल्य प्रस्तुति के साथ ही श्रोता के हृदय–गह्वर में उतर जाता है। संस्कृत में उपनिबद्ध ये नवगीत जहाँ व्याकरण की दृष्टि से पूर्णततः शुद्ध है वहीं पदबन्ध की मिठास एवं सहज व सरल भाषा लोकगीतों की भाँति बरबस ही आकृष्ट कर लेती है। उन्होंने देशी–विदेशी अनेक काव्य विधाओं को व्याकरणदृष्टि से मूलरूप से सस्कृत शब्द सिद्ध करते हुए संस्कृत–काव्य–क्षेत्र में यथोचित प्रतिष्ठा प्रदान की है। आपने उत्तरप्रदेश के पूर्वाञ्चलीय लोकगीतों को संस्कृत पदशय्या में जैसा का तैसा अर्थात् मूलभावबोध व नाम के साथ अवतारित किया है। व्याकरणानुसार शुद्ध संस्कृत शब्द सिद्ध करते हुए 'कं पतिसाहचयजनितं सुखं जरयतीति भावबोधिनी गीतिः

1. दृक्, चतुर्थ अंक (जुलाई–सितम्बर, 2000), पृ. 12–13

कजरीति–'कजरी', [1] गीयते फाल्गुने मासे इति फाल्गुनिकं–'फाग' [2] होलिकोत्सवाङ्गभूतं चतुस्तालं–'चौताल' [3] , चैत्रकं गीयते चैत्रे हर्षसम्मोद निर्भरम्– 'चैता (चैत्ती)' [4] , पुत्रजन्म–विवाहादिमङ्गलावसरे पुनः। गीयते ननु नारभिर्गीतं सूतगृह्यभिधम्–'सोहर' [5] । लोकभाषायां गीतमिदं 'सोहर' इत्युच्यते, मङ्गलावसरेषु च प्रायेण साभिनिवेशं गीयते। सूतगृहम्–सूगृहम्, 'कगचजतदपयवां प्रायो लोपः' इत्यनेन सूत्रेण। ततश्च 'गृहस्य घरोऽपतौ' इति सूत्रेण गृहस्थाने घरः। 'खघछझथधफभां प्रायो हः' इति सूत्रेण धकारस्य हकार–सूहरः। 'ततश्च स–उ इत्यनयोः सोकारेण सोहरः। सूतगृहगीतमित्यर्थः।[6] वहन्तश्शिविकां गुर्वीमेवमेव हि वाहकाः। गायन्ति स्कन्धहारीयं समवेतस्वरोच्चयैः।।–'कहरवा'[7] इत्यादि लोकगीत विधाओं को समाहित किया है। इसके अलावा फारसी गज़ल विधा को 'गलन्ति जलानि अश्रूणि यस्यां सा गलज्जलिका' इस रूप में आपने गलज्जलिका शब्द को निष्पन्न किया है।[8]

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र आधुनिक संस्कृत जगत के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनके नवगीतों में उपनिबद्ध व्याकरणिक पुट बड़ी ही सहजता व सरलता लिये हुए हैं। कहीं भी व्याकरण भाषा पर बोझ बनती हुई दिखाई नहीं दी। लेकिन नूतन विधाओं व प्रयोगों की परिशुद्धता उनकी व्याकरणिक–प्रज्ञा को उद्भासित कर देती है।

♦♦♦♦

1. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः, पृ. 258
2. वही, वही/25, पृ. 264
3. अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेषः/26, पृ. 264
4. वही, वही/28, पृ. 267
5. वही, वही/30, पृ. 267
6. अभिराजगीता, पृ. 124
7. वही, वही/41, पृ. 275
8. वही, वही/67, पृ. 283

उपसंहार

नामूलं कवयामि वच्मि निभृतं नो वाऽनपेक्षं क्वचित्
नो कीर्त्यै न शिवेतरक्षतिकृते नार्थाय काव्यं वृणे।
कान्तासम्मितदेशनाय न पुनः सद्यो रसावाप्तये
निःस्वार्थन्नु परिभ्रमन् भ्रमरकस्सोऽहं विरौम्यात्मना।।

उपसंहार

"कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मकसंस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्" (2012 तमख्रिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे) शीर्षकाधारित इस शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत शोधार्थी द्वारा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के लब्धप्रतिष्ठित, अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न, समकालीन रचनाकारों व समीक्षकों के पथ–प्रदर्शक तथा त्रिवेणीकवि, अभिनव कालिदास, युग–प्रवर्तक इत्यादि अनेकानेक उपाधियों से विभूषित कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत संस्कृत नवगीत रचनाओं के विविध पक्षों का समालोचनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है। साहित्य के तीनों स्वरूपों–काव्य, नाट्य और कथा के साथ–साथ समस्त परम्परागत तथा अभिनव विधाओं के क्षेत्रों में अभिराज जी ने सचमुच उत्कृष्ट कोटि का लेखन कार्य किया है। दो विशाल महाकाव्य, दर्जनों खण्डकाव्य, पाँच कथा संग्रह, सात एकांकी, पाँच नवगीत–संग्रह, बाल साहित्य, दर्जनों समीक्षापरक रचनाएँ, अनेक अनुदित एवं सम्पादित ग्रन्थों इत्यादि विविध विधापरक अपार लेखन से कविवर मिश्र जी ने संस्कृत साहित्य के भण्डार में अनुपम वृद्धि की है। काव्य की समस्त विधाओं में उनकी समान–गति को देखकर उनके नाम से पूर्व जुड़ा हुआ विशेषण 'अभिराज' 'अभितः राजते इति अभिराजः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सार्थक जान पड़ता है।

परन्तु उनकी सरस, सरल, सुबोध तथा रसमाधुरी से समन्वित नवगीत रचनाओं ने कवि को सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान की है तथा समकालीन रचनाकारों में श्रेष्ठत्व प्रदान किया है। इसी कारण अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि एवं कुशल समीक्षक आचार्य हर्षदेव माधव जी उनकी कविता–माधुरी से प्रभावित होकर संस्कृत कविता के वर्तमान युग को 'अभिराज युग' नाम से अभिहित करते हैं।

कवि प्रणीत नवगीत रचनाओं में परिलक्षित ललित एवं सरल पदबन्ध, रसपेशलता, यथार्थबोध, आधुनिक जीवन–दृष्टि, लोकानुरक्ति, अप्रस्तुत विधान का मौलिक अभिव्यञ्जन, समष्टिमूलक चेतना, प्रकृति, सौन्दर्य एवं प्रेम की नवीन प्रस्तुति, समृद्ध सांस्कृतिक एवं भाषागत चेतना, लोकजीवन की सहजता, वस्तुपरकता एवं वैयक्तिकता का समन्वय,

सामाजिक विसंगतियों, अन्याय, शोषण के प्रति क्षोभ, करुणा और व्यंग्य की तीखी अभिव्यक्ति, बिम्ब–विधान एवं प्रतीकों की मौलिक व नवीनतम प्रस्तुति, लोक–व्यवहार में प्रयुक्त सरल व सहज शब्दावली तथा शैल्पिक नवीनता उन्हें एक कालजयी गीतकार सिद्ध करती है।

गीत मानव जाति का आदिम काव्य रूप है। इसकी जड़ें हमें वैदिक सूक्तों में लिपिबद्ध मंत्रों व भावप्रवण स्तवनों में दिखाई देती हैं। तब से लेकर विभिन्न स्वरूपों एवं सोपानों को पार करते हुये यह वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ है। संस्कृत गीत परम्परा ने अपनी इस भाव–यात्रा के अनेक कालखण्डों में नानाविध रूप से स्वयं को आगे बढ़ाया है। प्राक्तन युग से लेकर आधुनिक युग तक संस्कृत गीतकारों व रचनाकारों की समृद्ध परम्परा रही है। किन्तु स्वतन्त्र विधा के रूप में संस्कृत काव्यशास्त्र में कहीं भी उल्लेख नहीं होने के बावजूद प्रत्येक कालखण्ड में इस शैली की रचनाओं ने युगबोध को भली–भाँति चित्रित किया है। काव्य की प्रत्येक विधा व स्वरूप पर युग–प्रभाव हमेशा देखा गया है। साथ ही युग की माँग के अनुरूप कुछ नवीन विधाएँ भी विकसित हुई हैं। ऐसी ही काव्य की एक अभिनव विधा है– 'नवगीत', जो प्राचीन गीति परम्परा का ही अभिनवस्वरूप है। यह एक युग सापेक्ष शब्द है जो किसी भी काल और परिवेश की परम्परागत पद्धति व भावबोध से भिन्न नवीन पद्धति और अनुभूति के नूतन आयामों की अभिव्यक्ति का नवीनतम मार्ग है। संस्कृत काव्यक्षेत्र में नवगीत–लेखन स्वतन्त्रता आन्दोलन से पूर्व नवजागरण काल में आरम्भ हुआ। शैल्पिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से सर्वप्रथम संस्कृत में किन्तु अभिधान की दृष्टि से सर्वप्रथम हिन्दी भाषा में नवगीत का अवतरण हुआ। सर्वप्रथम हिन्दी नवगीतकार श्रीराजेन्द्र प्रसाद सिंह की गीत–संकलना 'गीताङ्गिनी' में इस विधा का नामोल्लेख मिलता है। संस्कृत काव्य के क्षेत्र में इस विधा में गीत–रचना 1930–1932 के लगभग आरम्भ हुई। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जी इसके प्रथम सबल एवं सशक्त प्रयोक्ता रहे हैं। उनके द्वारा विरचित रचनाएँ अपनी मसृणता, नव्यता और अभिव्यञ्जना के कारण सुधीजनों को बरबस ही आकृष्ट कर लेती हैं। इस प्रकार शास्त्री जी को ही संस्कृत–काव्य क्षेत्र में काव्य की अभिनव विधा 'नवगीत' का जनक होने का श्रेय प्राप्त है।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जी द्वारा प्रणीत गीत 'उदयति मिहिरो विदलति तिमिरो भुवनं कथमभिरामम्' से प्रेरित होकर ही संस्कृतगीत–प्रणयन में संलग्न हुए कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी संस्कृत गीतपरम्परा के स्वातन्त्र्योत्तर काल के यशस्वी रचनाकार हैं। मिश्र जी की नवगीत संकलनाएँ– वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता अपने नवीन शिल्प–विधान एवं अभिनव भावबोध से सुधीजनों को अनायास ही आकृष्ट कर लेती हैं। सामाजिक जीवन की विसंगतियों, अपने निजी जीवन में भोगे हुए संत्रासों व पीड़ाओं, यथार्थ की कड़वी अनुभूतियों, विश्व मानव की भयावह स्थिति, मानवतावादी जीवन मूल्यों के संकटबोध, सांस्कृतिक और नैतिक विघटन एवं मूल्यहीनता की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, आतङ्कवाद, महिलाओं के साथ होने वाले कदाचार, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक सभ्यता के दुष्प्रभावों तथा पर्यावरणक्षरण इत्यादि विषयों को अपनी गीत–रचनाओं का उपादान बनाते हुए मिश्र जी ने अपनी विशिष्ट भाषा व शैली के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है। मिश्र जी बहुत ही संवेदनशील रचनाकार हैं। अतः जीवन के सभी भाव व उद्वेग उनकी रचनाओं का विषय बनते हैं।

कवि की गज़लगीतियों में कवि के आत्मगौरव, आत्मप्रतिष्ठा एवं आत्मपीड़ा को भावप्रवण अभिव्यक्ति मिली है। स्वकुटुम्बियों व मित्रों से प्राप्त छल–वंचनाओं से कवि बेहद आहत दिखे हैं। अपने शैशवकाल में ही होने वाले पितृ–विछोह तथा परिवारजनों से सम्प्राप्त उलाहनाजन्य वेदना रह–रहकर गीत–पंक्तियाँ बनकर प्रवाहित होती रही है। इसी कारण विद्वानों ने मिश्र जी की गीत–रचनाओं को 'व्यथातंत्री का काव्य' कहा है। अनाथ–शैशव में किसी शाश्वत संबल की खोज ही उनकी काव्य–प्रेरणा बनी है। मुक्तधारा के एक गीत की निम्नपंक्तियों में हमें उनकी काव्य प्रेरणा के दर्शन होते हैं–

लघु जीवन में ही अनाथ बना
जनाश्रित स्नेह बना सपना
फिर भी, किस पूज्य पिता के लिये
मन मेरा सदा ललचाया करे?
किस प्रेयस का अनुराग सखे!
मन की कविता बन जाया करे?

कवि की रचना–पंक्तियों से पता चलता है कि कवि का लेखन कोई कोरी कल्पना न होकर कवि द्वारा स्वानुभूत दुःखों, वेदनाओं व कष्टों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। 'शायद मैं इसलिये जी पा रहा हूँ क्योंकि यमराज के घर में मृत्युरूपी बाला कहीं भटक गयी है' कवि की यह उक्ति उनके जीवन से आजिज आ जाने तथा पीड़ा की पराकाष्ठा की ही अभिव्यक्ति है। अपने दुर्दिनों के लिए भाग्यरूपी बाला को अपनी मजाक बनाने बाली मानकर कवि ने स्वयं को भाग्यवादी–प्रवृत्ति से युक्त माना है।

अपनी प्रारम्भिक गीत–रचनाओं में कवि श्रृङ्गार–रस की रसमाधुरी का रसपान करते हुए परिलक्षित होते हैं। यौवनमद में चूर होकर अपनी प्रेयसी को रतिसुख हेतु खुला आमंत्रण देने से भी नहीं हिचकिचाते हैं जो उनको एक स्पष्ट वक्ता व ईमानदार रचनाकार सिद्ध करता है। प्रिया के आलिङ्गनबद्ध होकर वे यौवन–मद में झूमती चाल चलते हैं। श्रावण के गीतों, वर्षा की फुहारों तथा वासन्ती बयार से कामोद्दीप्त कामिनियों के विरहजन्य दुःख के चित्रण में श्रृङ्गार की विप्रलम्भता देखते ही बनती है।

कवि की अपने आराध्यों को समर्पित विशेषतः वाग्देवी की समर्चना में समर्पित गीतिपुष्प श्रोताओं व सुधीपाठकों को भक्तिरस से सरोवार कर देते हैं। कवि के जीवन में जो कुछ भी है वह सब माँ जगदम्बा का ही कृपा प्रसाद है। कवि का अपने आराध्य पर दृढ़ विश्वास है। वे कहते हैं कि मेरा सकल कवनकर्म माँ शारदे की प्रेरणा का ही परिणाम है। यह सत्य है कि कवि ने सोचकर भावों को नहीं पिरोया है अपितु स्वप्रादुर्भूत भावों व उद्वेगों को ही अपनी काव्यमाला का हिस्सा बनाया है। उनकी रचनाओं में कहीं भी बनावटीपन व कृत्रिमता दिखाई नहीं देती। सब कुछ सरल, सरस व सहज नजर आता है।

लोकजीवन में जो भी गलत, अनिष्टकारी तथा लोकविरुद्ध आचरण दिखाई दिया, उन सभी से कवि का हृदय आहत हुआ है। जब उद्विग्नता सीमा लांघती है, तो कवि की लेखनी चल पडती है उसको शाब्दिकता व गेयता प्रदान करने के लिए। कवि की एक रचना का अंश यहाँ समुद्धरणीय प्रतीत होता है–

निजाऽभ्यस्तमार्गे विरूढाश्मखण्डान्

अपाकर्तुमेव प्रयत्नानकार्षम्।

तदप्यात्तवैरैः सुहृद्भिर्न सोढं

परिव्रजानम्मे सदाऽऽतङ्कितं रे।।

कवि की राष्ट्रीय–भावना तथा देश–समाज के प्रति अगाध श्रद्धा उनके राष्ट्रीय–भावनापरक नवगीतों में मुखरता के साथ अभिव्यक्त हुई है। देश के समकालीन घटनाक्रमों ने कविवर मिश्र जी को बेहद आहत किया है। कोई पृथक् राज्य की मांग कर रहा है, किसी को अपना पृथक् संविधान चाहिए, देश की सीमाएँ धधक रही हैं, चीन व पाकिस्तान जैसे देश अपनी नापाक करतूतों से बाज नहीं आ रहे हैं, वही दूसरी तरफ देश का नेतृत्व भ्रष्ट नौकरशाह व राजनेताओं के हाथों में चला गया है। गरीबी व अमीरी की खाई बढ़ती जा रही है, जमीन स्तर पर काम करने वाले, श्रमजीवी, कृषकों व खेतिहर मजदूरों पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है। समस्त नीतियाँ उच्च वर्गों को ध्यान में रखकर बनायी जा रही हैं। देश की भोली–भाली जनता इन बहुरूपियों व बगुले सरीखे राजनेताओं के लच्छेदार भाषणों से मोहित हो जाती है और कष्ट–परम्परा की वाहक बनती है। वर्तमान दुर्दशा से आहत भारतदेश आज स्वयं के घर में सुबक–सुबक कर रो रहा है। कविमन इस स्थिति से बेहद आहत दिखाई देता है। कवि चीख–चीखकर भारतीय जनमानस को जगाने का प्रयास कर रहा है, किन्तु मोहान्ध की भाँति किसी के पास उनके वचनों को ठहर कर सुनने का समय ही नहीं है। न जाने सभी लोग किस अकिंचन की प्राप्ति हेतु दौड़ लगा रहे हैं।

किन्तु कविवर मिश्र जी का भारतीय दैवीय शक्ति, अध्यात्म तथा उत्कृष्ट सांस्कृतिक जीवन–मूल्यों में दृढ़ विश्वास है। इस कारण वे भारत देश की रक्षार्थ परमपिता परमेश्वर का आह्वान करने से नहीं चूकते हैं। कवि कहते हैं कि हे ईश्वर! न जाने किस दुरात्मा के वशीभूत होकर भारतीय जन राह से भटकते नजर जा रहे हैं। अब आप ही इनको सन्मार्ग का पथिक बनायें।

कवि की रचनाओं में जीवन की विद्रूपताओं के चित्रण के अलावा एक आशा व उम्मीद की किरण अवश्य मिलती है। कविवर दृढ़विश्वास व उम्मीद के साथ कहते हैं कि निश्चित रूप से भारतराष्ट्र अपने पुरातन वैभव व विश्व–गुरुत्व की पदवी को प्राप्त करेगा। कवि आशान्वित हैं क्योंकि वे मानते हैं कि भारतीय सांस्कृतिक जीवन–मूल्यों की जड़ें इतनी गहरी हैं कि किसी के लिए भी उनको उखाड़ना तो दूर, हिलाना भी सम्भव नहीं है। परस्पर बन्धुता, सौहार्दता, सहिष्णुता, अपनत्व की भावना, सदाचरण, परदुःखकातरता, पंथनिरपेक्षता, नैतिकता, लोककल्याण की भावना, एकता, अखण्डता, साहस, जीवटता तथा सादगी प्रत्येक भारतीय के खून में जीन के रूप में प्रवाहित हैं। पाश्चात्य–प्रभाव की चकाचौंध ज्यादा देर तक भारतीय युवा–शक्ति को मोहित नहीं कर सकती। फिर से वह दिन आयेगा जिस दिन भारतमाता का ताज सिरमौर होगा।

कविवर मिश्र जी को भारतीय नवयुवकों से बेहद उम्मीद है। वे लिखते हैं कि भले ही आज तुम कमजोर और निरुपाय हो किन्तु समय आने पर तुम सब देश की उन्नति, समृद्धि तथा एकता व अखण्डता के लिए कार्य करोगे। अपनी उन्नति के साथ–साथ औरों को भी आगे बढ़ाने में सहायक होंगे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नये–नये सोपान स्थापित करते हुए भारतमाता को उसका निजगौरव, मान व सम्मान दिलवाओगे और हम पूरी शान–ओ–शौकत के साथ दुनिया को बतायेंगे कि हम सब भारतीय हैं।

कवि की लोकगीतिपरक रचनाओं में उनकी कवित्व प्रतिभा सहजरूप से अनुगम्य है। उत्तरप्रदेश के पूर्वाञ्चल क्षेत्र के जन–जीवन में रची–बसी लोकगीतियों को उसी मूल भाव व शैली की साथ संस्कृत में उतार कर कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा व अद्भुत कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। कजरी, कहरवा, सोहर, चैत्रक, नत्तक, पचरा, फाग, चौताल आदि न केवल संस्कृत पाठकों व अध्येताओं अपितु समकालीन रचनाकारों के लिए भी सब कुछ अद्वितीय व अनोखा था। अचम्भित करने वाला था। इन गीतियों से कवि की लोकानुरक्ती तथा प्रकृति के प्रति प्रेमभावना व्यञ्जित होती है।

पर्यावरण के प्रति गहरी चिन्ता भी कवि की रचनाओं में साकार हुई है जो कवि को 'पर्यावरण का प्रहरी' साबित करती है। कविवर अन्योक्तिपरक पंक्तियों में लिखते हैं कि जो

गङ्गा नदी चिरकाल से मानव के पापों को धोकर मुक्ति प्रदान करती रही है, आज महदाश्चर्य का विषय है कि वही गङ्गा नदी मानवों के द्वारा स्वच्छ की जा रही है। प्रकृति की गोद में तथा सर्वसाधनसुलभ शान्त वातावरण में स्थित हमारे तीर्थस्थल भोगस्थल बन चुके हैं। अतः यज्ञीप सृष्टिचक्र का अनुपालन करते हुये जीवन जीने की प्रेरणा भी कविवर हमें देते हैं।

संस्कृत भाषा के साथ किये गये तथा किये जा रहे दोगले व्यवहार के प्रति कवि ने गहरा आक्रोश व क्षोभ व्यक्त किया है। साथ ही संस्कृत महिमा का गुणगान करके मानव–जीवन में उसकी महत्ता को कुशलता के साथ प्रतिपादित किया है। संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार हेतु आवाहन करते हुए उसमें निहित भारतीय जीवन–मूल्यों व संस्कृति को उद्भासित किया है। पाश्चात्य प्रभाव के वशीभूत होकर बिना सोचे–समझे संस्कृत भाषा को मृतभाषा कहने वालों को गीतकार ने खुली चुनौति दी है। वे कहते हैं कि संस्कृत भाषा देवभाषा है, यह न कभी मरी थी, न मर रही है और न ही कभी मरेगी। इसमें स्वयं में इतनी शक्ति है कि वह स्वयं उसका विरोध करने वालों का हनन कर सके।

न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा!
सुखवागमृता सुखदा वरदा
द्विषतां नियतिं रचयिष्यति वा!!
निगमागमगीतिमयी रुचिरा, रघुनाथमहिता मधुरा।
पुनरद्य दशाननकर्मरतान्, घननादमुखान् निहष्यति वा!
न मृता, म्रियते न मरिष्यति वा!!

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं। उनकी नवगीत रचनाओं में नवीन भावबोध के साथ–साथ विलक्षण प्रतिभाजन्य नवीन शैल्पिक विधान परिलक्षित होता है। नवगीत के मूल वैशिष्ट्य के साथ–साथ गीतों में गुम्फित रस–योजना, छन्दोविधान, रीतिगत ढाँचा, आलंकारिक चित्रण, लालित्यपूर्ण पदबन्ध, नूतनशब्दों के अभिप्रयोग, भाषागत वैशिष्ट्य तथा प्राकृतिक सजीवता मिश्र जी को अपने समकालीन अन्य कवियों से विशिष्टता प्रदान करते हैं। चूँकि अभिराज जी नवगीतकार

होने के साथ–साथ एक कवि, साहित्यकार तथा समीक्षक भी हैं अतः रचनाकार के व्यक्तित्व के विविध पहलू उनकी रचनाओं में स्वतः समाहित हो जाते हैं। सामान्यतः नवगीत में कथ्य पर ही विशेष ध्यान दिया जाता है, काव्यशास्त्रीय तत्त्वों अथवा लय और ताल पर उतना नहीं। लेकिन व्यक्तित्व प्रभाव के कारण कविवर प्रणीत गीतरचनाओं में गेयता तथा काव्य–शास्त्रीय तत्त्व अवश्य समाहित हैं परन्तु इससे नवगीति का मूल स्वरूप अथवा कथ्य कहीं भी भङ्ग नहीं हुआ है। प्रत्युत इन तत्त्वों ने विषय–प्रस्तुति में रोचकता, मधुरता तथा रसपेशलता उत्पन्न करके, कथ्य को सहजग्राह्य और प्रभावी बनाया है।

कवि–प्रणीत नवगीतों में यद्यपि विषयानुरूप सभी रसों से समन्वित रसमाधुरी बिखरी पड़ी है, फिर भी नवगीत की प्रकृति के अनुरूप सामाजिक संवेदनामूलक करुणा चित्रित हुई। अन्योक्तिपरक रचनाएँ पाठक को अपने अद्‌भुत कवित्व कौशल तथा विषयप्रस्तुति से विस्मित करती हुई दिखाई देती हैं। विभिन्न ऋतुओं के चित्रणपरक गीतियों तथा लोकविधाओं पर समाश्रित गीत रचनाओं में श्रृंगार के विविधरूपों की छटा दर्शनीय है। बालमन को ध्यान में रखते हुए विरचित गीतों तथा मातृवन्दनाओं में पाठक वात्सल्यभाव से सम्पृक्त होकर उछल–कूद करने लगता है। देव–स्तुति, राष्ट्रवन्दना, संस्कृतमहिमामूलक गीतियाँ सुधीजनों को शान्त–भक्तिमय वातावरण प्रदान करती हैं। राष्ट्रीय गौरव का गुणगान करते हुये कवि वीरता का अहसास भी कराता है। गजलगीतियों में भी भारतीय बोध होने के कारण श्रृंगार व सौन्दर्य के चित्रण से अधिक सामाजिक–विषमता पर तंज कसा है।

कविवर मिश्र जी ने संस्कृत गीतों को नये–नये रूप, नये–नये भाव तथा नये–नये शिल्प प्रदान किये हैं। कवि ने संस्कृत भाषा को जन–जन में लोकप्रिय बनाने के लिए आञ्चलिक लोकगीत विधाओं को उनके मूल भाव व कथ्य तथा शिल्प–विधान के साथ तदनुरूप संस्कृत नाम देकर संस्कृत में अवतारणा की है। पूर्वाञ्चलीय लोकभाषायी गीत चैता, कजरी, सोहर, कहरवा, पचरा इत्यादि को क्रमशः चैत्रक, सा कजरी, सूतगृहम्, स्कन्धहारीयम्, प्रचरणम् आदि संस्कृत नाम देकर उन्हें विशुद्ध संस्कृत स्वरूप प्रदान किया। न केवल लोकभाषायी विधाओं अपितु उर्दू व फारसी की कव्वाली एवं ग़ज़लगीति को भी

अपने मूल रूप में अवतरित किया है। हाँ, इतना अवश्य है कि मिश्र जी ने इन विधाओं को 'हुश्न और इश्क' के लिबास से मुक्त कर सामाजिक संवेदनापरक परिधानों से सुसज्जित किया है। साथ ही हिन्दी के दोहा, सोरठा, सवैया, धनाक्षरी, कवित्त आदि छन्दों में उत्कृष्ट रचनाएँ कवि द्वारा प्रणीत की हैं। इनके पारम्परिक स्वरूप को मन में रखकर जब सुधीजन इनका रसास्वादन करने लगता है, तो उसे ऐसा लगता ही नहीं कि ये विधाऐं मूलतः संस्कृत की नहीं हैं। यह सब कविवर मिश्र जी की सहज, सरल और विलक्षण प्रतिभा का ही प्रतिफल है। इसके अलावा पारम्परिक छन्दों के साथ–साथ अभिनव विधाओं से संस्कृत साहित्य को सुशोभित करते हुए कवि ने उत्कृष्टकोटिक छन्दोमुक्त गीतियाँ लिखकर अपनी सिद्धहस्तता प्रमाणित की है।

सुधीपाठकों को उनकी रचनाएँ जिन कारणों से प्रभावित करती हैं, वे हैं– गीतियों की सरलता, सहजता, मधुरता तथा उनकी रसपेशलता। कवि विरचित गीतियाँ अपने सरल एवं लालित्यपूर्ण पदबन्ध, लघु–लघु समास अथवा पूर्णतया समासहीन, लोक–व्यवहार में प्रयुक्त शब्दावली तथा रसमाधुरी से संप्लावितता इत्यादि वैशिष्ट्य पाठक को बरबस ही आकृष्ट कर लेता है। एक सामान्य संस्कृत पाठक की तो बात ही क्या, पूर्णतया संस्कृत भाषा के संवाद से अज्ञातहृदय भी भावविभोर होकर किलोलें करने लगता है। कवि की रचनाऐं सर्वत्र वैदर्भी व पाञ्चाली मार्ग पर आरूढ दिखाई देती हैं।

सरल, सरस व ललित पदबन्ध, कथा के अनुरूप शब्दों का चयन, नूतन व स्वसृजित शब्दों का चमत्कार, पंक्तियों में पिरोया गया विविध शास्त्रीय ज्ञान का चमत्कार, लोकजीवन में प्रचलित लोकोक्ति, मुहावरों तथा सुभाषितों की सटीकता, बिम्बों एवं प्रतीकों के नूतन आधान, आदिम एवं अद्यतन उभयविध मिथकों का सार्थक सन्धान कवि की मुखरता एवं बेबाकीपन, पूर्व कवियों की प्रसिद्ध पंक्तियों का गुम्फन, विषयानुरूप रचनाविधा का चयन, देश–काल–परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए रस–अलंकार–छन्द–रीति–गुण इत्यादि काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का संयोजन तथा इन सबसे बढ़कर स्व–स्वभावानुरूप प्रस्तुति की स्वभाविकता उनके भाषागत वैशिष्ट्य व चमत्कार की परिचायक हैं। इसी कारण अन्य समकालीन कवियों से मिश्र जी की तुलना करना भी बेमानी है।

नवगीत चूँकि लोकजीवन से सम्पृक्त काव्य–विधा है। अतः लोकजीवन की नैसर्गिकता तथा प्राकृतिक उपादनता इसका प्रमुख वैशिष्ट्य है। मिश्र जी के व्यक्तित्व में एकाकार हुए नवगीतकार ने अपनी नवगीतियों में भारतदेश के विभिन्न भागों के प्राकृतिक सौन्दर्य की अद्भुत छटा बिखेरी है। गङ्गा, यमुना, सरस्वती, कोवरी इत्यादि नदियों, विभिन्न पर्वतों, बारहमासों व ऋतुओं, खेत–खलिहानों, तीज–त्योहारों इत्यादि प्राकृतिक स्वरूपों का बहुत ही मधुर, सरस, चमत्कारपूर्ण, आलंकारिक तथा मनोहारी चित्रण किया गया है। इस चित्रण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है– इसकी सजीवता व स्वभाविकता। वर्णनानुरूप विधा व छन्द के परिधान पहनकर जब ये गीतियाँ मधुर चाल चलती हैं तो पाठक स्वतः उनका अनुगामी बन जाता है।

नवगीतियों में पंक्तिबद्ध होकर बैठा हुआ कवि का विविध शास्त्रीय ज्ञान उनकी अद्भुत एवं नैसर्गिक कवित्व प्रतिभा व उत्कृष्ट पाण्डित्य का परिचायक है। अपनी अन्योक्ति व व्यञ्जनामूलक शैली के द्वारा कविवर मिश्र जी दार्शनिक सिद्धान्तों, आध्यात्मिक व शास्त्रीय ज्ञान वचनों, व्याकरणिक सूत्रों, पौराणिक व ऐतिहासिक द्रष्टान्तों, प्राक्तन कवियों से सम्बद्ध सुभाषितों व उक्तियों के माध्यम से वर्तमान युग की सामाजिक विसंगतियों, समस्याओं तथा युगीन प्रभावों को इस प्रकार समझा देते हैं जो कि सीधे पाठक के अन्तःस्थल को चीरते हुए गहराई में उतर जाता है। पाठक चमत्कृत सा मुँह–बायें सोचता रह जाता है कि ऐसी नवगीत रचना कैसे सम्भव है? क्या यह दैवीय चमत्कार है?

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इस प्रकार यह सिद्ध करता है कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी ने अपने नवगीतों में नवीन चेतना को स्फुरित किया है तथा संस्कृत काव्यक्षेत्र के लिए नये वातायन खोले हैं। कवि प्रणीत ये गीत एक ओर कल्पना की ऊँची उड़ान का बोध कराते हैं तो दूसरी ओर जीवन की यथार्थता से रुबरू करवाते हैं।

परम्परा के प्रबल वाहक व प्रखर विद्वान् होने के कारण मिश्र जी समस्त नवलेखन को परम्परा से ही अनुस्यूत मानते हैं। साथ ही 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' के सिद्धान्त को मानकर स्वयं को नूतन की खोज करने वाले 'युगधर्मी कवि' के रूप में स्थापित करते हैं। कवि विरचित संस्कृत नवगीत इनकी नवनवोन्मेषशालिनी कवित्व प्रतिभा का ही

परिणाम है। संस्कृत नवलेखन के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये कवि के ये उद्गार यहाँ समुद्धरणीय हैं– अर्वाचीन संस्कृत नवलेखन, अन्यान्य भारतीय भाषाओं की वाङ्मय विधाओं को दृष्टि में रखकर गतिमान हो रहा है। अतः स्वाभाविक है कि उसे अतीत मात्र से बाँध कर नहीं रखा जा सकता है। उसे स्वच्छन्दता चाहिए सिद्धान्त में भी और व्यवहार में भी! पैरों में बेड़ी पहनकर दौड़ना दुष्कर तो होता ही है।

चूँकि 'नवगीत' शिल्प की नवीनता के साथ–साथ अभिव्यक्ति की भी नवीनता है। अतः अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी की पाँचों नवगीत संकलनाओं में संग्रहीत रचनाएँ अपने अद्भुत वैशिष्ट्य के कारण नवगीत की कसौटी पर पूर्णतया खरी उतरती हैं। उनके सङ्कलित गीतों की कोमलकान्तपदावली, आनुप्रासिक लालित्य की सहजता, कथन की रूढ़िगत निर्द्वन्द्व अभिव्यक्ति, मनोहारिणी एवं चित्ताकर्षक गेयता और चराचर लोक के यथार्थ का स्पष्ट स्पन्दन कवि को एक कालजयी नवगीतकार सिद्ध करता है। अन्त में कविवर मिश्र जी को समर्पित आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के इस उद्गार के साथ अपनी लेखनी को विराम देना चाहूँगा–

हैं और भी इस दुनियाँ में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि गालिब का है अंदाज़–ए–बयाँ और।

♦♦♦♦

परिशिष्ट

मूलं श्रीकविकालिदासकविता श्रीहर्षवाणी तनुः
पत्रं श्रीजयदेवदेववचनं श्रीबिल्हणोक्तं सुमम्।
श्रीमत्पण्डितराजकाव्यगरिमा यस्य प्रपूतं फलं
जीव्याद्धन्त निसर्गजोऽयमभिराड् राजेन्द्रकाव्यद्रुमः।।

परिशिष्ट

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा वर्ष 2012 ई. तक प्रकाशित नवगीत संकलनाओं को शोधार्थी ने अपने शोधकार्य की विषयवस्तु हेतु चुना। किन्तु कविवर मिश्र जी अथक लेखनी के धनी हैं। इस कारण अनवरत रूप से उनका लेखन कार्य जारी है। वे काव्य की परम्परागत एवं अर्वाचीन समस्त विधाओं से संस्कृत साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने में या यूँ कहे कि वाग्देवी के समाराधन में तल्लीन हैं। अतः शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत करने से पूर्व विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित कविवर कृत रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से प्रस्तुत है–

1. नाऽन्यः पन्था – कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा विरचित 'नाऽन्यः पन्थाः' एकाङ्कीय लघुरूपक है। किस प्रकार धनपति कुबेरों की औलादें कुत्सित कृत्य करके भी भ्रष्ट वकीलों व न्यायाधीशों से सांठ–गांठ करके अपराध मुक्त घोषित कर दिये जाते हैं। जिसके कारण उनका होंसला बढ़ता है और वे फिर अपराध करने लगते हैं। लेकिन अभिराज जी ने यहाँ समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया है। यदि आज की युवा पीढ़ी संकल्प ले और स्वयं के घर से ही इसकी शुरुआत करे तो समाज व देश भ्रष्टाचार मुक्त हो सकता है।

यह रचना साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'संस्कृतप्रतिभा' के संयुक्ताङ्कः (2010–2012) उन्मेषः 43–47 (अप्रेल 2010–दिसम्बर 2012) में प्रकाशित हुई।

2. गलज्जलिकाष्टकम् – 'संस्कृतप्रतिभा' के अङ्कः (जुलाई 2014–सितम्बर 2014), उन्मेषः 52 में 'गलज्जलिकाष्टम्' शीर्षक से कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित आठ नूतन गलज्जलिकाएँ प्रकाशित हुईं, जिनके नाम इस प्रकार है–

1. प्रमादेन नामाऽगतम्
2. कज्जलानां प्रकोष्ठे
3. कुठारोऽभवम्
4. नो स्मरिष्यामि

5. तदाऽऽयतिरेव का?
6. अपार्थकं युद्धं कृतम्
7. जनितोऽस्मि भक्षणाय
8. नो क्वचित्

3. विपन्नालमगीरम् (यक्षगानम्) – अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत 'विपन्नालमगीरम् (यक्षगानम्)' नामक रूपक में औरंगाबाद के राजमहल में मृत्युशय्या पर लेटे हुये मुगल शासक आलमगीर औरंगजेब के जीवन के अन्तिम क्षणों में उत्पन्न आत्मग्लानि का संस्मरणात्मक चित्रण किया गया है। सारी जिन्दगी जिस राजसिंहासन की प्राप्ति व रक्षा के लिए निकटसम्बन्धियों, परिवारजनों व प्रजा का रक्त बहाता रहा वह आज असहाय होकर उस सिंहासन को छोड़कर जा रहा है, ऐसी मनोस्थिति से परिपूर्ण चित्रित किया है औरंगजेब को।

यह रचना संस्कृतप्रतिभा के अङ्कः (अक्टूबर–दिसम्बर 2014), उन्मेषः 53 में प्रकाशित हुई।

4. सञ्चरणामृतम् – कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत 'सञ्चरणामृतम्' एक यात्रावृत्तान्तसंग्रह है। इसमें कविवर मिश्र जी द्वारा की गई विभिन्न यात्राओं, दर्शनीय स्थलों, विद्वद्परिचय, सम्मेलनों इत्यादि का संस्मरणात्मक अभिलेखन किया है। मिश्र जी द्वारा अपने कवित्व जीवन में की गई यात्राओं इत्यादि का डायरी लेखन समय व दिनाङ्क सहित किया गया। उन्हीं डायरी–संस्मरणों का यह संकलन है। इसमें पुदुच्चेरीदर्शनम्, उच्छलजलधितरङ्ग, असावपस्मारिणमाशङ्के, अरविन्दाश्रमः–श्रीमाता परा देवता, अरविन्दाश्रमस्य संवादभाषा–संस्कृतम्, शम्भुहृदयमीनाऽम्बुसदृक्षा–जयति सुन्दरेश्वरमीनाक्षी, प्रो. डॉ. जी. सुन्दरमूर्तिः–व्यक्तित्वं कर्तृत्वञ्च, श्रीमदद्वैतपरिषत्सम्मेलनम्, तिरुचीवैभवम्, शिलादुर्गमन्दिरम् (Rock Temple), श्रीरङ्गदर्शनम्, पिबाम सोमममृता अभूम, श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठवेदविद्यालयः, गीयतां गणपतिर्जगद्वन्द्यः, भुजङ्गे शयानं भजे रङ्गनाथम्, जम्बुकेश्वराऽखिलाण्डेश्वरीमन्दिरम्, जम्बूलूताहस्त्याख्यानम्, अखिलाण्डेश्वरीताटङ्कौ तथा विसर्जनं तिरुचीतः शीर्षकाश्रित यात्रा–संस्मरण संकलित हैं।

यह यात्रावृत्तान्तसंकलन संस्कृतप्रतिभा के उन्मेषः 54–55, अङ्कः (जनवरी 2015–मार्च 2015) तथा अङ्कः (अप्रैल 2015–जून 2015) में प्रकाशित हुआ।

5. प्रत्यग्रं लोकगीतप्रकरणम् – कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा स्वात्मनिवेदनस्वरूप एक लेख 'प्रत्यग्रं लोकगीतप्रकरणम्' नाम से लिखा। इसमें लोकगीत विधा के स्वरूप, अपने अभिनवकाव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' में वर्णित लोकगीत के वैशिष्ट्य तथा क्षेत्रवार वैविध्य को सरल भाषा में समझाया है। साथ ही आठ अभिनव लोकगीतों को भी यहाँ प्रस्तुत किया है। लोक प्रचलित गीत 'हरि हरि! बाबा के सगरवाँ मोढवा बोलै रे हरी' की तर्ज पर 'वितर जननि, 'कइसे जइबू साबन में खेलइ कजरिया बदरिया छिटि आई ननदी' की तर्ज पर– 'बाले! मा कुरु', 'पिया! मेहंदी मँगा दऽ मोतीझील से जाके सायकील से ना' की तर्ज पर– 'अम्ब! विन्ध्यवासिनि!', इसी गीत की राग पर– 'पावणी सुरापगा', 'जाबई नाहीं ससुरे सवनबाँ माँ अथवा काहे करलु गुमान गोरी! सावन माँ' के राग पर– 'भारतं विना', कजरी के ही उपभेद बारामासा की तर्ज पर– 'धिक्तादृशं जीवनम्', 'चतुस्तालम्' तथा 'वन्दे वन्दे तमहं वन्दे' नामक आठ लोकगीत रचनाएँ यहाँ संकलित है। इनमें प्रारम्भिक छः रचनाएँ भोजपुरी गीतों व दो रचनाएँ लोकविधाओं पर समाश्रित हैं।

यह स्वात्मनिवेदन संस्कृतप्रतिभा के अङ्कः (जुलाई–सितम्बर 2016), उन्मेषः 60 में प्रकाशित हुआ।

6. प्रमाणिकाशतकम्– कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रमाणिकवृत्तों में उपनिबद्ध 104 पद्यों से युक्त 'प्रमाणिकाशतकम्' एक शतककाव्य है। भारतीय सन्तति का अपने सनातन जीवन–मूल्यों, आस्था के केन्द्रों, प्रेरणादायक धार्मिक–ग्रन्थों तथा ऐतिहासिक गुरुता से धीरे–धीरे विरत होने से उत्पन्न कवि की वेदना इस शतककाव्य में मुखरित हुई है।

इसका प्रकाशन संस्कृतप्रतिभा के अङ्कः (अक्टूबर–दिसम्बर 2016) उन्मेष : 61 में हुआ।

संस्कृत–नवगीतों में उल्लिखित सुभाषित, लोकोक्ति तथा मुहावरें–

1. वाग्वधूटी–

यश्चरत्यनारतं स एव विन्दते फलम्।

क्षणे क्षणे यन्नवतोपेतं तदेव रूपम्।

सत्यमेव जयते।

आकाशथूत्कृतैर्न किं हानिर्निजाभवेत्।

गृहे गृहे साधवो न वने–वने चन्दनम्।

चरन्वै निकामं यदा मध्वविन्दम्।

क्वचिदपिकपालिखलीकृतम् उपभुज्यतेऽथ विगर्ह्यते।

2. मृद्वीका

स्तन्यमाप्नोति बालो न किं रोदनैः।

आकाशगतं पुष्पम्।

क्व घटो ननु रज्जुगुणे त्रुटिते।

नहि किं भुवि कालवशं गमितम्।

तिमिङ्गिलो निगरति लघुमीनम्।

प्रतिमुण्डकं विभिन्नमतिर्गर्भिताऽग्रहैः।

3. श्रुतिम्भरा

गुण एव पूजाकारणं गुणिनां न लिङ्गं न च वयः।

अर्थोऽनुधावति सत्वरं येषाम्पुनर्वाचं सदा।

ध्वंसते शुष्ककण्ठः शुकः पञ्जरे, चिन्वते पितृपक्षे बलिं वायसा।

नयनासेचनकं कलयन्तः।

विषम्मानसे वाचि पीयूषधारा।

वृक्षे निशाविहारः सलिले च मत्स्यलाभः।

4. मधुपर्णी

तरणीयुगले संस्थाप्य पदौ, कामं शक्या न सलिलयात्रा।

उष्ट्राणां परिणये सर्दभा गायन्त्युत्सवगानम्।

सौधशृङ्गस्थोऽपि काको नैति तार्क्ष्यत्वम्।

हृदिस्थं कालकूटं यन्निगूह्योद्गिरसि पीयूषम्।

सौहृदे कुसुमादपि प्रचुरं मृदुत्वं मे शात्रवे वज्रादपि प्रचुरं दृढत्वं मे।

बालुकातस्तैलमुद्धर्तुं न किं जाने।

स्कन्धोपरि भुशुण्डीं निधाय गुलिकाप्रहारम्।

संसारं परित्यज्य संसारस्य रक्षा।

असकृन्नो सहतेऽनलदाहं हन्त काष्ठभाण्डम्।

5. अभिराजगीता

शठे शाठ्यमाधाय मित्रेषु मैत्रीम्।

तिमिङ्गिलो निगिरति लघुमीनम्।

न दैन्यं नैव चाऽपि पलायनम्।

वालुकातस्तैलमुद्घर्तुम्।

नाट्येऽवसिते शैलूषोऽपि त्यजति हैतुकं वेषम्।

♦ ♦ ♦ ♦

शोध—संक्षेपिका

निजाऽभ्यस्तमार्गे विरूढाश्मखण्डान्
अपाकर्तुमेव प्रयत्नानकार्षम्।
तदप्यात्तवैरैः सुहृद्भिर्न सोढं
परिव्रजानम्मे सदाऽऽतङ्कितं रे।।

शोध–संक्षेपिका

कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मकसंस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्

(2012 तमख्रिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे)

नाऽहं करोमि कवितामिह शारदैव
साऽऽत्मानमञ्जयति मत्कवनच्छलेन।
गन्धं तनोति जलजं न निजप्रभावै–
र्विस्फूर्जितं सकलमेव तदर्कलक्ष्म्याः।।

कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र की आत्मानुभूतिपरक इस उक्ति के अनुसार सुकवि की कवित्व–प्रतिभा सारस्वत परिस्फुरण–मूलक होती है और कवि साक्षात् माँ शारदा का वरदपुत्र। क्रान्तदर्शी कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा जब स्वर्णमय कलेवर से आवृत्त मिथ्या के भीतर स्थित अन्तः सत्ता का साक्षात्कार करती है तब वह कवि की संवेदनामूलक अजस्र काव्यधारा के रूप में प्रस्फुटित हो उठती है। चिन्तन एवं काव्य के सहज प्रस्फुटन की इस प्रक्रिया में कवि मानव हृदय से एकाकार होकर उसकी संवेदनाओं को महसूस करता है तथा उसके हृदय की गहराईयों तक जाकर व उसकी पीड़ाओं को यथोचित समाधान की दिशा देकर जीवन को आनन्दानुभूति से परिपूर्ण कर देता है और वस्तुतः काव्य का यही लक्ष्य है। कवि की हृदयानुभूति की शब्दार्थरूप सम्यक् अभिव्यक्ति सकल समाज के मूल स्वरूप को, उसकी पीड़ा को, उसके आचार–विचारों को, मनोभावों को, संवेदनाओं को प्रतिबिम्बित करती है, उनको समाधान की एक दिशा प्रदान करती है तथा भटकाव से हटाकर ध्येय मार्ग की ओर उन्मुख करती है। साथ ही कवित्व वैशिष्ट्य भी स्वतः साकार हो उठता है। इसलिए 'साहित्य समाज का दर्पण है' यह उक्ति पूर्णतः सत्य है।

ऋग्वेद की प्रथम ऋचा के आविर्भाव से अद्यावधि संस्कृत साहित्य सरिता सहज व सरल गति से प्रवाहमान होती हुई विश्वसाहित्य में अपना अप्रतिम स्थान बनाए हुए है। साथ ही महाकाव्य गीतिकाव्य, रूपक, कथा, आख्यायिका, प्रहसन, यात्रावृत्तान्त, नवगीत इत्यादि

विविध रूपों में प्रवाहमान होकर संस्कृत भाषा को समृद्ध तथा विविध रत्नों से सुसज्जित कर रही है। संस्कृत साहित्य के अवलोकन से प्रतीत होता है कि साहित्य सृजन की प्रक्रिया में पद्य साहित्य ही सर्वप्रथम सहज रूप से प्रस्फुटित हुआ है। भारतीय एवं भारतेतर साहित्य पर अपना व्यापक प्रभाव स्थापित करने वाले पद्य–साहित्य का विशाल संसार वैदिक काल से लेकर अद्यावधि अत्यन्त लोकप्रिय, स्तरीय, उपादेय एवं समृद्ध रूप में विराजमान है। इस लोकप्रियता और उपादेयता का प्रमुख कारण है–इसकी गेयता एवं लोकसम्पृक्ति। गेयतापूर्ण काव्य अर्थात् गीतिकाव्य के अंकुरण सर्वप्रथम हमें ऋग्वेद के उषस्–सूक्त की ऋचाओं में देखने को मिलते हैं। तत्पश्चात् युगानुकूल विभिन्न सोपानों को पार करते हुए तथा श्रीमद्भगवद्गीता में अपने औदात्य को दिखलाते हुए यह वर्तमान पड़ाव तक पहुँचा है। स्वतन्त्रता आन्दोलन से पूर्व पुनर्जागरण काल के आस–पास गीतिकाव्य के क्षेत्र में कुछ स्वरूपगत परिवर्तन देखने को मिले। गेयता, यथार्थबोध, संक्षिप्तता, अभिव्यक्ति की व्यञ्जकता, कथ्य की नवीनता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भाषा और शिल्प की नवीनता, बौद्धिकता एवं भावात्मकता का सुन्दर समन्वय इत्यादि मौलिक विशिष्टताओं के कारण आधुनिक काल तक आते–आते सन् 1950 के लगभग इसने अपनी एक अलग पहचान बनाना प्रारम्भ कर दिया। प्रबुद्ध पाठकों एवं सहृदय समीक्षकों की सहज दृष्टि से इस नव–आयामी गीत–धारणा को जो नूतन संज्ञा मिली उसी का प्रतिफल था 'नवगीत'।

शिल्प की दृष्टि से सर्वप्रथम संस्कृत में, किन्तु अभिधान की दृष्टि से सर्वप्रथम हिन्दी में नवगीत का अवतरण हुआ। संस्कृत में इसके प्रथम और सफल प्रयोक्ता आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जी माने जाते हैं। शास्त्री जी की परम्परा के प्रबल वाहक एवं अपनी रचनाओं की रसपेशलता, मधुरता, सहज व सरलता के कारण लोकप्रियता के शिखर पर आरुढ़ हैं– कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र। काव्य नाट्य, कथा, समीक्षा–काव्य की इन चारों विधाओं में समानगति से सर्जनारत कविवर मिश्र जी अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय के कालजयी गीतकार हैं। वाग्वधूटी, मृद्वीका, मधुपर्णी, श्रुतिम्भरा तथ अभिराजगीता कविवर विरचित इन नवगीत–संग्रहों में संग्रहीत रचनाओं की रसमाधुरी, भाषागत सरलता व सहजता, अभिनव बिम्ब–विधान व प्रतीक योजना एवं लोकानुरक्ति ने कवि को समकालीन रचनाकारों में श्रेष्ठत्व प्रदान किया है। अधुनातन विषयकलेवर से युक्त गीत–रचनाओं तथा अपने अद्भुत

शिल्प–विधान से कवि ने समकालीन समाज के विविध पक्षों को चित्रित किया है। कविवर मिश्र जी के इसी वैशिष्ट्य व कृतित्व से प्रभावित होकर मैंने उनकी नवगीत रचनाओं को अपने शोध–कार्य का विषय बनाया। 'कविवराभिराजराजेन्द्रमिश्रकृतनवगीतात्मक–संस्कृतकृतीनां समीक्षात्मकमध्ययनम्' (2012 तमख्रिस्ताब्दं यावद्रचितग्रन्थानां संदर्भे) शीर्षकाधारित इस शोधकार्य के अन्तर्गत मैंने कविवर द्वारा विरचित नवगीत रचनाओं में प्रतिबिम्बित कवि के जीवन दर्शन, काव्यगत वैशिष्ट्य, युगबोध एवं लोकचेतना, सामयिक समस्याओं व रचनाओं में निहित उनके समाधानों इत्यादि को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। 'दुस्तरं सागरं उडुपेन तितीर्षुः' सदृश मैंने पूरी गहनता एवं गम्भीरता के साथ उनकी नवगीत रचनाओं के विविध आयामों के साथ तादात्म्य स्थापित करने की कोशिश की है। 'आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्' की मनोस्थिति से युक्त होकर मैं विद्वज्जनों के श्रीचरणों में अपने इस शोध–प्रबन्ध को समर्पित करता हूँ। उपक्रम एवं उपसंहार को समाहित करते हुए कुल सात अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की अध्याययोजना निम्न प्रकार है–

कृतज्ञता–ज्ञापन

उपक्रम

प्रथम अध्याय – **कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जीवन–वृत्त एवं कर्तृत्व**

द्वितीय अध्याय– **अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों का पूर्ण परिचय एवं वस्तु–विश्लेषण**

तृतीय अध्याय – **मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों में वर्णित लोकचेतना**

चतुर्थ अध्याय – **मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों की आलंकारिकी समीक्षा**

पंचम अध्याय – **नवगीतात्मक संस्कृत–कृतियों में मिश्र जी का पाण्डित्य तथा नैसर्गिकी कवित्व–प्रतिभा**

उपसंहार

परिशिष्ट

उपर्युक्त अध्यायों व शीर्षकों के अन्तर्गत विवेच्य विषयों का संक्षिप्त प्रतिवेदन निम्न प्रकार है–

उपक्रम (भूमिका) को निम्न उपभागों में विभाजित किया गया है–

(क) संस्कृत साहित्य का महत्त्व एवं वर्गीकरण

(ख) गीतिकाव्य, भेद, वैशिष्ट्य एवं परम्परा

(ग) नवगीतः स्वरूप एवं परिभाषा

(घ) नवगीतः उद्भव एवं विकास

(ङ) पारम्परिक गीत, नयी कविता और गज़ल बनाम नवगीत : साम्य और वैषम्य

(च) आधुनिक संस्कृत गीत–परम्परा तथा प्रमुख प्रवृत्तियाँ

उपक्रम के अन्तर्गत वस्तुतः नवगीत के मूल स्वरूप, वैशिष्ट्य एवं सामाजिक उपादान परक महत्त्व को आत्मसात् करने के लिए संस्कृत साहित्य की महनीयता को रूपायित किया गया है। तत्पश्चात् संस्कृत साहित्य के वर्गीकरण को प्रस्तुत करते हुए संस्कृत गीतकाव्य, भेद, वैशिष्ट्य एवं परम्परा को स्पष्ट किया गया है। गीतकाव्य–परम्परा के विवेचन के प्रवाह में ही नवगीत के स्वरूप, उद्भव एवं विकास को विस्तृत रूप से समझाया गया है। साथ ही समकालीन विधाओं जैसे पारम्परिक गीत, नयी कविता और गज़ल के साथ नवगीत के साम्य एवं वैषम्य का भी सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। चूँकि नवगीत संस्कृत साहित्य की अभिनव काव्य–विधा है अतः युगानुकूल रचनाओं के भाव–बोध को समझने के लिए संस्कृत काव्यक्षेत्र में आधुनिकता की अवधारणा, आधुनिकाल के विभाजन–क्रम से आधुनिक संस्कृत गीत–परम्परा एवं उसमें निहित प्रवृत्तियों को सुस्पष्ट किया गया है। इस परम्परा के प्रबल स्तम्भ स्वरूप ध्वजवाही गीतकारों एवं उनकी प्रमुख रचनाओं का विवरण प्रस्तुत करते हुए नवगीत के वर्तमान पड़ाव तक पहुँचने की विकास–यात्रा को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

मानव मन की अदम्य अनुभूतियों की सुन्दर शब्दमयी अभिव्यक्ति ही काव्य है। काव्य के प्रतिमान समय के बदलते रहते हैं। बदलती अभिरूचि, बदलते युग व साहित्य के कारण साहित्य में भी परिवर्तन अपेक्षित हैं। काव्यशास्त्र का कोई भी प्रतिमान शाश्वत नहीं होता, परम्परागत नियमों में परिवर्तन होता रहता है अतः यह उसकी जीवन्तता का प्रतीक है।

आधुनिक युग में एक ओर तो संस्कृत काव्य प्राचीन रचना परिपाटी का अनुसरण कर रहा है तो दूसरी ओर कवियों की रचनाधर्मिता ने अपने को युगानुरूप साबित करने के लिये उस पारम्परिक सीमा रेखा से इतर अपना स्थान बनाया है। आज नये भावबोध और नयी शैली की रचनाएँ संस्कृत में प्रचुर मात्रा में सामने आयीं है। ऐसे ही युगानुकूल वैशिष्ट्य से परिपूर्ण अभिनव काव्य विधा है–नवगीत।

प्रथम अध्याय में कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी का जीवन–वृत्त एवं कर्तृत्व का संक्षिप्त परिचय है। इस अध्याय को व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के आधार पर दो खण्डों में विभाजित किया है। खण्डशः उपविभाग निम्नानुसार हैं–

(I) व्यक्तित्व–खण्ड

(क) जन्म–स्थान, जन्मकाल एवं वंशवृक्ष

(ख) विद्यार्थी–जीवन एवं शैक्षणिक उपलब्धियाँ

(ग) शैक्षणिक–प्रशासनिक दायित्व और कार्यक्षेत्र

(घ) विदेश–यात्रायें एवं वैदेशिक–सम्पर्क

(ङ) पुरस्कार एवं सम्मान

(च) अन्य भाषाओं में अनुदित अभिराज साहित्य

(II) कर्तृत्व–खण्ड (अभिराज–वाङ्मय परिचय–संस्कृत)

(क) महाकाव्य

(ख) खण्डकाव्य

(ग) नवगीत–संग्रह

(घ) गलज्जलिका–संग्रह

(ङ) नाटिका–नाटक

(च) एकांकी–संग्रह

(छ) कथा–संग्रह (कथनिका एवं लघुकथा)

(ज) बाल–साहित्य

(झ) समीक्षात्मक–साहित्य

(ञ) अनूदित एवं सम्पादित ग्रन्थ

(ट) पाठ्य–ग्रन्थ

संस्कृतेतर–अभिराजवाङ्मय (हिन्दी व भोजपुरी)

अप्रकाशित अभिराज–वाङ्मय

उपर्युक्त विवरणानुसार कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी के प्रारम्भिक जीवन के विविध आयामों को उपस्थापित करने का प्रयास किया है। गंगा–यमुना–सरस्वती की त्रिधारा से विभूषित तीर्थराज प्रयाग की भाँति कविवर मिश्र जी का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व भी संस्कृत, हिन्दी तथा लोक भाषा भोजपुरी की त्रिधारा से महनीय बन उठा है। उत्तरप्रदेश के जौनपुर जनपद में सई नई के तटवर्ती ग्राम द्रोणीपुर में वंश–परम्परा से देवीवाणी के समुपासक भभयास्पद मिश्र परिवार में पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र तथ श्रीमती अभिराजी देवी के मध्यम पुत्र के रूप में जन्मे कविवर मिश्र जी वर्तमान में साहित्य–शलाका पुरुष, त्रिवेणीकवि, अभिनव कालिदास इत्यादि उपाधियों व उपनामों से जाने जाते हैं। अपनी अल्पायु में ही पितृवियोग से संतप्त मिश्र जी का बाल्यकाल व प्रारम्भिक शिक्षा माँ की छत्रछाया में पैतृक गाँव में ही सम्पन्न हुई तथा उच्च शिक्षा अपने पितृव्य डॉ. आद्या प्रसाद मिश्र के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। पितृहीन शैशव से उपजी करुणा जब बालक राजेन्द्र मिश्र के अन्तर्मन में प्रस्फुटित हुई तो वह काव्य रूप में प्रवाहित होने लगी। अपने अनवरत व अथक स्वाध्याय तथा परिश्रम के कारण विभिन्न सोपानों व संघर्षों को पार करते हुए मिश्र जी वर्तमान में अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि है। काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा–साहित्य के इन चारों ही क्षेत्रों में समान गति से सर्जनारत कविवर मिश्र जी ने अपने पुष्कल एवं मानक साहित्य से संस्कृत साहित्य को अभूतपूर्व समृद्धि प्रदान की है।

जानकीजीवनम् और वामनावतरणम् दो विशाल महाकाव्य, सोलह खण्डकाव्य, पाँच नवगीत–संग्रह, चार गज़ल–संग्रह, तीन नाटक एवं नाटिका, नौ एकांकी–संग्रह, पाँच कथा–संग्रह तथा अनेक बालोपयोगी रचनाएँ उनके कर्तृत्व की महनीयता को प्रमाणित करती

है। इसके अलावा संस्कृत के अर्वाचीन समर्चकों के मार्गदर्शनार्थ लिखा गया अर्वाचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'अभिराजयशोभूषणम्' निश्चित रूप से उनकी 'अभिराजता' को सिद्ध करता है। अनेक समीक्षा ग्रन्थों व लेखों के प्रणयन, भाषेतर साहित्य के अनुवाद तथा अनेक संपादित ग्रन्थों से अपनी लेखनी को साधने वाले मिश्र जी ने हिन्दी व भोजपुरी भाषा में भी विविध विधाओं में अनेक रचनाओं की सर्जना की है। ध्यातव्य है कि मिश्र जी का जितना साहित्य अभी प्रकाशित है उससे कहीं अधिक लिपिबद्ध होकर प्रकाशन की बांट जोह रहा है। पारम्परिक व अभिनव काव्य–विधाओं में समान रूप से सर्जनारत कवि की अनवरत लेखनी नित्य नये आयाम स्थापित कर रही है। अतः कवि के व्यक्तित्व व कर्तृत्व को कुछ पन्नों व शोधपरक ग्रन्थों में समेटना मुश्किल नहीं, असंभव है। फिर भी स्वमत्यानुसार इनको यहाँ निरूपित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में अनुसन्धेय कविकृत संस्कृत नवगीत रचनाओं का विस्तृत परिचय एवं वस्तु–विश्लेषण किया गया है। कविवर विरचित वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी तथा अभिराजगीता, इन पाँच नवगीतात्मक संस्कृत कृतियों से संग्रहीत नवगीत रचनाओं में लोक के विविध विषयों व स्वरूपों को चित्रित किया है। अपने 54 सरस, सुबोध एवं समधुर गीतों से सुसज्जित नवगीत–संग्रह वाग्वधूटी में राष्ट्रप्रेम के हृदयानुरंजक चित्र हैं, प्रकृति की संश्लिष्ट योजना को रूपायित किया है तथा सामान्य लोक एवं मानवीय मनोभूमि के चित्र भरे पड़े हैं। उत्तरप्रदेश के पूर्वाञ्चलीय क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों कजरी (कजली), चैता, सोहर, कहरवा, नकटा, पचरा इत्यादि की मूल भावबोध के साथ संस्कृत में अवतारणा कविवर मिश्र जी की मौलिक सूझबूझ है। 53 नवगीतों व नमस्या, रूपश्रीः, ऋतुश्रीः, जिजीविषा, राष्ट्रश्रीः तथा प्रकीर्णम् इन छः खण्डों में विभाजित नवगीत–संग्रह 'मृद्वीका' में संकलित नवगीतों की प्रकृति एवं उनमें निहित कवि के भाव और संदेश कवि को लोकमंगल का समाराधक सिद्ध करते हैं। तृतीय नवगीत–संग्रह 'श्रुतिम्भरा' में कविवर द्वारा 1984 से 1989 के मध्य विरचित 37 संस्कृत गीत संग्रहीत है। समस्त गीत विषयवार पाँच भागों–संस्कृतध्वनि (सात गीत), राष्ट्रध्वनि (छः गीत), प्रवास ध्वनि (छः गीत), निसर्ग ध्वनि (नौ गीत) तथा आत्मध्वनि (नौ गीत) में विभक्त है। इस संग्रह का नाम 'श्रुतिम्भरा' भी अन्वर्थ प्रतीत होता है, क्योंकि इन गीतों के एक बार सुनने अथवा पढ़ लेने के उपरान्त

उनकी अनुगूँज कानों में निरन्तर गुँजायमान रहती है। इसके प्रारम्भ में कविवर ने 'मदीया काव्ययात्रा' शीर्षक से सोलह पृष्ठीय भूमिका लिखी है, जो अपने भावबोध के कारण सरस कविता ही बन उठी है। 'मधुपर्णी' मिश्र जी द्वारा 1989 ई. से 2000 ई. के मध्यवर्ती ग्यारह वर्षों में प्रणीत नवगीतों, गज़लों तथा छन्दोमुक्त कविताओं का संकलन है। कुल 68 गीतों का यह संकलन सहृदय पाठकों के सौविध्य को देखते हुए तीन भागों—गलज्जलिकाः, गीतयः तथा मुक्तछन्दान्सि में विभक्त है। प्रथम खण्ड में संग्रहीत 22 गज़लगीतियों में अद्भुत संवेदनात्मक वैविध्य विद्यमान है। गीतयः शीर्षक द्वितीय खण्ड में 28 वे नवगीत रचनाएँ हैं जो पारम्परिक गीतों की शैली व विविध मानवीय संवेदनाओं से युक्त हैं। अन्तिम खण्ड मुक्तछन्दांसि में 18 ऐसी छन्दोमुक्त, लम्बी भावप्रवण काव्याभिव्यक्तियाँ हैं, जो कि अनेक प्राचीन, ऐतिहासिक तथा साहित्यिक पात्रों पर आधारित है। 'अभिराजगीता' प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत पंचम एवं अभिनव नवगीत संकलना है। मानव जीवन के विविध पक्षों को मुखर करने वाली यह कृति मंगलगीतम्, स्वागतगीतम्, वागीश्वरीगीतम्, सुरभारतीगीतम्, राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (सम्पन्नराष्ट्रम्), राष्ट्रप्रशस्तिगीतम् (विपन्नराष्ट्रम्), भारतीयसंस्कृतिगीतम्, प्रकृतिविलासगीतम्, शिशुभावनागीतम् और प्रकीर्णम् इन दस भागों में विभक्त है।

तृतीय अध्याय में कविवर प्रणीत नवगीत रचनाओं के आधार पर कवि की लोकसंवेदना को पहचानने का उपक्रम है। लोकचेतना के विविध रूपों को निम्न शीर्षकों में निरूपित किया है—

(क) लोकचेतना से तात्पर्य तथा उसके विविध आयाम—इस शीर्षक में लोकशब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ को स्पष्ट करते हुए प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्यकारों स समीक्षकों की दृष्टि से लोक व चेतना दोनों शब्दों को परिभाषित किया गया है। लोकचेतना का स्वरूप लोक की भाँति ही व्यापक है फिर भी लोकचेतना के कुछ स्वरूपों को यहाँ निरूपित किया गया है।

(ख) सामाजिक चेतना – 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' इस लोकप्रसिद्धि के अनुसार एक साहित्यकार समाज को जैसा महसूस करता है वही उसके साहित्य में अथवा काव्य में प्रतिफलित होता है। समाज के प्रति संवेदनशीलता ही कवित्व का मूल है। कवि की नवगीतियों का मंथन कर उसी को यहाँ प्रस्तुत किया है।

(ग) राजनीतिक चेतना – राजनैतिक चेतना का समाज, संस्कृतिक तथा साहित्य से बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। समकालीन राजनीतिक घटनाक्रमों ने संस्कृत नवलेखन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। समूचे परिवेश के साथ ही लोकजीवन में भी साम्प्रदायिक विद्वेष, जातिगत–भेदभाव, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण इत्यादि का प्रमुख कारण राजनीतिक स्वार्थ ही है। कविवर मिश्र जी ने अपनी नवगीत रचनाओं में बड़ी ही मुखरता के साथ राजनीति और राजनेताओं के आचरण पर तीखा प्रहार किया है।

(घ) सांस्कृतिक चेतना – इस शीर्षक में संस्कृति एवं सांस्कृतिक चेतना का स्वरूप तथा क्षेत्र का प्रतिपादन किया गया है। संस्कृत साहित्य सनातन काल से सांस्कृतिक मूल्यों व सिद्धान्तों को सहेजे हुए है। संस्कृत नवगीतकार एवं प्रखर समीक्षक कविवर अभिराज जी भारतीय संस्कृति के प्रबल संवाहक एवं संरक्षक हैं। यही झलक इनके कर्तृत्व में भी दृष्टिगोचर होती है।

(ङ) आर्थिक चेतना – समकालीन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता, अमीरी–गरीबी, शोषण, भ्रष्टाचार इत्यादि ने एक संवेदनशील साहित्यकार व गीतकार होने के नाते कविवर मिश्र को बहुत अधिक प्रभावित किया है। एक ओर रात–दिन मेहनत करने के बावजूद दो–जून की रोटी जुटाने में भी असमर्थ तबका तो दूसरी तरफ बैठे–बैठे अपनी कुटिलताओं के कारण अन्य तबकों को चूस–चूस कर घर भरने में लगा वर्ग है। समाज की यही विषमता कवि के नवगीतों में द्योतित हुई है।

(च) दलित चेतना – प्रस्तुत शीर्षक में दलित एवं सर्वहारा वर्ग को परिभाषित करते हुए इसकी पीड़ा को कवि के नवगीतों में मिली आवाज से साक्षात्कार करवाया है।

(छ) नारी–चेतना – कविवर मिश्र प्रणीत नवगीतों में नारी–जीवन के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। साथ ही परम्परा से भिन्न नारी–हृदय की वेदना को चित्रित किया है तथा उसको नूतन दिशा प्रदान की है।

(ज) राष्ट्रीय चेतना–कविवर मिश्र जी की नवगीतात्मक संस्कृत रचनाओं में राष्ट्र–प्रेम, राष्ट्र–भक्ति, भाषा एवं संस्कृति प्रेम, परस्पर समन्वय की भावना इत्यादि को प्रबलता के साथ उद्दीप्त किया है। साथ ही राष्ट्र–विरोधी घटनाक्रम पर भी तीखा प्रहार किया है।

(झ) भाषागत चेतना–कविवर मिश्र जी देववाणी के समाराधक हैं। उनकी संस्कृत भाषा की महनीयता, भव्यता तथा लोक व्यवहारिकतापरक गीतियों के अलावा संस्कृत भाषा के साथ किये जा रहे उपेक्षणीय व्यवहार की द्योतक गीतियाँ नवगीत संकलनाओं में संग्रहीत हैं।

(ञ) पर्यावरण–चेतना–भारतीय संस्कृति में मानव जीवन और पर्यावरण के सह–अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। इस शीर्षक में पर्यावरण चेतना के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए कवि प्रणीत नवगीतों में पर्यावरण संरक्षण के प्रति कवि के मनोभावों को साकार करने का प्रयास किया है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत मिश्र जी की संस्कृत नवगीत रचनाओं की निम्न उपशीर्षकों के आधार पर आलंकारिकी समीक्षा की गई है–

(क) समीक्षा अथवा समालोचना से तात्पर्य

(ख) रस–निष्पत्ति

(ग) छन्द–योजना

(घ) अलंकार–योजना

(ङ) रीति–संघटना

(च) भाषागत वैशिष्ट्य

(छ) प्रकृति–चित्रण

अध्याय के प्रारम्भ में समीक्षा अथवा समालोचना शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ की विवेचना की है। यहाँ आलोचना से तात्पर्य है किसी साहित्यिक रचना की अच्छी तरह परीक्षा करके उसके रूप, रस, गुण और अर्थ की व्यवस्था का निर्धारण करना। इस विषय में डॉ. हर्षदेव माधव जी लिखते हैं कि– "कवि अगर बत्तीस लक्षणों वाला पुरुष हो तो विवेचक छत्तीस लक्षण वाला होना चाहिए।" किन्तु वैसे सामर्थ्य से हीन मैंने मेरी अल्पमति से मिश्र की नवगीत रचनाओं का समालोड़न करने की कोशिश की है। कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी सहज प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं। उनकी काव्यरचनाओं में मौलिकता का वैशिष्ट्य समाहित है तथा उनकी कविताओं में विश्वजनीन नवरस विद्यमान है। गीतरचनाओं के

वर्ण्य–विषयानुरूप प्रायः सभी रस गीतों की रसपेशलता को बढ़ा रहे हैं किन्तु नवगीत के शैल्पिक वैशिष्ट्यानुसार करुण, अद्भुत, वीर, वात्सल्य तथा शृङ्गार की सुषमा सहज बोध्य है। लोकगीत विधाओं पर समाश्रित रचनाओं में शृंगार के विविध रूपों, सामाजिक विषम स्थिति के चित्रण में करुणा, क्षोभ, उलाहना इत्यादि भावों, देवस्तुतिपरक वन्दनाओं में शान्त एवं भक्तिरस की अद्भुत छटा देखने को मिलती है।

कविवर मिश्र जी की नवगीत रचनाएँ पारम्परिक व अर्वाचीन छन्दोविधाओं में गुम्फित है। विशेषतः पूर्वाञ्चलीय लोकगीतों कजरी, चैत्रक (चैता), कहरवा, सोहर, नकटा, पचरा समाश्रित नवगीतियाँ पाठक व श्रोता को अनायास ही आकृष्ट कर लेती हैं। इसके अलावा हिन्दी छन्दों–दोहा, सोरठा, घनाक्षरी, कवित्त, सवैया तथा उर्दू व फारसी गज़ल विधाओं का संस्कृत–समायोजन तो बहुत ही उद्भुत है। साथ ही लोरियों की मधुर ध्वनियाँ सहृदयचित्त को आनन्दानुभूति के शिखरों की सैर करवाती है।

नवगीत की सरलता, सहजता व मधुरता ही इसे समकालीन विधाओं में विशिष्टता प्रदान करती है। तदनुसार कवि की गीतियाँ वैदर्भी व पाञ्चाली मार्ग पर समारूढ़ दिखाई देती हैं। साथ ही अनुप्रास विशेषतः अन्त्यनुप्रास, उपमा, रूपक, यमक, मालोपमा आदि अलंकारों से भी विभूषित है। पौराणिक, ऐतिहासिक, वैदिक ज्ञान से परिपूर्ण बिम्ब–विधान एवं प्रतीक योजना, प्राचीन कवियों की प्रसिद्ध सूक्तियों, सुभाषितों एवं लोकप्रचलित मुहावरों व लोकोक्तियों का प्रयोग, नूतन एवं लोकप्रचलित शाब्दिक योजना, लालित्यपूर्ण पदबन्ध तथा गेयता इन नवगीतों की भाषा को चित्ताकर्षक बनाती है। चूँकि नवगीत अपने उपादान अपने आस–पास के वातावरण व लोक से ग्रहण करता है। अतः कवि के गीतों में विशेषतः तीज–त्योहारों, ऋतुओं, नदियों, पर्वतों, खेत–खलिहानों, दिन, रात, प्रभात इत्यादि का सुमनोहारी व आलंकारिक वर्णन गीतों में देखने को मिलता है।

पंचम अध्याय में संस्कृत नवगीत रचनाओं में परिलक्षित कविवर मिश्र जी के पाण्डित्य तथा नैसर्गिकी कवित्व प्रतिभा को निम्न बिन्दुओं में निरूपित किया गया है–

(क) शास्त्रीय ज्ञान

(ख) दार्शनिक ज्ञान

(ग) व्यावहारिक ज्ञान

(घ) व्याकरणिक ज्ञान

यहाँ अध्याय के प्रारम्भ में कवि, काव्य, कवित्व प्रतिभा इत्यादि शब्दों के तात्पर्य को विभिन्न प्राचीन, अर्वाचीन साहित्यिक एवं काव्यशास्त्रीय उद्धारणों के द्वारा प्रतिपादित किया है। कवि के कर्तृत्व में लोक के साथ–साथ स्वयं कवि के व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप भी प्रतिबिम्बित होता है। कवि की रचनाधर्मिता, कवित्व–शक्ति, विविध शास्त्रीय ज्ञान, स्वाध्याय इत्यादि सब कुछ यहाँ परिलक्षित होता है। कविवर मिश्र जी की नवगीत रचनाएँ कवि की प्रखर–प्रज्ञा एवं नवनवोन्मेषशालिनी कवित्व–प्रतिभा की प्रबल साक्षी हैं। उनके गीतों में पंक्तिबद्ध होकर बैठा हुआ वैदिक ज्ञान, पौराणिक साहित्य के दृष्टान्त, विविध दार्शनिक व औपनिषदिक सिद्धान्तों व वाक्यों का गुम्फन, लोक व्यवहार में प्रचलित लोकोक्ति व मुहावरे, प्राक्तन कवियों व शास्त्रों के लोकप्रसिद्ध वाक्यों का समायोजन, लोकगीतविधाओं की व्याकरणपरक व्युत्पत्तियाँ तथा व्याकरण के सूत्रों, सन्धि, समासों, विभक्तियों व कारकों की योजना तथा वास्तु, ज्योतिष, नक्षत्र तथा विविध शास्त्रीय ज्ञान से परिपूर्ण सटीक बिम्ब–विधान व प्रतीक–योजना इत्यादि सब सहृदय चित्त को अचम्भित कर देते हैं। पाठक एक पल ठहर सा जाता है। गीतियों की पंक्तियों से कवि की विद्वता साफ झलकती है। कितना स्वाध्याय किया होगा? इसके पीछे कितना अभ्यास किया होगा? ये सभी प्रश्न एक–एक कर पाठक के मानस पटल पर उद्भुत व विलोपित होते रहते हैं। कवि के इस विलक्षण कवित्व–शक्ति के निदर्शन स्वरूप उनकी रचना–पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत हैं–

वृथा जल्पन्ति पण्डितमानिनो जगतां नियन्तारः
अहं पुनरात्मन्थनयैव वचसां सङ्गतिं जाने।।

भवेद् वेदान्तिनां भ्रान्ति क्वचिद्रज्जौ भुजङ्गानाम्
त्वदीये बाहुपाशे भ्रान्तिकोटिनिराकृतिं जाने।।

न मे व्यङ्ग्ये, न लक्ष्ये, नापि वाच्यार्थे मनागास्था
प्रिये! तव वल्गुविब्बोकैः पदानामन्वितिं जाने।।

निपीतं खफछठथचटतवकपयशषसरहलिति बाल्ये
परं स्त्रीप्रत्ययैः शब्दानुशासननिष्कृतिं जाने।।

उपसंहार रूप समापन खण्ड के अन्तर्गत अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के पुरोधा एवं अथक लेखनी के धनी कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र प्रणीत एवं अनुसन्धेय नवगीत रचनाओं के शोधगत निष्कर्षों को सार रूप में प्रस्तुत किया है। साथ ही शोधाध्ययन की सीमाओं का आकलन कर संभाव्य दिशाओं का अनुमान भी प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध यह सिद्ध करता है कि नवगीतकार मिश्र जी की नवगीत रचनाओं का वैशिष्ट्य ही उनका व्यक्तित्व है। क्योंकि किसी भी कवि के व्यक्तित्व के विविध आयामों का सर्वाङ्गीण परिचय उनकी काव्य–सर्जना में तथा उसके सम्यक् अनुशीलन से ही हो पाता है। कविवर मिश्र श्री अपने व्यक्तिगत जीवन में जितने सरल, सहज, व्यवहारशील, मधुरभाषी, कण्ठीय मधुरता व सरसता से परिपूर्ण, विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न तथा अथक परिश्रमी महान् व्यक्तित्व के धनी हैं। इन सबसे बढ़कर उनकी सबको आगे बढ़ाने की भावना एवं सबको अपने आत्मीयतापूर्ण सम्बोधन 'बन्धु!' की मृदुता सबको बरबस ही आकृष्ट कर लेती है। लोककल्याण की भावना से परिपूर्ण होकर सबके साथ मित्रता एवं आत्मीयतापूर्ण व्यवहार उनको विशिष्ट बनाता है। जिससे एक बार संवाद हुआ वह हमेशा के लिए उनका अनुगामी बन जाता है। कवि के व्यक्तित्व में कूट–कूट कर समाहित उपर्युक्त सभी वैशिष्ट्य उनकी नवगीत रचनाओं में पंक्तियाँ बनकर सुधीजनों के समक्ष समुपस्थित है। यूँ कह सकते हैं कि उनका कर्तृत्व उनके व्यक्तित्व का सच्चा प्रतिबिम्ब है।

लोकचेतना की दृष्टि से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उनकी नवगीत रचनाओं लोकचेतना की सच्ची संवाहक है। नवगीत के शैल्पिक वैशिष्ट्य के अनुरूप कवि ने अपने निजी, सामाजिक एवं सार्वजनिक जीवन में जो भोगा, जो अनुभव किया, जो प्रत्यक्षतः देखा व सुना, जो उनकी संवेदना का विषय बनकर उनके हास–शोक का कारण बना, प्रायः वही उनकी गीत रचनाओं में द्योतित व चित्रित हुआ है। शोधगत उद्देश्यों व लक्ष्यों को सुस्पष्ट करती कवि की कुछ पंक्तियाँ समुद्धरणीय हैं–

निजाभ्यस्तमार्गे विरुढाश्मखण्डान्
अपाकर्तुमेव प्रयत्नानकार्षम्।
तदप्यात्तवैरैः सुहृद्भिर्न सोढं
परिव्राजनम्मे सदाऽऽतङ्कितं रे।।

कवि की नवगीतियों का शैल्पिक वैशिष्ट्य अद्भुत व विलक्षण है क्योंकि मिश्र जी केवल नवगीतकार ही नहीं हैं अपितु वे अद्भुत प्रतिभासम्पन्न कवि, सतत एवं अथक लेखनी के कुशल लेखक, अनवरत साहित्य साधना में लीन संवेदनशील साहित्यकार एवं कथाकार, समाज के नानारूपों के कुशल चितेरे व रूपककार तथा सूक्ष्मदृष्टि से सम्पन्न प्रखर समीक्षक भी है। कवि का यह बहुआयामी व्यक्तित्व स्वतः उनके लेखन व सृजन का हिस्सा बन जाता है और यही उनकी सर्जना का वैशिष्ट्य भी है।

परिशिष्ट भाग के अन्तर्गत विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित कविवर प्रणीत नूतन रचनाओं, लोकगीतियों आदि का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत है। साथ ही अनुसन्धेय नवगीत रचनाओं में प्रयुक्त सुभाषितों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों को भी संकलित करने का प्रयास किया है।

कविवर विरचित नवगीत रचनाओं का यथाशक्ति समालोचन कर यह शोध–कार्य सुधीजनों व विद्वज्जनों के समक्ष अवलोकनार्थ एवं अनुमोदनार्थ सादर प्रस्तुत है। रचनाओं के विभिन्न पक्षों को छूने का शोधार्थी द्वारा भरपूर प्रयास किया गया है फिर भी यदि कोई त्रुटि रहती है या कोई पक्ष अनछुआ रहता है तो शोधार्थी की अल्पज्ञता ही इसका कारण है। अन्त में मैं यही कहना चाहूँगा कि यदि इस कार्य में मैं किंचिंन मात्र भी सफल रहा तो स्वयं को धन्य अनुभव करुँगा।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि कविवर मिश्र जी भाव व शिल्प के कुशल चितेरे हैं। उनकी काव्य–साधना एवं उनका बहुआयामी व्यक्तित्व समकालीन रचनाकारों, सुधीजनों व संस्कृत–साधकों के लिए मार्गदर्शक का काम करेंगे। उनकी रचनाओं के विविध पक्षों पर शोध की बहुआयामी संभावना व आवश्यकता है।

♦ ♦ ♦ ♦

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

अभिराज—वाङ्मय

सहायक—ग्रन्थ

व्याकरण एवं कोश ग्रन्थ

शोध—पत्रिकाएँ

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

अभिराज वाङ्मय–

1. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, जानकीजीवनम्, वैजयन्त प्रकाशन, 8, बाघम्बरी मार्ग, भरद्वाजपुरम्, इलाहाबाद–6, 1988
2. वामनावतरणम्, अक्षयवट प्रकाशन, 26, बलराम हाउस, इलाहाबाद, 1994
3. आर्यान्योक्तिशतकम्, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1975
4. नवाष्टकमालिका, ––"––, 1976
5. पराम्बाशतकम्, ––"––, 1981
6. शताब्दीकाव्यम्, ––"––, 1987
7. अभिराजसप्तशती, ––"––, 1987
8. धर्मानन्दचरितम्, ––"––, 1992
9. पञ्चकुल्या, ––"––, 1993
10. करशूलनाथमाहात्म्यम्, ––"––, 1996
11. कस्मै देवाय हविषा विधेम, ––"––, 1996
12. अरण्यानी, ––"––, 1999
13. संस्कृतशतकम्, ––"––, 1999
14. अभिराजसहस्रकम्, ––"––, 2000
15. मृगाङ्कदूतम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2003
16. चर्चरी (स्फुटकाव्य–संग्रह), ––"––, 2004
17. जवाहरप्रशस्तिकाव्यम्, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
18. मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्, श्री भद्रङ्करोदय शिक्षण ट्रस्ट, गोधरा (नन्दनवनकल्पतरु–प्रकाशन–4), 2008
19. वाग्वधूटी, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978
20. मृद्वीका, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985
21. श्रुतिम्भरा, ––"––, 2004
22. मधुपर्णी, ––"––, 2000
23. अभिराजगीता, श्री भद्रङ्करोदय शिक्षण ट्रस्ट, गोधरा (नन्दनवनकल्पतरु–प्रकाशन–6), 2011
24. कनीनिका, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008
25. मत्तवारणी, ––"––, 2001
26. शालभञ्जिका, ––"––, 2007

27. हविर्धानी, ——"——, 2009
28. प्रमद्वरानाटिका, ——"——, 1984
29. विद्योत्तमानाटिका, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–7, 1992
30. प्रशान्तशघवम्, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008
31. लीलाभोजराजम्, ——"——, 2010
32. नाट्यपञ्चगाव्यम्, ——"——, 1971
33. अकिञ्चनकाञ्चनम्, ——"——, 1974
34. नाट्यपञ्चामृतम्, ——"——, 1977
35. चतुष्पथीयम्, ——"——, 1983
36. रूपरुद्रीयम्, ——"——, 1986
37. नाट्यसप्तपदम्, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, 1996
38. नाट्यनवरत्नम्, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007
39. नाट्यनवग्रहम्, ——"——, 2007
40. इक्षुगन्धा, ——"——, द्वितीय संस्करण, 2010
41. राङ्गडा , ——"——, 1992
42. पुनर्नवा, ——"——, 2008
43. चित्रपर्णी, ——"——, 2000
44. छिन्नमस्ता, ——"——, 2010
45. कौमारम्, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2009
46. अभिनवपञ्चतन्त्रम्, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009
47. कान्तारकथा (The Jungle Episode), ——"——, 2009
48. अभिराजयशोभूषणम् (अभिकाव्यशास्त्रम्), ——"——, 2007
49. शास्त्रालोचनम्, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995
50. समीक्षासौरभम्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2003
51. बालीद्वीपे भारतीया संस्कृतिः, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, जवाहरनगर, दिल्ली–7, 2009
52. संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1985
53. सुवर्णद्वीपीय रामकथा, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 1996
54. भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीक : बालीद्वीप, ——"——, 1998
55. मणिकाञ्चन, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1991
56. सप्तधारा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2004
57. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010

58. शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008
59. स्वाध्यायपर्व, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली, 2009
60. सेजराह कसुसास्त्रान् संसकिर्त, नवच्छाया मुद्रणालय, डेनपसार (बालीद्वीप), 1988
61. विंशतिशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम्, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002
62. रामायणककविन्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1995
63. रसों की संख्या, ––"––,, 2007
64. महालक्ष्मीमुक्तिसंवादः, डेवलपमेण्ट एजूकेशन इण्टरनेशनल सोसाइटी, पुणे (महाराष्ट्र), 2010
65. देववाणीसुवासः, देववाणी परिषद्, वाणीविहार, नई दिल्ली, 1993
66. प्रतानिनी, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996
67. विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामृतम्, दिल्ली संस्कृत अकादमी, 2000
68. संस्कृतवाङ्मय में हिमाचल, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009
69. डॉ. राजेश कुमारी मिश्र 'राजश्री', त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005
70. साहित्यकल्पतरु अभिराज राजेन्द्रमिश्र, वही, 2010
71. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, दो पात नींबू : तीन पात अमोला, ––"––, 1968
72. मुक्तधारा, कोटद्वार (पौड़ी–गढ़वाल), 1972
73. सपनों में डूब गया मन, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
74. पलकों के बन्द द्वार, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1990
75. तटस्था, रत्ना पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, 2002
76. वेदना, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966
77. पनघट, ––"––, 1967
78. मुक्तिदूत, अशोकप्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, 1975
79. गृहत्याग, ––"––, 1975
80. पूर्णकाम, ––"––,, 1975
81. देवरा हजारी, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994
82. रक्तवैतरणी, शारदा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2005
83. विधवा, ग्रन्थाकार प्रकाशन, 1975
84. पढ़ो और बनो, अशोक प्रकाशन मन्दिर, चाहचन्द, इलाहाबाद, 1975
85. नया विहान, हरि प्रकाशन, कर्नलगञ्ज, इलाहाबाद, 1976
86. रक्ताभिषेक, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985
87. फगुनी बयार, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004

सहायक ग्रन्थ

88. सं. डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, श्रीमद्राधावल्लभत्रिपाठिप्रणीतम् अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2009
89. आचार्य हर्षदेव माधव, वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, (सं. डॉ. प्रवीण पण्ड्या), राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली, 2011
90. डॉ. मजुलता शर्मा, आधुनिक संस्कृत काव्य की परिक्रमा, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2011
91. सं. डॉ. मञ्जुलता शर्मा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य : दशा एवं दिशा, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2004
92. राधावल्लभ त्रिपाठी, नया साहित्य एवं नया साहित्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
93. प्र. सं. श्री बलदेव उपाध्याय, सं. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत–वाङ्मय का बृहद् इतिहास (चतुर्थ–खण्ड), उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1997
94. प्रधान सं. श्री बलदेव उपाध्याय, सं. जगन्नाथ पाठक, संस्कृत–वाङ्मय का बृहद् इतिहास (सप्तम–खण्ड), उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 2000
95. वही, सं. स्व. आचार्य करुणापति त्रिपाठी, संस्कृत–वाङ्मय का बृहद् इतिहास (अष्टम–खण्ड), वही, 2001
96. सं. प्रोफेसर श्रीकृष्ण शर्मा, संस्कृत, संस्कृति और प्रशासन, राजगङ्गा चैरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर (राजस्थान), 2011
97. कलानाथ शास्त्री, आधुनिक–संस्कृत–साहित्येतिहासः, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2011
98. डॉ. रामकुमारदाधीचः, आधुनिकसंस्कृतसाहित्येतिहासः, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2011
99. आचार्य लोकमणि दाहालः, संस्कृतसाहित्येतिहासः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2005
100. डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल, संस्कृत साहित्य का इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, नवीन संस्करण
101. डॉ. सत्यनारायण पाण्डेय, संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, नवीन संस्करण
102. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001
103. डॉ. विश्वनाथ शर्मा, संस्कृत साहित्य का इतिहास, आदर्श प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर–3

104. पी.वी. काणे, अनु. डॉ. इंद्रचंद्र शास्त्री, संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2007
105. आचार्य विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, डॉ. निरूपण विद्यालङ्कार, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2004
106. आचार्य मम्मट, काव्यप्रकाश, स्व. आचार्य विश्वेश्वर, सं. डॉ. नरेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005
107. आचार्य आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, डॉ. श्रद्धा सिंह, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2005
108. डॉ. सुदेश आहुजा, अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, 2017
109. डॉ. विक्रमजीत, वर्णोच्चारण शिक्षाशास्त्र, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2014
110. सं. डॉ. सत्यप्रकाश दुबे, स्मृतिधर्मशास्त्रीय विधिमीमांसा, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध–केन्द्र, मेहरानगढ़, जोधपुर, 2011
111. डॉ. किरण टण्डन, भारतीय संस्कृति, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1994
112. डॉ. यादराम मीणा, भवभूति और जीवन–मूल्य, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2012
113. डॉ. नन्दिता सिंघवी, वेदों में पर्यावरण चेतना, सोनाली पब्लिकेशन, जयपुर–6, 2004
114. डॉ. इन्दीवर पाण्डेय, नवगीत में लोकचेतना, ग्रीन लीफ पब्लिकेशन, बुलानाला, वाराणसी, 2009
115. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा, नवगीत संवेदना और शिल्प, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 1993
116. केशव मुसलगाँवकर, आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004
117. दण्डी, काव्यादर्श, आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1991
118. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् 2042
119. धनञ्जय, दशरूपक, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1961
120. आचार्य भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1963
121. डॉ. राममूर्ति शर्मा, वैदिक साहित्य का इतिहास, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली, 1987
122. डॉ. कृष्ण कुमार, अलंकार शास्त्र का इतिहास, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995
123. बाबूराम त्रिपाठी, काव्य दीपिका (अष्टम शिखा), महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा–2, 1997–98

124. महाकवि कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, अभिषेक प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर–3, निर्णय–सागर संस्करण के पाठानुसार
125. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, 22–ए सरोजिनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद, 2001
126. गुलाबराय, अध्ययन और आस्वाद, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2017
127. मैनेजर पाण्डेय, आलोचना की सामाजिकता, वही, 2008
128. डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, भारतीय संस्कृति के तत्त्व, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2013
129. रुद्रट, काव्यालंकार, निर्णय सागर, मुम्बई, 1933
130. आचार्य राजशेखर, काव्यमीमांसा, डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2014
131. दुष्यन्त कुमार, साये ये धूप के, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2008
132. डॉ. अरविन्द कुमार, सम्पूर्ण हिन्दी व्याकरण और रचना, लूसेन्ट पब्लिकेशन, पटना, 2010
133. प्रो. उमाशंकर शर्मा, सर्वदर्शन संग्रह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1964
134. वाल्मीकि, रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, 1980
135. धनञ्जय, दशरूपक, डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, दुर्गा ऑफसेट प्रिण्टर्स, गढ़रोड, मेरठ, 1979
136. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, डॉ. अर्कनाथ चौधरी, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2005
137. ––"––, रघुवंशम्, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 2002
138. श्रीविष्णुशर्मा, पञ्चतन्त्रम्, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006
139. 108 उपनिषद्, सं. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2010
140. श्रीमद्भगवद्गीता (तत्त्वविवेचनी हिन्दी–टीका), जयदयाल गोयन्दका, गीताप्रेस गोरखपुर
141. ब्रजमोहन चतुर्वेदी, सांख्यकारिका, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2004
142. वेदव्यास, महाभारत, मोतीलाल जालान, गीताप्रेस गोरखपुर संवत् 2027
143. भर्तृहरि, नीतिशतक, महाबलशास्त्री की टीका, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, सं. 1938
144. डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय, भारतीय दर्शन, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1986
145. जयदेवकृतं गीतगोविन्दं (अष्टपदी) http://sanskritdocuments.org
146. पण्डितराज जगन्नाथ, रसगंगाधर (संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद) पं. बद्रीनाथ झा, पं. मदन मोहन झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2011
147. महाकवि भास, स्वप्नवासदत्तम्, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, 2000–2001

148. अन्नंभट्ट, तर्कसंग्रह, पं. चण्डीप्रसाद आचार्य, कॉलेज बुक डिपो, जयपरु–2
149. सं. चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, सूक्ति कोष सुभाषित प्रदीप, राजस्थान पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2002
150. अथर्ववेद संहिता, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा
151. ऋग्वेद, अपौरुषेय, स्वाधाय मंडल, पारडी, सं. 1967
152. सामवेद, अपौरुषेय, संस्कृति संस्थान, बरेली, सं. 1965
153. यजुर्वेद, अपौरुषेय, संस्कृति संस्थान, बरेली, सं. 1965
154. अग्निपुराण (काव्यशास्त्रीय भाग) श्रीरामलाल वर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली सं. 1950
155. पातञ्जल योगदर्शन, व्याख्या पं. मनोहर लाल शर्मा, पं. रामविलास अग्रवाल, श्रीकृष्ण कम्पनी, कलकत्ता, 1987
156. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, तृतीय संस्करण, 2006
157. डॉ. सत्येन्द्र, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, शिव लाल एण्ड कम्पनी, आगरा
158. डॉ. देवराज, साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1977
159. रैल्फ फॉक्स, उपन्यास और लोकजीवन, अनु. नरोत्तम नागर, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 1957
160. डॉ. रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981
161. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र.सं.–वि.सं. 2041
162. डॉ. सूरज बड़जात्या, दलित सत्ता का सौन्दर्य शास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली, 2010

व्याकरण एवं कोश–ग्रन्थ

163. पाणिनी, अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, श्री नारायण मिश्र, गोकुलदास संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1971
164. नारायणराम आचार्य, अमरकोश, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1995
165. श्री वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, श्री महेश सिंह कुशवाहा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004
166. भीमसेन शास्त्री, लघुसिद्धान्तकौमुदी, भैमी व्याख्या, भैमी प्रकाशन, 537, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली, 1988
167. डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल, संस्कृत व्याकरण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2011
168. यास्क, निरुक्तम्, डॉ. देवेन्द्रनाथ पाण्डेय, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2011

169. जनार्दन हेगड़े, शुद्धिकौमुदी, संस्कृत–भारती, बेङ्गलूरु, 2012
170. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, अशोक प्रकाशन, दिल्ली–6, 2006
171. डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, संस्कृत व्याकरण, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ–2, 2015
172. ––"––, संस्कृत रचनानुवादप्रभा, वही, नवीनतम संस्करण
173. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, प्रौढ़ रचनानुवाद कौमुदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2004
174. ––"––, रचनानुवादकौमुदी, वही, 1998
175. भार्गव कन्साईज इंग्लिश डिक्सनरी (एंग्लो–हिन्दी), भार्गव बुक डिपो, वाराणसी, 2005
176. सं. पं. रामचन्द्रझा, रूपचन्द्रिका (शब्द–धातुरूपाणां संग्रहः), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, वि.सं. 2061
177. कॉम्पेक्ट ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, वाई.एम.सी.ए. लाईब्रेरी बिल्डिंग, जयसिंह रोड़, न्यू देहली, 2003
178. मानक हिन्दी–अंग्रेजी कोश, डॉ. एस.एस. गुप्ता, डॉ. सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली 2004
179. इल्यूस्ट्रेटेड ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, पेंग्विन बुक्स, इण्डिया, 2007
180. चक्रधर नौटियाल 'हंस' शास्त्री, बृहद्–अनुवाद–चन्द्रिका, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1999

शोध–पत्रिकाएँ

181. संस्कृतप्रतिभा, साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह रोड़, नई दिल्ली
182. दृक्, दृग्–भारती, इलाहाबाद–211016 (उ.प्र.)
183. सागरिका, सागरिका समिति, संस्कृत–विभाग, डॉ. हरीसिंहगौर विश्वविद्यालय, सागर–470003 (म.प्र.)
184. पद्यबन्धा, वीणापाणि संस्कृत समिति, भोपाल (म.प्र.)
185. कथासरित्, कथाभारती, 57, वसन्तविहार, झूंसी, इलाहाबाद–211019 (उ.प्र.)
186. भारती, भारती भवन, बी–15, न्यू कॉलोनी, जयपुर (राज.)
187. अर्वाचीन संस्कृतम्, देववाणी परिषद्, दिल्ली
188. स्वरमङ्गला, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर (राज.)
189. संस्कृतमञ्जरी, दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
190. विश्व–संस्कृतम्, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध–संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर–14621 (पंजाब)

191. संस्कृत–विमर्श, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली–110058
192. सांस्कृतिक–प्रवाह, अखिल भारतीय संस्कृति समन्वय संस्थान, नन्दपुरी, प्रतापनगर, जयपुर–205033 (राज.)
193. पेनेसिया इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल, पेनेसिया रिसर्च फाउण्डेशन, त्रिवेणी नगर, जयपुर–302018 (राज.)
194. शब्दार्णव, समन्वय पब्लिशिंग हाउस, मुजफ्फरपुर, बिहार
195. वेदाञ्जलि, वैदिक एजूकेशनल रिसर्च सोसाइटी, वाराणसी
196. मधुमती, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर (राज.)
197. सम्मेलन पत्रिका, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 12 सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद–3 (उ.प्र.)
198. कंचनलता, खेतड़ी नगर (जिला–झुंझुनू), राजस्थान
199. युद्धरत आम आदमी, जनवादी लेखक संघ, बिहार

♦ ♦ ♦ ♦

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका /पुस्तक का नाम	ISBN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय/ अन्ताराष्ट्रिय
01.	मधुपर्ण्या प्राकृतिक–पर्यावरणम्	2016	PANACEA INTERNATIONAL Research Journal	2347–369X	संस्कृत विशेषांक Volume-4, No. 1 जुलाई–सितम्बर, 2016	अन्ताराष्ट्रिय
02.	अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीतों में मानवाधिकार	2017	शब्दार्णव	2395–5104	Volume-6, Part-II जुलाई–दिसम्बर, 2017	अन्ताराष्ट्रिय

ISSN 2347-369X

panacea INTERNATIONAL Research Journal

(A Quarterly Bilingual Inter-disciplinary Referred Journal)

संस्कृत विशेषांक

Volume-4, No. 1

जुलाई-सितम्बर, 2016

Honorary Editor-in-Chief
Dr G L Sharma

PANACEA Research Foundation
www.journalpanacea.in

अनुक्रमणिका

1. संस्कृतसाहित्ये दलितचेतना 6
• डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्याय:
2. वैयाकरणसिद्धान्तभूषणसारस्थमङ्गलाचरणस्य व्याख्यानामध्ययनम 15
• डॉ. शशिकुमार शर्मा
3. वैदिकवाङ्मये पापविमर्शः - एकं पर्यालोचनम 20
• डॉ. आशुतोषपारीक:
4. होराशास्त्रस्यानुसारं द्वादशभावविचार: 26
• डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा
5. शिक्षामनोविज्ञाने अधिगमस्य प्रशिक्षणस्य च स्थानान्तरणम 31
• डॉ. (श्रीमती) रेखा शर्मा
6. पुराणानां महिमा 35
• डॉ. महिमा बासल्ल
7. मधुपर्ण्यां प्राकृतिकपर्यावरणम् 39
• समयसिंह: मीणा
8. स्वातन्त्र्योत्तरभारते सीतामाश्रित्यरचितानां काव्यानां परिचय: 46
• डॉ. प्रहलाद कुमार शर्मा
9. रघुवंशमहाकाव्ये कौटिलीयार्थशास्त्रीयतत्त्वानि 53
• डॉ. हेमराज शर्मा
10. ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये पादसङ्गतिः 56
• पी.आर. वासुदेवन
11. चतुर्वर्गसाधने सङ्गीतकलाया: भूमिका 62
• शैलेश जैमन
12. सूर्यग्रहणे लम्बनविमर्श: 66
• निखिलेशशर्मा
13. महिमभट्टप्रदर्शित-द्विविधानौचित्य-समीक्षणम् 72
• हार्दिक राज्यगुरू:
14. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् - ३/१-९२ 75
• गजेन्द्र सिंह गुर्जर
15. शब्दार्थसम्बन्धविचार: 78
• रेणु शर्मा
16. मानुषसत्य का अभिज्ञान और धर्म 82
• प्रो. नीरज शर्मा

17. **उपनिषदों में शक्तितत्त्व** 88
• डॉ. स्मिता शर्मा
18. **एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति** 92
• डॉ. अवधेश कुमार शर्मा
19. **नारी चेतना का साहित्यिक सर्वेक्षण** 96
• डॉ. गीताराम शर्मा
20. **भारतीय संस्कृति में पर्यावरण-चेतना का मूलमंत्र - अपरिग्रह** 102
• डॉ. वंदना रस्तोगी
21. **प्राचीन और आधुनिक युग में नारी शक्ति की भूमिका** 110
• डॉ॰ रीतिका जैन
22. **अपूर्वस्य चिदाधेयत्वम्** 116
• अभिषेक जानी
23. **वैदिक विवाह संस्कार का दिग्दर्शन एवं वर्तमान प्रासंगिकता** 120
• डॉ दीपाली शर्मा, डॉ. के.आर. महिया एवं डॉ. राजेश शर्मा
24. **लोककथाओं के प्राचीन परम्परा स्रोत** 124
• अपेक्षा मीणा
25. **डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के कथा-साहित्य में दान की महिमा** 131
• डॉ. अनिता अग्रवाल
26. **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते** 136
• डॉ. सीमा चौधरी
27. **नीतिशतक और लोकजीवन** 143
• डॉ. अनीता सत्तवान
28. **रामायण कालीन समाज** 148
• प्रहलाद सहाय बलाई
29. **रावणवधम् महाकाव्य में वीर रस** 153
• सुमन कुमारी
30. **काव्यशास्त्र का प्रादुर्भाव** 158
• पूनमराज

7

मधुपर्ण्यां प्राकृतिकपर्यावरणम्

समयसिंहः मीणा

शोध–सारांश

अर्वाचीनसंस्कृतवाङ्मयस्य काव्य–नाट्य–कथा–समीक्षा चेति चतसृषु विधासु मात्रागुणवद्भ्यामुभयथा समुत्कृष्टप्रणेतारः 'साहित्यकल्पतरुः' 'त्रिवेणीकविः' इत्यादिभिरुपाधिभिस्सुशोभितारः प्रो. अभिराजराजेन्द्र–मिश्रमहाभागा आधुनिकसंस्कृतवाङ्मयस्य पुरोधसः सन्ति। अधुनातनविषय–कलेवरयुक्ताभिः रचनाभिः कविना सुदृढ़शैल्या समकालीनसमाजस्य विविध ापक्षाः चित्रीकृताः। वाग्वधूटी–मृद्वीका– श्रुतिम्भरा–मधुपर्ण्यभिराजगीत–मित्यादिषु नवगीतात्मकरचनास्वन्यतमा वर्त्तते 'मधुपर्णी'। प्रथमायामेव गलज्जलिकायां सृष्टियज्ञाग्नौ जीवनहविरर्पयित्वा धूमो भवेयमिति भावना प्रदर्शिता। पुनश्च स धूमो मेघो भूत्वा पुनः हवेर्सृष्टिं कुर्यात्। पर्यावरणस्या–ऽऽत्मतत्त्वस्वरूपरूपायां 'धूमतां यामो वयम्' गलज्जलिकायां कविना सुस्पष्टरूपेणोक्तमस्ति यन्मानवजीवनस्य प्रथमोद्देश्यं भवेत्–'पर्यावरणस्य संरक्षणमिति।' कविः कथयति यत् लोककल्याणार्थं सृष्टिप्रक्रियां मनसि अवधार्यैवाऽस्माभिः तादृशानि कार्याणि कर्तव्यानि, यैः प्राकृतिकसन्तुलनस्य संरक्षणं भवेत्। वयं प्रकृतेः यावदुपभोगं कुर्मः तावदेव पुनर्भरणमपि कुर्मः। अस्माकं जीवनदृष्टिः विश्वकल्याणार्थं भवेत्। एतदेव चिन्तनं कविः धूम–हविशोः दृष्टान्तेनाऽस्मान् बोधयति। यथा–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्
धूमतो घनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।

'विशालायां महाकुम्भः' नवगीते कविवराभिराजेनोज्जयिनी–नगर्यामायोज्यमानस्य महाकुम्भस्य माहात्म्यप्रदर्शनेन सह महाकुम्भदेवाय अभियाचितं यद्भूतलस्थित– सकलप्राकृतिकमानवीयतत्त्वानां संरक्षणं भूयात्। प्राकृतिकसम्पदां प्राक्तनप्राचुर्यमद्यतन– स्थितिं चाऽपि दृष्ट्वा मानवः न लज्जते।

इत्थं कुत्रचित् स्फुटरूपेण कुत्रचिच्च सांकेतिकरूपेण स्वरचनाभिः कविना प्राकृतिकपर्यावरणस्य संरक्षणार्थं वयं प्रेरिताः भवामः। मधुपर्णी जीवनयथार्थध ारायां लोलुण्ठमानस्य कवेः समग्रद्रष्टृत्वं परिचाययति। समकालिकसमस्याः विसङ्गतीश्च स्वकीयलेखन्याः तीक्ष्णफलकेनाऽतितीक्ष्णं विधाय कविवरमिश्रः

लोकस्य सुसुप्तमनस्येकं कम्पनं संवेदनात्मकं जनयति। सत्यं, शिवं, सुन्दरं चेत्यात्मकस्य जगतः सृष्टिरेव मधुपर्ण्याः लक्ष्यमस्ति।

संकेताक्षर – समुत्कृष्टप्रणेतारः, चित्रीकृताः, मधुपर्णी, प्राकृतिकसम्पदां, सांकेतिकरूपेण, समग्रद्रष्टृत्वं, तीक्ष्णफलकेन, कविवरमिश्रः

अर्वाचीनसंस्कृतवाङ्मयस्य काव्य–नाट्य–कथा–समीक्षासु चतसृषु विधासु मात्रागुणाभ्यां द्वाभ्यामेव दृष्टिभ्यां समुत्कृष्टप्रणेतारः 'साहित्यकल्पतरुः' 'त्रिवेणीकविः' चेत्यादिभिरुपाधिभिस्सुशोभितारः प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्रमहाभागा आधुनिकसंस्कृत–वाङ्मयस्य पुरोधसः सन्ति। अधुनातनविषयकलेवरयुक्ताभिः रचनाभिः कविना सुदृढ़शैल्या समकालीनसमाजस्य विविधपक्षाः चित्रीकृताः। डॉ. मिश्रस्य सकलकाव्यसाधना श्रृंगारहास्यकरुणहर्षविषादविवेकादिभावप्रवणतानाम– दृश्यसंगमस्थली वर्तते। सत्यं शिवं सुन्दरं चेति त्रिगुणात्मकभावनया लोकमंगलाकांक्षी कविः कुत्रचित् रूपसौंदर्यस्य यौवनस्य च गीतं गायति, अपि चान्यत्र जीवनापद अपि वर्णयति ।

वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी अभिराजगीतं चेत्यादिषु नव–गीतात्मकरचनास्वन्यतमा वर्तते–'मधुपर्णी'। चतुर्थीयं गीतसङ्कलना शासनोद्घोषिते संस्कृतवर्षे 2000 तमे ईस्वीये वैजयन्तप्रकाशनम्, इलाहबादतः प्रकाशिता वर्त्तते। अस्यां सङ्कलनायां 68 गीतानि निबद्धानि सन्ति। सहृदयानां सौकर्यार्थं कविना मधुपर्णीयं त्रिधा विभक्ता– गलज्जलिकाः गीतयो मुक्तछन्दांसि चेति।

अत्र गलज्जलिकाखण्डे तादृषानि गीतानि सन्ति यानि भावबोधरचनाशिल्पदृष्ट्या उर्दू–फारसीभाषयोर्ग़ज़लमनुकुर्वन्ति। 'गलज्जलिका' एतदभिधानं सर्वथा नूतनमेव वर्तते, यत्तु वागर्थयोः कुशलशिल्पिन आचार्यमिश्रस्य प्रयोगधर्मितामेव सूचयति। वस्तुतः 'गज़ल' इत्यस्य प्रादुर्भावः रोमानीभावादेव। तदस्यां रचनायां प्राकृतिकसौन्दर्यस्याध्यात्मदार्शिनिकतायाश्च नानात्वमत्र प्राप्यन्ते। शनैश्शनैः गज़लविधा सामाजिकयाथार्थ्येन सह सम्बद्धिता जाता। मधुपर्ण्याः गलज्जलान्यपि नानाभावानां वर्णानुद्भावयन्ति।

'गीतय' इत्यस्मिन् द्वितीये खण्डे 28 गीतयः सङ्कलिताः सन्ति। शीर्षकेऽस्मिन् तानि सरसमधुराणि भावसमन्वितानि च प्रकृति–राष्ट्र–लोकसंवेदनापराणि गीतानि सङ्कलितानि सन्ति । येषु किमपि संवैधानिकं शास्त्रीयं वा नियमानुपालनं नैव वर्तते। वस्तुतो निष्प्रत्यवायाऽयत्नसिद्धाभावाभिव्यक्तिरेव गीतानामेषां जीवनसर्वस्वम्। निश्चप्रचमेतानि पारम्परिकगीतानि पारसीकगज़लविधातो भिद्यन्त एवेत्यार्यमिश्रो कथयति।

मधुपर्ण्याः तृतीये खण्डे सङ्कलितगीतेभ्यः कविना मुक्तछन्दांसीति संज्ञा प्रदत्ता। एतेषां गीतानां प्रकृतिः संस्कृतमुक्तकशतकसाहित्ययोः सर्वथा भिन्ना वर्तते। शीर्षकेऽस्मिन् ता रचनाः सङ्कलिताः सन्ति, यासु भारतराष्ट्रस्य भव्यमतीतं साम्प्रतिक–

लोचनाभ्यामवलोकितं समीक्षितं च तिष्ठति। शिल्पप्रकृतिवशादिमा रचनाः सुदीर्घा एव। यतोहि रचनास्वासु कथानायकस्य (नायिकायाः) तत्प्रतिनिधिभूतस्य कवेर्वा एकलाऽभिव्यक्तिर्महीयते। क्वचित् कवेरेव स्वतन्त्राऽभिव्यक्तिः दृश्यते। रोहसेन–वसन्तसेना–वाणभट्टसम्बद्धासु रचनासु तत्तत्पात्रजातमेव प्राधान्यं भजते। परन्तु 'पूर्णां प्रति' इति शीर्षके 'महाराणाप्रतापसिंहं प्रति' इति शीर्षके वा काव्ये प्रतिनिधिभूतः प्रभवति कविः। अथ चाऽन्येषु बहुषु प्रसंगेषु (कविरहमस्मि, स्वप्नपरम्परा, आकाशेऽहम्) स्वयं कविरेव सर्वतन्त्रस्वतन्त्रससन् आत्मानमभिव्यनक्ति। एवं हि , मधुपर्ण्यां प्रायेण सप्ततिमिता अभिनवा रचनाः सन्ति।

पर्यावरणस्य संरक्षणं मानवमात्रस्य प्रथमं कर्तव्यमस्ति। प्राकृतिकपर्यावरणेन सह संतुलनं स्थापयित्वैव मानवः सुखपूर्वकं जीवितुं शक्नोति। प्रकृतिप्रदत्तपर्यावरणेन सह विसङ्गत्या एव वेदनामयी विभीषिका समजायत । मानवः पारिस्थितिकसंतुलनं संरक्षेदित्येव पर्यावरणचेतनायाः रचनात्मकस्वरूपमस्ति। संस्कृतकवयः पर्यावरणचेतनायाः चिंतनस्य च मूर्त्तिवन्तः सन्ति। एतैः विलिखितासु रचनासु एतच्चिन्तनं स्वतस्स्फुटति।

'मधुपर्णी' इति अस्याः सङ्कलनायाः प्रारम्भो भवति– 'धूमतां यामो वयम्' इत्यनया रचनया तथा च उपान्तो भवति 'वक्तव्यं शुष्कवृक्षस्य' इति रचनया साकम्। एतयोर्द्वयो रचनयोरेव लोकहितार्थं मंगलार्थं च समर्पणात्मकजीवमस्य भावः प्रदर्शितः। प्रथमायामेव गलज्जलिकायां सृष्टियज्ञाग्नौ जीवनहविरर्पयित्वा धूमो भवेयमिति भावना प्रदर्शिता। पुनश्च स धूमो मेघो भूत्वा पुनः हविशः सृष्टिं कुर्यात्। अस्यां गलज्जलिकायां कविना भारतीयदर्शनस्य चिन्तनस्य च साऽवधारणा स्थापिता या सृष्टिं एकवृत्तरूपेण पश्यति। एषा जीवनयात्रा हविशः धूमस्य, धूमतः हविश एव वर्तते। यत्खलु बिन्दुतः सिन्धुः, सिन्धुतः बिन्दुरिव प्रतिभाति।

पर्यावरणस्याऽऽत्मतत्त्वस्वरूपमस्यां 'धूमतां यामो वयम्' गलज्जलिकायां कविना सुस्पष्टरूपेणोक्तमस्ति यत् मानवजीवनस्य प्रथमोद्देश्यं भवेत्–'पर्यावरणस्य संरक्षणमिति।' कविः कथयति यत् लोककल्याणार्थं सृष्टिप्रक्रियां मनसि अवधार्याऽस्माभिः तादृषानि कार्याणि कर्तव्यानि, यैः प्राकृतिकसंतुलनस्य संरक्षणं भवेत्। वयं प्रकृतेः यावदुपभोगं कुर्मः तावदेव पुनर्भरणमपि कुर्मः। अस्माकं जीवनदृष्टिः विश्वकल्याणार्थं भवेत्। एतदेव चिन्तनं कविना धूम–हविदृष्टान्तेनास्मभ्यं बोधितम्। यथा–

अपि हविर्भूता मखाग्नौ धूमतां यामो वयम्
धूमतो घनतां गता हविरेव जनयामो वयम्।।
वर्तलो जनिमरणपरिधिर्हन्त भूमण्डलनिभः
प्रस्थिता बिन्दोर्यतस्तत्रैव विहरामो वयम्।।

...

चिन्वता सुमनो धिया मां नोचितं भवता कृतम्
परिमलैर्वासन्तिकैः श्वसितानि कलयामो वयम्।।

...

संचिनोतु सुखं स्वकीयं, बन्धुनिवहार्थं भवान्
वन्यतृणकलपाभिराजं साधु निवयामो वयम्।। मधुपर्णी पृ. 13

'न हन्तव्यो, न हन्तव्यः' इत्यस्यां गलज्जलिकायां कविना शाकुन्तलस्य दुष्यन्तवृत्तान्तेन रूपकशैल्या अद्यतनः शासकवर्गः बोधितः यत् शासकानां कृते प्रजया यत् दायित्वं पर्यावरणस्य (प्राकृतिकं सांस्कृतिकं च) संरक्षणार्थं प्रदत्तमस्ति तस्य पूर्णमनोयोगेन मर्यादिताचरणेन च निर्बहनं ते कुर्युरिति। नोचेत् लोकतन्त्रेऽस्मिन् प्रजा एव तान् तिरस्कृत्य पदाधिकारादधः पातयिष्यति। यथा—

विरम विरम क्षणं राजन्! न ते धानुष्कताऽवसरः
गुरोराश्रममृगोयम्भो न हन्तव्यो, न हन्तव्यः।।

...

तपोवनरक्षितरि सत्यप्यरक्षितमेव यदि गहनं
हता वयमेव, विश्वासो न भङ्क्तव्यो, न भङ्क्तव्यः।—तत्रैव पृ. 15

अद्य मानवः धनलालसायां तादृश उन्मत्तः जातः यत् सः स्वार्थान्धो भूत्वाऽऽकाशकुसुमप्राप्त्यर्थं धावन्नस्ति। स्वकीयपार्श्वस्थं प्रकृतिप्रदत्तं च सुखसौविध्यं पश्यत्येव न। तस्य संरक्षणमपि न कुर्वन्नस्ति। अस्य प्रतीकात्मकसंकेतो अस्माभिः कवेः 'स्फुटं मर्म किं नोऽभिराजस्वराणाम्' इत्यस्यां गलज्जलिकायां प्राप्यते। यथा—

धनाच्छादिते व्योम्नि हा दुर्विपाकः
न दूर्वासुखं, नो सुखं भास्कराणाम्।।

...

किमद्यापि पापक्षयो गाङ्गनीरैः
स्वयं पापिभिः शोधनं यज्जलानाम्।। —तत्रैव पृ. 22

'क्व याताऽधुना ?' गलज्जलिकायां प्राकृतिकोपरूपकाणां स्थितिसाम्येन कविराजेनाऽस्माकं दृष्टिराकृष्टा यदस्माकममर्यादिताचरणैः जैवाऽजैवप्रकृतौ किं किं नैव विलुप्तम् इति ? यथा—

प्रसूनाऽन्विता वृन्तवृन्देषु याऽभूत्
क्व याताऽधुना वल्लरी भावनानाम् ?

...

नदन्तोऽनिशं वारिदा व्योम्नि रेजुः
क्व याताऽधुना झल्लरी श्रावणानाम् ?–तत्रैव पृ. 24

आर्यमिश्रेण लोककल्याणस्य भावनया विरचितायां गलज्जलिकायां 'मदपेक्षयाऽपि कृतं सखे' इत्यस्यां कामना कृताऽस्ति यन् मनुष्याः पूर्ववदेव प्राकृतिकसंसाधनानां प्राचुर्यं प्राप्नुयुरिति–

दधिदुग्धघृतनद्यो वहन्तु सदैव नीवृति भद्र ते
शापितमनोरथजीविनी गङ्गा मदश्रुणि मोदताम्।।–तत्रैव पृ. 25

कविवराभिराजः कथयति यदिदानीं मानवस्य किं कर्तव्यम् अवशिष्टम् ? इति । अद्य मानवः स्वकीयां स्थितिं विस्मृत्य आत्मनं प्रकृते अधिपतिं मनुते। या गङ्गा सृश्टे आबाहमानकालान्मानवजातिं प्राणीमात्रं च पोषयन्ती अस्ति कियद्विचित्रं यत् सैव गङ्गाऽद्य मानवैः पवित्रीक्रियते। एतदर्थमेव कविना स्वकीयगलज्जलिकायां 'अतः परं किं भविता' व्यंजितः–

अतः परं किं भविता भूतले विचित्रम्

...

प्रतिशाखं चन्दनेषु वेष्टिता भुजङ्गाः
मानवैः पवित्रीक्रियते सम्प्रति गङ्गा।।–तत्रैव पृ. 26

'क्व यामो वयम्' इति शीर्षकेण विरचितायां गलज्जलिकायां कविः कथयति यद् भारतीयसंस्कृतेः संपोषकाणां प्रायेण सर्वेषां हिन्दुजनानां गृहेषु शोभादायकानां चौषधीयपादपानां स्थानमद्य कैक्टसप्रजातेर्पादपैः गृहीतमिति–

पुष्पबुद्धयाऽङ्गणे रोपिता मल्लिका
कण्टकास्तत्र जाताः क्व यामो वयम्?–तत्रैव पृ. 31

अद्य मनुष्यः स्वार्थान्धो भूत्वा नदीनां प्रवाहक्षेत्रेष्वतिक्रमणं कुर्वन्नस्ति। प्रवाहक्षेत्रसंकुचनकारणादेव नदीवेगः जलप्लावनं जनयति। धार्मिकस्थलेषु कदाचारिणः राजन्ते। 'कस्मै खलु हविषा विधेम' इति शीर्षकेण विरचिते नवगीते स्वकीया वेदनेत्थमभिव्यक्ता–

मन्दिराणि दनुजा अध्यासते
कस्मै खलु हविषा विधेम ?
नदी श्यानपुलिना तन्वङ्गी संजाता
जानुदघ्नसलिला सिकताचय संघाता
उपेक्षिता नौर्न जलं गाहते
कस्मै खलु हविषा विधेम ?–तत्रैव पृ. 53

सम्प्रति मानवजीवनेऽर्थस्यैव प्राधान्यं जातम्। धनमेव जीवनसर्वस्वमिति मत्वा मानवः प्रकृतिप्रदत्तसौविध्यानि जीवनमूल्यानि च त्यक्त्वा स्वकीयविनाशं स्वयमेव निमन्त्रयते–

सीमिता वयं भौतिकोन्नता–
वध्यात्मदृष्टिरधुना शीर्णा।
प्राप्तोऽप्राप्तो वा अनर्थमेव
जनयत्यर्थो, न रतिर्जीर्णा।।
क्व नु याति भारती–परम्परा
चिन्तय मुदितात्मन् नमोनमः।।–तत्रैव पृ. 57

'कैरविणी सन्ध्या' शीर्षकेण विलिखितायां नवगीतरचनायां 'वाततरङ्गित–वापीजलमिव', 'त्वमसि मदम्बरमणिपुनरुदये पुनर्नवा प्राची', 'स्थिरतामेति यथा तटिनी समवाप्य महासिन्धुम्' इत्यादीनां प्राकृतिकोपमामूलकशब्दानां वाक्यानां च प्रयोगेण कविना प्राकृतिकतत्त्वानां संरक्षणार्थं संवर्धनार्थं च वयं प्रेरिताः।

ममाऽभिशप्तजीवने त्वमागता तथा।
भागीरथाऽनुयाचिता सुरापगा यथा।।
अवाप तीर्थतामहो स्वयं तटं तटम्।
पराङ्मुखीकृताऽपराधसंचरद्भटम्।।–तत्रैव पृ. 60–61

अद्य 'गौ' 'गङ्गा' चेत्येतयोर्द्वयो संरक्षणार्थं महान् यत्नः क्रियते सर्वकारेण हिन्दूसंघटनैश्च। 'कारुण्यश्रृङ्गारके' इति शीर्षकेण विलिखितायां नवगीत्यां विषयेऽस्मिन् ध्यानमाकृष्टं नो संस्कृतभाषायाः संरक्षणरूपिणमुपमानविषय– मधिकृत्येति।

दुग्धदोहा न सा नैव पीतोदका
नाप्रजा नैव बन्ध्या न सुप्तेन्द्रिया,
घुष्टम्भारवा वत्सला नन्दिनी
संस्कृता वागियं पातिता पातके।
देववाणी व्यथोच्छूननेत्राऽधुना
हिण्डते हन्त कारुण्यशृङ्गाटके।।

...

सर्वभाषासावित्री जगत्पावनी
यद्गतिर्जाह्नवी यद्रतिर्यामुनी,
वाङ्मयं लोलवेलाचलत्सागरं
विश्वरूपं दधाना न कैः सेव्यते ?–तत्रैव पृ. 62

'विशालायां महाकुम्भः' इति नवगीते कविवराभिराजेनोज्जयिनी–नगर्यामायुज्यमानस्य महाकुम्भस्य माहात्म्यप्रदर्शनेन सह महाकुम्भदेवाय अभियाचितं यद्भूतले स्थितसकलप्राकृतिकमानवीयतत्त्वानां संरक्षणं भूयात् इति।

सलिलदूर्वाऽऽम्रपल्लवपंचगव्यकुशादिभिर्निचितः।
समग्र भूतलं रक्षेदवन्तीस्थो हाकुम्भः।। –तत्रैव पृ. 66

प्राकृतिकसम्पदां प्राक्तनप्राचुर्यमद्यतनस्थितिं चाऽपि दृष्ट्वा मानवः न लज्जते। 'वसन्तोधकानि' नामके स्वकीये नवगीते इत्येवोक्तमस्ति–

गाम्भीर्यं सिन्धोरहो गलितं वीचीभूय।
कान्तः! कथं कुलिशायसे मधुमासेऽप्यवधूय।।

..

मामवलोक्य न लज्जसे चातक! कथं त्वमत्र ?

..

शीतलपवनझरी कथं शनैः कदुष्णा भाति ?
ज्ञातं साम्प्रतमेधते ग्रीष्मो मधुरपयाति।।–तत्रैव पृ. 67–68

इत्थं कुत्रचित् स्फुटरूपेण कुत्रचिच्च सांकेतिकरूपेण स्वरचनाभिः कविना प्राकृतिकपर्यावरणस्य संरक्षणार्थं वयं प्रेरिताः भवामः। मधुपर्णी जीवनयथार्थधरायां लोलुण्ठमानस्य कवेः समग्रदृष्टेरेव परिचयं कारयति। सङ्कलनायामस्यां प्रकृति–सुख–दुःख–हासा–ऽश्वाशा–नैराश्योल्लास– विषादानां सर्वेषां तत्त्वानां चित्रणं वर्तते। समकालिकसमस्याः विसङ्गतीश्च स्वकीयलेखन्याः तीक्ष्णफलकेना तीक्ष्णीकृत्य कविवरमिश्रः लोकस्य सुशुप्तमनस्येकं कम्पनमेकामनिर्वचनीयामाकुलतां च जनयति। सत्यं, शिवं, सुन्दरं चेत्यात्मकस्य जगतः सृष्टिरेव मधुपर्ण्याः लक्ष्यमस्ति। इति दिक्।

समयसिंहः मीणा, व्याख्याता–संस्कृतम्, राजकीय–महाविद्यालयः, कोटा

panacea
INTERNATIONAL Research Journal

ISSN 2347-369X

संस्कृत विशेषांक

Volume-4, No. 1 जुलाई-सितम्बर, 2016

अनुक्रमणिका

- संस्कृतसाहित्ये दलितचेतना — डॉ. पूर्णचन्द्र उपाध्यायः
- वैयाकरणसिद्धान्तभूषणसारस्थमङ्गलाचरणस्य व्याख्यानामध्ययनम — डॉ. शशिकुमार शर्मा
- वैदिकवाङ्मये पापविमर्शः - एकं पर्यालोचनम — डॉ. आशुतोषपारीकः
- होराशास्त्रस्यानुसारं द्वादशभावविचारः — डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा
- शिक्षामनोविज्ञाने अधिगमस्य प्रशिक्षणस्य च स्थानान्तरणम — डॉ. (श्रीमती) रेखा शर्मा
- पुराणानां महिमा — डॉ. महिमा बासल्ल
- मधुपर्ण्यां प्राकृतिकपर्यावरणम् — समयसिंहः मीणा
- स्वातन्त्र्योत्तरभारते सीतामाश्रित्यरचितानां काव्यानां परिचयः — डॉ. प्रहलाद कुमार शर्मा
- रघुवंशमहाकाव्ये कौटिलीयार्थशास्त्रीयतत्त्वानि — डॉ. हेमराज शर्मा
- ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्ये पादसङ्गतिः — पी.आर. वासुदेवन
- चतुर्वर्गसाधने सङ्गीतकलायाः भूमिका — शैलेश जैमन
- सूर्यग्रहणे लम्बनविमर्शः — निखिलेशशर्मा
- महिमभट्टप्रदर्शित-द्विविधानौचित्य-समीक्षणम् — हार्दिक राज्यगुरूः
- तत्रोपपदं सप्तसमीस्थम् - ३/१-९२ — गजेन्द्र सिंह गुर्जर
- शब्दार्थसम्बन्धविचारः — रेणु शर्मा
- मानुषसत्य का अभिज्ञान और धर्म — प्रो. नीरज शर्मा
- उपनिषदों में शक्तितत्त्व — डॉ. स्मिता शर्मा
- एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति — डॉ. अवधेश कुमार शर्मा
- नारी चेतना का साहित्यिक सर्वेक्षण — डॉ. गीताराम शर्मा
- भारतीय संस्कृति में पर्यावरण-चेतना का मूलमंत्र - अपरिग्रह — डॉ. वंदना रस्तोगी
- प्राचीन और आधुनिक युग में नारी शक्ति की भूमिका — डॉ॰ रीतिका जैन
- अपूर्वस्य चिदाधेयत्वम् — अभिषेक जानी
- वैदिक विवाह संस्कार का दिग्दर्शन एवं वर्तमान प्रासंगिकता — डॉ दीपाली शर्मा, डॉ. के.आर. महिया एवं डॉ. राजेश शर्मा
- लोककथाओं के प्राचीन परम्परा स्रोत — अपेक्षा मीणा
- डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर के कथा-साहित्य में दान की महिमा — डॉ. अनिता अग्रवाल
- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते — डॉ. सीमा चौधरी
- नीतिशतक और लोकजीवन — डॉ. अनीता सत्तवान
- रामायण कालीन समाज — प्रहलाद सहाय बलाई
- रावणवधम् महाकाव्य में वीर रस — सुमन कुमारी
- काव्यशास्त्र का प्रादुर्भाव — पूनमराज

PANACEA RESEARCH FOUNDATION
"Shanti-Kuteer", 81, Vishvesariya Vistar, Triveni Nagar, Jaipur-302018,
panaceairj@gmail.com ✆ +91-7742321377

ISSN : 2395 - 5104

शब्दार्णव Shabdarnav

International Refereed Journal of Multidisciplinary Research

Year 3 Vol. 6, Part-II July-December, 2017

Scientific Research
Educational Research
Technological Research
Literary Research
Behavioral Research

Editor in Chief
RAMKESHWAR TIWARI

Executive Editors
DR. KUMAR MRITUNJAY RAKESH
MR. RAGHWENDRA PANDEY

Published by
SAMNVAY PUBLISHING HOUSE
Mujaffarpur, Bihar

अनुक्रमणिका

- **रासो साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन** 1–3
  डॉ0 महिमा सक्सैना
- **काव्यात्मा औचित्य : एक विमर्श** 4–6
  रेखा त्रिपाठी
- **रीतिरात्मा काव्यस्य** 7–9
  प्रदीप नारायण शुक्ल
- **चम्पूरामायण में शब्द एवं अर्थचित्र** 10–11
  बृज किशोर मिश्र
- **मानवीय व्यक्तित्व मे कर्मबंधन का विवेचनात्मक अध्ययन** 12–15
  डॉ. जितेन्द्र शर्मा
- **यौगिक अभ्यासों का शारीरिक रूप से आंशिक विकलांग महिलाओं की आत्महीनता तथा असुरक्षा के स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन** 16–20
  अनुसया नरवरे
- **भूमण्डलीकरण के युग में वैदिक आर्थिक चिन्तन की प्रासंगिकता** 21–26
  डॉ0 अर्चना श्रीवास्तव
- **योगतत्त्वमीमांसा** 27–29
  डॉ. कृष्णमोहनपाण्डेयः
- **नाटक–रूप में बालरामायण** 30–32
  डॉ. महेन्द्र कुमार नगपुरे
- **विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता** 33–35
  डॉ0 पूजा अग्रवाल
- **भक्ति में प्रतीक पूजा का स्थान** 36–38
  डॉ0 शैलेन्द्र चौधरी
- **वर्तमान में महात्मा गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता (प्रो0 इन्द्र प्रणीत ''गान्धी–गीता'' के सन्दर्भ में)** 39–45
  डॉ0 सुमन पाण्डेय जोशी
- **कालिदास के कृतित्व में सौन्दर्य विमर्श** 46–49
  काना राम रैगर
- **रामायण में दाम्पत्य का स्वरूप** 50–51
  कु. ममता महेरा
- **मानव संरचना विज्ञान (अथर्ववेद के परिप्रेक्ष्य में)** 52–54
  डॉ0 निशीथ गौड़
- **महाकवि डॉ0 हरिनारायण दीक्षित की गद्यकृतियों में अभिव्यक्त जीवन–दर्शन** 55–61
  प्रमिला विश्वास
- **आदिकालीन हिन्दी साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन** 62–64
  डॉ0 महिमा सक्सैना
- **श्रीमद्भागवत पुराण की 'कीर्तन भक्ति'** 65–69
  पुष्पा भोज
- **भारत का प्राचीन नगर बयाना : नामकरण** 70–72
  रेखा कुमारी ओझा

- **शैवागमस्वरूप–मीमांसा** 73–75
  विमल चन्द्र काण्डपाल
- **महाभारत में विदुर का राजनीतिक वैशिष्ट्य** 76–79
  विनीता यादव
- **पर्यावरण को साहित्य की देन 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के सन्दर्भ में** 80–82
  डॉ० बबलू पाल
- **मेघदूत में वर्णित ललित कलाओं पर एक दृष्टि** 83–85
  कविता चौरसिया
- **जीवात्मा का स्वरूप (वीर शैव दर्शन)** 86–88
  रेखा मल्ल
- **भारतीय दर्शन की नीति मूलक अवधारणा** 89–91
  डॉ० जाहिरा खातून
- **अथर्ववेद में समाजवाद** 92–96
  कु० सुदीप
- **पुराणों में गो–माहात्म्य–गान** 97–100
  मदन मोहन पुरोहित
- **कविकलानिधि देवर्षि श्रीकृष्णभट्ट** 101–105
  ओम नमो नारायण उपाध्याय
- **अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीतों में मानवाधिकार** 106–110
  समय सिंह मीना
- **आस्तिकदर्शनानुसारं प्रस्थानत्रयस्य प्रामाण्यम्** 111–117
  रामकेश्वर तिवारी
- **धात्वर्थ–विचारः** 118–120
  नरेशकुमारशर्मा
- **नाट्यशास्त्रीय निषेधों की वर्तमानकालीन प्रासङ्गिकता।** 121–124
  विश्वजीत विद्यालङ्कार
- **वेदान्त दर्शन में प्रत्यभिज्ञाविमर्श**
  (आ. सुरेश्वरचार्य कृत मानसोल्लास के विशेष संदर्भ में) 125–128
  दीप्ति सिंह
- **मध्यमव्यायोग में रसालंकार** 129–133
  डॉ० आशुतोष द्विवेदी
- **महाकवि कालिदास का सौन्दर्यबोध** 134–135
  वन्दना सिंह
- **डॉ० हर्षदेव माधव के काव्य में पर्यावरण** 136–137
  रश्मि खाण्डल व डॉ० साधना कंसल
- **Didacticism in R.K.Narayan's Novels** 138-139
  Dr. Ashok Joshi
- **Alienation is A Recurring Theme in the Novels of Anita Desai** 140-141
  Dr. Sonika Devi
- **Honour System in Banarasi Boli** 142-150
  Dr. Neelam Yadav

अभिराज राजेन्द्रमिश्र प्रणीत संस्कृत नवगीतों में मानवाधिकार

समय सिंह मीना*

मानव जीवन ईश्वर–प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ उपहार है। अतः मानुष–देह प्राप्त करते ही कतिपय अधिकार जीव को स्वतः प्राप्त हो जाते हैं, मानवाधिकार कहलाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति समाज में सम्मान और सुरक्षापूर्वक जीवन–यापन हेतु सभी प्रकार के साधन एवं अवसर समान रूप से प्राप्त कर सके, एतर्थ अर्थात् मानव मात्र को मूलभूत अधिकार प्रदान करने हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को अन्तरराष्ट्रिय स्तर पर 'मानवाधिकार घोषणा–पत्र' जारी किया गया।[1] इसी के अनुसरण में भारत सरकार ने भी अक्टूबर, 1993 में 'राष्ट्रिय मानवाधिकार आयोग' का गठन किया।

Universal Declaration of Human Rights(U.D.H.R.) के रूप में मानवाधिकारों की जो घोषणा हुई, उसका भारतीय संस्कृति के प्रतिपादक संस्कृत वाङ्मय में क्या स्रोत हैं ? इसी प्रश्न के प्रत्युत्तर के अन्वेषणार्थ लगभग 15–20 वर्ष पूर्व तिरूवनन्तपुरम् में "विभिन्न धर्मों में मानवाधिकारों की मूलभूत अवधारणा" विषय पर एक विश्वस्तरीय अन्तरराष्ट्रिय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। भारतवर्ष के विलक्षण प्रतिभा के धनी दो विद्वानों प्रो. गोविन्द्र चन्द्र पाण्डे तथा डॉ. अरविन्द शर्मा ने **"हिन्दुधर्मप्रभवाः मानवाधिकाराः"** शीर्षक से भारतीय संस्कृति अर्थात् वैदिक संस्कृति के आधार–ग्रन्थों से तत्त्वचिन्तन कर संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध पच्चीस अनुष्टुप् पद्यों में हिन्दू धर्म से आविर्भूत मानवाधिकारों को प्रस्तुत किया तथा **"अधिकारपंचविंशतिका"** के नाम से घोषणा–पत्र भी प्रस्तुत किया।[2] इस घोषणा–पत्र में उल्लिखित मानवाधिकारों– पुरूषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति का अधिकार, अपना अभीष्ट मार्ग चुनने व धर्म पालन का अधिकार, गरिमामय जीवन जीने का अधिकार, व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, समानता का अधिकार इत्यादि के अन्तर्गत न केवल स्वाधीन भारत के संविधान में उल्लिखित अपितु विश्व के समस्त देशों के संविधानों में उल्लिखित मानवाधिकार समाहित हो जाते हैं।

समाज व विश्व में व्याप्त मानवाधिकारहननमूलक विद्रूपताएँ एक संवेदनशील रचनाकार के हृदय को झकझोरती हैं, तो विद्रूपताजन्य वह वेदना कवि–हृदय के गह्वर में प्रवेश कर 'सार्वभौम' बन जाती है। साहित्य की अभिनव विधा 'नवगीत' के समीक्षक इस सार्वभौमिक वेदना को 'घायल' ऋत–चक्र की व्यथा बताते हैं। 'ऋत' और 'सत्य' सृष्टि के शाश्वत नियम हैं जिनके अनुसार सम्पूर्ण लोक–सृष्टि का संचालन होता है। इसलिए इन्हें प्राकृतिक व्यवस्था और संतुलन के सिद्धान्त की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, यानि वह तत्त्व जो समस्त संसार और ब्रह्माण्ड को धार्मिक स्थिति में रखे या लाए।[3]

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्।।"[4]
"क्रौंचवधाच्छ्लोकत्वं याता कवेर्व्यथा।
विश्वदुरितहन्त्री सा रामायणी कथा।।"[5]

एक बहेलिए के हाथों निरीह क्रौंच पक्षी के वधजन्य वेदना से द्रवीभूत होकर महाकवि वाल्मीकि का सार्वभौम वेदनामूलक श्लोकबद्ध यह उद्गार एक सहृदय कवि की लोकधर्मिता व प्राणीमात्र के कल्याण के प्रति उसकी सजगता का प्रतीक है। ऋषि–परम्परा से प्रवाहमान संस्कृत साहित्य प्रारम्भ से ही मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर चला है। नवगीतकार ऋषि की भाँति उस लोकोन्मुखी वेदना का उद्गाता मात्र नहीं है अपितु वह उसका भोक्ता है। उसके काव्य में जो निराशा है, घुटन है, कुण्ठा है, ऊब है वह उसके जीवनानुभूतियों की अभिव्यक्ति है और मौलिकतापूर्ण है। इसी कारण युगीन परिवर्तन को देखते हुए अर्वाचीन संस्कृत रचनाकार ने अपनी लेखनी को नई दिशा दी है। परम्परागत अतिप्राकृत तत्त्व अब उसके हृदय को आन्दोलित नहीं कर

*व्याख्याता संस्कृत, राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

पाते अपितु वैश्विक जीवन का यथार्थ चित्रण, सामाजिक विसंगति, राजनैतिक चेतना, नारी–अस्मिता, विश्व मानव की भयानक त्रासदी, मानवतावादी जीवन–मूल्यों (अधिकारों) के संकट बोध, सांस्कृतिक एवं नैतिक विघटन, मूल्यहीनता की प्रवृत्ति, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक सभ्यता के प्रभावों, आधुनिक चिन्तन और वैज्ञानिक जीवनदृष्टिपरक सन्दर्भ ही उसके कथ्य के आधार बनते हैं। इस प्रकार नवगीत मानव के हृदय में नियसित अखण्ड करुणा का काव्य है।[6]

इस प्रकार श्रुति–स्मृतियों द्वारा प्रतिपादित मानवधर्म अर्थात् मानवाधिकार संस्कार स्वरूप संस्कृत के सुधीजनों में इस तरह रचे–बसे हैं कि उनकी रचनाओं में ये अधिकार स्वतः प्रदीप्त हो उठते हैं। अर्वाचीन संस्कृत साहित्यजगत् में युग–प्रवर्तक, शिखरारूढ़कवि, अभिनव कालिदास, त्रिवेणीकवि, लोकधर्मी व्यक्तित्व के धनी इत्यादि उपनामों से विख्यात कविवर अभिराज राजेन्द्रमिश्र इस सनातन परम्परा के प्रबल पोषक एवं सशक्त हस्ताक्षर हैं। प्रो. मिश्र जी ने समकालीन समाज में व्याप्त मानवाधिकारहननमूलक विद्रूपताओं को कनारे खडे रहकर देखने की बजाय स्वयं अनुभूत किया है और जब कवि की स्वानुभूतिपरक चेतना साक्षीभाव से जुड़ जाती है तो उनका लौकिकभाव अलौकिक बन जाता है। प्रो. मिश्र जी के काव्य में जहाँ सोहर, कजरी क्षेत्रीय लोकगीतों की महक है, वहीं वाग्वधूटी, मृद्वीका, श्रुतिम्भरा, मधुपर्णी और अभिराजगीता में संग्रहीत नवगीतों में उनकी वैश्विक चेतना तथा मानवाधिकारों के प्रति सजगता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। मिश्र जी के नवगीतों में वेदना, अन्तर्द्वन्द्व, और विरह का ताप ही नहीं अपितु वैयक्तिक अनुभूतियों का उदात्त चित्रण है। कविवर की इन रचनाओं में लोकमंगल की कामना भी है और जीवन में व्याप्त विषमताओं के विरुद्ध विद्रोह का स्फुरण भी है। कविवर समाज में व्याप्त धनिकों और पूँजीपतियों की तानाशाही पूर्ण सामन्ती व्यवस्था पर प्रहार करते हुए एवं आर्थिक समता पर बल देते हुए कहते हैं कि मजदूर–मालिक के बीच का भेद मिटाकर सबको समान कार्य और समान रूप से जीवन जीने का अधिकार हो। कविवर अभिराज की कविता इसकी वकालत करते हुए कहती हैं–

परितोऽपि पामराणां तृणशालिका इमाः
होलानलं समिन्धय बन्धोः शनैः शनैः[7]

लोक में यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म का पालन करे तो समस्त मानवाधिकार स्वतः संरक्षित रहते हैं। अमर्यादित आचरण से दूसरे लोगों के अधिकारों का भी हनन होता है। अतः प्रत्येक प्राणी को सम्मानपूर्वक जीवन जीने व दैहिक सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। इसी की ध्वनि कवि की इस गीति में हमें प्राप्त होती है–

भवानग्रेसरो राजन् जनानामर्हतां लोके
अतोऽध्वा कोऽप्यमर्यादो न गन्तव्यो न गन्तव्यः।।[8]

आज समाज में अयोग्यजन अपने राजनीतिक सम्बन्धों के सहारे उच्च पदों पर आसनस्थ होकर सुख–सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं, उनको पूजा जा रहा है। योग्य प्रतिभा सम्पन्न एक ओर खड़े होकर अपने अपमान को निःशब्द निर्निमेष होकर देख रहा है। समान अवसर के अधिकार के उल्लंघन से कवि हृदय तडप उठता है और व्यंग्यपूर्ण शैली में अपनी भावना की अभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं–

"कनकपंजरस्थिता वायसा दधिभक्तं भोज्यन्ते
जर्जरकण्ठाः शुकाः सारिका असकृन्निर्भर्त्स्यन्ते
धेनूः समुत्सार्य सूकर्यो नीयन्ते बहुमानम्"[9]

इसी सन्दर्भ में एक बात कविवर अभिराज राजेन्द्र मिश्र को सदैव पीड़ित करती रही कि जहाँ श्रेष्ठ साहित्यकारों के सम्मान के लिए कोई स्थान नहीं हैं, वहाँ अशिक्षित राजनेताओं के लिए मंच सजाये जाते हैं, उन्हें 'भारतरत्न' देने के विषय में विचार–विमर्श किये जाते हैं। ऐसे में जब सम्पूर्ण देश इस व्यवस्था का अनुयायी हो जायेगा तो क्या होगा इस देश का भविष्य ?

"बरबाद गुलिस्तां करने को एक ही उल्लू काफी है,
हर शाख पै उल्लू बैठा है अन्जाने गुलिस्तां क्या होगा ?"[10]

गालिब के इस शेर को अपनी ग़ज़ल गीति में कवि ने कुछ इस तरह से उतारा है–

"उद्याने यस्मिन् सान्द्रतरौ
प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते
कल्याणं तस्य कथं भविता
सुषमा क्व वसन्तस्यागमने"[11]

आज राजनीति में नैतिक मानदण्डों व आदर्शों के लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। अतः लोकतन्त्र एवं उसके द्वारा प्रदत्त मानवाधिकारों के संरक्षणार्थ हमें बिना किसी भेदभाव व पक्षपात किये केवल योग्य व्यक्तियों को ही चुनना चाहिए। इसी भाव को अपने अंदाज में कविवर इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

दोषं मलं कलङ्कं प्रपुनाति राजनीतिः
किं किं लोकपुण्यं प्रददाति राजनीतिः !!
निर्भर्त्स्य नीतिमार्गं शप्त्वा च सत्यनिष्ठाम्
गहनं तमोऽपि भानुं विदधाति राजनीतिः!![12]

हर्षवर्धन द्वारा बौद्धधर्म को अपना लेने के ऐतिहासिक वृत्त को माध्यम बनाकर कवि ने इस दर्शन विशेष के प्रति जिन विचारों को व्यक्त किया है वे वस्तुतः गंभीर चिन्तनशील व्यक्ति को यह सोचने के लिए बाध्य करते हैं कि क्या बुद्ध द्वारा सोते हुए दुधमुँहे शिशु, यौवनभार से भङ्गुर भार्या व पुत्रवियोग से कातर अशक्त माता–पिता को छोड़कर संसार के दायित्वों से पराङ्मुख हो जाना उचित था ? अपने पुत्र को छोड़कर जाना व वृद्ध माता–पिता को अकेला छोड़कर जाना, उनके बाल–अधिकारों व वृद्धजनों की देखभाल के अधिकार का हनन नहीं है ?

गर्वितोऽसि त्वं तेन तथागतेन
यो गृहदायित्वमपि नो सम्पादयामास
तत्याज प्रसुप्तं दुग्धमुखं दारकं
यौवनभारभङ्गुरांच भार्याम्
तनयवियोगकातरम्
अशक्तं वृद्धजनकं
क्लीब इवोद्विज्य संसारात्
यः प्राद्रवत् संसाररक्षार्थम् ?[13]

समाज में दोहरे चरित्र के थपेडों से कवि का मन बेहद व्यथित है। कविवर चाहते हैं कि मानव–मूल्यों का ह्रासपरक द्विमुखी समाज का दिखावा बन्द होना चाहिए–

यद ग्रहं निवारितं प्रदीप्तवह्नितोमया
पावकी भवन्त एव ते दहन्ति मामलम्[14]

भारत देश की वर्तमान दुर्दशा और मानवाधिकारों से वंचित एक सामान्य जन की व्यथा से संतप्त कवि हृदय चीत्कार कर उठा है–

"शोकतापजर्जरा द्रोहभारभङ्गुरा
अद्य दृश्यते न किं भारती वसुन्धरा
दुर्गति हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता ?
मामके हि भारते कीदृशी स्वतन्त्रता ?[15]

कवि का क्षुब्ध हृदय कहता है कि यह कैसी स्वतन्त्रता है जिसमें जातिवाद, वर्गभेद और द्वेष का सम्बन्ध विकसित है। मिश्र जी तो उस भारत की वन्दना करना चाहते हैं जो सभी भेदभावों से मुक्त हो। उनका हृदय गाँधी के रक्तरञ्जित भारत को देखकर व्यथित हो उठता है। परन्तु एक श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त कवि का यह दृढ़ विश्वास है कि उसका भारत देश अपनी सांस्कृतिक महनीयता के बल पर पुनः विश्वगुरू की पदवी को प्राप्त करेगा–

एत सौम्यरान्धावा बन्धुता विधीयताम्
क्षेत्रवर्गभावना सत्वरं निवार्यताम्
प्रांजलं पुनर्भवेह येन भव्य भारतम्!
विश्वपूजितं भवेनमामकीनभारतम्[16]

कवि की 'वसन्तसेना' नामक छन्दोमुक्त रचना में राम, कृष्ण, शिशुपाल तथा रावण के द्वारा नारी समाज के प्रति की गई चूकों का वर्णन है। इनकी वसन्सेना सम्पूर्ण नारी समाज का प्रतिनिधित्व करती है। नैतिक मूल्यों के अधःपतन स्वरूप उसकी विवशता और राजश्यालक की लोलुपता हठधर्मी नारीवाद की ओर इशारा करती है–

पश्य वसन्तसेने!
लता गाहते काकोऽपि
नद्यां स्नाति सारमेयोऽपि
नौकायां तिष्ठति ब्रह्मक्षत्रेतरोऽपि
वसन्तसेने!
लतेव त्वमसि
नदीव त्वमसि
नौकेव त्वमसि
सर्वभोग्याऽसि त्वं भद्रे!
वेश्यासि, राजश्यालं शकारम्।।[17]

कविवर कहते हैं कि आज छद्म नारीवाद का नारा लगाते हुए शील, सदाचार, त्याग व समर्पण की प्रतिमूर्ति भारतीय नारी को महिला मुक्ति आन्दोलनों के नाम पर पथभ्रष्ट किया जा रहा है। इसी पर तंज कसते हुए प्रो. मिश्र जी कहते हैं–

महिलामुक्त्यान्दोलनैस्त्वया
गृहबद्धा नार्यो विमोचिताः।
पतयः पचन्ति किल महानसे
पत्न्यश्च समाजोद्धाररताः।।
धात्री पालयति शिशुं भवने
पितृपरिचयरहितं नमोनमः।।[18]

इन सबके बाबजूद अभिराज का काव्य भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा है उनमें समाज को बदलने का संकल्प है। समाज के गिरते मूल्य क्या हमारी लोककल्याणपरक परम्पराओं को नष्ट कर पायेंगे ? प्रत्युत्तर में क़वि हृदय का विश्वास झकझोर देता है कि नहीं भारतीय वसुन्धरा का आत्मगौरव आज भी विद्यमान है–

गौरव तदेव येन दुर्गुणोऽपि जीयते
मानवेन मानवाय बन्धुताऽनुभूयते[19]

व्यक्ति को हमेशा अपनी वैचारिक शद्धता पर बल देते हुए प्राणीमात्र के कल्याण की कामना करनी चाहिए तथा तदनुसार ही आचरण करना चाहिए–

चिन्तनीय सदा मङ्गलं मङ्गलम्
वर्तनीय सदा मङ्गलं मङ्गलम् ।।[20]

मानवाधिकारों के उल्लंघन करने पर मनुष्य जीवन पाशविक हो जायेगा। कविवर अपनी गीति के माध्यम से आह्वाहन करते हैं कि हमें अपने मूल्यों व विधानों को सहेजना चाहिए–

जीवनं रोचते नो विधानं विना
मोदते नैव हंसो निपानं विना!!
शास्त्रचर्चा विधत्से सुरामन्दिरे
भासि बन्धो! पशुत्वं विषाणं विना!![21]

सब का मंगल चाहने वाली, सबकी उन्नति की कामना करने वाली, विश्वशान्ति की प्रबल पक्षधर,एवं विश्वबन्धुता का भाव सर्वत्र संचारित करने वाली भारतीय संस्कृति व भारती–वसुन्धरा में जन्म लेना हमारे गौरव, मान व प्रतिष्ठा का विषय है–

लोकतन्त्रस्थापने सर्वोदये नित्यम्
विश्वशान्तौ विश्वबन्धुत्वे च यत्सत्यम्
देश एषोऽग्रेसरः
विश्वमङ्गलशेखरः
भारतीयो भारतीयो भारतीयोऽहम्।
भारतीयो भारतीयो भारतीयस्त्वम्।।[22]

प्रत्येक भारतवासी मनसा–वचसा–कर्मणा मानवाधिकारों का प्रबल पक्षधर रहा है। यहाँ सभी के साथ–साथ चलने, समान रूप से सोचने–विचारने की कामना देववाणी संस्कृत में अभिव्यक्त हुई है। जब–जब कोई व्यक्ति धर्मच्युत होकर दूसरे के अधिकारों का हनन करता है, तब–तब महाभारत सरीखे युद्ध भी यहाँ हुए हैं। इस मानवाधिकारपरक चेतना को कविवर द्वारा निम्न प्रकार से अपनी गीति का विषय बनाया है–

सङ्गच्छध्वमितीव प्रथितसांमनस्यम् ऋग्वेदे रोदस्याः शतसहस्रदृश्यम्।।
क्रौंचवधाच्छ्लोकत्वं याता कवेर्व्यथा विश्वदुरितहन्त्री सा रामायणी कथा।।
धर्मस्थापनहेतोर्यदभूद् गृहयुद्धम् महाभारते विलसति तच्चरितं शुद्धम्।।[23]

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता, और बन्धुता जैसे लोकतान्त्रिक आदर्शों के प्रति स्वप्न भंग, प्रजातन्त्र की विफलता, भ्रष्टाचार, राजनीति का अपराधीकरण, प्रौद्योगिकी सभ्यता के दुष्परिणाम, पर्यावरण–विनाश की चिन्ता, जीवन की यान्त्रिकता और एकाकीपन, स्वार्थसिद्धि की अँधी दौड़ और देश की दुर्दशा कविवर अभिराज के नवगीतों में गहरे धारधार व्यंग्य, वेदना या विरोधाभास के स्वर में उभरे हैं। कविवर युगबोध और लोक–सम्पृक्ति से जुड़े हुए सभी विषयों पर प्रश्न उठाकर मानवाधिकारों के प्रबल प्रहरी बन उठे हैं। कविवर स्वयं कहते हैं कि समाज व परिवेश में जो कुछ भी गलत, अनुचित, अमंगलकारी अथवा भारतीय संस्कृति में स्थापित मर्यादाओं एवं मानवाधिकारों के विरूद्ध घटित होता है, वह सब मुझे उद्विग्न व विचलित करता रहा है एवं वही उद्वेग गीत रूप में परिणत होकर सुधीपाठकों के समक्ष उपस्थित हुआ है–

निजाऽभ्यस्तमार्गे विरूढाश्मखण्डान् अपाकर्तुमेव प्रयत्नानकर्षम्।
तदप्यात्तवैरैः सुहृद्भिर्न सोढं परिव्राजनम्मे सदाऽऽतङ्कितं रे।।[24]

सन्दर्भ :

1. मानव अधिकार, डॉ. टी. पी. त्रिपाठी, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, पृ. 11
2. भारतीय संस्कृति में निरूपित जीवन–मूल्य एवं मानवाधिकार, प्रो. यादराम मीणा, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, पृ. 41
3. नवगीत में लोक चेतना, डॉ. इन्दीवर पाण्डेय, ग्रीन लीफ पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ. 102
4. रामायण, बालकाण्ड, द्वितीय सर्ग, श्लोक 15
5. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मधुपर्णी, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 74, जयति विबुधवाणी/5
6. नवगीत में लोक चेतना, डॉ. इन्दीवर पाण्डेय, ग्रीन लीफ पब्लिकेशन, वाराणसी, पृ. 102
7. अभिराजगीता, 'शनैः शनैः', डॉ. राजेन्द्रमिश्र, पृ. 04
8. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मधुपर्णी, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 15, न हन्तव्यो न हन्तव्यः/03
9. वही, वही, पृ. 33, कीदृशमिदं विधानम्/02
10. त्रिवेणीकवि अभिराज राजेन्द्रमिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, डॉ. राजेशकुमारी मिश्र, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 224
11. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मधुपर्णी, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 27, प्रतिशाखमुलूका वल्गन्ते/04
12. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मृद्वीका/40, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 57
13. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मधुपर्णी/'पत्रं श्रीबाणभट्टस्य, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 114–115,
14. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मत्तवारणी, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 124/2
15. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, श्रुतिम्भरा/कीदृशी स्वतन्त्रता ?, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 55
16. वही, वही, रक्तरंजितं दृश्यतेऽद्य भारतम्!!, पृ. 60
17. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मधुपर्णी/वसन्तसेना/03, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 107
18. वही, वही, नमोनमः/06, पृ. 56
19. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, वाग्वधूटी–10/01, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद
20. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मृद्वीका, पंचमी गीतिः, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 08
21. वही, वही, त्रिंशत्तमी गीतिः, पृ. 44
22. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, मधुपर्णी/भारतीयोऽहम्/08, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 46
23. वही, वही, जयति विबुधवाणी/3,4,5, पृ. 74
24. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, श्रुतिम्भर, भूमिकाभाग–मदीया काव्ययात्रा, वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 18

♦♦♦

About the journal

The **"Shabdarnav"** an international journal of multi disciplinary researches provides a common platform for the researchers and workers of various fields of study to obtain a place in the interdisciplinary research as opposed to the majority of available journals dealing only with the specific areas, where contributors find it difficult to associate with the researches involving overlapping fields of study.

The **"Shabdarnav"** is like an ocean of interdisciplinary researches where various fields of research such as – Scientific, Educational, Technological, Behavioral and Literary are included. The name of the journal itself reveals that this is an ocean of words and intellect.

Contact for :

09455458502

e-mail ID : shabdarnav@gmail.com

₹ 400/-

Raj Graphics # **09415842611**